सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

बिदियो ट्ठिदिबंधाहियारो

[द्वितीय स्थितिबन्धाधिकार]

पुस्तक २

भारतीय ज्ञानपीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक-४

सिरि भगवंत भूदबलि भडारय पणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

विदियो ट्ठिदिबंधाहियारो

[द्वितीय स्थितिबन्धाधिकार]

हिन्दी अनुवाद सहित

पुस्तक २

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

नम्र सूचन
इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य पूर्ण होते ही नियत समयावधि में शीघ्र वापस करने की कृपा करें. जिससे अन्य वाचकगण इसका उपयोग कर सकें.

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १९९८ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : विकास ऑफसेट, दिल्ली-११० ०३२

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Moortidevi Jain Granthamala : Prākrita Grantha No. 4

MAHĀBANDHO

[Second Part : Sthiti-bandhādhikāra]

of

Bhagvān Bhutabali

Vol. II

Edited and Translated by
Pt. Phoolchandra Siddhantashastri

BHARATIYA JNANPITH

Second Edition : 1998 □ Price : Rs. 140.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 • Vikrama Sam. 2000 • 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in the respective languages with their translations in modern languages.
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies, art and architecture by competent scholars, and also popular Jain literature.

•

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Vikas Offset, Delhi-110032

All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रास्ताविक

(प्रथम संस्करण, १९५३ से)

जब आज से लगभग छह वर्ष पूर्व महाबन्ध का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था, तब आशा यह की गयी थी कि इस परमागम के शेष खण्ड भी जल्दी-जल्दी अनुक्रम से पाठकों के हाथों में दिये जा सकेंगे। किन्तु इस प्रकाशन के लिए ज्ञानपीठ की बड़ी तत्परता और उत्साह होते हुए भी सम्पादन सम्बन्धी कठिनाई के कारण वर्ष पर वर्ष निकलते चले गये, पर द्वितीय खण्ड की सामग्री संस्था के पास न पहुँच सकी। अन्ततः प्रथम खण्ड के सम्पादक से सर्वथा निराश होकर तथा अधिक विलम्ब करना अनुचित समझकर अन्य सम्पादक की व्यवस्था अनिवार्य हो गयी।

इस खण्ड के सम्पादक पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री से विद्वत्समाज भलीभाँति परिचित है। धवलसिद्धान्त के सम्पादन व प्रकाशन कार्य में उनका बड़ा सहयोग रहा है, और अब पुनः सहयोग मिल रहा है। उन्होंने इस खण्ड के सम्पादन का कार्य सहर्ष स्वीकार किया और आशातीत स्वल्पकाल में ही—केवल कुछ मासों में ही—इतना सम्पादन और अनुवाद करके सिद्धान्तोद्धार के पुण्य कार्य में उत्तम योगदान दिया है। इस कार्य के लिए ग्रन्थमाला की ओर से हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं, और आशा करते हैं कि वे ऐसी ही लगन के साथ शेष खण्डों का भी सम्पादन कर इस महान् साहित्यिक विधि को शीघ्र सर्वसुलभ बनाने में सहायक होने का पुण्य प्राप्त करेंगे। कार्य वेग से किये जाने पर भी, सिद्धहस्त होने के कारण, पण्डितजी के सम्पादन व अनुवाद कार्य से हमें बड़ा सन्तोष हुआ है, और भरोसा है कि पाठक भी इससे सन्तुष्ट होंगे।

यहाँ हम ज्ञानपीठ के संस्थापक श्री शान्तिप्रसाद जी तथा संस्था के मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। एक तो उन्होंने विपत्तियों और विघ्नबाधाओं के कारण कभी अपने उत्साह को मन्द नहीं होने दिया और न क्षोभ-उद्वेग को स्थान दिया। और वे प्राचीन जैन सिद्धान्त सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशन में किसी व्यावसायिक लेखे-जोखे से आशंकित नहीं होते। प्रत्युत उनकी भावना है कि जितना हो सके, जितनी उत्तम रीति से हो सके और जितने जल्दी हो सके, उतना जैन साहित्य का प्रकाशन किया जाय। हमें विश्वास है कि साहित्यिक विद्वान् उनकी इस उत्तम भावना से लाभ उठावेंगे और यह उपयोगी ग्रन्थ अति सुन्दर ढंग से विद्वत्संसार के सम्मुख उपस्थित करने में सहायता प्रदान करेंगे।

—हीरालाल जैन

—आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

ग्रन्थमाला सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरिनगर की चन्द्रगुफा

—डॉ. हीरालाल जैन

'षट्खण्डागम' की टीका 'धवला' के रचयिता वीरसेनाचार्य ने कहा है कि समस्त सिद्धान्त के एक-देशज्ञाता धरसेनाचार्य थे जो सोरठ देश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा में ध्यान करते थे (षट्खण्डागम, भाग १, पृ. ६७)। उन्हें सिद्धान्त के संरक्षण की चिन्ता हुई। अतः महिमानगरी के तत्कालवर्ती मुनिसम्मेलन को पत्र लिखकर उन्होंने वहाँ से दो मुनियों को बुलाया और उन्हें सिद्धान्त सिखाया। ये ही दो मुनि पुष्पदन्त और भूतबलि नामों से प्रसिद्ध हुए और इन्होंने वह समस्त सिद्धान्त षट्खण्डागम के सूत्र रूप में लिपि-बद्ध किया।

इस उल्लेख से यह तो सुस्पष्ट हो जाता है कि धरसेनाचार्य सौराष्ट्र (काठियावाड़-गुजरात) के निवासी थे और गिरिनगर में रहते थे। यह गिरिनगर आधुनिक गिरनार है जो प्राचीन काल में सौराष्ट्र की राजधानी था। यहाँ मौर्य क्षत्रप और गुप्तकाल के सुप्रसिद्ध शिलालेख पाये गये हैं। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ने भी यहाँ तपस्या की थी, जिससे यह स्थान जैनियों का एक बड़ा तीर्थक्षेत्र है। आधुनिक काल में नगर का नाम तो जूनागढ़ हो गया है और प्राचीन नाम गिरनार उसी समीपवर्ती पहाड़ी का रख दिया गया जो पहले ऊर्जयन्त पर्वत के नाम से प्रसिद्ध थी। अब प्रश्न यह है कि क्या इस इतिहास-प्रसिद्ध नगर में उस चन्द्रगुफा का पता लग सकता है जहाँ धरसेनाचार्य ध्यान करते थे, और जहाँ उनके श्रुतज्ञान का पारायण पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों को कराया गया था।

खोज करने से पता चलता है कि जूनागढ़ में बहुत-सी प्राचीन गुफाएँ हैं। एक गुफा-समूह नगर के पूर्वीय भाग में आधुनिक 'बाबा प्यारा मठ' के समीप है। इन गुफाओं का अध्ययन और वर्णन बर्जेज साहब ने किया है। उन्हें इन गुफाओं में ईसवी पूर्व पहली-दूसरी शताब्दी तक के चिह्न मिले हैं। ये गुफाएँ तीन पंक्तियों में स्थित हैं। प्रथम गुफा-पंक्ति उत्तर की ओर दक्षिणाभिमुख है। इसी के पूर्व भाग से दूसरी गुफा-पंक्ति प्रारम्भ होकर दक्षिण की ओर गयी है। यहाँ की चैत्य-गुफा की छत अति प्राचीन प्रणाली की समतल है और उसके आजू-बाजू उत्तर और पूर्व कोनों में अन्य सीधी-सादी गुफाएँ हैं। इस गुफा-पंक्ति के पीछे से तीसरी गुफा-पंक्ति प्रारम्भ होकर पश्चिमोत्तर की ओर फैली है। यहाँ की छठी गुफा (F) के पार्श्व भाग में अर्धचन्द्राकार विविक्त स्थान (२PSE) है; जैसा कि ईसवी पूर्व प्रथम-द्वितीय शताब्दी की भाजा, कार्ली, बेदसा व नासिक की बौद्ध गुफाओं में पाया जाता है। अन्य गुफाएँ बहुतायत से सम चौकोन या आयत चौकोन हैं और उनमें कोई मूर्तियाँ व सजावट नहीं पाई जाती। कुछ बड़ी-बड़ी शालाएँ भी हैं, जिनमें बरामदें भी हैं। ये सब गुफाएँ अत्यन्त प्राचीन वास्तुकला के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी हैं। (Burgess: Antiquities of Kutchh and Kathiawar, 1874-75, P. 139 ff.) ये सब गुफाएँ उनके निर्माण-काल की अपेक्षा मुख्यतः दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं—एक तो वे चैत्यगुफाएँ और तत्सम्बन्धी सादी कोठरियाँ जो उन्हें बौद्धों की प्रतीत होती हैं और जिनका काल ईसवी-पूर्व दूसरी शताब्दी अनुमान किया जा सकता है; जब कि प्रथम वार बौद्धभिक्षु गुजरात में पहुँचे। दूसरे भाग में वे गुफाएँ व शालागृह हैं जो प्रथम भाग की गुफाओं से कुछ उन्नत शैली की बनी हुई हैं, तथा जिनमें जैन चिह्न पाये जाते हैं। ये ईसवी की दूसरी शताब्दी अर्थात् क्षत्रप राजाओं के काल की अनुमान की जाती हैं। यहाँ हमारे लिए उन्हीं दूसरे भाग की गुफाओं की ओर ध्यान देना है जिनमें जैन चिह्न पाये जाते हैं।

इनमें की एक गुफा (K) में स्वस्तिक, भद्रासन, नन्दीपद, मीनयुगल और कलश के चिह्न खुदे हुए हैं। ऐसे ही चिह्न मथुरा के जैनस्तूप की खुदाई से प्राप्त आयागपट्टों पर पाये गये हैं। (Smith: Jain Stupa (Arch. Survey of India XX, Pt. XI) यही नहीं, वहाँ से एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, जिसमें क्षत्रप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजाओं के अतिरिक्त 'केवली' या केवलज्ञान का उल्लेख है। इस पर से उसके जैनत्व में कोई संशय ही नहीं रहता। दुर्भाग्यतः इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिलालेख की दुर्दशा की बड़ी करुण कहानी है। उक्त गुफा के सम्मुख सन् १८७६ से पूर्व कुछ खुदाई हुई थी; उसी में वह शिलापट्ट हाथ लगा। निकालने में ही उसका एक हिस्सा टूट गया। फिर उसे उठाकर कोई शहर के भीतर राजमहल में ले गया और इसी समय उसके एक ओर के कोने को भारी क्षति पहुँची। जब बर्जेज साहब उसका फोटो लेने गये तब उसका पता लगना ही कठिन हो गया। अन्ततः वह महल के सामने गोल बरामदे में एक जगह पड़ा हुआ मिला। (Arch : Survey of Western India, Vol. II p. 140) फिर वह कुछ काल तक झूनागढ़ दरबार के छापाखाने में पड़ा रहा। तत्पश्चात् किसी और एक विपत्ति में पड़कर उसके दो टुकड़े हो गये और इस हालत में अब वह वहाँ के अजायबघर में सुरक्षित है।

यह शिलापट्ट दो फुट लम्बा-चौड़ा और आठ इंच मोटा है। इसके एक पृष्ठभाग पर चार पंक्तियों का लेख है जो एक फुट, नौ इंच चौड़ी और छह इंच ऊँची जगह में है। एक-एक अक्षर लगभग आधा इंच बड़ा है। लेख को क्षति बहुत पहुँची है। बीच की दो पंक्तियाँ कुछ सुरक्षित हैं, किन्तु प्रथम और चतुर्थ पंक्ति का बहुत-सा भाग अस्पष्ट हो गया है और पढ़ने में नहीं आता। फिर एक ओर से जो शिलापट्ट टूट गया है, उसके साथ इन पंक्तियों का कितना हिस्सा खो गया; यह निश्चयतः नहीं कहा जा सकता। बुल्हर साहब के मत से दूसरी और चौथी पंक्तियाँ प्रायः पूरी हैं, केवल कोई दो अक्षरों की ही कमी है। किन्तु यह अनुमान ही है, निश्चित नहीं। उसी काल के अन्य शिलालेखों पर से निश्चयतः तो इतना ही कहा जा सकता है कि दूसरी और तीसरी पंक्तियों में जयदामन् नरेश के पुत्र और पौत्र के नामोल्लेख तथा लेख के वर्ष का उल्लेख, सम्भवतः अंकों और शब्दों में दोनों प्रकार से अवश्य रहा होगा। लेख की लिपि निश्चयतः क्षत्रप-काल की है। लेख टूटा हुआ होने से उसका प्रयोजन स्पष्टतः ज्ञात नहीं होता। किन्तु जितना कुछ लेख बचा है, उससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि उसका सम्बन्ध जैन धर्म की किसी घटना से है। उसमें 'देवासुरनागयक्षराक्षस', 'केवलिज्ञान', 'जरामरण' जैसे शब्द स्खलित पड़े हुए हैं, जिनसे अनुमान होता है कि उसमें किसी बड़े ज्ञानी और संयमी जैनमुनि के शरीरत्याग का उल्लेख रहा हो और उस अवसर पर देव, असुर, नाग, यक्ष और राक्षसों ने उत्सव मनाया हो। यह घटना 'गिरिनगर' (गिरनार) में ही हुई थी, इसका लेख में स्पष्ट उल्लेख है। घटना का काल चैत्र शुक्ल पंचमी दिया है, पर वर्ष का उल्लेख टूट गया है। जिस राजा के राज्यकाल में यह घटना हुई थी उस राजा का नाम भी टूट गया है। पर इतना तो स्पष्ट है कि वह राजा क्षत्रप वंश के चष्टन का प्रपौत्र व जयदामन् का पौत्र था। इस वंश के अन्य शिलालेखों व सिक्कों पर से क्षत्रप वंश की प्रस्तुतोपयोगी निम्न परम्परा का पता चल चुका है--

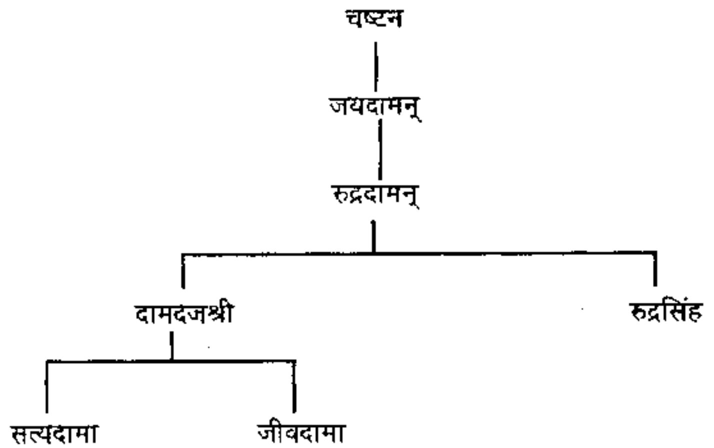

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतएव यह अनुमान किया जा सकता है कि उक्त लेख में चष्टन के प्रपौत्र और जयदामन् के पौत्र से रुद्रदामन् के पुत्र दामदजश्री या रुद्रसिंह का ही अभिप्राय होगा। चष्टन का उल्लेख यूनानी लेखक टालेमी ने अपने ग्रन्थ में किया है। यह ग्रन्थ सन् १३० ई. (शक ५२) के लगभग लिखा गया है। रुद्रदामन् के समय के सुप्रसिद्ध लेख में शक ७२ (सन् १५०) का उल्लेख है। रुद्रसिंह के शिलालेख व सिक्कों पर शक १०२ से ११० व ११३ से ११८-११६ तक के उल्लेख मिले हैं। शक संवत १०३ का लेख अनेक बातों में प्रस्तुत लेख के समान होने से हमारे लिए बहुत उपयोगी है। जीवदामन् के शक ११६ से १२० तक के सिक्के मिले हैं। क्षत्रप राजाओं के राज्यकाल की सीमाएँ अभी बहुत कुछ गड़बड़ी में हैं। इन राजाओं में यह भी प्रथा थी कि राज्य-परम्परा एक भाई के पश्चात् उससे छोटे भाई की ओर चलती थी और जब सब जीवित भाइयों का राज्य समाप्त हो जाय, तब नयी पीढ़ी की ओर जाती थी। इससे भी क्रमनिश्चय में कुछ कठिनाई पड़ती है। तथापि पूर्वोक्त निश्चित उल्लेखों पर से हमें प्रस्तुतोपयोगी इतनी बात तो विदित हो जाती है कि उक्त लेख दामदजश्री या रुद्रसिंह के समय का है और इनका समय शक ७२ से ११६ अर्थात् सन् १५० से १६७ ई. तक के ४७ वर्षों के भीतर ही पड़ता है। रुद्रसिंह के शक १०३ के गुण्ड नामक स्थान से प्राप्त लेख को देखने से अनुमान होता है कि प्रस्तुत लेख भी उन्हीं के समय का और उक्त वर्ष के आसपास का हो तो आश्चर्य नहीं। अतः प्रस्तुत लेख का काल लगभग शक १०३ (सन् १८१) अनुमान किया जा सकता है।

हम 'षट्खण्डागम' के प्रथम भाग की प्रस्तावना में 'षट्खण्डागम' के विषय के ज्ञाता धरसेनाचार्य के विषय में बता आये हैं कि उन्होंने गिरिनगर की चन्द्रगुफा में रहते हुए पुष्पदन्त और भूतबलि को सिद्धान्त पढ़ाया था। जैन पट्टावलियों आदि पर से उनके काल का भी विचार करके हम इस निर्णय पर पहुँचे थे कि उक्त ग्रन्थ की रचना शक ६ (सन् ८७) के पश्चात् हुई थी। अब हम जब गिरिनगर की उक्त गुफाओं और वहाँ के उक्त शिलालेख पर विचार करते हैं तो अनुमान होता है कि सम्भवतः जूनागढ़ की ये ही 'बाबा प्यारा मठ' के पास की प्राचीन जैन गुफाएँ धरसेनाचार्य का निवास-स्थल रही हैं। क्षेत्र वही है, काल भी वही पड़ता है। धरसेन की गुफा का नाम चन्द्रगुफा था। यहाँ की एक गुफा का पिछला हिस्सा–चैत्यस्थान-चन्द्राकार है। आश्चर्य नहीं जो इसी कारण वही गुफा चन्द्रगुफा कहलाती रही हो। आश्चर्य नहीं जो उपर्युक्त शिलालेख उन्हीं धरसेनाचार्य की स्मृति में ही अंकित किया गया हो। लेख में ज्ञान का उल्लेख ध्यान देने योग्य है। यदि यह लेख पूरा मिल गया होता तो जैन इतिहास की एक बड़ी भारी घटना पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता। इस शिलालेख की दुर्दशा इस बात का प्रमाण है कि हमारे प्राचीन इतिहास की सामग्री किस प्रकार आज भी नष्ट-भ्रष्ट हो रही है।

यह लेख सर्वप्रथम सन् १८७६ में डॉ. बुल्हर द्वारा सम्पादित किया गया था और फोटोग्राफर तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित Archaeological Survey of Western India, Vol. II में पृष्ठ १४० आदि पर छपा था। यही फिर कुछ साधारण सुधारों के साथ सन् १८६५ में स्याही के ठप्पे की प्रतिलिपि व अनुवाद सहित 'भावनगर के प्राकृत और संस्कृत के शिलालेख' के पृष्ठ १७ आदि पर छपा। रैपसन साहब ने अपने Catalogue of coins of the Andhra Dynasty etc; P.L. XI, No. 40 में इस लेख का संक्षिप्त परिचय दिया है तथा प्रो. लूडर्स ने अपनी List of Brahmi Inscriptions में नं. ६६६ पर इस लेखका संक्षिप्त परिचय दिया है। यह लिस्ट एपीग्राफीआ इण्डिका, भाग १० सन् १६१२ के परिशिष्ट में प्रकाशित हुई है। इस लेख का अन्तिम सम्पादन व अनुवाद आदि राखालदास बनर्जी और विष्णु एस. सुखतंकर ने किया है जो एपीग्राफिया इण्डिका भाग १६, के पृ. २३६ आदि पर छपा है। और इसी के आधार से हमने उसका पाठ लिखा है। उक्त गुफाओं का सर्वप्रथम वर्णन बर्जेज साहब ने किया है, जो उनकी Antiquities of Kutchh and Kathiawar (१८७४–७५) के पृष्ठ १३६ आदि पर छपा है। उनका परिचय हाल ही में श्रीयुत एच. डी. सांकलिया ने अपनी 'The Archaeology of Gujrat' (Bombay 1941) नामक पुस्तक में कराया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त लेख इस प्रकार है—

(पं. १) ·····स्तथा सुरगण । ा । (क्षत्रा) णां प्रथ (म)·····
(पं. २) ·····चाष्टनस्य प्र । पौ । त्रस्य राज्ञः क्ष । त्रप । स्य स्वामिजयदामपे । ो । त्रस्य राज्ञो म । हा ।·····
(पं. ३) ·····(चै) त्रशुक्लस्य दिवसे पंचमे ५ इ (ह) गिरिनगरे देवासुरनागय । क्ष । राक्षसे·····

(पं. ४) ·····थ । पु । रमिव·····केवलि । ज्ञा । न सं·····नां जरामरण । ा ।

अनुवाद

·····तथा सुरगण·····क्षत्रियों में प्रथम·····चष्टन के प्रपौत्र के, राजा क्षत्रप स्वामी जयदाम के पौत्र के, राजा महा·····चैत्र शुक्ल की पंचमी को ५ यहाँ गिरिनगर में देवासुरनागयक्षराक्षस·····पुर के समान····· केवलिज्ञान सं·····के जरामरण·····

इस लेख की राजवंशावलि आदि को समझने तथा लेख की गति-विधि का कुछ आभास देने के लिए हम चष्टन के प्रपौत्र, जयदाम के पौत्र रुद्रदाम के पुत्र स्वामी रुद्रसिंह के उस लेख को भी यहाँ उद्घृत कर देना उचित समझते हैं जो ठीक इसी लिपि में लिखा हुआ गुण्ड नामक स्थान से प्राप्त हुआ है, जो अपने रूप में पूरा है और जिसमें १०३वें वर्ष का स्पष्ट उल्लेख है—

गुण्ड का शिलालेख

(पं. १) सिद्धं । राजो महक्षत्र । प । स्य स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य स्वामिजयदाम पौत्रस्य
(पं. २) राज्ञो महक्षत्रपस्य स्वामिरुद्रदामपुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य स्वामिरुद्र—
(पं. ३) मीहस्य । व । र्षे । त्र । युत्तरशते १००३ वैशाखशुद्धे पंचमिघसतिथौ रो । हि । णि नक्ष—
(पं. ४) त्र मुहूर्ते आभीरेण सेनापतिबापकस्य पुत्रेण सेनापतिरुद्रभूतिना ग्रामेरसो—
(पं. ५) । प । द्रिये वा । पी । । ख । नि । तो । । बद्ध । ा पितश्च सर्वसत्त्वानां हित सुखार्थमिति ।

अनुवाद

सिद्धं । राजा महाक्षत्रप स्वामिचष्टन के प्रपौत्र, राजा क्षत्रपस्वामी जयदाम के पौत्र, राजा महाक्षत्रपस्वामी रुद्रदामके पुत्र, राजा क्षत्रपस्वामी रुद्रसिंह के वर्ष एक सौ तीन वैशाख शुद्ध पंचमी तिथि के रोहिणी नक्षत्र के मुहूर्त में आभीर सेनापति बापक के पुत्र सेनापति रुद्रभूति ने ग्राम रसोपद्रिय में वापी खुदवायी और बँधवायी सब जीवों के हित और सुख के लिए। इति।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

(प्रथम संस्करण, १९५३ से)

अंगों और पूर्वों के एकदेश ज्ञाता और सोरठ देश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा में निवास करनेवाले प्रातःस्मरणीय आचार्य धरसेन के प्रमुख शिष्य आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने मिलकर जिस 'षट्खण्डागम' की रचना की है, उसका 'महाबन्ध' यह अन्तिम खण्ड है। इसके मुख्य अधिकार चार हैं--प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इनमें से प्रकृतिबन्ध का सम्पादन और अनुवाद कार्य पं. सुमेरचन्द्र जी दिवाकर (शास्त्री, न्यायतीर्थ, बी. ए., एल-एल बी.) ने अपने सहयोगी पं. परमानन्दजी साहित्याचार्य और पं. कुन्दनलालजी न्यायतीर्थ, सिवनी के साथ मिलकर किया था। इसे भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुए लगभग पाँच वर्ष से ऊपर हो गये हैं।

यह स्थितिबन्ध नामक दूसरा अधिकार है। प्रकृतिबन्ध की अपेक्षा शेष तीनों अधिकार परिमाण में दूने-दूने हैं, इसलिए इस भाग में मूल प्रकृतिस्थितिबन्ध और उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध का एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम तक का भाग ही सम्मिलित किया गया है।

हस्तलिखित प्रतिका परिचय--

इसका सम्पादन और अनुवाद कार्य करते समय हमें महाबन्ध की केवल एक प्रति ही उपलब्ध रही है। यह प्रति मेरे जयधवला कार्यालय में कार्य करते समय श्री अखिल भारतवर्षीय दि. जैन संघ के साहित्य मन्त्री पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने मूडबिद्री से प्रतिलिपि करा कर बुलायी थी। भारतीय ज्ञानपीठ की प्रबन्धसमिति और उसके सुयोग्य मन्त्री पं. अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने जब यह निश्चय किया कि महाबन्ध के आगे के भागों का सम्पादन और अनुवाद कार्य मुझसे कराया जाय, तब जयधवला कार्यालय से इस प्रति को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया गया। यद्यपि ऐसे अवसरों पर दूसरे बन्धु किसी ग्रन्थ की प्रति आदि देने में अनेक अड़चनें उपस्थित करते हैं। वे प्रबन्ध के नाम पर उसके स्वामी बनने तक का प्रयत्न करते हैं। किन्तु इसे प्राप्त करने में ऐसी कोई अड़चन नहीं हुई। श्रीमान् पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री को इस बात के विदित होने पर उन्होंने तत्काल इस प्रति को प्रतिलिपि का लागत मात्र दिलवाकर ज्ञानपीठ को सौंप दिया। वही यह प्रति है जिसके आधार से महाबन्ध का आगे का सम्पादन और अनुवाद कार्य हो रहा है। यह प्रति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री के ज्येष्ठ बन्धु स्व. श्री पं. लोकनाथजी शास्त्री ने ताडपत्रीय प्रति के आधार से प्रतिलिपि करके भेजी थी। प्रति फुलस्केप साईज के कागजों पर एक ओर हाँसिया छोड़कर की गयी है। अक्षर सुन्दर और अन्तर से लिखे हुए होने से प्रेस-कापी के रूप में इसी का उपयोग हुआ है।

पाठान्तर--

पं. सुमेरचन्द्रजी दिवाकर के पास जो प्रति है वह भी मूडबिद्री की ताडपत्रीय प्रति के आधार से की गयी है और यह प्रति भी वहीं से लिपिबद्ध होकर आयी है। ऐसी अवस्था में इन दोनों प्रतियों में लेखक के प्रमाद से छूटे हुए या दुहराकर लिखे गये कुछ स्थलों को छोड़कर पाठान्तरों की कोई भी शंका नहीं कर सकता। हमारा भी यही अनुमान था। हम समझते थे कि ये दोनों प्रतियाँ एक ही प्रति के आधार से लिपिबद्ध करायी गयी हैं, इसलिए इनमें पाठभेद नहीं होगा। पर हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पाठान्तर इनमें भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध होते हैं। यद्यपि हमारे सामने पं. सुमेरचन्द्र जी वाली प्रति नहीं है और न उसे प्राप्त करने का कोई प्रयत्न ही किया गया है, पर उस प्रति के आधार से जो प्रकृतिबन्ध मुद्रित हुआ है वह हमारे सामने है। उसके साथ आदर्श प्रति (जो प्रति हमारे पास है) के कुछ पृष्ठों का हमने मिलान किया है। परिणामस्वरूप जो पाठान्तर हमें उपलब्ध हुए हैं, उनमें से कुछ पाठान्तर, उनका प्रकार दिखलाने के लिए हम यहाँ दे रहे हैं—

१. **रुजगम्हि** (आदर्श प्रति)। **रुजुगम्हि** (मुद्रित प्रति पृ. २१)

२. **चउण्णमुद्दी** (आ. प्र.)। **चदुण्हं वुद्दी** (मु.प्र. पृ. २२)

३. **तहा आरणच्चुदा** (आ. प्र.)। **तथ आरणअरणच्चुदा** (मु. पृ. २३)

४. **छट्ठिं गेवज्जया** (आ. प्र.) **छट्ठी गेवज्जया** (मु.प्र. पृ. २३)

५. **किं सव्वबंधो? णोसव्वबंधो।** (आ.प्र.)
किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? णोसव्वबंधो। (मु.प्र. ३० पंक्ति १)

६. **बंधो वि** (आ.प्र.)। **बंधोपि** (मु.प्र. पृ. ३०, पंक्ति ४)

७. **आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणांतराइ** (आ.प्र.)
आदेसेण य। णाणांतराइ—(मु.प्र.पृ. ३०, पं. ६)

८. **वेदणीयस्स आयुगस्स गोदस्स च किं जहण्णबंधो** (आ. प्र.)
वेदणीय—आयु-गोदाणं किं जहण्णबंधो (मु.प्र. पृ. ३०, पं. ८)

९. **तत्थ ओघेण सादियबंधो......संतीओ भूयो** (आ.प्र.)
सादियबंधो......संतिओ भूयो (मु.प्र. पृ. ३१, पृ. १-२)

१०. **एवं मूलपगदिअट्ठपदं भंगो कादव्वो** (आ.प्र.)
एवं मूलपगदि—अट्ठपदभंगा कादव्वा (मु.प्र.पृ. ३१, पं. ३)

११. **ओघेण पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्तं सोलसकसायं भयं दुगुंच्छा तेजाकम्म० वण्ण० ४ अगुरु० उपघा० णिमिणं पंचंतराइगाणं** (आ. प्र.)
ओघेण पंचणाणावरण-णवदंसणावरण—मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगुंच्छा-तेजा-कम्मइय-वण्ण० ४-अगुरु०-उप०-णिमिण पंचंतराइयाणं (मु.प्र. पृ. ३१ पं. ५-६)

१२. **तत्थ ओघेण चोद्दस जीवसमासा णादव्वा भवंति। तं जहा** (आ.प्र.)
ओघेण चोद्दस—जीवसमासा णादव्वा भवंति। तं यथा (मु.प्र. पृ ३२, पं. २)

१३. **चदुसंठाण-चदुसंघडण-तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वि उज्जोवं**—(आ.प्र.)
चदुसंठाण-चदुसंघाद-तिरिक्खगदिपा० उज्जो० (मु.प्र.पृ. ३३, पं. ६)

१४. **णिद्दापयलाणं को बंधगो? को अबंधगो? अबंधो अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु** (आ.प्र.)
णिद्दापयलाणं को बंधगो, अबंधो को? अबंधो मिच्छादिट्ठिपहुडि याव अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु (मु.प्र.पृ. ३३, पं. ६-१०)

१५. **को बंधगो अबं०?** (आ.प्र.)। **को. बंधको, अबंधो?** (मु.प्र.पृ. ३४, पं. ४)

१६. **को बं० को अबं०** (आ.प्र.)। **को बंधको को अबंधो** (मु.प्र.पृ. ३४, पं. ८)

१७. **देवगदि० पंचिंदि० वेउव्वि० तेजाक० वेउव्वि० अंगो वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ पसत्थदि० थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं को बंधो? को अबंधो?** (आ. प्र.)
देवगदि० पंचिंदि० वेउव्वि० तेज्जाकम्म० समचदु० वेउव्वियं अंगोवंग-वण्ण० ४ देवाणु० अगुरु० ४ पसत्थविहायगदि. थीरा सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज णिमिणं को बंधको को अबंधको? (मु.प्र.पृ. ३५, पं. ६-६)

१८. **यथा दामे** (आ.प्र.)। **यथा छामे** (मु.प्र.पृ. ३५, पं. २)

१९. **यस्स इणं** (आ.प्र.)। **जस्स इणं** (मु.प्र.पृ. ४०, पं. १)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. आदेसेण णिरयेसु पंचणाणा० छदंसणा० सादासादं बारसकसा० सत्तणोक० मणुसगदि पंचिंदि० ओरालि० तेजाक० समचदु० ओरालिय० अंगो वज्जरिस० वण्ण० ४ (आ. प्र.)
आदेसेण णिरएसु पंचणाणावरण छदंसणावरण सादासादं बारसकसाय-सत्तणोकसायाणं मणुसगदि-पंचिंदिय- ओरालियतेजाकम्मइय-समचदुरससंठाण-ओरालिय० अंगोवंग-वण्ण० ४ (मु. प्र.पृ. ४१, पं. ३-५)

२१. णउंसग (आ.प्र.) णउंसक (मु.प्र.पृ. ४१, पं. ८)

२२. मणुसगदि मणुसगदिपा० को बंधो? (आ.प्र.)
मणुसगदि-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वि-उच्चागोदाणं को बंधको? (मु.प्र.पृ. ४१, पं. १२)

२३. तेजाकम्म० (आ.प्र.) तेता कम्म० (मु.प्र.पृ. ४३, पं. ३)

२४. एवं सव्वअपज्जत्ताणं सव्वविगलिंदियाणं सव्वविगलिंदि० (आ.प्र.)
एवं सव्वअपज्जत्ताणं सव्वएइंदियाणं सव्वविगलिंदियाणं च। (मु.प्र.पृ. ४३, पं. ७)

२५. चदुआयु० तिरिक्खगदितिगं ओघं (आ.प्र.)
चदुआयु० तिरिक्खगदि ओघं। (मु.प्र.पृ. ४७, पं. ७)

२६. अपचक्खाणावर० ४ तित्थयरं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। अपच्चक्खणावर० ४ जह० अंतो०, उक्क. तेत्तीसं साग०। देवगदि ४ जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। (आ. प्र.)
अपचक्खाणावर० ४ तित्थयरं जह० अंतो०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अपच्चक्खाणा० ४ जह० अंतो० उक्क० बादालीसं सा० सादि०। अथवा तेत्तीसं सा० सादिरे० परिज्जदि। दो आयु ओघं। मणुसगदिपंचगं जह० अन्तो०। उक्क० तेत्तीसं सा०। देवगदि० ४ जह० एग०। तिण्णि-पलिदो० सादि०। (मु.प्र.पृ. ६१, पं. १-५)

२७. जह० एग०, उक्क० (आ.प्र.) जह.। उक्क० (मु.प्र.पृ. ६१, पं. ५)

२८. तिरिक्खाणुपु० परधादु० तस० ४ (आ.प्र.)
तिरिक्खाणु तस. ४ (मु.प्र.पृ. ६३, पं. १)

२९. अणंताणुबं० ४ जह० ए०, (आ.प्र.) अणंताणुबं. ४ एय.। (मु.प्र.पृ. ६३, पं. ८)

यहाँ पर हमने विविध तथ्यों को स्पष्ट करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुल २९ पाठान्तर ही उपस्थित किये हैं। इनके आधार से निम्न प्रकार निष्कर्ष फलित होते हैं–

१. प्रतिलिपि करते समय कहीं-कहीं मूल पाठ को बहुत ही कम ध्यान में रखा गया है।

उदाहरणार्थ–प्रथम पाठान्तर को ही देखिए। आदर्श प्रति के आधार से ज्ञात होता है कि मूल प्रति में 'रुजगम्हि' पाठ है; जब कि पं. सुमेरचन्द्र जी को उनके सामने उपस्थित प्रति में 'रुजुगम्हि' पाठ उपलब्ध हुआ है। दूसरे, तीसरे और चौथे पाठान्तरों से भी यही ध्वनित होता है। इन पाठों के देखने से तो यही जान पड़ता है कि मूल प्रति में आदर्श प्रति के अनुसार ही पाठ होने चाहिए।

२. मूल के आधार से प्रतिलिपि करते समय दृष्टि भ्रम या अनवधानता के कारण किसी अक्षर, पद या वाक्य का छूट जाना बहुत सम्भव है। उक्त दोनों प्रतियों में ऐसे अनेक स्खलन देखने को मिलते हैं। इसके लिए देखो क्रमांक ५, ७, ९, १२, १७, २२, २५, २७ २८ और २९ के पाठान्तर।

साधारणतः क्रमांक ५ से सम्बन्ध रखनेवाला पूरा स्थल पाठ की दृष्टि से विचारणीय है। मुद्रित प्रति के जिस पाठ का हमने यहाँ उल्लेख किया है वह शुद्ध है और आदर्श प्रति में वह त्रुटित है। तथापि 'दंसणावरणीयस्स कम्मस्स किं सव्वबंधो णो सव्वबंधो?' इस पाठ के आगे 'सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा' इतना पाठ और होना चाहिए, जो दोनों प्रतियों में त्रुटित जान पड़ता है।

क्रमांक १३ में मुद्रित प्रति में 'चदुसंठाण' के बाद 'चदुसंघाद' पाठ है जो अर्थ की दृष्टि से असंगत है। पाँच बन्धन और पाँच संघात प्रकृतियों की बन्ध प्रकरण में अलग से परिगणना नहीं की गयी है, क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनका पाँच शरीरों में अन्तर्भाव हो जाता है। आदर्श प्रति में 'चदुसंघाद' के स्थान में 'चदुसंघडण' पाठ उपलब्ध होता है जो शुद्ध है। कारण कि मध्य के चार संहननों का मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के बन्ध होता है और यहाँ इन्हीं प्रकृतियों के स्वामित्व का निर्देश किया है। क्रमांक १७ में भी इसी प्रकार का स्खलन देखने को मिलता है। इसमें आदर्श प्रति में 'तेजाक०' के बाद 'समचदु.' पाठ स्खलित है। इसके साथ दोनों प्रतियों में 'पसत्थविहायगदि' के अनन्तर 'तस०-बादर-पज्जत्त-पत्तेय' इतना पाठ और होना चाहिए। जिसका दोनों प्रतियों में अभाव दिखाई देता है। अन्य पाठों की भी यही स्थिति है।

३. 'अपि' के अर्थ में प्राकृत में 'वि' और 'पि' इन दोनों अव्यय पदों का प्रयोग होता है। क्रमांक ६ में मुद्रित प्रति में 'बंधोपि' पाठ मुद्रित किया गया है; जब कि आदर्श प्रति में यह 'बंधो वि' उपलब्ध होता है। व्याकरण की दृष्टि से यहाँ आदर्श प्रति का पाठ संगत प्रतीत होता है।

४. मुद्रित प्रति में प्रायः सर्वत्र 'को बंधको, को अबंधको' इत्यादि रूप से पाठ उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं 'णारक' ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। देखो क्रमांक १५, १६, १७ व २१। प्राकृत व्याकरण के अनुसार ऐसे प्रयोगों में तृतीय अक्षर होने का नियम है। हमने इस दृष्टि से आदर्श प्रति के भी पाठान्तर दिये हैं। उनके देखने से विदित होता है कि आदर्श प्रति में ऐसा व्यत्यय नहीं दिखाई देता है।

५. प्राचीन कानडी लिपि में द और ध प्रायः एक से लिखे जाते हैं। तथा ध और थ में भी बहुत ही कम अन्तर होता है। हमने यहाँ एक ऐसा पाठान्तर भी दिया है जिससे इस बात का पता लगता है कि पढ़ने के भ्रम के कारण ही यह पाठ दो प्रतियों में दो रूप से निबद्ध हुआ है; जब कि मूल पाठ इन दोनों पाठों से भिन्न होना चाहिए। देखें क्रमांक १८। आदर्श प्रति में यह पाठ 'दामे' उपलब्ध होता है और मुद्रित प्रति में 'छामे'। किन्तु मूल प्रति में इन दोनों पाठों से भिन्न 'थामे' पाठ होना चाहिए। 'खुद्दाबंध' में भी यह पाठ इसी रूप में उपलब्ध होता है।

इस प्रकार दोनों प्रतियों में और भी स्खलन उपलब्ध होते हैं। यहाँ हमने उनका परिचय कराने की दृष्टि से कुछ का ही उल्लेख किया है।

पाठ संशोधन की विशेषताएँ—

जैसा कि पूर्व में हम दो प्रतियों के आधार से प्रकृतिबन्ध में विविध स्खलनों की चर्चा कर आये हैं; उस तरह के स्खलन हमें प्रस्तुत भाग में भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हुए हैं। इनको कई भागों में विभक्त किया जा सकता है--

१. ऐसे पाठ जो मूल में स्खलित हैं या जो ताड़पत्र के गल जाने से नष्ट हो गये हैं, उन्हें अर्थ और प्रकरण की दृष्टि से विचार कर [ ] इस प्रकार के कोष्ठक के भीतर दिया गया है।

उदाहरण के लिए देखें पृष्ठ २१, २३, २८, २६, ३०, ४५, ४८, ६८, ७४, ८२, १०४, १२८, १४२, १६६ और २०८ आदि। तथा ताड़पत्र के गल जाने से स्खलित हुए पाठों के उदाहरण के लिए देखो पृष्ठ १५, ३१, ३, २०८ आदि।

२. ऐसे पाठ जो मूल में प्रकरण और अर्थ की दृष्टि से असंगत प्रतीत हुए, उन्हें उसी पृष्ठ में टिप्पणी में दिखाकर मूल में संशोधन कर दिया गया है। पर ऐसा वहीं किया गया है जहाँ विश्वस्त आधारों से संशोधित पाठ का निश्चय किया जा सका है। इसके लिए देखें पृष्ठ १६, ३१, ४४, ४५, ४६, ५२ और ५८ आदि।

३. एक दो ऐसे भी पाठ उपलब्ध हुए हैं जो या तो अव्यवस्थित ढंग से लिपिबद्ध किए गये हैं या ताड़पत्रीय प्रति में ही उनके क्रम में दोष है। ऐसा एक पाठ 'महाबन्ध प्रकृतिबन्ध' में भी उपलब्ध होता है। पं. सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर के पास जो प्रति है, उस आधार से मुद्रित प्रति में उनके द्वारा उस पाठ की स्थिति इस प्रकार निर्दिष्ट की गयी जान पड़ती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवेसु पंचणा०, छदंसणा० बारसक० मयदुगुं० ओरालिय० तेजाकम्मः वण्ण० ४ अगु० ४ बादरपज्जत्त-पत्तेय-णिमिणं तित्थयरं पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु ४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुंसक० पंचसंठा० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि। एइंदिय-आदाव-थावराणं जह० एग०, उक्क० वे साग सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणो ट्ठिदिअंतरं कादव्वं। एइंदिएसु पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्तं सोलसक० मयदुगुं० ओरालियतेजाकम्म० वण्ण ४ जह० एग०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। दो आयु० णिरयभंगो०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोवाणं जह० एग०, उक्क० अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थावराणं जह० एग०, वे साग ७ सादिरेयाणि। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणो ट्ठिदिअंतरं कादव्वं। (मु०प्र०पृ०, पं० ७५-७६)

यह पाठ आदर्श प्रति में भी इसी प्रकार उपलब्ध होता है। किन्तु यह होना इस प्रकार चाहिए—

देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगुं०-ओरालिय०-तेजा०-कम्म-ओरालियअंगों-वण्ण० ४ अगु० ४ बादर- पज्जत-पत्तेय-णिमिणं-तित्थयर-पंचंतराइयाणं णत्थि अंतरं। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणंताणु० ४ जह अंतो०, उक्क० एकत्तीससाग० देसू०। सादासा०-पुरिस०-चदुणोक० मणुस०-पंचिदिय० समचदु-वज्जरिस०-मणुसाणु०-पसत्थवि-तस०- थिरादिदोण्णियुगल-सुभग-सुस्सर- आदेज्ज- जस०-अजस० जह एगस० उक्क० अंतोमु०। इत्थिवे० णवुंस-पंचसंठाण-पचसं० अत्पसत्थवि-दूभग- दुस्सर-अणादेज्ज-णीचुच्चागोदाणं जह० एगस०, उक्क० एक्कत्ती साग० देसू। दो आयु० णिरयभंगो। तिरिक्खगदितिरिक्ख-गदिशरू उज्जोवाणं जह० एग०, उक्क० अट्ठारससागरोमाणि सादिरेगाणि। एइंदिय- आदाव-थावराणं जह० एग० उक्क० बेसाग० सादि०। एवं सव्वदेवेसु। णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदि अंतरं कादव्वं।

हमें प्रस्तुत प्रकरण में इस प्रकार के जो पाठ उपलब्ध हुए, उन्हें हमने पादटिप्पण में देकर मूल में संशोधन कर दिया है। इसके लिए देखें पृष्ठ २०६ आदि।

४. प्रति में कुछ प्रयोगों में दीर्घ ईकार की मात्रा के स्थान में ह्रस्व इकार की मात्रा दिखाई देती है। जान पड़ता है कि प्राचीन कनाडी लिपि में ह्रस्व और दीर्घ स्वर का कोई भेद नहीं किया जाता रहा है। अतः हमने ऐसे स्थलों पर व्याकरण के नियमानुसार ही ह्रस्व और दीर्घ स्वर के रखने का प्रयत्न किया है।

५. आदर्श प्रति में 'वणप्फदि' शब्द के स्थान में कहीं-कहीं वणफदि' ऐसा प्रयोग भी दृष्टिगोचर हुआ है। इसे कहीं-कहीं लिपिकार ने पीछे से लाल स्याही से संशोधित भी किया है। पर कहीं वह अशुद्ध ही रह गया है। हमने सर्वत्र 'वणप्फदि' पाठ ही रखा है।

६. प्राचीन कानडी लिपि में द और ध प्रायः एक से लिखे जाते हैं। इसके कारण आदर्श प्रति में 'उपणिधा' के स्थान में प्रायः 'उपणिदा' पाठ उपलब्ध हुआ है। यह स्पष्टतः लिपिकार की असावधानी है, इसलिए हमें जहाँ 'उपणिदा' पाठ उपलब्ध हुआ वहाँ उसे 'उपणिधा बना दिया है।

७. समग्र ग्रन्थ में किसी वाक्य या शब्द की पूर्ति बिन्दु रखकर की गयी है। कहीं-कहीं ये बिन्दु जहाँ चाहिए वहाँ नहीं भी रखे गये हैं और कहीं-कहीं उनकी आवश्यकता नहीं होने पर भी वे रखे गये हैं। यह व्यत्यय आदर्श प्रति में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। मुद्रित प्रति के साथ आदर्श प्रति का मिलान करने से तो यह भी विदित हुआ है कि इस बात का प्रायः बहुत ही कम ध्यान रखा गया है कि मूल प्रति में कौन शब्द या वाक्य कितना निर्दिष्ट है और कितने शब्दांश या वाक्यांश की पूर्ति के लिए बिन्दु का उपयोग किया गया है। पहले हम मूल प्रति और आदर्श प्रति के कुछ पाठान्तरों की तालिका दे आये हैं। उसके देखने से इसका स्पष्ट पता लग जाता है। ऐसी अवस्था में हमें इस बात का स्वतन्त्र रूप से विचार करना पड़ा है। फलस्वरूप जहाँ बिन्दु की हमने अनावश्यकता अनुभव की, वहाँ से उसे हटा दिया है और जहाँ उसकी आवश्यकता अनुभव की वहाँ उसकी पूर्ति कर दी है।

८. आदर्श प्रति में अनेक स्थलों पर सम्यक्त्व मार्गणा के प्रसंग से खइगसं०, उपसमसं०, सासणसं०, वेदगसं०' ऐसा पाठ उपलब्ध हुआ है। यहाँ 'स' के ऊपर अनुस्वार की आवश्यकता नहीं है। प्राचीन कनाडी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपि में अनुस्वार और वर्णद्वित्व बोधक संकेत एक बिन्दु ही होता है। सम्भव है कि इसी कारण से यह भ्रम हुआ है, अतएव ऐसे स्थानों पर हमने 'खइगस० उवसमस०, सासणस०, वेदगस०' ऐसा संशोधित पाठ रखा है। कहीं कहीं, 'जंहि' के स्थान में 'जम्हि' और 'तंहि' के स्थान में 'तम्हि' इसी नियम के अनुसार किया गया है।

६. मूल में 'कायजोगि' पाठ के स्थान में 'काजोगि' पाठ बहुलता से उपलब्ध होता है। मुद्रित प्रति (प्रकृतिबन्ध) में भी यह व्यत्यय देखा जाता है। मूल में इस प्रकार के पाठ के लिपिबद्ध होने का कारण क्या है, इसकी पुष्टि में यद्यपि हमें निश्चित आधार नहीं मिला है; तथापि 'षट्खण्डागम' के समग्र सूत्रों में 'कायजोगि' पाठ ही प्रयुक्त हुआ है; यह देखकर हमने 'काजोगि' पाठ के स्थान में सर्वत्र 'कायजोगि' पाठ को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार थोड़े बहुत संशोधन और भी करने पड़े हैं, पर ऐसा करते हुए सर्वत्र मूल पाठ की रक्षा का पूरा ध्यान रखा है।

मंगलाचरण—

हम यह पहले ही लिख आये हैं कि 'महाबन्ध' के मुख्य अनुयोगद्वार चार हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इन चारों अनुयोगद्वारों की रचना स्वयं आचार्य भूतबलि ने की है। यद्यपि ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगल करने की परिपाटी पुरानी है, पर 'षट्खण्डागम' के जीवस्थान और वेदनाखण्ड को छोड़कर शेष खण्डों के प्रारम्भ में स्वतन्त्र मंगल सूत्र उपलब्ध नहीं होता। उसमें भी जीवस्थान के प्रारम्भ में मंगलसूत्र के कर्ता स्वयं पुष्पदन्त आचार्य हैं। आचार्य वीरसेन ने मंगल के निबद्ध और अनिबद्ध ये दो भेद करते हुए लिखा है—

तच्च मंगलं दुविहं—णिबद्धमणिबद्धमिदि। तत्थ णिबद्धं णाम जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमोक्करो तमणिबद्धमंगल। इदं जीवट्ठाणं णिबद्धमंगलं। (जीवट्ठाण-संतपरूवणा, पृ. ४१)

'मंगल दो प्रकार का है—निबद्ध मंगल और अनिबद्ध मंगल। जो सूत्र के आदि में सूत्रकार के द्वारा इष्ट देवता नमस्कार निबद्ध किया जाता है वह निबद्ध मंगल है और जो सूत्र के आदि में सूत्रकारके द्वारा इष्ट देवता नमस्कार मात्र किया जाता है वह अनिबद्ध मंगल है। यह जीवस्थान निबद्ध मंगल है।'

इस निबद्ध और अनिबद्ध पद का अर्थ और अधिक स्पष्ट रूपसे समझने के लिए वेदनाखण्ड के कृति अनुयोग द्वार का यह उद्धरण विशेष उपयोगी है। यहाँ वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

'णिबद्धाणिबद्धभेएण दुविहं मंगलं। तत्थेदं किं णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि ण ताव णिबद्धमंगलमिदं; महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदियादिचउवीसअणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखंडस्स आदीए मंगलट्ठं तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्तविरोहादो।'

निबद्ध और अनिबद्ध के भेद से मंगल दो प्रकार का है। उनमें से यह मंगल क्या निबद्ध है या अनिबद्ध? यह निबद्ध मंगल तो हो नहीं सकता, क्योंकि कृति आदि चौबीस अनुयोगों में विभक्त महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के आदि में गौतम स्वामी ने इसकी रचना की है और भूतबलि भट्टारक ने मंगल के निमित्त यहाँ से लाकर इसे वेदनाखण्ड के प्रारम्भ में स्थापित किया है, अतः इसे निबद्ध मंगल मानने में विरोध आता है।'

इन दोनों उल्लेखों से स्पष्ट है कि जीवस्थान के प्रारम्भ में जो पंच नमस्कार सूत्र उपलब्ध होता है, वह स्वयं आचार्य पुष्पदन्त की कृति है और वेदनाखण्ड के प्रारम्भ में जो ४४ मंगलसूत्र आये हैं वे हैं तो स्वयं गौतम स्वामी की कृति, पर आचार्य भूतबलि ने उन्हें वेदनाखण्ड के प्रारम्भ में लाकर मंगल के निमित्त स्थापित किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दो खण्डों के सिवा शेष खण्डों के प्रारम्भ में स्वतन्त्र मंगल सूत्र क्यों नहीं रचे गये, इस पर वीरसेन स्वामी वेदनाखण्ड के प्रारम्भ में मंगलसूत्रों का उपसंहार करते हुए कहते हैं—

'उवरि उच्चमाणेसु तिसु खंडेसु कस्सेदं मंगलं! तिण्णिखंडाणं। कुदो? वग्गणामहाबंधाणमादीए मंगलाकरणादो।' (पृ. १०५)

'आगे कहे जानेवाले तीन खण्डों में से किस खण्ड का यह मंगल है? आगे कहे जानेवाले तीनों खण्डों का यह मंगल है; क्योंकि वर्गणा और महाबन्ध इन दो खण्डों के प्रारम्भ में मंगल नहीं किया गया है।'

इस उल्लेख से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि वीरसेन स्वामी के मतानुसार वेदनाखण्ड के प्रारम्भ में आया हुआ मंगल ही महाबन्ध का मंगल है और इसीलिए वहाँ अलग से मंगल नहीं किया गया है। पर मूडबिद्री की ताडपत्रीय प्रति के आधार से जो प्रतिलिपि होकर हमारे सामने उपस्थित है, उसमें प्रत्येक मुख्य अनुयोगद्वार के प्रारम्भ में 'णमो अरिहंताणं' यह मंगलसूत्र स्थापित किया गया है। प्रकृतिबन्ध का प्रथम ताड़पत्र त्रुटित होने के कारण उसके सम्पादन के समय यह समस्या उपस्थित नहीं हुई। वहां तो वीरसेन स्वामी की सूचनानुसार वेदनाखण्ड का मंगलाचरण लाकर उससे निर्वाह कर लिया गया। पर स्थितिबन्ध के प्रारम्भ में 'णमो अरिहंताणं' इस मंगल सूत्र को देखकर हमारे सामने यह प्रश्न था कि इस सम्बन्ध में क्या किया जाय। हमने इस सम्बन्ध में एक-दो विद्वानों से परामर्श भी किया। अन्त में सबकी सलाह से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि मूल प्रति में स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के प्रारम्भ में यह मंगलसूत्र उपलब्ध होता है, तो उसे वैसा ही रहने दिया जाय। यद्यपि हम जानते हैं कि स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध से खण्ड का प्रारम्भ नहीं होता। 'महाबन्ध' खण्ड का प्रारम्भ तो प्रकृतिबन्ध से होता है, तथापि इन अनुयोगद्वारों के प्रारम्भ में इस मंगलसूत्र का निवेश कब किसने किया; इस बात का ठीक तरह से निर्णय करने का कोई साधन उपलब्ध न होने से उक्त मंगल सूत्र को यथास्थान रहने दिया गया है।

हमारे विचार से ऐसा करने से एक बहुत बड़े सत्य की रक्षा हो जाती है। पाठक जानते ही हैं कि अमरावती से जो धवला का प्रकाशन हो रहा है, उसके प्रत्येक भाग के प्रथम व मुखपृष्ठ पर 'भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतः' यह मुद्रित किया जाता है; जब कि सबको यह विदित है कि वीरसेन स्वामी के मतानुसार आचार्य पुष्पदन्त ने केवल सत्प्ररूपणा की रचना की है और आचार्य भूतबलि ने शेष छहों खण्डों की रचना की है। जीवस्थानद्रव्यप्रमाणानुगम के मुद्रण के समय आदरणीय डॉ. हीरालाल जी के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित था। उस समय हम वहीं धवला कार्यालय में कार्य करते थे। प्रश्न यह था कि आचार्य पुष्पदन्त ने आचार्य भूतबलि के पास जिनपालित को केवल सत्प्ररूपणा लेकर भेजा होगा या अपनी रूपरेखा का ज्ञान भी कराया होगा। विचार-विनिमय के अनन्तर उस समय निश्चय हुआ था कि अधिकतर सम्भव तो यही है कि उन्होंने ग्रन्थ रचना के सम्बन्ध की समस्त विशेष जानकारी के साथ ही सत्प्ररूपणा लेकर जिनपालित को आचार्य भूतबलि के पास भेजा होगा और इस तरह श्रुतरक्षा का कार्य इन दोनों महान् आचार्यों के संयुक्त प्रयत्न का फल जानकर तब यही निर्णय किया गया था कि प्रत्येक भाग में दोनों आचार्यों के नाम यथाविधि दिये जाने चाहिए।

इस समय जब हम महाबन्ध के प्रत्येक अनुयोगद्वार के प्रारम्भ में जीवस्थान के मंगलाचरणा को लिपिबद्ध देखते हैं, तो आँखों के सामने उस समय का समग्र इतिहास साकार रूप लेकर आ उपस्थित होता है। धन्य है वे प्रातःस्मरणीय चन्द्रगुफानिवासी आचार्य धरसेन, जिन्होंने अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न कर श्रुत-रक्षा की पुनीत भावना से अपने अनुरूप योग्य दो शिष्यों को प्राप्त कर उन्हें अपना समग्र ज्ञान समर्पित कर शान्ति की साँस ली और धन्य हैं वे परम श्रुतधर आचार्य पुष्पदन्त और भूलबलि, जिन्होंने गुरु-आज्ञा को प्रमाण मानकर 'षट्खण्डागम' की रचना द्वारा न केवल अपने गुरु की इच्छा की पूर्ति की, अपितु सम्यक्श्रुत को जीवित रखने का श्रेय प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभार—

किसी भी कार्य को योग्यतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए अनुकूल साधन-सामग्री का सर्वोपरि स्थान है। हम दूसरों की नहीं कहते, अपनी ही कहते हैं। अनेक बार कुछ प्रमुख विषयों पर हमने लिखने का विचार किया, कई योजनाएँ बनायीं, पर अनूकूल साधनों के उपलब्ध न होने से एक भी पूरी न कर सके। कुछ का तो अब हमें ही स्वयं ज्ञान नहीं है।

'महाबन्ध' के सम्पादन की ओर मैं स्वयं ध्यान दूँ, यह अनुरोध चिरकाल से मेरे निकटवर्ती व दूरवर्ती मित्र मुझसे करते आ रहे हैं। उनकी अन्तःप्रेरणावश ही मुझे इस ओर ध्यान देना पड़ा है। मैं श्रीमान् डॉ. हीरालाल जी को अपना अन्यतम हितैषी मानता हूँ। सम्पादन सम्बन्धी जो कुछ भी अनुभव और ज्ञान मुझे मिला है, यह उनकी ही सत्कृपा का फल है। अब भी वे मुझे अनेक उपयोगी सूचनाओं से अनुगृहीत करते रहते हैं। कुछ काल पूर्व उन्होंने मुझे एक अत्युपयोगी पत्र लिखा था। वे मेरी बिखरी हुई शक्ति को देखकर खिन्न से हो उठे थे। मेरे लिए उनका वह पत्र स्वरूपसम्बोधन के समान था। उससे मेरी न केवल निद्रा भंग हुई, अपितु मुझे अपने कर्तव्य का बोध हुआ। उसी का यह फल है जो इस समय पाठक देख रहे हैं।

'महाबन्ध' का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से हो रहा है। इसके संस्थापक श्रीमान् दानवीर सेठ शान्तिप्रसाद जी और अध्यक्षा उनकी सुयोग्य पत्नी श्रीमती रमारानी जी हैं। प्रारम्भ से ही इसके संचालन का उत्तरदायित्व श्रीमान् अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय सम्हाले हुए हैं। वे ही इसके मन्त्री हैं। मुझे महाबन्ध के सम्पादक और प्रथम प्रूफ पाठ के लिए संस्था की ओर से हर तरह की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजर श्री बाबूलाल जी 'फागुल्ल' तो सब बातों का ध्यान रखते ही हैं, साथ ही साथ, पं. महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य का भी इस काम में हमें पूरा सहयोग मिलता रहता है। प्रथम प्रूफ हम उनके साथ ही मिलकर देखते हैं। इस प्रकार 'महाबन्ध' के सम्पादन में उक्त महानुभवों का प्रत्यक्ष और परोक्ष सम्बन्ध होने से ही हम इस काम का निर्वाह कर सके हैं, अतएव इन सबके हम आभारी हैं।

अनुवाद और सम्पादन मे हमने बहुत ही सावधानी से काम लिया है, फिर भी भ्रम या अज्ञानवश कुछ दोष रह जाना बहुत सम्भव है। उदाहरणार्थ-पृष्ठ २१, पंक्ति ७ में 'कम्मट्ठिदी कम्म०' के पहले 'अबाहूणिया' पाठ होना चाहिए। इसी प्रकार पृष्ठ २३६ पंक्ति २ में भी कोष्ठक के भीतर 'आबाधू०' पाठ अधिक हो गया है। अतएव विशेषज्ञ और स्वाध्याय प्रेमी बन्धु पूर्वापर का विचार कर इसका स्वाध्याय करें और जो दोष उनकी समझ में आवें, उनकी सूचना हमें अवश्य देने की कृपा करें।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्ममीमांसा

१. कर्मवाद की युक्ति

भारतीय दर्शन का अन्तिम लक्ष्य है—मुक्ति-प्राप्ति। इसमें जीव की उत्क्रान्ति, गति, अगति और परलोक विद्या का युक्तियुक्त विचार उपस्थित किया गया है। सब आस्तिक दर्शन इस विषय में एकमत हैं कि जीव अपनी कमजोरी के कारण बँधता है और उसके दूर होने पर मुक्त होता है। 'समयप्राभृत' में कहा है—

'रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥१५०॥'

तीर्थङ्करों का उपदेश है कि रागी जीव कर्मों को बाँधता है और वैराग्ययुक्त जीव उनसे मुक्त होता है। इसलिए शुभाशुभ कर्मों में अनुरागी होना उचित नहीं है।

प्राचीन ऋषियों ने जीव की बद्ध और मुक्त दो अवस्थाएँ मानी हैं। इससे समस्त जीवराशि दो भागों में विभक्त हो जाती है—संसारी जीव और मुक्त जीव। जो संसार अर्थात् चतुर्गति योनि में परिभ्रमण करते रहते हैं, वे संसारी जीव हैं और जो इस प्रकार के परिभ्रमण से मुक्त हैं, वे मुक्त जीव हैं। प्रथम प्रकार के जीव राग, द्वेष और मोह के अधीन होकर निरन्तर पाँच प्रकार के संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। समीचीन दृष्टि, समीचीन प्रज्ञा और समीचीन चर्या के प्राप्त होने के पूर्व तक वे इस परिभ्रमण से मुक्ति प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। इससे प्रथम प्रकार के जीव संसारी कहलाते हैं। और ये ही जीव संसार का उपरम हो जाने पर मुक्त कहलाने लगते हैं।

इनमें से संसारी जीव अनेक भागों में विभक्त हैं—कोई एकेन्द्रिय है और कोई द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये सभी संसारी जीवों के ही भेद हैं। एकेन्द्रिय जीव पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के भेद से पाँच प्रकार के हैं। जिनके एक मात्र स्पर्शन (छूकर जाननेवाली) इन्द्रिय होती है, उन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। ये पाँचों ही प्रकार के जीव स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करते हैं। इनके रसना (चखकर जाननेवाली इन्द्रिय) आदि अन्य इन्द्रियाँ नहीं होतीं, इसलिए ये एकेन्द्रिय कहे जाते हैं। द्वीन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। लोक में लट, केंचुआ आदि ऐसे अगणित जीव देखे जाते हैं जो कभी तो स्पर्शन द्वारा विषय ग्रहण करते हैं और कभी रसना द्वारा, इसलिए इन्हें द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं। त्रीन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण (सुगन्ध और दुर्गन्ध का ज्ञान प्राप्त करनेवाली इन्द्रिय) ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। ये जीव इन इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करते हैं, इसलिए इन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं। इनमें पिपीलिका, गोभी, यूक आदि जीवों की परिगणाना की जाती है। चतुरिन्द्रिय जीव वे हैं जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और नेत्र ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। ये जीव इन चार इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करते हैं, इसलिए इन्हें चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं। भ्रमर, पतंग और मक्खी आदि जीवों की इनमें गिनती की जाती है। जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं वे पंचेन्द्रिय जीव हैं। समनस्क और अमनस्क ये इनके मुख्य भेद हैं। दूसरे शब्दों में इन्हें संज्ञी और असंज्ञी भी कहते हैं। उक्त पाँचों इन्द्रियों के साथ जिनके हेय और उपादेय पदार्थों का विवेक करने में दक्ष तथा क्रिया और आलाप को ग्रहण करनेवाला मन होता है वे समनस्क जीव हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष अमनस्क जीव हैं। अमनस्क जीव मात्र तिर्यंचयोनिवाले होते हैं, किन्तु समनस्क जीव नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार भागों में विभक्त हैं। इनमें से तिर्यंच और मनुष्य सब प्रत्यय के विषय हैं और शेष दो प्रकार के जीव आगम से जाने जाते हैं।

जैनदर्शन में संसार के समस्त पदार्थ छह भागों में विभक्त किये गये हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनका विवेचन जैन आगम में विस्तार के साथ किया गया है। जीव के विषय में 'समयप्राभृत' में लिखा है—

'अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥४९॥'

जो रसरहित है, रूपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियों के अगोचर है, चैतन्य गुणवाला है, शब्द रहित है, किसी चिह्न के द्वारा जिसका ग्रहण नहीं होता और जिसका आकार कहा नहीं जा सकता, वह जीव है।

जीव का यह लक्षण त्रिकालान्वयी है। उसमें चेतन धर्म की विशेषता है। यह जीव का असाधारण धर्म है; क्योंकि चेतना की जीव के साथ समव्याप्ति है। जीव की पहिचान का यह प्रमुख चिह्न है।

कुछ मतवादी चेतना की उत्पत्ति पृथिवी आदि भूतचतुष्टय के योग्य सम्मिश्रण का फल मानते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा गेहूँ आदि पदार्थों में मादकता का प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार पृथिवी आदि के योग्य मिश्रण से चेतना की उत्पत्ति होती है। जब तक इनका योग्य सम्मिश्रण बना रहता है, तभी तक वहाँ चेतना वास करती है। इनका विघटन होने पर चेतना भी विघटित हो जाती है। न परलोक है, न कर्म है और न कर्म का फल है।

बौद्धदर्शन भी जीव की पृथक् सत्ता स्वीकार नहीं करता। बुद्ध ने जिन दस बातों को अव्याकृत माना है, उनमें आत्मा शरीर से भिन्न है कि अभिन्न है, मृत्यु के बाद वह रहता है या नहीं रहता—ये प्रश्न भी सम्मिलित हैं। बौद्ध दर्शन में आत्मा को रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का पुंज मात्र माना गया है। 'मिलिन्दपण्ह' भदन्त नागसेन ने राजा मिलिन्द के सामने आत्मस्वरूप का वर्णन एक बड़ी सुन्दर उपमा के द्वारा किया है। नागसेन ने राजा से पूछा कि इस दुपहरी की कड़कड़ाती धूप में जिस रथ पर सवार होकर आप इस स्थान पर पधारे हैं, उस रथ का 'इदमित्थं' वर्णन क्या आप कर सकते हैं? क्या दण्ड रथ है या अक्ष रथ है? राजा के निषेध करने पर फिर पूछा कि क्या चक्के रथ हैं या रस्सियाँ रथ हैं, लगाम रथ है या चाबुक रथ है? बार-बार निषेध करने पर नागसेन ने राजा से पूछा आखिर रथ क्या चीज है? अन्ततोगत्वा मिलिन्द को स्वीकार करना पड़ा कि दण्ड, चक्र आदि अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'रथ' नाम दिया गया है; इन अवयवों को छोड़कर पृथक् रूप से किसी अवयवी की सत्ता नहीं दीख पड़ती। तब नागसेन ने बतलाया कि ठीक यही दशा आत्मा की भी है। पंचस्कन्ध आदि अवयवों से भिन्न अवयवी के नितरां अगोचर होने के कारण इन अवयवों के आधार पर 'आत्मा' नाम केवल व्यवहार के लिए ही दिया गया है। आत्मा की वास्तविक सत्ता है ही नहीं। बौद्धदर्शन ने आत्मा की पृथक् सत्ता न मानकर भी निर्वाण और परलोक का निषेध नहीं किया है; प्रत्युत उनके चार आर्य-सत्यों का उपदेश इसी आधार पर स्थित है।

इस प्रकार जीव के अस्तित्व को न माननेवाले या उसे संशय की दृष्टि से देखनेवाले मुख्य दर्शन दो हैं। शेष सभी पौर्वात्य दर्शनकारों ने उसकी स्वतन्त्र सत्ता किसी-न-किसी रूप में स्वीकार की है। इनमें से प्रथम मत बहुत प्राचीन है। लोक में इसकी चार्वाक या लौकायतिक इस नाम से प्रसिद्धि है। यह मात्र इन्द्रिय प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है, इसलिए यह अतीन्द्रिय जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य को तथा परलोक और मुक्ति आदि तत्त्वों को स्वीकार नहीं करता।

किन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि जीव पृथिवी आदि के योग्य सम्मिश्रण का फल नहीं है, क्योंकि पृथिवी आदि प्रत्येक तत्त्व में चेतना गुण की उपलब्धि नहीं होती, इसलिए उन सबके सम्मिक्षण से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भला उसकी उत्पत्ति हो ही कैसे सकती है? गेहूँ आदि के सड़ाने पर उसमें जो मादकता दिखाई देती है, वह उनका नया धर्म नहीं है। किन्तु यह मादकता इन पदार्थों में न्यूनाधिकरूप से सदा विद्यमान रहती है। सड़ाने आदि से मात्र उसका विशेष रूप से आविर्भाव देखा जाता है। एक मनुष्य भोजन करता है, उसे कम आलस्य आता है और दूसरा मनुष्य भोजन करता है, उसे अधिक आलस्य आता है। इसका एक कारण इस मादकता की न्यूनाधिकता भी है, इसलिए मदिरा के दृष्टान्त द्वारा जीव को भूतचतुष्टय का परिणाम मानना उचित नहीं है।

जीव द्रव्य है और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। इन्द्रियों द्वारा उसका अन्य स्थूल पदार्थों के समान ग्रहण न होने पर भी उसके अस्तित्व को अस्वीकार करना बुद्धि की विडम्बना मात्र है। लोक में ऐसे अनेक पदार्थ हैं, जिनका इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण न होने पर भी अनुमान प्रमाण के द्वारा उनका अस्तित्व सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ, पृथ्वी आदि के आरम्भिक परमाणुओं का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता, पर क्या इतने मात्र से उनका असद्भाव माना जा सकता है? कभी नहीं। इसी प्रकार यद्यपि जीव तत्त्व का इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता है, तथापि अनुमान आदि के द्वारा उसका अस्तित्व सिद्ध होता है।

जिस प्रकार किसी यन्त्रप्रतिमा की चेष्टाओं को देखकर उसके प्रयोक्ता का अस्तित्व जाना जाता है, उसी प्रकार सम्भाषण, हलन-चलन, श्वासोच्छ्वास का ग्रहण करना और छोड़ना तथा आहार का लेना, आदि क्रियाओं को देखकर ज्ञात होता है कि इस शरीर का प्रयोक्ता कोई अन्य पदार्थ है जो शरीर के प्रत्येक अवयव में व्याप्त होकर रह रहा है।

यह तो हम प्रत्यक्ष में ही देखते हैं कि जीवित शरीर से मृत शरीर में मौलिक अन्तर है। जीवित शरीर में ऐसी किसी वस्तु का वास अवश्य रहता है जो श्वासोच्छ्वास लेता-छोड़ता है, उस द्वारा क्रिया करने में सहायता प्रदान करता है, किसी वस्तु के विस्मृत हो जाने पर उसे याद करता है, इच्छा करता है, इच्छित भोग को स्वीकार करता है, और अनिच्छित भोग का त्याग करता है। स्व-पर का भेद करता है, गणित व रुपया, आना, पाई का हिसाब लगाता है, यश की कामना करता है और विश्व की सुव्यवस्था व आत्मोन्नति के उपाय सोचता है। यह कहना विशेष युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि भूत-चतुष्टय के योग्य सम्मिश्रण से चैतन्य तत्त्व की उत्पत्ति होती है; क्योंकि जो शक्ति अलग-अलग पृथिवी आदि में नहीं पायी जाती, वह उनके सम्मिश्रण से नहीं उत्पन्न हो सकती।

हम देखते हैं कि बालक जन्म लेते ही दुग्धपान की इच्छा करता है। माता के स्तन से उसका मुँह लगाने पर वह दूध पीने लगता है। कुछ ऐसे भी बालक देखे गये हैं जो अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं। श्री रतनलालजी ने अपनी 'आत्मरहस्य' नामक पुस्तक में देश-विदेश की ऐसी कई घटनाएँ निबद्ध की हैं। एक घटना बरेली की है। बात सन् १९२६ की है। केकयनन्दन वकील के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बालक पाँच वर्ष का हुआ और बोलना सीख गया, तो वह अपने पूर्वजन्म की बातें कहने लगा कि पूर्व जन्म में वह बनारस निवासी बबुआ पाण्डे का पुत्र था। उस बालक के पिताश्री केकयनन्दन कई मित्रों के साथ उस बालक को बनारस ले गये और बालक के बतलाये हुए स्थान पर गये। उस समय बनारस के जिलाधीश श्री बी.एन. मेहता भी उपस्थित थे। बालक बबुआ महाराज तथा उस मोहल्ले के एकत्रित सज्जनों को उनके नाम ले लेकर पुकारने लगा और उनसे मिलने की उत्सुकता प्रकट करने लगा। उसने अपने पूर्व जन्म के घर तथा बहुत-सी वस्तुओं को पहिचान लिया और अनेक प्रश्न पूछने लगा कि अमुक-अमुक वस्तुएँ कहाँ हैं और कैसी हैं? उस बालक का बतलाया हुआ पूर्व जन्म का वृत्तान्त बिलकुल सच निकला।

भूत-प्रेतों की कथाएँ भी अक्सर लोग सुनाया करते हैं। कुछ पश्चिमीय विद्वानों ने इनका सप्रमाण संकलन भी किया है। भारतीय समाचारपत्रों में भी ये प्रकाशित होती रहती हैं। इनसे सम्बद्ध कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें असत्य नहीं माना जा सकता। अक्सर ये प्रेत वहीं पर क्रियाशील दिखाई देते हैं जहाँ पर इनका पूर्व जन्म का किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न यह है कि यह सब क्यों होता है? जीव को शरीर से अभिन्न मानने पर न तो बालक को दूध पीने की इच्छा हो सकती है, न वह पूर्व जन्म की स्मृति रख सकता है और न ही भूत-प्रेत योनि की विविध घटनाओं का सम्बन्ध ही बिठाया जा सकता है, किन्तु यह सब होता अवश्य है। इससे ज्ञात होता है कि शरीर से भिन्न कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व अवश्य है।

जब हम किसी बालक को शिक्षा-दीक्षा से दीक्षित करते हैं, तब हमें यह देखना होता है कि उसकी स्वाभाविक रुचि क्या है। यदि उसकी इच्छा के अनुकूल सामग्री जुटा दी जाती है, तो उसकी उन्नति होने में देर नहीं लगती और यदि इच्छा के प्रतिकूल कार्य किया जाता है, तो उसे बड़ा निराश होना पड़ता है। विचारणीय यह है कि ऐसा क्यों होता है? वह कौन-सा तत्त्व है जो उससे ऐसा करता-कराता है? वैज्ञानिकों ने प्राणी की इस प्रवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण करने का प्रयत्न किया है। वे तत्काल जीव के अस्तित्व के विषय में एकमत भले ही न हो सके हों, पर इस तत्त्व की सत्ता को अस्वीकार करना उनकी शक्ति के बाहर है।

यह बात हम प्रतिदिन के व्यवहार से देखते हैं कि जब कोई अन्य व्यक्ति हमें दुःख पहुँचाने की चेष्टा करता है, तब हमें क्रोध आता है और यदि कोई अपमान करना चाहता है, तो अहंकार से हमारा आत्मा अभिभूत हो जाता है। किन्तु जल्दी या देर में हम इस अवस्था से हटना चाहते हैं। प्रकृत में विचारणीय यह है कि इस प्रकार क्रोध करनेवाला या उससे हटनेवाला व्यक्ति कौन है? क्या ऐसी विलक्षण मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया किन्हीं जड़ तत्त्वों के सम्मिश्रण से सम्भव हो सकती है! 'हाँ' में इसका उत्तर देना कठिन है।

हमने ऐसे बहुत से प्राणी देखे हैं, जिनका किसी प्रकार का अनिष्ट करने पर वे चिरकाल तक उसकी वासना से अभिभूत रहते हैं और कालान्तर में संयोग मिलने पर वे उसका बदला लेने से नहीं चूकते। हम यहाँ यह कह सकते हैं कि ऐसी वासना वर्तमान जीवन तक ही सीमित रहती है, जन्मान्तर में इसका अन्वय नहीं देखा जाता। किन्तु यदि जन्मान्तर की बात छोड़ भी दी जाय तो भी यह तो देखना ही होगा कि एक पर्याय के भीतर ही चिरकाल तक ऐसी वासना क्यों देखी जाती है? क्या बिना स्मृति के इस प्रकार की वासना का बना रहना सम्भव है? मालूम पड़ता है कि जड़ तत्त्वों से विलक्षण स्मृतिज्ञान का आधारभूत कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व अवश्य है। प्राचीन ऋषियों ने इसे ही 'जीव' शब्द से पुकारा है। प्राचीन साहित्य में इसके गुणों का ख्यापन अनेक प्रकार से किया गया है। नैयायिक, वैशेषिक दर्शन ने विश्लेषण करके संसारी जीव के बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार ये नौ विशेष गुण कल्पित किये हैं। इनकी तुलना हम जैनदर्शन के अनुसार कर्मनिमित्तक भावों से कर सकते हैं। जैन दर्शन में जीव की अनन्त अनुजीवी शक्तियाँ मानी गयी हैं। उदाहरणस्वरूप ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, सुख, क्षमा, मार्दव, भोग, उपभोग और वीर्य ये जीव के अनुजीवी गुण हैं। पुद्गलों के संयोग से न होकर ये आत्मा के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को प्रख्यापित करते हैं।

प्राचीन साहित्य में जीव का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए मुख्य हेतु 'अहंप्रत्ययवेद्य' दिया जाता है, इसलिए यहाँ इस 'अहम्' का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। यह तो हम प्रत्यक्ष में ही देखते हैं कि जहाँ हमारा निवास है, वहाँ हम अनेक पदार्थों से घिरे रहते हैं। उनमें से कुछ जड़ होते हैं और कुछ चेतन। ये प्रति दिन हमारे उपयोग में आते हैं। इसलिए इनकी हम सम्हाल करते हैं। पर इन्हें हम अपने शरीर या आत्मा से अधिक प्रिय नहीं मानते। शरीर-रक्षा का और मुख्यतः आत्मरक्षा का प्रश्न उपस्थित होने पर हम इन्हें त्याग देते हैं। शरीर की भी यही अवस्था होती है। जहाँ तक वर्तमान जीवन में रति रहती है या शरीर के रहते हुए किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं प्रतीत होता, वहीं तक हम उसकी रक्षा करते हैं; अन्यथा उसका त्याग करने में भी हम संकोच नहीं करते। इस प्रकार वर्तमान जीवन की घटनाओं से हम देखते हैं कि इन विविध प्रकार के संयोग-वियोगों में भी हमारा 'अहम्' न तो भौतिक जगत् से सम्बन्ध रखता है और न बाह्य चेतन-जगत् से ही। उसकी सीमा इन सबसे परे अपने में सुरक्षित रहती है। बड़े-बड़े ज्ञानी मुनियों ने अनुभव द्वारा उस अहंप्रत्ययवेद्य तत्त्व का निर्णय किया है। उनकी स्वानुभव पूर्ण वाणी क्या कहती है, यह उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥'—आचार्य कुन्दकुन्द

अहं प्रत्ययवेद्य मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शन स्वभाव हूँ और रूपादि भौतिक गुणों से रहित हूँ। ये सब बाह्य जगत से सम्बन्ध रखनेवाले यहाँ तक कि परमाणु मात्र भी मेरे नहीं हैं।

इसी बात को दूसरे शब्दों में उन्होंने यों व्यक्त किया है—

'एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥'—आचार्य कुन्दकुन्द

मेरा आत्मा शाश्वत होकर स्वतन्त्र तो है ही, किन्तु उसका स्वभाव भी एकमात्र ज्ञान-दर्शन है। इसके सिवा मुझ में और जो कुछ भी दिखलाई देता है, वह सब संयोग का फल है।

इन प्रमाणों से आत्मा के अस्तित्व पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। यहाँ मुख्य रूप से आत्मा को ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला बतलाया गया है, क्योंकि इनका अन्वय एकमात्र चेतन के साथ देखा जाता है। जहाँ चेतना है वहाँ ज्ञान-दर्शन है और जहाँ ज्ञान-दर्शन है, वहाँ चेतना है। इनकी परस्पर में व्याप्ति है।

प्राचीन साहित्य में चेतन के मुख्य नाम तीन मिलते हैं—जीव, आत्मा और प्राणी। जीव यह नाम जीवन क्रिया की प्रधानता से रखा गया है। आत्मन् शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—आप्नोति व्याप्नोतीति आत्मा—जो स्वीकार करता है या व्याप्त कर रहता है। संसार-अवस्था में जीव इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करता है और कैवल्य लाभ होने पर सबका वह ज्ञाता-द्रष्टा बनता है, इसलिए इसका आत्मा यह नाम भी सार्थक है। और प्राणी कहने से इसके विविध प्रकार के प्राणों का बोध होता है। हमें मनुष्य के शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियों की उपलब्धि होती है। इन द्वारा वह विविध प्रकार के विषयों को ग्रहण करता है। इनके सिवा वह मन से सोचता-विचारता है, श्वासोच्छ्वास लेता है, शरीर से विविध प्रकार की चेष्टाएँ करता है, वचन बोलता है और एक के बाद दूसरे शरीर को धारण करता है। पाँच इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, आयु, कायबल, वचनबल और मनोबल ये दस प्राण हैं, जिनसे इसका प्राणी यह नाम भी सार्थक है। ये ही दस प्राण व्यवहार से जीवन-क्रिया के प्रयोजक माने गये हैं। इनके द्वारा भौतिक शरीर में जीव के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

हम पहले इसी जीव के मुक्त और संसारी ये दो भेद करके संसारी जीव के अनेक भेदों का निर्देश कर आये हैं। प्रश्न यह है कि सब जीव एक समान स्वभाववाले होकर भी उनके ये विविध भेद क्यों दिखाई देते हैं? क्या विना कारण के वे इन विविध प्रकार के भेदों को और विविध प्रकार के शील-स्वभावों को धारण कर सकते हैं? जैन दर्शन इसी प्रश्न का उत्तर कर्म को स्वीकार करके देता है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती 'कर्म' के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए 'गोम्मटसार' जीवकाण्ड में कहते हैं—

'जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावडियं।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावडियं ॥२०१॥'

जिस प्रकार भार को वहन करनेवाला पुरुष कावर के सहारे उसको ढोता है, उसी प्रकार कायरूपी कावर का सहारा लेकर यह जीव कर्मरूपी भार का वहन करता है।

ये ही कर्म जीव की इन विविध अवस्थाओं के कारण हैं।

साधारणतः इस विषय में यह प्रश्न किया जाता है कि गर्भ में माता-पिता के रज-वीर्य के मिलने से बालक की उत्पत्ति होती है। विश्व के सब संसारी जीव तीन भागों में बटे हुए हैं—कुछ जीव गर्भज होते हैं, कुछ जीव सम्मूर्च्छन होते हैं और कुछ जीव उपपादज होते हैं। इनमें से जिन जीवों की उत्पत्ति के जो साधन निश्चित हैं, उन्हीं से उन जीवों की उत्पत्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान में वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की वनस्पतियों पर कुछ प्रयोग किये हैं, जिनमें उन्हें सफलता भी मिली है। वे खट्टे नीबू को प्रयोग द्वारा मीठा कर सकते हैं, फूलों का रंग और आकृति भी बदल सकते हैं। इंजेक्शन द्वारा पशुओं और मनुष्यों की नस्ल में भी वे सुधार कर सकते हैं। इससे भी अपने-अपने नियत साधनों से उस-उस जीव की उत्पत्ति का ज्ञान होता है।

इसी प्रकार प्रत्येक जीव का शील-स्वभाव और शरीर की रचना बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित जान पड़ती है। एक जीव क्रोधी होता है और दूसरा शान्त। यह भेद उस-उस जीव की शरीर-रचना और बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित है। सामुद्रिक शास्त्र में भी इसके कुछ निश्चित नियम दिये गये हैं। इसलिए यह शंका होती है कि जिन कारणों से जीव की उत्पत्ति होती है या जिन कारणों से उनका शील-स्वभाव बनता है, उनके सिवाय इनकी उत्पत्ति का कर्म नामक अन्य अज्ञात कारण नहीं है। यदि कर्म की सत्ता स्वीकार न की जाय, तो भी विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति, आकृति और शील-स्वभाव में जो अन्तर दिखाई देता है, वह बन जाता है।

प्रश्न मार्मिक है और किसी अंश में वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालनेवाला भी। पर यहाँ विचारणीय विषय यह है कि जीव द्रव्य स्वतन्त्र होकर भी इन विविध प्रकार के आकारों और शील-स्वभावों को क्यों धारण करता है? वह कौन-सा हेतु है, जिसके कारण वह कभी मनुष्य के शरीर में आकर वहाँ प्राप्त होनेवाली सामग्री के अनुसार सुख-दुख का वेदन करता है और कभी तिर्यंच के शरीर में आकर वहाँ प्राप्त परिस्थिति के अनुसार अपना विकास करता है? कभी क्रोध के निमित्त मिलने पर वह क्रोधी होता है और कभी मान के निमित्त मिलने पर वह मानी होता है। यह तो माना नहीं जा सकता कि वर्तमान जीवन के सिवाय उसका पृथक् कोई व्यक्तित्व ही नहीं है, क्योंकि भूतचतुष्टय से अहंप्रत्ययवेद्य और ज्ञान-दर्शनलक्षणवाले जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वैज्ञानिकों ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि का उपयोग करके अणुबम और हाइड्रोजन बम बनाया है। बहुत सम्भव है कि उनका वैज्ञानिक अनुसन्धान इसके आगे बहुत कुछ प्रगति करने में समर्थ हो, पर इन सब में जीवन डालने में उनका प्रयोग सफल होगा, यह साहस पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इसलिए तर्क और अनुभव यही मानने के लिए बाध्य करता है कि इस शरीर में पंचभूतों के योग्य सम्मिश्रण के सिवाय एक स्वतन्त्र और स्थायी व्यक्तित्व अवश्य विद्यमान है जो इन सब विविध अवस्थाओं और शील स्वभावों को धारण करता है। माता-पिता का रज-वीर्य या अन्य प्राकृतिक तथा दूसरे साधन शरीर की उत्पत्ति में सहायक हो सकते हैं, पर जिस कारण से यह जीव इन साधनों का उपयोग करने में समर्थ होता है और जो इसे अपने मूल स्वभाव से च्युत कर इन अवस्थाओं में रममाण कराता है, मानना पड़ता है कि वह इन सब दृश्य कारणों से भिन्न है। दर्शनकारों ने उसे ही 'कर्म' शब्द से सम्बोधित किया है; यह कर्मवाद की युक्ति है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए पंचाध्यायीकार ने लिखा है—

'एको हि श्रीमान् एको दरिद्र इति च कर्मणः।'

—पंचाध्यायी अ. २, श्लोक ५०

एक समृद्ध है और दूसरा निर्धन, इससे कर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

२. जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है

हम देख चुके हैं कि जीव क्या है और उसकी संसार में क्या अवस्था हो रही है। जीव में कर्म के निमित्त से राग, द्वेष आदि का प्रादुर्भाव होता है और इससे नये कर्म का बन्ध होता है। इनकी यह परम्परा अनादि है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए 'पञ्चास्तिकाय' में लिखा है—

'जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदीसु गदी ॥१२८॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो य दोसो वा ॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।'

संसार में स्थित जीव के राग, द्वेष और मोहरूप परिणाम होते हैं। उनके कारण कर्म बँधते हैं। कर्मों से गतियों में जन्म लेना पड़ता है। इससे शरीर मिलता है। शरीर के मिलने से इन्द्रियाँ होती हैं। इनसे यह जीव विषयों को ग्रहण करता है। विषयों को ग्रहण करने से राग-द्वेषरूप परिणाम होते हैं। यह संसार का एक चक्र है। इसमें जो जीव स्थित है उसकी ऐसी अवस्था होती है।

प्रश्न है कि यह जीव संसार दशा को क्यों प्राप्त होता है। जब राग-द्वेष के विना कर्मबन्ध नहीं हो सकता है और कर्मबन्ध हुए बिना राग-द्वेष नहीं हो सकता, तब जीव की यह अवस्था कैसे होती है? समाधान यह है कि संसार की यह चक्र-परम्परा बीज-वृक्ष या पिता-पुत्र के समान अनादि काल से चली आ रही है। बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज। यह कोई नहीं कह सकता कि इनमें से किसका प्रारम्भ सर्व प्रथम हुआ। हम तो इनका ऐसा ही सम्बन्ध देखते हैं। इससे अनुमान होता है कि इनकी यह परम्परा अनादि है। इसी प्रकार जीव के संसार के कारणभूत राग-द्वेष और कर्मबन्ध की परम्परा को भी अनादिकालीन मानना पड़ता है।

यद्यपि वर्तमानकाल में विकासवाद के सिद्धान्त को माननेवाले यह कहते हैं कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक विकास की अवस्था में बन्दर था और धीरे-धीरे उसे यह अवस्था प्राप्त हुई है। विकासवाद का सिद्धान्त कुछ भी क्यों न हो; किन्तु इससे उक्त मान्यता में कोई बाधा नहीं आती। अतीत काल में जहाँ भी जाकर हम प्राणियों की उत्पत्ति के क्रम का विचार करते हैं, वहाँ हमें यही मानना पड़ता है कि जिस क्रम से इस समय प्राणियों की उत्पत्ति होती है, उसी क्रम से अतीत काल में उनकी उत्पत्ति होती रही होगी। यह नहीं हो सकता कि पहले उनकी उत्पत्ति बिना माता-पिता के या बिना बीज-वृक्ष के होती थी और अब इनकी उत्पत्ति इस क्रम से होने लगी है।

यद्यपि इस व्यवस्था से ईश्वरवादी सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि विश्व की उत्पत्ति का मुख्य कारण ईश्वर है। ईश्वर के मन में यह इच्छा हुई कि 'एकोऽहं बहुः स्याम' अर्थात् 'मैं एक बहुत होऊँ।' और फिर उसने विश्व की सृष्टि की। इसकी विस्तृत चर्चा मनुस्मृति और दूसरे वैदिक पुराण-ग्रन्थों में की है; वहाँ लिखा है[1]—

'यह संसार पहले तम प्रकृति में लीन था, इससे यह दिखलाई नहीं देता था। सर्वत्र गाढ़ निद्रा की-सी अवस्था थी। तब अव्यक्त स्वयम्भू अन्धकार का नाशकर पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को प्रकट करते हुए स्वयं व्यक्त हुए......। अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि की। इच्छा से उस परमात्मा ने ध्यान करके सर्वप्रथम अपने शरीर से जल उत्पन्न किया और उसमें शक्तिरूप बीज डाला। वह बीज सूर्य के समान चमकने वाला सोने का-सा अण्डा बन गया......। उस अण्डे में वह ब्रह्मा एक वर्ष तक रहा। तब उसने आप ही अपने ध्यान से उस अण्डे के दो टुकड़े कर डाले। ब्रह्मा ने उन दो टुकड़ों से स्वर्ग और पृथिवी का निर्माण किया। मध्य में आकाश, आठों दिशाएँ और जल का शाश्वत स्थान समुद्र का निर्माण किया। फिर आत्मा से मन और मन से अहंकार तत्त्व को प्रकट किया। साथ ही बुद्धि, तीनों गुण (सत्व, रज और तम) और विषयों को ग्रहण करनेवाली पाँचों इन्द्रियों को क्रमशः उत्पन्न किया। ......फिर उस ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में वेद के शब्दों से सबके अलग-अलग नाम और कार्य नियत कर दिये। और उनकी संस्थाएँ बना दीं। सनातन ब्रह्मा ने यज्ञसिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों को प्रकट किया। फिर समय, समय के लिए विभाग, नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र और पहाड़ बनाये।

१. 'जैनजगत्' में प्रकाशित भदन्त आनन्द कौशल्यायन के लेख से उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिरण्यगर्भ ने अपने शरीर के दो भाग किये और आधे से पुरुष और आधे से स्त्री बन गया। उस स्त्री में उसने विराट् पुरुष की सृष्टि की। 'मैंने प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से अति दुष्कर तपस्या करके दस महर्षियों को उत्पन्न किया।'……इस प्रकार मेरी आज्ञा से इन महात्माओं ने अपने तपयोग से कर्मानुरूप स्थावरजंगम की सृष्टि की।

इस पर प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मा या ईश्वर के मन में इस क्रम से विश्व की रचना का विचार क्यों आया? उसने जिस क्रम से आदि में पशु, पक्षी, मत्स्य, सरीसृप और मनुष्य की उत्पत्ति की थी, आज भी उसी क्रम से वह उनकी उत्पत्ति क्यों नहीं करता? क्यों नहीं वह वन्ध्या या पतिविहीना स्त्रियों को कम-से-कम एक-एक पुत्र दे देता है जिससे वे अपने वन्ध्यापन या पति के अभाव के दुख को भूल जाएँ। वे मनुष्य जो कुष्ठ से जर्जर हो रहे हैं या जो धनाभाव के कारण पशुओं का जीवन बिता रहे हैं, उन्हें क्यों नहीं ऐसे साधन जुटा देता है, जिनका आलम्बन पाकर वे अपने कष्ट को कुछ कम करने में समर्थ हों। उनके पाप ईश्वर को ऐसा नहीं करने देते, इस कथन में कुछ भी सार नहीं है, क्यों कि पुण्य के समान पाप का निर्माण भी तो उसी ने किया है? उसने पाप का निर्माण ही क्यों किया?

एक यथार्थवादी होने के नाते विचार करने से यही ज्ञात होता है कि इस प्रकार विश्व की उत्पत्ति मानना कोरी कल्पना है। वे दर्शन जो ईश्वरवादी माने जाते हैं उनसे भी इस कल्पना का समर्थन नहीं होता। ईश्वरवाद का समर्थन करनेवाले मुख्य दर्शन दो हैं—एक न्याय और दूसरा वैशेषिक। किन्तु इनका विचार इस सृष्टिक्रम को स्वीकार नहीं करता।

इस प्रकार विचार करने पर ज्ञात होता है कि विश्व की यह रचना अनादि है। थोड़ा-बहुत जो उसमें समय-समय पर परिवर्तन दिखलाई देता है, उसमें किसी की इच्छा कारण न होकर परस्पर में सम्बद्ध घटनाक्रम ही उसके लिए उत्तरदायी है। सूर्य नियत समय पर उगता है और नियत समय पर अस्त होता है। इसमें किसी अज्ञात शक्ति का हाथ नहीं है। जगत् का यह क्रम अनादि काल से इसी प्रकार से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। जिन विचारकों का जगत् के इस स्वाभाविक क्रम की ओर ध्यान गया है, उन्होंने विश्व की यथार्थ स्थिति का विश्लेषण करके विश्व में स्थित अनन्त पदार्थों के संयोग और स्वभाव को भी इसका कारण माना है। जीव और कर्म का ऐसा स्वभाव है जिससे अनादि काल से परस्पर सम्बद्ध हो रहे हैं और जब तक उन्हें परस्पर बन्ध के कारणों का संयोग मिलता रहेगा, तब तक वे बन्ध को प्राप्त होते रहेंगे। जीव और कर्म के अनादि सम्बन्ध की चर्चा करते हुए 'गोम्मटसार' कर्मकाण्ड में लिखा है—

'पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणस्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥'

कनकोपल के मल के समान जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। इसके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, वह स्वतःसिद्ध है।

'ब्रह्मसूत्र' में संसार की अनादिता इन शब्दों में स्वीकार की है—

'न कर्माविभागात् इति चेत्? न; अनादित्वात्।'

—(ब्रह्मसूत्र २, १, ३५)

इसका शंकरभाष्य है—

'नैष दोषः, अनादित्वात् संसारस्य। भवेद् एष दोषो यदि आदिमान् संसारः स्यात्। अनादौ तु संसारे बीजाङ्कुरवत् हेतुहेतुमद्भावेन कर्मणः सर्ववैषम्यस्य च प्रवृत्तिर्न निरुद्धयते।'

इसमें स्पष्टतः संसार की अनादिता स्वीकार की गयी है। इससे जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि सिद्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. कर्म क्या है

कर्म क्या है? विचार करने पर ज्ञात होता है कि जीव का स्पन्दन तीन प्रकार का होता है—कायिक, वाचनिक और मानसिक।

जीव शरीर से कुछ-न-कुछ क्रिया करता है, वचन से कुछ-न-कुछ बोलता है और मन से कुछ-न-कुछ सोचता है। ये तीन क्रियाएँ हैं जो प्रत्येक के अनुभव में आती हैं। ये बाह्य हैं। इनके सिवाय तीन आभ्यन्तर क्रियाएँ भी होती हैं जिन्हें योग कहते हैं।

'कायवाङ्मनःकर्म योगः।'

—(तत्त्वार्थसूत्र ६, १।)

काय, वचन और मन का व्यापार योग है।'

योग का दूसरा नाम स्पन्दन है। काय के निमित्त से जीव की स्पन्दन क्रिया को काययोग कहते हैं। वचन के निमित्त से जीव की स्पन्दन क्रिया को वचनयोग कहते हैं और मन के निमित्त से जीव की स्पन्दन क्रिया को मनोयोग कहते हैं। काय, वचन और मन आलम्बन हैं और जीव की स्पन्दन क्रिया कर्म है।

जीव की यह स्पन्दन क्रिया यों ही समाप्त नहीं हो जाती, किन्तु जिन भावों से यह स्पन्दन क्रिया होती है, उसका संस्कार अपने पीछे छोड़ जाती है।

'ये संस्कार चिरकाल तक स्थायी रहते हैं, इसका दृष्टान्त हमारे लिए अपरिचित नहीं है। हम जिसे स्मृति कहते हैं, जिसके फलस्वरूप पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण होता है, वह संस्कार के सिवाय और है ही क्या? स्मृति की यह करामात हम प्रतिदिन देखते हैं। प्राकृतिक जगत् में भी संस्कार के कुछ कम दृष्टान्त नहीं हैं। फोनोग्राफ यन्त्र के समीप यदि कोई गीत गाया जाय, तो वह गीत संस्कार के रूप में उस यन्त्र में रक्षित रहता है। पीछे युक्ति से उसका उद्बोधन करने पर वही गीत पुनः श्रुतिगोचर होने लगता है[1]।'

किन्तु इन संस्कारों का आधार जीव नहीं माना जा सकता, क्योंकि जीव का संसार पुद्गल के आलम्बन से होता है। अतः जिन भावों से स्पन्दन क्रिया होती है, उनके संस्कार क्षण-क्षण में जीव द्वारा गृहीत पुद्गलों में ही संचित होते रहते हैं।

इसीलिए अकलंकदेव ने कहा है—

'यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्तानां विविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामः तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थितानां योगकषायवशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः।'

—तत्त्वार्थवार्तिक, ८, २

जिस प्रकार पात्र विशेष में डाले गये अनेक रसवाले बीज, पुष्प और फलों का मदिरारूप से परिणमन होता है, उसी प्रकार आत्मा में स्थित पुद्गलों का भी योग और कषाय के कारण कर्मरूप में परिणमन होता है।

यद्यपि पुद्गलों की जातियाँ अनेक[2] हैं, पर वे सब पुद्गल इस काम नहीं आते। मात्र कार्मण नामक पुद्गल ही इस काम आते हैं। ये अति सूक्ष्म और सब लोक में व्याप्त हैं। जीव स्पन्दन क्रिया द्वारा प्रति समय इन्हें ग्रहण करता है और अपने भावों के अनुसार इन्हें संस्कारित कर कर्मरूप से परिणमाता है।

'कर्म' शब्द तीन अर्थ में प्रयुक्त होता है—(१) जीव की स्पन्दन क्रिया, (२) जिन भावों से स्पन्दन

---

१. 'कर्मवाद और जन्मान्तर' द्रष्टव्य है।

२. पुद्गलों की मुख्य जातियाँ २३ हैं; यथा—अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, तैजसवर्गण, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया होती है, उनके संस्कार से युक्त कार्मण पुद्गल और (३) वे भाव जो कार्मण पुद्गलों में संस्कार के कारण होते हैं।

जीव की स्पन्दन क्रिया और भाव उसी समय निवृत हो जाते हैं, किन्तु संस्कारयुक्त कार्मण पुद्गल जीव के साथ चिरकाल तक सम्बद्ध रहते हैं। ये यथायोग्य अपना काम करके ही निवृत्त होते हैं।

ये कालान्तर में फल देने में सहायता करते हैं, इसलिए इन्हें द्रव्यकर्म कहते हैं और इसी से इनकी द्रव्य-निक्षेप के तद्व्यतिरिक्त भेद में परिगणना की जाती है[1]।

अदृष्ट, भाग्य, विधि, भवितव्य और दैव ये द्रव्यकर्म के नामान्तर हैं और कहीं-कहीं इन नामों के अर्थ में व्यत्यय भी देखा जाता है।

कर्म का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—**'यत् क्रियते तत् कर्म'** अर्थात् जो किया जाता है, वह कर्म है। संसारी जीव के रागादि परिणाम और स्पन्दन क्रिया होती है, इसलिए ये दोनों तो उसके कर्म हैं ही, किन्तु इनके निमित्त से कार्मण नामक पुद्गल कर्मभाव (जीव की आगामी पर्याय के निमित्त भाव) को प्राप्त होते हैं, इसलिए इन्हें भी कर्म कहते हैं।

कहा भी है—

'जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥'

(समयप्राभृत, ८०)

जीव के रागादि परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूप से परिणमन करते हैं और पुद्गल कर्मों का निमित्त पाकर जीव भी रागादि रूप से परिणमन करता है।

यह कर्म (द्रव्य-कर्म) का सुस्पष्ट अर्थ है। इसके द्वारा हम संसार में होनेवाली अपनी विविध अवस्थाओं का नाता जोड़ते हैं।

४. कर्मबन्ध के हेतु

हम देख चुके हैं कि जीव की, कायिक, वाचनिक और मानसिक तीन प्रकार की स्पन्दन क्रिया होती है। उसका नाम कर्म है। किन्तु यह क्रिया अकस्मात् नहीं होती। इसके होने में जीव के शुभाशुभ भाव कारण पड़ते हैं। जीव के प्रति समय शुभ या अशुभ भाव होते हैं। कभी वह किसी को इष्ट मान उसमें राग करता है और कभी किसी को अनिष्ट मान उसमें द्वेष करता है। उसके इन भावों की सन्तति यहीं समाप्त नहीं होती, किन्तु वह प्रति समय अनेक प्रकार से प्रस्फुटित होती रहती है। प्राचीन ऋषियों ने क्रिया के साथ इनकी पाँच जातियाँ मानी हैं—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

---

१. कहाँ किस अर्थ में किस शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसका ठीक तरह से ज्ञान कराना निक्षेप का काम है। इसके मुख्य भेद चार हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। किसी का नाम रखना नामनिक्षेप है। इसमें उस शब्द से ध्वनित होनेवाले क्रिया और गुण नहीं देखे जाते। उदाहरणार्थ—किसी का नाम महावीर रखने पर उसमें गुण-धर्म नहीं देखे जाते। एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ में स्थापना पर तदनुकूल वचन-व्यवहार करना स्थापनानिक्षेप है। उदाहरणार्थ—महावीर की प्रतिमा को महावीर मानना। द्रव्य की जो अवस्था आगे होनेवाली है, उसका पहले कथन करना द्रव्यनिक्षेप है। यथा जो आगे आचार्य होनेवाला है, उसे पहले से आचार्य कहने लगना द्रव्यनिक्षेप है। तथा जो साधना सामग्री आगामी काल में कार्य के होने में सहायक होती है, उसका अन्तर्भाव भी द्रव्यनिक्षेप में होता है। वर्तमान अवस्था से युक्त पदार्थ को उसी नाम से पुकारना भावनिक्षेप है; यथा पढ़ाते समय अध्यापक कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादर्शन का लक्षण है—'स्व' की सत्ता का पृथक् रूप से अनुभव में न आना और 'पर' को 'स्व' मानना। संसार में जीव और देह का संयोग है। इसलिए यह जीव मिथ्यादर्शन के प्रभाववश अपने ज्ञायक स्वभाव को भूलकर पुद्गल को 'स्व' मान रहा है। मिथ्यादर्शन का अर्थ है—विपरीत श्रद्धान। संसारी जीव की यह प्रथम भूमिका है। इसके सद्भाव में जीव की अदेव में देवबुद्धि, अगुरु में गुरुबुद्धि और अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि होती है। धर्म-अधर्म का स्वरूप भी पहिचान में नहीं आता। यह दो प्रकार से होता है। किसी जीव के निसर्ग से होता है और किसी के अन्य के उपदेश का निमित्त पाकर होता है।

विरति का अभाव अविरति है। जीव के प्रति समय हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म और अन्य वस्तु के संचय के भाव होते हैं। उसके जीवन में यह कमजोरी घर किये हुए है कि अन्य वस्तु के बिना मेरा काम नहीं चल सकता, इसलिए कभी वह अन्य जीव के वध का विचार करता है, कभी असत्य बोलता है, कभी उस वस्तु के संग्रह का भाव करता है, जिसका उसने अपने पुरुषार्थ से न्याय्यवृत्ति से अर्जन नहीं किया या जो उसे अन्य से प्राप्त नहीं हुई, कभी अन्य में रति करता है और कभी आवश्यकता से अधिक का संचय करता है।

प्रमाद का अर्थ है—अपने कर्तव्य के प्रति अनादर भाव। यह भाव स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियों के विषय में तीव्र आसक्ति होने से, क्रोध-मान-माया और लोभरूप परिणाम होने से, स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा और भोजनकथा के निमित्त से तथा निद्रा और स्नेहवश होता है, इसलिए इसके मुख्य भेद पन्द्रह हैं।

जो आत्मा को कृश करता है, स्वरूप रति नहीं होने देता, उसे कषाय कहते हैं। कषाय के मुख्य भेद चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये भी इसी के भेद हैं। किन्तु ये ईषत् कषाय हैं, इसलिए इन्हें नोकषाय कहते हैं।

योग का अर्थ है—आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द। यह मन, वचन और काय के निमित्त से होता है, इसलिए इसके मनोयोग, वचनयोग और काययोग ये तीन भेद हैं।

जीव की स्पन्दन क्रिया इन भावों का निमित्त पाकर कर्मबन्ध का कारण होती है, इसलिए कर्मबन्ध के हेतु रूप से इनकी परिगणना की जाती है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में कहा है—

'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगाः बन्धहेतवः ॥८,१॥'

—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं।

प्रमाद को पृथक् न गिनकर यह बात 'समयप्राभृत' में इन शब्दों में कही गयी है—

'सामाण्णपच्चया खलु चउरो भणंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य बोद्धव्वा ॥ १०६॥'

कर्मबन्ध के कर्ता सामान्य कारण चार हैं—मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग।

संसारी जीव परिणामों के अनुसार कई भूमिकाओं में विभक्त हैं। उनके आधार से उक्त प्रकार से बन्ध-कारणों का निर्देश किया है। प्रथम भूमिका मिथ्यादर्शन की है। यह जीव की ज्ञानचेतना के अभाव में होती है। यहाँ किसी के कर्मफल-चेतना की और किसी की कर्म-चेतना की प्रधानता देखी जाती है। इसमें बन्ध के सब हेतु पाये जाते हैं। किन्तु उनमें मिथ्यादर्शन की मुख्यता होने से यह मिथ्यादर्शन की भूमिका कहलाती है। दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं ये अविरति की भूमिकाएँ हैं। आदि की सब भूमिकाओं में परिपूर्ण अविरति होती है और पाँचवीं भूमिका में वह आंशिक होती है। इन भूमिकाओं में मिथ्यादर्शन के सिवाय बन्ध के केवल चार हेतु होते हैं। किन्तु यहाँ अविरति की प्रधानता होने से इन्हें अविरति की भूमिका कहते हैं। छठी प्रमाद की भूमिका है। यहाँ मिथ्यादर्शन, अविरति के बिना बन्ध के तीन हेतु होते हैं। किन्तु इसमें प्रमाद की प्रधानता होने से इसे प्रमाद की भूमिका कहते हैं। सातवीं, आठवीं, नौवीं और दसवीं ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषाय की भूमिकाएँ हैं। यहाँ कषाय की प्रधानता होने से इन्हें कषाय की भूमिका कहते हैं। इनमें कषाय और योग ये दो बन्ध के हेतु होते हैं। आगे तेरहवीं भूमिका तक मात्र योग का सद्भाव होता है। चौदहवीं भूमिका बन्ध और बन्ध के हेतुओं से रहित है।

आगम में इन भूमिकाओं की गुणस्थान संज्ञा है। जीव के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन गुण हैं। इनके यथायोग्य तारतम्य से ये भूमिकाएँ निष्पन्न होती हैं।

इनमें जहाँ जितने बन्ध के हेतु होते हैं, उनके अनुसार वहाँ कर्मबन्ध होता है। उसमें भी सब कर्मों के बन्ध के मुख्य कारण योग और कषाय हैं। योग से जीव और कर्म का संयोग होता है तथा कषाय से उसमें स्थिति और फलदान शक्ति का आविर्भाव होता है। कहा भी है–

'जोगा पयडिपदेसा ठ्ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥'

(द्रव्यसंग्रह, गाथा ३३)

योग से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है तथा कषाय से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है।

५. कर्म के भेद

हम पहले कह आये हैं कि जीव का संसार कर्मों के संयोग से होता है। संसार अवस्था में कर्म जीव की अनुजीवी और प्रतिजीवी दोनों प्रकार की शक्तियों का घात करता है। इससे इसके अनेक भेद हो जाते हैं। किन्तु वर्गीकरण करने पर जाति की अपेक्षा उसके मुख्य भेद आठ होते हैं–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

ज्ञानावरण–जीव की ज्ञान शक्ति का आवरण करनेवाले कर्म की ज्ञानावरण संज्ञा है। इसके पाँच भेद हैं।

दर्शनावरण–जीव की दर्शन शक्ति का आवरण करनेवाले कर्म की दर्शनावरण संज्ञा है। इसके नौ भेद हैं।

वेदनीय–सुख और दुख का वेदन करानेवाले कर्म की वेदनीय संज्ञा है। इसके दो भेद हैं।

मोहनीय–राग, द्वेष और मोह को उत्पन्न करनेवाले कर्म की मोहनीय संज्ञा है। इसके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दो भेद हैं। दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्रमोहनीय के पच्चीस भेद हैं।

आयु–नरकादि गतियों में अवस्थान के कारणभूत कर्म की आयु संज्ञा है। इसके चार भेद हैं।

नाम–नाना प्रकार के शरीर, वचन और मन तथा जीव की गति, इन्द्रिय आदिरूप विविध अवस्थाओं के कारणभूत कर्म की नाम संज्ञा है। इसके तेरानवे भेद हैं।

गोत्र–सदाचारियों और कदाचारियों की परम्परा में जन्म लेने या उसे स्वीकार करने की कारणभूत कर्म की गोत्र संज्ञा है। जैनधर्म जाति या आजीविकाकृत मनुष्यों के नीच-उच्च भेद को नहीं मानता। ये भेद गुणकृत माने गये हैं। साधु आचारवालों की परम्परा में जो जन्म लेते हैं, जो ऐसे मनुष्यों की संगति को जीवन का उच्चतम कर्तव्य समझते हैं और जो जीवन के संशोधन में सहायक आचार को अपने जीवन में स्वीकार करते हैं, वे उच्चगोत्री होते हैं और जो इनके विरुद्ध आचारवाले होते हैं वे नीचगोत्री होते हैं। नीचगोत्री अपने जीवन में अशुभ मार्ग का त्याग कर उच्चगोत्री हो सकते हैं। ऐसे मनुष्य श्रावकदीक्षा और मुनिदीक्षा के पूरे अधिकारी होते हैं।

अन्तराय–जीव की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच अनुजीवी शक्तियाँ हैं। इनका आवरण करनेवाले कर्म की अन्तराय संज्ञा है। इसके पाँच भेद हैं।

इन आठों कर्मों के प्रकारान्तर से चार भेद हैं–जीवविपाकी, पुद्‌गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी। जिनका विपाक जीव में होता है, उनकी जीवविपाकी संज्ञा है। इन कर्मों के विपाक के फलस्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव को अज्ञान, अदर्शन, सुख, दुख, राग, द्वेष और मोह आदि भावों की नरक आदि पर्यायों की उपलब्धि होती है। जिनका विपाक जीव से एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध को प्राप्त पुद्गलों में होता है, उनकी पुद्गलविपाकी संज्ञा है। इन कर्मों के विपाकस्वरूप जीव को विविध प्रकार के शरीर, वचन और मन की उपलब्धि होती है। जिन कर्मों का विपाक भव में होता है, उनकी भवविपाकी संज्ञा है। इन कर्मों के विपाकस्वरूप जीव नरक आदि गतियों में अवस्थान करता है। तथा जिन कर्मों का विपाक क्षेत्र में उपलब्ध होता है, उनकी क्षेत्रविपाकी संज्ञा है। इन कर्मों के फलस्वरूप जीव पुरातन शरीर का त्याग कर नूतन शरीर को प्राप्त करने के लिए गमन करते हुए अन्तराल में पूर्व शरीर के आकार को धारण करता है।

ये सब कर्म पुण्य और पाप के भेद से दो प्रकार के हैं। ये भेद फलदान शक्ति की मुख्यता से किये गये हैं। दान, पूजा, मन्दकषाय, साधुसेवा, दया, अलोभता, परगुणप्रशंसा, सत्समागम, अतिथिसेवा और वैयावृत्य आदि शुभ कार्यों के करने से और तदनुकूल मानस की वृत्ति होने से जिन कर्मों की गुड़, खाँड़, शर्करा और अमृतोपम फलदान शक्ति उपलब्ध होती है, उनकी पुण्यकर्म संज्ञा है और मदिरापान, मांससेवन, परस्त्रीगमन, शिकार करना, जुआ खेलना, रात्रि भोजन करना, चुगली करना, अतिथि के प्रति आदरभाव न रखना, दुष्ट पुरुषों की संगति करना, परदोषदर्शन, कषाय की तीव्रता और लोभातिरेक आदि अशुभ कार्यों के करने से और तदनुकूल मानस वृत्ति के होने से जिन कर्मों की नीम, काँजीर, विष और हलाहल के समान फलदान शक्ति उपलब्ध होती है, उनकी पापकर्म संज्ञा है।

फलदान-शक्ति घाति और अघाति के भेद से दो प्रकार की है। घातिरूप फलदान-शक्ति के चार भेद हैं—लता, दारु, अस्थि और शैल। उत्तरोत्तर शक्ति की कठोरता का ज्ञान कराने के लिए इसका यहाँ लता आदि रूप से नामकरण किया है। इस प्रकार की फलदान शक्ति से युक्त सब कर्म पापरूप ही होते हैं। किन्तु अघातिरूप फलदान शक्ति पाप और पुण्य के भेद से दो प्रकार की होती है। यह भी प्रत्येक चार-चार प्रकार की होती है। इसके नामों का निर्देश पहले किया ही है।

प्रत्येक जीव में दो प्रकार के गुण होते हैं—अनुजीवी और प्रतिजीवी। जो केवल जीव में होते हैं, वे जीव के अनुजीवी गुण हैं और जो जीव के सिवाय अन्य द्रव्यों में भी उपलब्ध होते हैं, वे उसके प्रतिजीवी गुण हैं। कर्मों के घाति और अघाति इन भेदों का कारण मुख्यता ये दो प्रकार के गुण ही हैं। ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, वीर्य, दान, लाभ, भोग और उपभोग ये अनुजीवी गुण हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म इन गुणों पर प्रहार करते हैं, इसलिए इनकी घाति संज्ञा है और इनके सिवाय शेष कर्मों की अघाति संज्ञा है।

६. कर्म का कार्य

कर्म का मुख्य कार्य जीव को संसार में रोक रखना है। जीव के परावर्तन का नाम ही संसार है। वह पाँच प्रकार का है— द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। कर्म के निमित्त से ही जीव इन पाँच प्रकार के परावर्तनों में परिभ्रमण करता है। चौरासी लाख योनियों में पभ्रिमण करते हुए जीव की जो विविध अवस्थाएँ होती हैं, उनका मुख्य निमित्त कर्म है। इसके कार्य का निर्देश करते हुए स्वामी समन्तभद्र 'आप्तमीमांसा में' कहते हैं—

'कामादिप्रभवश्चित्रं कर्मबन्धानुरूपतः।'

'जीव के कामादि भावों की उत्पत्ति अपने-अपने कर्मबन्ध के अनुरूप होती है।'

हम जीव के दो भेदों का उल्लेख करके यह बतला आये हैं कि मुक्त अवस्था जीव की स्वाभाविक दशा है। इस अवस्था में जीव की प्रति समय जो परिणति होती है, उसके होने में साधारण कारण काल-द्रव्य को छोड़कर अन्य निमित्त की आवश्यकता नहीं पड़ती और इसी से वह परनिरपेक्ष होने से शुद्ध कहलाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। किन्तु संसार-अवस्था में जीव की प्रत्येक समय की परिणति निमित्त सापेक्ष होने से बदलती रहती है। कभी वह एकेन्द्रिय होता है, कभी द्वीन्द्रिय होता है, कभी त्रीन्द्रिय होता है, कभी चतुरिन्द्रिय होता है और कभी पंचेन्द्रिय होता है। पंचेन्द्रिय होकर भी कभी नारक होता है, कभी तिर्यंच होता है, कभी मनुष्य होता है और कभी देव होता है। कभी वह कामी होता है, कभी क्रोधी होता है, कभी मानी होता है और कभी विद्वान् या मूर्ख होता है। एक जीव बहुत प्रकार के आकार और शील, स्वभावों को धारण करता है। इस प्रकार संसार-अवस्था में जीव की प्रति समय की परिणति जुदी-जुदी होती रहती है, इसलिए इसके जुदे-जुदे निमित्त कारण माने गये हैं। ये निमित्त संस्कार रूप में आत्मा से सम्बद्ध होते रहते हैं और कालान्तर में तदनुकूल परिणति के उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करते हैं। जीव की शुद्धता और अशुद्धता इन निमित्तों के सद्भाव और असद्भाव पर आधारित है। जब तक जीव इन निमित्तों के संचित होने में स्वयं सहायक होता है और वे उसकी प्रति समय की अवस्था के होने में सहायक होते हैं, तब तक जीव की अशुद्धता बनी रहती है और इस निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध की परम्परा का अन्त होने पर जीव शुद्ध दशा को प्राप्त हो जाता है। जैनदर्शन में जीव की अशुद्धता के करणभूत इन्हीं निमित्तों को कर्म शब्द से पुकारा जाता है।

इस विषय में कर्म की आलोचना करनेवाले यह कहते हैं कि जिस समय जिस प्रकार की बाह्य सामग्री उपलब्ध होती है, उस समय संसारी जीव की उसके अनुकूल परिणति होती है। सुन्दर सुरूप स्त्री के मिलने पर राग होता है। जुगुप्सा की सामग्री मिलने पर ग्लानि होती है। विष आदि के भक्षण करने पर मरण होता है। धन-सम्पत्ति को देखकर लोभ होता है और लोभवश उसके अर्जन करने, छीन लेने या चुरा लेने का भाव होता है। ठोकर लगने पर दुःख होता है और हार का संयोग होने पर सुख; इसलिए यह कहा जा सकता है कि केवल कर्म ही जीव की विविध प्रकार की परिणति के होने में निमित्त नहीं है; किन्तु अन्य पदार्थ भी उसके होने में निमित्त हैं।

किन्तु विचार करने पर यह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अन्तरंग में वैसी योग्यता के अभाव में बाह्य सामग्री कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। उदाहरणार्थ--एक ऐसा योगी है जिसका चित्त स्फटिक मणि के समान स्वच्छ निर्मल है। यदि उसके सामने चित्त को मोहित करनेवाली स्त्री या अन्य सामग्री उपस्थित की जाती है, तो भी उसके मन में राग पैदा नहीं होता। यह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे विवक्षित वस्तु अनिष्टकर प्रतीत होती है। भले ही वह वस्तु दूसरों के लिए प्रिय है; तो भी वह व्यक्ति उस वस्तु को देखकर अप्रसन्नता ही व्यक्त करता है। इससे विदित होता है कि अन्तरंग में योग्यता के अभाव में बाह्य वस्तु का कोई मूल्य नहीं है।

यद्यपि कर्म के विषय में भी यही अनुपपत्ति की जाती है, पर कर्म और बाह्य सामग्री में मौलिक अन्तर है। कर्म का विशद विवेचन हम पिछले एक परिच्छेद में कर आये हैं। उससे विदित होता है कि जिस समय आत्मा जो भाव करता है, उस समय उस भाव के संस्कारों से युक्त कर्मरज आत्मा से सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं और कालान्तर में वे ही कर्म आत्मा को सुख-दुःख के वेदन कराने में सहायक होते हैं; किन्तु बाह्य सामग्री की यह स्थिति नहीं है।

महर्षियों ने अपने अनुभव द्वारा दो प्रकार के निमित्त कारण स्वीकार किये हैं—कर्म और नोकर्म। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती नोकर्म की मीमांसा करते हुए कहते हैं—

'वस्त्र ज्ञानावरण का, प्रतीहार दर्शनावरण का, असि वेदनीय का, मद्य मोहनीय का, आहार आयु का, शरीर नामकर्म का, उच्च और नीच शरीर गोत्रकर्म तथा भण्डारी अन्तराय-कर्म का नोकर्म द्रव्यकर्म है।'

आगे पुनः वे कहते हैं—

'मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का व्याघात करनेवाले वस्त्रादि पदार्थ मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्म के नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का व्याघात करनेवाले संक्लेशकर पदार्थ अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म के नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। भैंस का दही आदि पदार्थ पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निद्रावरण कर्मों के नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। इष्ट अन्नपानादि साता का, अनिष्ट अन्न-पानादि असाता का, आयतन सम्यक्त्व का, अनायतन मिथ्यात्व का, विडौल पुत्र हास्य का, सुपुत्र रति का, इष्टवियोग-अनिष्टसंयोग अरति का और मृत पुत्रादि शोक का नोकर्म द्रव्यकर्म है।'

इस कथन का मथितार्थ यह है कि कर्म के उदय से जीव के विविध प्रकार के अज्ञान, अदर्शन, सुख, दुःख, मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि परिणाम होते हैं अवश्य, पर इन भावों के निमित्तभूत कर्म के उदय में प्रायः वस्त्र आदि बाह्य पदार्थों की सहायता से ही वे परिणाम होते हैं। यतः ये कर्म के उदय में सहकार करते हैं, इसलिए इनकी नोकर्म संज्ञा है।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए 'कषायप्राभृत' के रचयिता गुणधर आचार्य कहते हैं--

'खेत्तमभवकालपोग्गलट्ठिदिविगोदयखयो दु ॥'

विविध प्रकार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ये अपने-अपने योग्य कर्म के उदय में सहकार करते हैं और इससे कर्म का उदय होकर जीव इष्ट-अनिष्ट फल का भोक्ता होता है। उदाहरणार्थ--कोई मनुष्य क्षुधा से अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। ऐसी अवस्था में वहाँ एक दूसरा मनुष्य आता है और उसकी क्षुधाजन्य पीड़ा को देखकर उसे सुन्दर सुस्वादु भोजन कराता है। इससे उसकी क्षुधाजन्य वेदना दूर होने पर वह परम सुख का अनुभव करता है। यहाँ परम सुख के अनुभव कराने में साता का उदय कारण है और साता के उदय में दूसरे मनुष्य द्वारा दिया गया सुन्दर सुस्वादु भोजन कारण है। यह द्रव्य-नोकर्म का उदाहरण है। इसी प्रकार क्षेत्र आदि पदार्थ कर्म के शुभाशुभ फल के प्रदान करने में नोकर्म होते हैं।

किन्तु जिस प्रकार विवक्षित कर्म का विवक्षित भाव के साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है, उस प्रकार नोकर्म द्रव्यकर्म के साथ इन भावों का अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ--जीव का अज्ञान भाव ज्ञानावरण कर्म के उदय से ही होता है; अन्य प्रकार से नहीं। यह नहीं हो सकता कि ज्ञानावरण का उदय रहा आवे, पर अज्ञान भाव न भी हो, या यह भी नहीं हो सकता कि ज्ञानावरण का नाश हो जाने पर भी अज्ञान भाव बना रहे। जब होंगे ये परस्पर सापेक्ष ही होंगे। जिसके ज्ञानावरण का उदय होता है, उसके अज्ञान भाव अवश्य ही होता है। इसी प्रकार जिसके अज्ञानभाव होता है, उसके ज्ञानावरण का उदय अवश्य ही होता है। इन दोनों की समव्याप्ति है। परन्तु इस प्रकार नोकर्म के साथ जीव के अज्ञान आदि भावों की समव्याप्ति नहीं है। जो वस्त्र आदि अज्ञान के कारण माने जाते हैं, उनके रहने पर भी किसी के अज्ञान होता है और किसी के नहीं भी होता। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर बाह्य पदार्थों को नोकर्म संज्ञा दी है। कर्म वैसी योग्यता का सूचक है, पर बाह्य सामग्री का वैसी योग्यता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी वैसी योग्यता के सद्भाव में भी बाह्य सामग्री नहीं मिलती और कभी उसके अभाव में भी बाह्य सामग्री का संयोग देखा जाता है। किन्तु कर्म के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। उसका सम्बन्ध तभी तक आत्मा से रहता है, जब तक उसमें तदनुकूल योग्यता उपलब्ध होती है। इन दोनों तत्त्वों को कर्म और नोकर्म संज्ञा देने का यही कारण है।

इतने विवेचन से हम यह जानने में समर्थ होते हैं कि कर्म का कार्य क्या है। तथापि इसे और अधिक विशदरूप से समझने के लिए सर्वप्रथम उसके वर्गीकरण पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि मुख्य कर्म आठ हैं--ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनमें से प्रारम्भ के तीन और अन्तराय ये चार घातिकर्म हैं और शेष अघातिकर्म हैं। प्रकारान्तर से ये आठों कर्म जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी इन चार भागों में बटे हुए हैं। जीवविपाकी कर्म वे हैं, जिनका विपाक जीव में होता है। जिनके विपाकस्वरूप शरीर, वचन और मन की प्राप्ति होती है, वे पुद्गलविपाकी कर्म हैं। भव के निमित्त से जिनका फल मिलता है, वे भवविपाकी कर्म कहे जाते हैं और क्षेत्र विशेष में जो अपना कार्य करते हैं, वे क्षेत्रविपाकी कर्म है। भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी कर्म जीवविपाकी कर्मों के ही अवान्तर भेद हैं; केवल कार्यविशेष का ज्ञान कराने के लिए इनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलग से निर्देश किया है, इसलिए कर्मों के मुख्य भेद दो हैं—जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी। कर्म के कार्य को ठीक तरह से हृदयंगम करने के लिए ये दो भेद हमें प्रकाश का काम देते हैं।

यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि जीव का संसार जीव और पुद्गल इन तत्त्वों के संयोग का फल है। अकेला जीव संसारी नहीं हो सकता और अकेला कर्म भी कुछ नहीं कर सकता। इन दो तत्त्वों के मिलाप के फलस्वरूप संसार की सृष्टि होती है। इसलिए कर्म का प्रथम कार्य जीव को संसारी बनाना है। इसके बाद कर्मों के उक्त वर्गीकरण पर दृष्टिपात करने से हम जानते हैं कि जीव की नर-नरकादि विविध अवस्थाएँ, सुख-दुःख और अज्ञान आदि भाव ये जीवविपाकी कर्मों के कार्य हैं और विविध प्रकार के शरीर, मन, वचन ये पुद्गलविपाकी कर्मों के कार्य हैं। इस विवेचन के उपसंहारस्वरूप हम कह सकते हैं कि कर्म के निमित्त से जीव की विविध प्रकार की अवस्था और भाव होते हैं और जीव में ऐसी योग्यता उत्पन्न होती है, जिससे वह योगद्वारा यथायोग्य शरीर, वचन और मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें शरीरादिरूप से परिणमाता है।

इस विषय में अधिकतर विद्वान् यह विचार व्यक्त करते हैं कि केवल इतना ही कर्म का कार्य नहीं है, किन्तु धन-सम्पत्ति, महल, बगीचा, राज्य, पुत्र, स्त्री आदि सम्पदाएँ भी कर्म के कार्य हैं। पुण्य कर्म के उदय से जीव को सुखकर सामग्रियों की प्राप्ति होती है और पाप के उदय से दुःखकर सामग्री मिलती है। ऐसे ही विचार कुछ प्राचीन लेखकों ने भी व्यक्त किये हैं। पण्डितप्रवर टोडरमलजी 'मोक्षामार्गप्रकाशक' में लिखते हैं—

'तहाँ वेदनीय करि तो शरीर विषैं व शरीर तैं बाह्य नाना प्रकार सुख-दुःखनिको कारण पर द्रव्यनि का संयोग जुरै है।' —मोक्षमार्गप्रकाशक, दूसरा अधिकार, दिल्ली पृ. ३०)

इसी अभिप्राय को उन्होंने दूसरे स्थल पर इन शब्दों में दुहराया है—

'बहुरि कर्मनिविषै वेदनीय के उदयकरि शरीर विषै बाह्य सुख-दुःख का कारण निपजै है। शरीर विषै आरोग्यपनौ रोगीपनौ शक्तिवानपनौ दुर्बलपनौ अर क्षुधा, तृषा, रोग, खेद, पीड़ा इत्यादि सुख-दुःखनि के कारण हो हैं। बहुरि बाह्य विषैं सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक ····सुख-दुःख के कारण हो हैं।'

(मोक्षमार्गप्रकाशक, दूसरा अधिकार, दिल्ली, पृ. ५०)

इन विचारों के अनुरूप वातावरण बनने में नीतिकारों, कथालेखकों और नैयायिक दर्शन से बड़ी सहायता मिली है। नीतिकारों और कथालेखकों की यह प्रवृत्ति रही है कि जिस विषय की उन्होंने प्रशंसा करना प्रारम्भ की उसे चरम सीमा पर पहुँचाकर ही छोड़ा और जिस विषय की उन्होंने निन्दा करना प्रारम्भ की उसकी दुर्गति बनाकर ही उन्होंने साँस ली। कर्म की प्रशंसा में वे लिखते हैं—

'भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्।'

भाग्य ही सर्वत्र काम करता है, विद्या और पौरुष कुछ काम नहीं आता।

'जलधिगतोऽपि न कश्चित्कश्चित्तटगोऽपि रत्नमुपयाति।'

पापी जीव समुद्र में प्रवेश करने पर भी रत्न नहीं पाता, किन्तु पुण्यात्मा जीव तटपर बैठे ही उन्हें प्राप्त कर लेता है।

'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।'

ललाट में जो कर्म की रेखा खिंच गयी है, उसे मेटने के लिए कौन समर्थ है?

'जलनिधिपरतटगतमपि करतलमायाति यस्य भवितव्यम्।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसका भाग्य अनुकूल होता है, उसके समुद्र के उस पार गयी हुई वस्तु भी हाथ में आ जाती है और जिसका भाग्य प्रतिकूल होता है, उसके हाथ में आयी हुई भी वस्तु नष्ट हो जाती है।

'नाभव्यं भवतीह कर्मवशतो भावस्य नाशः कुतः।'

लोक में जो होनेवाला नहीं है, वह नहीं ही होता और जो होनेवाला होता है, वह होकर ही रहता है। यह सब विधिविधान कर्म के आधीन है।

कथा-लेखकों और पुराणकारों की स्थिति इससे भिन्न नहीं है। ऐसा करते हुए उन्होंने कर्मवाद के आध्यात्मिक पहलू को भुलाकर मात्र पिछली कई शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था के नियमों को ही सदा अपने सामने रक्खा है। और इसलिए उन्होंने ईश्वर के समान कर्म का अस्त्र के रूप में उपयोग किया है।

यहाँ हमें इन विचारों के कारणों की छानबीन कर लेना उपयुक्त प्रतीत होता है। यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि परलोकवादी जितने दर्शन हैं, उन सबने कर्म के अस्तित्व को स्वीकार किया है; किन्तु इन सबका दार्शनिक दृष्टिकोण अलग-अलग होने से कर्म की व्याख्या भी उन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुरूप ही की है। प्रकृत में उपयोगी होने से यहाँ हम इस सम्बन्ध में नैयायिक दर्शन के दृष्टिकोण को उपस्थित करेंगे।

नैयायिक दर्शन कार्यमात्र के प्रति कर्म को कारण मानता है। वह कर्म को जीवनिष्ठ मानता है। उसका कहना है कि चेतनगत जितनी विषमताएँ हैं, उनका कारण कर्म तो है ही; साथ ही वह अचेतनगत सब प्रकार की विषमताओं का और उनके न्यूनाधिक संयोगों का भी जनक है। उसके मत से जगत् में द्व्यणुक आदि जितने भी कार्य होते हैं, वे किसी-न-किसी के उपभोग के योग्य होने से उनका कर्ता कर्म ही है।

इस दर्शन में तीन प्रकार के कारण माने गये हैं—समवायी कारण, असमवायी कारण और निमित्त कारण। जिस द्रव्य में कार्य की सृष्टि होती है, वह द्रव्य उस कार्य के प्रति समवायी कारण है। संयोग असमवायी कारण है। और अन्य सहकारी सामग्री निमित्त कारण है। तथा काल, दिशा, ईश्वर और कर्म ये कार्यमात्र के प्रति निमित्त कारण हैं। इनकी सहायता के बिना कोई कार्य नहीं होता।

ईश्वर और कर्म कार्यमात्र के प्रति साधारण कारण क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर नैयायिक दर्शन इन शब्दों में देता है कि लोक में जितने कार्य होते हैं, वे सब चेतनाधिष्ठित ही होते हैं, इसलिए ईश्वर सबका साधारण कारण है।

इस पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सबका कर्ता ईश्वर है, तब फिर उसने सब प्राणधारियों को एक-सा क्यों नहीं बनाया? वह सबको एक-से सुख, एक-से भोग और एक-सी बुद्धि दे सकता था। स्वर्ग या मोक्ष का अधिकारी भी सबको एक-सा बना सकता था। दुःखी, दरिद्र और निकृष्ट योनिवाले प्राणियों की उसे रचना ही नहीं करनी थी। उसने ऐसा क्यों नहीं किया? जगत् में तो विषमता ही विषमता दिखाई देती है। इसका अनुभव सभी को होता है। क्या जीवधारी और क्या जड़ जितने भी पदार्थ हैं उन सबकी आकृति, स्वभाव और जाति जुदी-जुदी है। एक का मेल दूसरे से नहीं खाता। मनुष्य को ही लीजिए। एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में बड़ा अन्तर है। एक सुखी है तो दूसरा दुःखी। एक के पास सम्पत्ति का विपुल भण्डार है, तो दूसरा दाने-दाने को भटकता फिरता है। एक सातिशय बुद्धिवाला है, तो दूसरा निरामूर्ख। मत्स्यन्याय का सर्वत्र बोलवाला है। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाना चाहती है। यह भेद यहीं तक सीमित नहीं है। धर्म और धर्मायतनों में भी यह भेद दिखाई देता है। यदि ईश्वर ने सबको बनाया है और वह मन्दिरों में बैठा है, तो उस तक सबको क्यों नहीं जाने दिया जाता। क्या उन दलालों का जो अन्य को मन्दिर में जाने से रोकते हैं, उसी ने निर्माण किया है? ऐसा क्यों है? जब ईश्वर ने ही इस जगत् को बनाया है और वह करुणामय तथा सर्वशक्तिमान है, तब फिर उसने जगत् की ऐसी विषम रचना क्यों की? यह प्रश्न है जिसका उत्तर नैयायिक दर्शन कर्मवाद को स्वीकार करके देता है। वह जगत् की इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषमता का कारण कर्म को मानता है। उसका कहना है कि ईश्वर जगत् का कर्ता है तो सही, पर उसने विश्व की रचना प्राणियों के कर्मानुसार की है। जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे योनि और भोग मिलते हैं। यदि अच्छा कर्म करता है, तो अच्छी योनि और अच्छे भोग मिलते हैं। कविवर तुलसीदास जी इसी तत्त्व को स्वीकार करते हुए 'रामचरितमानस' में कहते हैं–

'करम प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा॥'

ईश्वर ने विश्व की रचना कर्म प्रधान की है। जो अच्छा या बुरा, जैसा काम करता है, उसी के अनुरूप उसे फल मिलता है।

नैयायिक दर्शन कार्यमात्र के प्रति कर्म को साधारण कारण मानता है। इसके अनुसार जीवात्मा व्यापक है, इसलिए जहाँ भी उसके उपभोग के योग्य कार्य की सृष्टि होती है, वहाँ उसके कर्म का संयोग होकर ही वैसा होता है। अमेरिका में बननेवाली जिन कारों (मोटरों) तथा अन्य पदार्थों का भारतीयों द्वारा उपभोग होता है, वे उनके उपभोक्ताओं के कर्मानुसार ही निर्मित होते हैं और इसीसे वे कालान्तर में अपने-अपने उपभोक्ताओं के पास पहुँच जाते हैं। उपभोग योग्य वस्तुओं के विभागीकरण का कर्म तुलादण्ड है। जिसके पास विपुल सम्पत्ति है, वह उसके कर्मानुसार है और जो निर्धन है वह भी अपने कर्मानुसार है। कर्म बटवारे में कभी भी पक्षपात नहीं होने देता। गरीब और अमीर का भेद तथा स्वामी और सेवक का भेद मानवकृत नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार ही इन भेदों की सृष्टि होती है। इसी प्रकार जातिकृत भेद भी कर्मकृत ही है।

संक्षेप में नैयायिक दर्शन का मन्तव्य यह है कि प्राणी जो भी अच्छे-बुरे कर्म करता है, उसके अनुसार ईश्वर उसके फल की व्यवस्था करता है। यदि कोई मनुष्य किसी के धन का अपहरण करता है, तो अगले भव में उसके धन का अवश्य ही अपहरण होता है और वर्तमान भव में वह किसी की सहायता करता है, तो अगले भव में उसे अवश्य ही सहायता मिलती है।

किन्तु जैनदर्शन में बतलाये गये कर्मवाद से इस मत का समर्थन नहीं होता। यहाँ कर्मवाद की प्राण-प्रतिष्ठा मुख्यतया आध्यात्मिक आधारों पर की गयी है। ईश्वर को तो जैनदर्शन स्वीकार करता ही नहीं। वह निमित्त को स्वीकार करके भी कार्य के आध्यात्मिक विश्लेषण पर अधिक जोर देता है। नैयायिक और वैशेषिक दर्शन ने कार्य-कारणभाव की जो व्यवस्था की है, वह उसे मान्य नहीं है। उसका मत है कि पर्यायक्रम से बदलते रहना यह प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है। इसके मत से जिस काल में वस्तु की जैसी योग्यता होती है, उसी के अनुसार कार्य होता है। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जिस कार्य के अनुकूल होता है, वह उसका निमित्त कहा जाता है। कार्य अपने उपादान से होता है; किन्तु कार्यनिष्पत्ति के समय अन्य वस्तु की अनुकूलता ही निमित्तता की प्रयोजक है। निमित्त उपकारी कहा जा सकता है; कर्ता नहीं। जैनदर्शन ने जगत् को अकृत्रिम और अनादि क्यों माना है, इसका रहस्य यही है। वह यावत् कार्यों में बुद्धिमान् निमित्त की आवश्यकता स्वीकार नहीं करता। घटादि कार्यों की उत्पत्ति में यदि बुद्धिमान् निमित्त देखा भी जाता है, तो इससे सब कार्यों में बुद्धिमान् को निमित्त मानना उचित नहीं है; ऐसा इसका मत है।

जैनदर्शन कर्म को स्वीकार करके भी यावत् कार्यों के प्रति उसे निमित्त कारण नहीं मानता। वह जीव की विविध अवस्थाएँ, शरीर, इन्द्रिय, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास इन कार्यों के प्रति ही कर्म को निमित्त कारण मानता है। इस दर्शन में कर्मवाद की जो व्यवस्था की गयी है, उसके अनुसार अन्य कार्य अपने-अपने कारणों से होते हैं; कर्म उनका कारण नहीं है। उदाहरणार्थ–पुत्र का प्राप्त होना, उसका मर जाना, रोजगार में नफा-नुकसान का होना, दूसरे के द्वारा अपमान या सम्मान का किया जाना, अकस्मात् मकान का गिर पड़ना, फसल का नष्ट हो जाना, दुर्घटना द्वारा एक या अनेक व्यक्तियों की मृत्यु का होना, ऋतु का अनुकूल या प्रतिकूल होना, अकाल या सुकाल का पड़ना, रास्ता चलते-चलते अपघात का हो जाना, मनुष्य आदि पर बिजली आदि गिरकर उसका मर जाना, शरीर में रोगादिक का होना तथा विविध प्रकार के इष्टानिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोगों व वियोगों का होना आदि जितने कार्य हैं, उनका कर्म कारण नहीं है। भ्रम से इन्हें कर्मों का कार्य माना जाता है। पुत्र की प्राप्ति होने पर मनुष्य भ्रमवश उसे अपने शुभ कर्म का कार्य समझता है और उसके मर जाने पर भ्रमवश उसे अपने अशुभ कर्म का कार्य समझता है। पर क्या पिता के पाप कर्म के उदय से पुत्र की मृत्यु या पिता के पुण्योदय से पुत्र की उत्पत्ति सम्भव है। कभी नहीं। सच बात तो यह है कि ये इष्ट संयोग और इष्ट वियोग आदि जितने कार्य हैं, वे पुण्य और पाप कर्म के कार्य नहीं हैं। निमित्त अन्य बात है और कार्य अन्य बात है। कर्मोदय के निमित्त को कर्म का कार्य कहना उचित नहीं है।

यहाँ प्रसंग से हम उस मत की आलोचना करेंगे, जिसके अनुसार बाह्य इष्टानिष्ट के संयोग-वियोग में कर्म की उपादेयता स्वीकार की जाती है।

प्रश्न यह है कि एक सम्पन्न घर में उत्पन्न होता है और दूसरा दरिद्र घर में। एक अल्पायु होता है और दूसरा दीर्घायु। एक को जीवन में नाना प्रकार के पूजा-सत्कार की प्राप्ति होती है और दूसरा दर-दर का भिखारी बना फिरता है। एक स्वर्ग जाकर देवसुख का उपभोग करता है और दूसरा नरक का कीड़ा होकर अनन्त यातनाएँ सहन करता है। यदि इष्टसंयोग और इष्टवियोग आदि पुण्य और पाप कर्म का फल नहीं है, तो यह सब क्यों होता है?

यह तो हम देखते हैं कि लोक में एक ऐश्वर्यशाली होता है और दूसरा दरिद्र। तथा हम आगम से यह भी जानते हैं कि देवलोक में भोगोपभोग की विपुल सामग्री उपलब्ध होती है और नरक में न केवल उसका सर्वथा अभाव ही दिखाई देता है, प्रत्युत वहाँ बहुतायत से दुःख के साधन ही देखे जाते हैं; पर ऐसा क्यों होता है--इसका विचार हमें तात्त्विक दृष्टि से करना चाहिए।

आगम में व्यवस्था दो प्रकार की बतलायी है--एक शाश्वतिक व्यवस्था और दूसरी प्रयत्नसाध्य व्यवस्था। देवलोक, नरक और भोगभूमि में शाश्वतिक व्यवस्था होती है। वहाँ अनादि काल पहले जो व्यवस्था थी, वही आज भी है। जहाँ जितने विमान, नरक या कल्पवृक्ष आदि हैं, वे सदा उतने ही बने रहेंगे। उनका जो शृंगार है, वह भी उसी प्रकार बना रहेगा। उसमें तिलमात्र भी अन्तर नहीं हो सकता। इसलिए अपने पूर्वबद्ध आयुकर्म के अनुसार जो जहाँ उत्पन्न होता है, उसे वहाँ की सुख-दुःख में निमित्त पड़नेवाली सामग्री अनायास मिलती है और जीवन के अन्तिम क्षणतक उसका संयोग बना रहता है। पुण्यातिशय न तो इसमें वृद्धि ही कर सकता है और न हीनपुण्य उसमें न्यूनता ही ला सकता है। हम यह तो कह नहीं सकते कि इन स्थानों में कर्मों का विपाक एक समान होता है; क्योंकि एक तो आगम में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता और मनुष्य की युक्ति व विवेक भी इसे स्वीकार नहीं करता। आगम में तो यहाँ तक निर्देश किया है कि जिस प्रकार देवों के साता का उदय होता है, उसी प्रकार असाता का भी उदय होता है। नारकियों के सम्बन्ध में भी यही बात कही गयी है। आगम का यह कथन तभी युक्तियुक्त ठहरता है, जब हम यह मान लेते हैं कि इन स्थानों में भी कर्म के विपाक में न्यूनाधिकता व यथासम्भव फेर-बदल देखा जाता है।

थोड़ी देर को हम इस सामग्री को पुण्य और पाप का फल मान भी लें, तब भी हमारे सामने यह तो प्रश्न रहता ही है कि यदि देवलोक की सामग्री पुण्य से मिलती है, तो ऊपर-ऊपर के देवों के पुण्यातिशय की विशेषता होने से उत्तरोत्तर विपुल सामग्री की उपलब्धि होनी चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता। 'तत्त्वार्थसूत्र' में लिखा है कि ऊपर-ऊपर के देव गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान से हीन-हीन होते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' के इस कथन की सार्थकता तभी बन सकती है, जब हम बाह्य सामग्री की प्राप्ति पुण्य का फल नहीं मानते हैं। इस पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि तो फिर इसकी प्राप्ति का कारण क्या है? प्रश्न स्पष्ट है और उसका उत्तर भी स्पष्ट है कि बाह्य सामग्री की प्राप्ति का मूल कारण पुण्य न होकर प्राणी की कषाय है। एक कषाय ही ऐसा पदार्थ है जिसके निमित्त से यह प्राणी बाह्य परिग्रह को स्वीकार करता है, उसका अर्जन करता है, संचय करता है और सँचित द्रव्य का संरक्षण करता है। आगम में बतलाया है कि अमुक लेश्यावाला जीव मरकर अमुक स्वर्ग या नरक में मरकर उत्पन्न होता है और यह भी बतलाया है कि जो जीव जिस प्रकार के स्थान को प्राप्त करता है, उसके मरण के पूर्व नियम से उस प्रकार की लेश्या हो जाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। और यथासम्भव जीवन भर वह बनी रहती है। यह लेश्या क्या है? कषाय ही तो है। इसमें योग को पुट देकर उसकी लेश्या संज्ञा रख दी है।

पुण्य और पाप की जिनागम में लोकोत्तर व्याख्या की गयी है। पुण्यकर्म का उपदेश क्या इसलिए दिया जाता है कि वह इस जीवन में हेय जानकर जिस बाह्य और अन्तरंग परिग्रह का त्याग करता है, अगले जन्म में उसके फलस्वरूप उसे वह पुनः प्राप्त कर अनन्त संसार का पात्र बने। पुण्यकर्म की इससे बड़ी और विडम्बना क्या हो सकती है? हेय जानकर जिन पदार्थों का इस जीवन में त्याग किया जाता है, उसके फलस्वरूप वह संसार-बन्धनों को अंशतः ढीला करता है और यदि यह वासना चिरकाल तक बनी रहती है, तो पुनः वह उसी मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलने लगता है; जिसके फलस्वरूप ऐसा क्षण उपस्थित होता है, जब वह समग्ररूप से भवबन्धन को काटने में समर्थ होता है। यह पुण्यकर्म की लोकोत्तर व्यवस्था है और इसलिए हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि बाह्य सामग्री की प्राप्ति पुण्यकर्म का फल त्रिकाल में नहीं है।

अब हम इस लोक की ओर मुड़ते हैं। इस लोक में हम अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ देखते हैं। ये सब व्यवस्थाएँ किसने कीं? पुराकृत कर्म यदि इनका कारण है, तब तो हमें उनके सम्बन्ध में बोलने का अधिकार ही नहीं रहता। और यदि इनके निर्माण में मनुष्य का हाथ माना जाता है, तो हमें इन सब व्यवस्थाओं के प्रति मनुष्य की कषाय को ही उत्तरदायी मानना चाहिए; न कि कर्म को। कर्म व्यक्तिगत पुराकृत कार्यों का लेखा है और व्यवस्थाएँ समाजरचना का अंग हैं। इसलिए लोक में एक का दरिद्र होना और दूसरे का राजा बनना; यह कर्म का कार्य नहीं होकर समाजरचना का फल है।

देखो, यहाँ सर्वप्रथम भोगभूमि थी। उस समय प्रकृति से प्राप्त साधनों से प्राणियों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन होता है। साधनों की विरलता के साथ मनुष्यों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगती हैं। सब मनुष्य एक प्रकार के साधनों के आधार से आजीविका नहीं कर सकते; यह देख विविध प्रकार के कला-कौशल और उद्योगों का निर्माण होता है। पृथिवी का पेट चीरकर साधन उपलब्ध करने की कला अवगत की जाती है। पुरानी व्यवस्थाओं का स्थान नयी व्यवस्थाएँ लेती हैं। तब भी मनुष्यों के अभाव की पूर्ति नहीं होती, इसलिए मनुष्य अलग-अलग समुदायों में विभक्त होकर पृथिवी माता का बटवारा करते हैं। सबके अलग-अलग नियम बनते हैं। चतुर चालाक मनुष्य आगे आते हैं। वे साधनों पर एकाधिकार स्थापित करते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य पीछे रह जाते हैं। इससे मानव समुदाय में बेचैनी बढ़ती है। वह मिल कर व्यवस्था को उलटने का प्रयत्न करता है। इस समय हम विश्व में जो अनेक वाद और व्यवस्थाएँ देख रहे हैं; यह उनका संक्षिप्त लेखा है। इसके बाद भी यदि हम एक का गरीब होना और दूसरे का श्रीमान् होना आदि का कारण कर्म को मानते हैं; तो कहना होगा कि यह वह कर्मवाद नहीं है, जिसका उपदेश तीर्थंकरों ने विश्व को दिया था।

साधारणतः प्राचीन साहित्य में हमें दो तरह के मतों का उल्लेख मिलता है जिनमें बाह्यसामग्री की प्राप्ति के कारणों का निर्देश किया गया है। आगे इन दोनों के आधार से विचार कर लेना इष्ट है--

(१) षट्खण्डागम चूलिका अनुयोगद्वार में प्रकृतियों का नाम निर्देश करते हुए सूत्र १८ की टीका में वीरसेन स्वामी ने इनका विस्तृत विवेचन किया है। वहाँ सर्वप्रथम वे सातावेदनीय और आसातावेदनीय के उसी स्वरूप का निर्देश करते हैं जो सर्वत्र प्रसिद्ध है और जो उनके जीवविपाकी प्रकृति होने के अनुरूप है। किन्तु शंका-समाधान के प्रसंग से वे सातावेदनीय को जीवविपाकी के समान पुद्गलविपाकी भी मान लेते हैं। यद्यपि यह उनका व्यक्तिगत मत कहा जा सकता है, पर इससे इस कथन का समर्थन होता है कि सातावेदनीय को पुद्गलविपाकी माने बिना उसे बाह्य सामग्री की प्राप्ति में कारण नहीं माना जा सकता।

(२) 'तत्त्वार्थसूत्र' अध्याय २ की 'सर्वार्थसिद्धि' और 'राजवार्तिक' टीका में अरिहन्तों को प्राप्त होनेवाली सिंहासन आदि विभूति के कारणों का निर्देश करते हुए लाभान्तराय आदि कर्मों के क्षय को उसका कारण बतलाया है। किन्तु सिद्धों में अतिप्रसंग दोष देने पर इसके साथ शरीर नामकर्म आदि की अपेक्षा और लगा दी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये दो मत हैं जिन में बाह्य सामग्री की प्राप्ति के कारणों का स्पष्ट निर्देश किया है। अधिकतर विद्वान् इन्हीं दोनों मतों का आश्रय लेते हैं। कोई वेदनीय को बाह्य सामग्री की प्राप्ति का निमित्त कहते हैं और कोई लाभान्तराय आदि के क्षय व क्षयोपशम को।

साधारणतः यह धारणा हो जाने से कि संसारी प्राणी को जो भी संयोग-वियोग होता है, वह पुराकृत कर्म के विपाक के बिना नहीं हो सकता। विद्वान् प्रत्येक प्रश्न का उत्तर कर्मवाद से देने का प्रयत्न करते हैं। हम पहले नैयायिक सम्मत कर्मवाद का निर्देश कर आये हैं। वहाँ यह भी बतला आये हैं कि यह दर्शन कार्यमात्र के होने में कर्म को कारण मानता है। अधिकतर अन्य लेखकों ने इस मत से प्रभावित होकर ही भ्रान्ति की है।

हम रेलगाड़ी से सफर करते हैं। हमें वहाँ अनेक प्रकार के मनुष्यों का समागम होता है। कोई हँसता हुआ मिलता है, तो कोई रोता हुआ। इनसे हमें सुख भी होता है और दुख भी। तो क्या ये हमारे शुभाशुभ कर्मों के कारण रेलगाड़ी में सफर करने आये हैं? कभी नहीं। जैसे हम अपने काम से सफर कर रहे हैं, वैसे वे भी अपने-अपने काम से सफर कर रहे हैं। उनके संयोग-वियोग में न हमारा कर्म कारण है और न उनका ही कर्म कारण है।

हमारे मकान का मुख पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं की ओर है। उससे प्रतिदिन सूर्य रश्मियाँ घर को आलोकित करती रहती हैं। जाड़े के दिनों में वह प्रकाश हमें सुखद प्रतीत होता है और गरमी के दिनों में दुःखकर प्रतीत होता है, तो क्या यह प्रकाश हमारे शुभाशुभ कर्मों के कारण हमारे मकान में स्थान पाता है? कभी नहीं। मकान का मुख पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं की ओर है, इसलिए सूर्य-रश्मियों को मकान में प्रवेश करने में बाधा उपस्थित नहीं होती।

हमारी दुकान बम्बई में है। हमने अपनी समझ से एक अच्छे आदमी को उसका मुख्याधिकारी नियुक्त किया है। वह वहाँ का सब काम सम्हालता है। कभी दुकान में लाभ होता है और कभी हानि। तो क्या हमारे शुभाशुभ कर्मों के कारण वहाँ हानि-लाभ होता है? यदि हानि का कारण हमारा कर्म है, तो हम मुनीम को क्यों दोष देते हैं और लाभ के प्रति भी हमारा कर्म दायी है, तो हम मुनीम की पीठ क्यों ठोकते हैं? पूर्वोक्त व्यवस्था के अनुसार मुनीम तो एक प्रकार का यन्त्र है जो हमारे कर्म से प्रेरित होकर काम करता है। उसका उसमें गुण-दोष ही क्या है?

हमारी पत्नी ने मनपसन्द एक साड़ी खरीदी है। वह उसे बड़े जतन से पेटी में सम्हालकर रखती है। पेटी की बगल में एक सूराख है, जिसका उसे ज्ञान नहीं है। उसकी समझ से साड़ी सुरक्षित रखी हुई है, किन्तु प्रतिदिन एक चुहिया सूराख से भीतर जाकर उसे कुतरती रहती है। जब तक उसे हानि का ज्ञान नहीं होता वह प्रसन्न रहती है, किन्तु इसका ज्ञान होने पर वह विकलता का अनुभव करने लगती है। यदि वह हानि उसके कर्मानुसार होती है, तो जब से यह हानि होती है तभी से वह विकलता का अनुभव क्यों नहीं करती?

स्पष्ट है कि ये या इसी जाति के लोक में और जितने संयोग-वियोग हैं, उनमें कर्म का रंचमात्र भी हाथ नहीं है। सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्मों की व्याप्ति सुख और दुःख के साथ की जा सकती है, बाह्य साधनों के सद्भाव और असद्भाव के साथ नहीं। यही कारण है कि श्रावक के अल्प परिग्रही और साधु के अपरिग्रही होने पर भी वे उत्तरोत्तर पुण्यात्मा अर्थात् पुण्य कर्म के उपभोक्ता होते हैं, क्योंकि वे बहुपरिग्रही व्यक्ति की अपेक्षा उत्तरोत्तर परम सुख का अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार जब हम लाभान्तराय आदि कर्मों के क्षय या क्षयोपशमजन्य कार्यों की मीमांसा करते हैं, तो हमें बलात् मानना पड़ता है कि इन कर्मों का क्षय व क्षयोपशम भी बाह्य सामग्री के संयोग-वियोग का कारण नहीं हो सकता। कारण कि आत्मा की जो दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की पाँच अनुजीवी शक्तियाँ मानी गयी हैं; अन्तराय कर्म उनका ही आवरण करता है, अतएव अन्तराय कर्म के क्षय व क्षयोपशमसे ये अनुजीवी शक्तियाँ आविर्भूत होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार यह ज्ञात हो जाने पर कि बाह्य साधनों की उपलब्धि न तो साता और असातावेदनीय के निमित्त से होती है और न लाभान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशमसे ही होती है, तब हमें उनकी उपलब्धि के कारणों पर अवश्य ही विचार करना होगा। लोक में बाह्य साधनों की प्राप्ति के अनेक मार्ग दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ--उद्योग करना, व्यवसाय करना, मजदूरी करना, व्यापार के साधन जुटाना, राज्याधिकारियों की या साधन-सम्पन्न व्यक्तियों की चाटुकारी करना, उनसे मित्रता बढ़ाना, अर्जित धन की रक्षा करना, उसे व्याज पर लगाना, प्राप्त धन को विविध व्यवसायों में लगाना, खेती करना, झाँसा देकर ठगी करना, जेब काटना, चोरी करना, जुआ खेलना, भीख माँगना, धर्मादाय को संचित कर पचा जाना, आदि बाह्य साधनों की प्राप्ति के साधन हैं। इन व अन्य कारणों से बाह्य साधनों की उपलब्धि होती है; कर्मों से नहीं।

शंका—इन सब उपायों के या इनमें से किसी एक उपाय के करने पर हानि देखी जाती है सो इसका क्या कारण है?

समाधान--प्रयत्न की कमी, या बाह्य परिस्थिति या दोनों।

शंका--कदाचित् व्यवसाय आदि के नहीं करने पर भी धन की प्राप्ति देखी जाती है सो इसका क्या कारण है?

समाधान--यहाँ यह देखना है कि वह प्राप्ति कैसे हुई है? क्या किसी के देने से हुई है या कहीं पड़ा हुआ मिलने से हुई है? यदि किसी के देने से हुई है तो इसमें जिसे मिला है, उसके विद्या आदि गुण कारण हैं या देनेवाली की स्वार्थसिद्धि और प्रेम आदि कारण हैं। यदि कहीं पड़ा हुआ होने से उसकी प्राप्ति हुई है, तो इस मार्ग से प्राप्त हुआ धन पुण्यकर्म का फल कैसे कहा जा सकता है? यह तो चोरी है। अतः चोरी का भाव ही इस प्रकार से धन की प्राप्ति में कारण है; साता का उदय नहीं।

शंका—दो आदमी एक साथ एक-सा व्यवसाय करते हैं, फिर क्या कारण है कि एक को लाभ होता है और दूसरे को हानि?

समाधान—व्यापार करने में अपनी-अपनी योग्यता और उनकी अलग-अलग परिस्थिति आदि इसका कारण है; पाप-पुण्य नहीं। संयुक्त व्यापार में एक को हानि और दूसरे को लाभ हो, तो कदाचित् हानि-लाभ पाप-पुण्य का फल माना भी जाय। पर ऐसा होता नहीं, अतः हानि-लाभ को पाप-पुण्य का फल मानना उचित नहीं है।

शंका—यदि बाह्य साधनों का लाभालाभ पुण्य-पाप का फल नहीं है, तो फिर एक गरीब और दूसरा श्रीमान् क्यों होता है?

समाधान—एक का श्रीमान् और दूसरे का गरीब होना यह सामाजिक व्यवस्था का फल है; पुण्य-पाप का नहीं। जिन देशों में पूँजीवादी व्यवस्था है और व्यक्ति की संग्रह करने की कोई सीमा नहीं है, वहाँ अपनी-अपनी योग्यता व साधनों के अनुसार मनुष्य उसका संचय करते हैं। गरीब-अमीर वर्ग की सृष्टि इसी व्यवस्था का फल है। गरीब और अमीर इन भेदों को पाप-पुण्य का फल मानना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है। रूस ने बहुत कुछ हद तक इस व्यवस्था का अन्त कर दिया है, इसलिए वहाँ इस प्रकार का भेद बहुत ही कम दिखाई देता है, फिर भी पुण्य-पाप तो वहाँ भी हैं। सचमुच में पुण्य-पाप तो वह है जो इन बाह्य व्यवस्थाओं से परे है और वह आध्यात्मिक है। जैन कर्मशास्त्र ऐसे ही पुण्य का निर्देश करता है।

शंका—यदि बाह्य साधनों का लाभालाभ पुण्य-पाप का फल नहीं है, तो सिद्ध जीवों को उसकी प्राप्ति क्यों नहीं होती?

समाधान—बाह्य साधनों का सद्भाव जहाँ है और जो कषाय युक्त हैं, उन्हीं के उनकी प्राप्ति सम्भव है। साधारणतः उनकी प्राप्ति जड़ और चेतन दोनों को होती है; क्योंकि तिजोरी में भी धन रखा रहता है, इसलिए उसे भी धन की प्राप्ति कही जा सकती है। किन्तु जड़ के रागादि भाव नहीं होता और चेतन के होता है, इसलिए वह ममकार और अहंकार भाव करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंका—यदि बाह्य साधनों का लाभालाभ पुण्य-पाप का फल नहीं है, तो न सही; पर सरोगता और नीरोगता यह तो पाप-पुण्य का फल मानना ही पड़ता है?

समाधान—सरोगता और नीरोगता दो प्रकार की होती है—आनुवंशिक और प्रयत्नसाध्य। दोनों अवस्थाओं में इसे पाप-पुण्य का फल नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार बाह्य साधनों की प्राप्ति अपने-अपने कारणों से होती है, उसी प्रकार सरोगता और नीरोगता भी अपने-अपने कारणों से होती है। इसे पाप-पुण्य का फल मानना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है।

शंका—सरोगता और नीरोगता के क्या कारण हैं?

समाधान—अस्वास्थ्यकर आहार, विहार व संगति करना आदि सरोगता के कारण हैं और स्वास्थ्यवर्धक आहार, विहार व संगति करना नीरोगता के कारण हैं।

इस प्रकार कर्म की कार्यमर्यादा का विचार करने पर यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि कर्म बाह्य सम्पत्ति के संयोग-वियोग का कारण नहीं है। किन्तु जिस कर्म का जो नाम है, उसी के अनुसार वह काम करता है। सम्पत्ति का संयोग और वियोग होता अवश्य है; किन्तु कहीं वह अनायास होता है और कहीं कषायपूर्वक होता है। इसलिए सम्पत्ति के संयोग का मुख्य कारण कषाय है और वियोग का कारण कहीं कषाय है और कहीं कषाय का त्याग है। जो रागादि में वशीभूत होकर उसका त्याग करते हैं, उनके वियोग का कारण रागादि परिणाम हैं और जो राग-द्वेष की हानि होने से उसका त्याग करते हैं, उनके उसके वियोग का कारण राग-द्वेष की हानि है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-परिचय

'महाबन्ध' के चार भागों में से प्रकृतिबन्ध का प्रकाशन कई वर्ष पहले हो चुका है। यह स्थितिबन्ध है। इसके मुख्य अधिकार दो हैं—मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध और उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध। मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध के मुख्य अधिकार चार हैं—स्थितिबन्ध स्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधाकाण्डक-प्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

कुल संसारी जीवराशि चौदह जीवसमासों में बिभक्त है। इनमें से एक-एक जीवसमास में अलग-अलग कितने स्थिति-विकल्प होते हैं; स्थितिबन्ध के कारणभूत संक्लेशस्थान और विशुद्धिस्थान कितने हैं और सबसे जघन्य स्थितिबन्ध से लेकर उत्तरोत्तर किसके कितना अधिक स्थितिबन्ध होता है; इन तीन का उत्तर अल्पबहुत्व की प्रक्रिया द्वारा **स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा** नामक पहले अनुयोगद्वार में दिया गया है।

निषेक-प्ररूपणा का विचार दो अनुयोगों के द्वारा किया गया है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधा के द्वारा यह बतलाया गया है कि आयुकर्म के सिवाय शेष सात कर्मों का जितना स्थितिबन्ध होता है, उसमें से आबाधा के काल को कम करके जो स्थिति शेष रहती है उसके प्रथम समय में सबसे अधिक कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं और इसके आगे द्वितीयादि समयों में क्रम से उत्तरोत्तर एक-एक चयहीन कर्मपरमाणुओं का निक्षेप होता है। इस प्रकार विवक्षित समय में जिस कर्म के जितने कर्म-परमाणुओं का बन्ध होता है, उनका उक्त प्रकार से विभाग हो जाता है। पर आयु कर्म की अबाधा स्थितिबन्ध में सम्मिलित नहीं है, इसलिए इसको प्राप्त कर्मद्रव्य का विभाग आयुकर्म के स्थितिबन्ध के सब समयों में होता है।

किस कर्म की कितनी आबाधा होती है, इस बात का भी यहाँ संकेत किया है। यहाँ जो कुछ बतलाया है, उसका भाव यह है कि एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति की सौ वर्ष प्रमाण अबाधा होती है। इस हिसाब से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर होने से इनकी उत्कृष्ट अबाधा तीन हजार वर्ष प्राप्त होती है; मोहनीय का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होने से इसकी उत्कृष्ट अबाधा सात हजार वर्ष प्राप्त होती है और नाम व गोत्र कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर होने से इनकी उत्कृष्ट अबाधा दो हजार वर्ष प्राप्त होती है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होने पर जो अबाधा प्राप्त होती है उसकी अपेक्षा जानना चाहिए। शेष तेरह जीवसमासों में सात कर्मों में से जिसके जिस कर्म का जितना उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उसे ध्यान में रखकर अबाधा जाननी चाहिए। वह कितनी होती है, इसका निर्देश करते हुए यह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाई है। कारण कि अन्तःकोड़ाकोड़ी के भीतर जितना भी स्थितिबन्ध होता है, उस सबकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त होती है ऐसा नियम है।

मात्र आयुकर्म की आबाधा का विचार दूसरे प्रकार से किया गया है। यहाँ मूल प्रकृति स्थिविबन्ध का प्रकरण होने से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के आयुकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर कहकर उसकी अबाधा एक पूर्वकोटि का त्रिभाग प्रमाण कहा गया है। यह तो सुविदित है कि आयुकर्म का तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मनुष्य और तिर्यंच के ही होता है। किन्तु यहाँ आबाधा एक पूर्वकोटि का त्रिभाग कहने का कारण क्या है, यह विचारणीय है।

जीवट्ठाण के चूलिका अनुयोगद्वार की छठी और सातवीं चूलिका में क्रम से उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्ध का निर्देश किया है। वहाँ छठी चूलिका के सूत्र क्रमांक २३ **'पुव्वकोडितिभागो आबाधा'** व्याख्या करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं—

'पुव्वकोडितिभागमादिं काऊण जाव आसंखेपद्धा त्ति। जदि एदे आबाधावियप्पा आउअस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वणिसेयट्ठिदीसु होंति तो पुव्वकोडितिभागो चेव उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए किमट्ठं उच्चदे? ण; उक्कस्साबाधाए विणा उक्कस्सणिसेयट्ठिदीए चेव उक्कस्साबाधाउत्तादो।'

आशय यह है कि यहाँ पर सूत्र में नरकायु और देवायु की उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि का त्रिभाग प्रमाण कही है। उससे पूर्वकोटि के त्रिभाग से लेकर आसंक्षेपाद्धा काल तक जितने अबाधा के विकल्प होते हैं, उन सबका ग्रहण होता है। इस पर प्रश्न यह होता है कि यदि आबाधा के ये सब विकल्प आयुकर्म की सब निषेक स्थितियों में होते हैं, तो उत्कृष्ट निषेक स्थिति की उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि का त्रिभाग प्रमाण ही किसलिए कहते हैं? इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि उत्कृष्ट आबाधा का कथन किये बिना उत्कृष्ट निषेक स्थितिमात्र से उत्कृष्ट कर्मस्थिति नहीं प्राप्त होती है। यह बात बतलाने के लिए यहाँ उत्कृष्ट आबाधा कही है।

वीरसेन स्वामी के इस कथन का यह अभिप्राय है कि यद्यपि उत्कृष्ट आयु का बन्ध केवल उत्कृष्ट त्रिभाग में ही नहीं होता; वह उत्कृष्ट त्रिभाग से लेकर आसंक्षेपाद्धा काल के भीतर आये बन्ध के योग्य काल में कभी भी हो सकता है, पर यहाँ उत्कृष्ट कर्मस्थिति दिखलाने के लिए केवल उत्कृष्ट आबाधा कही है।

स्थिति दो प्रकार की होती है—कर्मस्थिति और निषेकस्थिति। आयु कर्म की उत्कृष्ट निषेकस्थिति तेतीस सागर प्रमाण है और कर्मस्थिति पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर प्रमाण है। यहाँ इसी कर्मस्थिति का ज्ञान कराने के लिए उत्कृष्ट आबाधा कही है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

श्वेताम्बर 'कर्मप्रकृति' में चारों आयुओं के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का निर्देश करते समय उसका इस प्रकार निर्देश किया है—

'तेत्तीसुदही सुरनारयाउ सेसाउ पल्लतिगं ॥' (कर्मप्रकृति बन्धनकरण, गाथा ७३)

अर्थात् देवायु और नरकायु का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर प्रमाण होता है।

किन्तु इसकी टीका में **'पूर्वकोटित्रिभागाभ्यधिकानीति शेषः'** यह वाक्य आया है। सो इस कथन से भी वीरसेन स्वामी के कथन की ही पुष्टि होती है। अर्थात् आयुकर्म की उत्कृष्ट निषेक स्थिति तेतीस सागर प्रमाण होती है। और उत्कृष्ट कर्म स्थिति पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर प्रमाण होती है।

यद्यपि 'महाबन्ध' में आगे भुजगार बन्ध का निरूपण करते समय आयुकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट त्रिभाग के प्रथम समय में कहकर आगे अल्पतर बन्ध का ही निर्देश किया है। अब यदि वहाँ निषेक स्थिति का ग्रहण करते हैं तो पूर्वोक्त कथन के साथ बाधा आती है, इसलिए वीरसेन स्वामी के अभिप्राय को ध्यान में रखकर वहाँ कर्मस्थिति का ही ग्रहण करना चाहिए और इस प्रकार 'महाबन्ध' के पूरे कथन की सार्थकता भी हो जाती है तथा यह भी ज्ञात हो जाता है कि आयुकर्म का उत्कृष्ट निषेकस्थितिबन्ध केवल उत्कृष्ट त्रिभाग में ही नहीं होकर आयुबन्ध के योग्य किसी काल में भी हो सकता है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि यदि मूल में आयुकर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आबाधा सहित लिखा गया है, तो केवल तेतीस सागर प्रमाण न कहकर पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर प्रमाण कहना चाहिए था। किन्तु मूल में ऐसा न कहकर केवल तेंतीस सागर प्रमाण ही कहा है, इसमें आबाधा काल को सम्मिलित नहीं किया गया है सो इसका क्या कारण है?

वीरसेन स्वामी के सामने भी यह प्रश्न था। उन्होंने जीवस्थान-चूलिका में इस प्रश्न का समाधान किया है। वे कहते हैं कि आयुकर्म के स्थितिबन्ध में निषेक और आबाधा अन्योन्याश्रित नहीं हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए निषेकस्थिति के साथ आबाधा का निर्देश नहीं किया है। आशय यह है कि जिस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों की निषेकस्थिति और आबाधा का अन्योन्य सम्बन्ध है। अर्थात् यदि ज्ञानावरण का तीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, तो उसकी आबाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण ही होगी और एक आबाधाकाण्डक न्यून उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, तो एक समय कम तीन हजार वर्ष प्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट आबाधा होगी, इस प्रकार जैसे यहाँ निषेकस्थिति और आबाधा का परस्पर सम्बन्ध है और इसलिए इन दोनों का संयुक्त निर्देश किया जाता है, उस प्रकार आयुकर्म की निषेकस्थिति के साथ आबाधा का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु कितनी ही आबाधा के रहने पर कितना ही निषेकस्थितिबन्ध हो सकता है। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्म के प्रकरण में निषेकस्थिति और आबाधा का संयुक्त विवेचन नहीं किया गया है।

यहाँ प्रकरण प्राप्त होने से एक बात का और निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। जीवस्थान-चूलिका में इसी आयु के प्रकरण में आबाधा का निर्देश करने के अनन्तर सर्वत्र 'आबाधा' यह स्वतन्त्र सूत्र आता है।

इस प्रसंग से वीरसेन स्वामी ने जो कुछ कहा है, उसका भाव यह है कि जिस प्रकार ज्ञानावरणादि के समयप्रबद्धों में बन्धावलि के बाद अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण रूप से बाधा दिखाई देती है, उस प्रकार आयुकर्म के निषेकों में अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण रूप से बाधा नहीं होती, यह दिखलाने के लिए दूसरी बार 'आबाधा' इस सूत्र की रचना की है।

प्रश्न यह है कि क्या आयुकर्म में अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण आदि नहीं होते। यदि होते हैं, तो यहाँ इनका निषेध क्यों किया गया है? और इस दृष्टि से बाधा रहित क्यों कहा है? समाधान यह है कि आयुकर्म की आबाधा शेष भुज्यमान आयु प्रमाण मानी गयी है। नियम यह है कि एक आयु का दूसरी आयु में संक्रमण नहीं होता। यहाँ भुज्यमान आयु अन्य है और बद्ध्यमान आयु अन्य है। मान लो कोई एक जीव मनुष्यायु का भोग कर रहा है और उसने पुनः मनुष्यायु का ही बन्ध किया है, तो भी ये एक आयु नहीं ठहरतीं और इसलिए बद्ध्यमान आयु का न तो भुज्यमान आयु में अपकर्षण होता है और न भुज्यमान आयु का बद्ध्यमान आयु में संक्रमण होता है। यही कारण है कि यहाँ आबाधा के भीतर निषेकस्थिति को बाधा रहित बतलाने के लिए 'आबाधा' इस सूत्र की स्वतन्त्र रचना की है। कदलीघात आदि से बद्ध्यमान आयु की आबाधा न्यून हो जाय, यह स्वतन्त्र बात है; पर बद्ध्यमान आयु के द्वारा अपकर्षण होकर और भुज्यमान आयु के द्वारा संक्रमण होकर वह न्यून नहीं हो सकती; यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

अनन्तरोपनिधा का विचार करने के बाद परम्परोपनिधा का विचार आता है। यहाँ बतलाया है कि प्रथम निषेक से आगे पल्य के असंख्यातवें भाग-प्रमाण स्थान जाने पर प्रथम निषेक में जितने कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं, उनसे वे आधे रह जाते हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थिति के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर पल्य के असंख्यातवें भाग-प्रमाण स्थान जाने पर वे आधे-आधे रहते जाते हैं। प्रत्येक गुणा-हानि के प्रति चय का प्रमाण आधा-आधा होता जाता है, इसलिए इस व्यवस्था के घटित हो जाने में कोई बाधा नहीं आती। मात्र कर्मस्थिति में से आबाधा काल को न्यून करके जो स्थिति शेष रहती है, उसमें यथासम्भव पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण नाना द्विगुणहानियाँ होती हैं, इसलिए यहाँ एक द्विगुणहानि का प्रमाण लाने के लिए पल्यके असंख्यातवें भाग से भाजित किया गया है।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सर्वाधिक है, इसलिए उसमें सबसे अधिक नाना द्विगुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं। शेष कर्मों में जिनकी जितनी न्यून स्थिति है, उनमें उसी अनुपात से वे न्यून उपलब्ध होती हैं। सब कर्मों की सब जीवसमासों में निषेक रचना का यही क्रम है।

'आबाधाकाण्डक' का विचार करते हुए बतलाया है कि उत्कृष्ट स्थिति से पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर इन सब स्थितिविकल्पों का एक आबाधाकाण्डक करता है। अर्थात् इतने स्थितिविकल्पों की उत्कृष्ट आबाधा होती है। इसके बाद इतने ही स्थितिविकल्पों की एक समय कम आबाधा होती है। इस प्रकार जघन्य स्थिति के प्राप्त होने तक आबाधा ले आनी चाहिए। यहाँ जितने स्थितिविकल्पों की एक आबाधा होती है, उसकी एक आबाधाकाण्डक संज्ञा है। इसे लाने का क्रम यह है कि उत्कृष्ट आबाधा का भाग आबाधा न्यून उत्कृष्ट स्थिति में देने पर एक आबाधाकाण्डक का प्रमाण आता है। सब जीवसमासों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आबाधाकाण्डक का प्रमाण इसी विधि से प्राप्त कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्म में यह नियम लागू नहीं होता, क्योंकि वहाँ स्थितिबन्ध के अनुपात से आबाधा नहीं प्राप्त होती।

प्रश्न यह है कि जहाँ सागरों प्रमाण स्थितिबन्ध होता है, वहाँ तो इस अनुपात से आबाधाकाण्डक की उपलब्धि हो जाती है, पर जहाँ अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर की आबाधा भी अन्तुर्मुहूर्त कही है और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिबन्ध की आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त कही है, वहाँ इस अनुपात से व्यवस्था कैसे बन सकती है?

यह प्रश्न वीरसेन स्वामी के सामने भी था। उन्होंने जीवस्थान-चूलिका में इस प्रश्न का समाधान किया है। वे लिखते हैं कि न्यून या जघन्य स्थितिबन्ध में आबाधाकाण्डक की जाति इससे भिन्न होती है, इसलिए वहाँ जो आबाधाकाण्डक हो उसका भाग देकर आबाधा ले आनी चाहिए। सब प्रकार के स्थितिबन्धों में आबाधाकाण्डक एक समान नहीं होता, किन्तु जहाँ संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध होता है वहाँ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा से विवक्षित स्थिति के भाजित करने पर संख्यात समय मात्र आबाधा काण्डक उपलब्ध होता है।

चौथे प्रकरण का नाम 'अल्पबहुत्व' है। इसमें सब जीवसमासों में जघन्य आबाधा, आबाधास्थान, आबाधाकाण्डक, उत्कृष्ट आबाधा, नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर, एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर, जघन्य स्थितिबन्ध, स्थितिबन्धस्थान और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इन सबके अल्पबहुत्व का निर्देश किया गया है।

अल्पबहुत्व का विवेचन करने पर स्थितिबन्ध का सामान्य विवेचन पूरा होता है।

आगे पूर्व के विवेचन को अर्थपद मानकर निम्न अधिकारों द्वारा मूलप्रकृति-स्थितिबन्ध के विचार करने की सूचना की गयी है। वे अधिकार ये हैं—अद्धाच्छेद, सर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, स्वामित्व, बन्धकाल, बन्धान्तर, बन्धसन्निकर्ष, नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इसके बाद भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसान-समुदाहार और जीवसमुदाहार इन प्रकरणों द्वारा भी मूलप्रकृति स्थितिबन्ध का विचार किया गया है। भुजगारबन्ध के १३ अनुयोगद्वार पदनिक्षेप के ३ अनुयोगद्वार, वृद्धिबन्ध के १३ अनुयोगद्वार और अध्यवसान-समुदाहार के ३ अनुयोगद्वार हैं। जीवसमुदाहार का अलग से कोई अनुयोगद्वार नहीं हैं।

इन अनुयोगद्वारों के जो नाम हैं, उन्हीं के अनुसार उनमें स्थितिबन्ध के आश्रय से विचार किया गया है। आगे उत्तरप्रकृति स्थितिबन्ध का विचार भी इसी प्रक्रिया से किया गया है। मात्र मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध में आठ मूल प्रकृतियों के आश्रय से विचार किया गया है और उत्तरप्रकृति-स्थितिबन्ध में १२० उत्तरप्रकृतियों के आश्रय से विचार किया गया है। यद्यपि उत्तरप्रकृतियाँ १४८ हैं, पर दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो अबन्ध-प्रकृतियाँ हैं और पाँच बन्धनों व पाँच संघातों का पाँच शरीरों में अन्तर्भाव हो जाता है तथा स्पर्शादिक के अवान्तर बीस भेदों के स्थान में स्पर्शादिक चार का ही ग्रहण किया गया है, इसलिए २८ प्रकृतियाँ कम होकर यहाँ कुल १२० प्रकृतियाँ ही ग्रहण ही गयी हैं।

स्थितिबन्ध के मुख्य भेद चार हैं, यह हम पहले कह आये हैं। स्थितिबन्ध का कारण कषाय है। कहा भी है—**'ट्ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।'**

स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय से होता है।

आगम में कषाय के विविध भेदों की कषायाध्यवसान संज्ञा कही है। ये कषायाध्यवसान स्थान दो प्रकार के होते हैं—संक्लेशरूप और विशुद्धिरूप। इन्हें ही संक्लेशस्थान और विशुद्धिस्थान कहते हैं। असाता के बन्धयोग्य परिणामों की संक्लेश संज्ञा है और साता के बन्धयोग्य परिणामों की विशुद्धि संज्ञा है। ये दोनों प्रकार के परिणाम कषायस्वरूप होकर भी जाति की अपेक्षा अलग-अलग हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' अध्याय सात में साता और असाता के बन्ध के कारणों का निर्देश करते हुए लिखा है—

'दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥
भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने आत्मा में, अन्य की आत्मा में या दोनों में स्थित दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातावेदनीय के आस्रव के कारण हैं। तथा जीवमात्र के प्रति अनुकम्पा, व्रतियों के प्रति अनुकम्पा, दान और सरागसंयम का उचित ध्यान रखना और क्षान्ति व शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

यह उल्लेख परिणामों की जाति का ज्ञान कराने के लिए बहुत ही स्पष्ट है। इससे संक्लेशरूप परिणामों की जाति क्या है और विशुद्ध परिणामों की जाति क्या है, इसका स्पष्टतया बोध होता है। ये दोनों प्रकार के परिणाम एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तक प्रत्येक जीव के छठे गुणस्थान तक होते हैं। सातवें आदि गुणस्थानों में प्रमाद का अभाव हो जाने के कारण मात्र विशुद्ध परिणाम ही होते हैं।

साधारण नियम यह है कि तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु को छोड़कर शेष सब प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है और इनसे विपरीत परिणामों से जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसी अभिप्राय को 'गोम्मटसार' कर्मकाण्ड में इन शब्दों में व्यक्त किया है:–

'सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु॥'

इसलिए प्रश्न होता है कि तीन आयुओं को छोड़कर शेष सब प्रकृतियों का बन्ध जब संक्लेश और विशुद्ध दोनों प्रकार के परिणामों से होता है, तो ऐसी अवस्था में असाता के बन्धयोग्य परिणामों की संक्लेश संज्ञा है और साता के बन्धयोग्य परिणामों की विशुद्धि संज्ञा है, यह लक्षण कैसे सुविचारित कहा जा सकता है? समाधान यह है कि संक्लेश परिणाम भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से अनेक प्रकार के होते हैं और विशुद्ध परिणाम भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें से उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम असातावेदनीय के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के कारण हैं और जघन्य विशुद्ध परिणाम सातावेदनीय के उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के कारण हैं। आगम में जहाँ कहीं प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियों का विभाग किये बिना उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, ऐसा कहा है वहाँ यही अभिप्राय लेना चाहिए। इस विषय को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए यह उल्लेख पर्याप्त है–

'सादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णयं ट्ठिदि बंधंति। तिट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णाणुक्कस्सयं ट्ठिदि बंधंति। विट्ठाणबंधगा जीवा सादावेदणीयस्स उक्कस्सयं ट्ठिदि बंधंति। असाद० विट्ठाणबंधगा जीवा सट्ठाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णयं ट्ठिदि बंधंति। तिट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णमणुक्कस्सयं ट्ठिदि बंधंति। चदुट्ठाणबंधगा जीवा असादस्य चेव उक्कस्सिया ट्ठिदिं बंधंति।'
(महाबन्ध, स्थिति. पृ. २१३)

साता के चतुःस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति का बन्ध करते हैं। त्रिस्थान बन्धक जीव ज्ञानावरण कर्म की अजघन्यानुत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करते हैं। द्विस्थानबन्धक जीव सातावेदनीय की ही उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करते हैं। असाता के द्विस्थानबन्ध जीव स्वस्थान की अपेक्षा ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति का बन्ध करते हैं। त्रिस्थानबन्धकजीव ज्ञानावरण कर्म की अजघन्यानुत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करते हैं। चतुःस्थानबन्धक जीव असाता वेदनीय की ही उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध करते हैं।

इसमें स्पष्टतः गुड़ और खाँड इस द्विःस्थानिक अनुभाग का बन्ध करनेवाले जीवों को तो सातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति का बन्धक कहा है और निम्ब, कांजीर, विष और हलाहल इस चतुःस्थानिक अनुभाग का बन्ध करनेवाले जीवों को असाता वेदनीय की उत्कृष्ट स्थिति का बन्धक कहा है। इससे स्पष्ट है कि सामान्यतः उत्कृष्ट, संक्लिष्ट पद से इन दोनों स्थानों का ग्रहण होता है।

इसी विषय को श्वेताम्बर 'पंचसंगह' में इन शब्दों में व्यक्त किया है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुवपगईबंधंता चउठाणाई सुभाण इयराणं।
दो ठाणगाइ तिविहं सट्ठाणजहण्णगाईसु ॥१०६॥ (बन्धनकरण)

आशय यह है कि ज्ञानावरण आदि ४७ प्रकृतियों का बन्ध करनेवाले जीव सातावेदनीय, देवगति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, तीनों आंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि दस, तीर्थंकर, तिर्यंचायु, देवायु और उच्च गोत्र, इन परावर्तमान चौंतीस शुभ प्रकृतियों के चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक अनुभाग को बाँधते हैं। तथा उन्हीं ध्रुव प्रकृतियों का बन्ध करनेवाले जीव असातावेदनीय, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नरकायु नरकगतिद्विक, तिर्यंचगतिद्विक, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, अन्त के पाँच संस्थान, अन्त के पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि दस और नीचगोत्र, इन परावर्तनान उनतालीस अशुभ प्रकृतियों के द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभाग को बाँधते हैं। यह अनुभाग स्वस्थान में जघन्य स्थितिबन्ध आदि के होने पर बँधता है। श्वेताम्बर 'कर्मप्रकृति' में भी यह विषय इसी प्रकार से निबद्ध किया गया है। किन्तु 'महाबन्ध' के उक्त उल्लेख से इस कथन में अन्तर है। 'महाबन्ध' में विशुद्ध और संक्लेश परिणामों के साथ केवल साता और असाता के अन्वयव्यतिरेक की व्यवस्था की गयी है और यहाँ सब शुभ और अशुभ प्रकृतियों के साथ अन्वयव्यतिरेक की व्यवस्था की गयी है। किन्तु विचार करने पर 'महाबन्ध' की व्यवस्था ही उचित प्रतीत होती है। कारण कि गुणस्थान प्रतिपन्न जीवों में जहाँ केवल विवक्षित अशुभ प्रकृति का बन्ध न होकर उसकी प्रतिपक्षभूत शुभ प्रकृति का ही बन्ध होता है, वहाँ पर संक्लेश और विशुद्ध दोनों प्रकार के परिणामों के सद्भाव में उस प्रकृति का बन्ध सम्भव है। उदाहरणार्थ, चतुर्थ गुणस्थान में मात्र पुरुषवेद का बन्ध होता है। यहाँ यह तो कहा नहीं जा सकता कि इस गुणस्थान में केवल विशुद्ध परिणाम ही होते हैं और यह भी नहीं कहा जा सकता कि यहाँ केवल संक्लेश परिणाम ही होते हैं। परिणाम तो दोनों प्रकार के होते हैं, पर यहाँ स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का बन्ध सम्भव न होने से मात्र पुरुषवेद का ही बन्ध सम्भव है। यदि यह कहा जाय कि उत्कृष्ट स्थिति से क्रम से हानि होते हुए जघन्य स्थिति को बाँधनेवाले जीव के परिणामों की 'विशुद्धि' संज्ञा है और जघन्य स्थिति से क्रम से वृद्धि होते हुए उपरिम स्थितियों को बाँधनेवाले जीव के परिणामों की 'संक्लेश' संज्ञा है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति का बन्ध करानेवाले परिणामों को छोड़कर शेष मध्यम स्थितियों का बन्ध करानेवाले सब परिणाम संक्लेश और विशुद्धि उभयरूप प्राप्त होते हैं। परन्तु ऐसा मानना उचित नहीं है; क्योंकि एक ही परिणाम संक्लेश और विशुद्धि उभयरूप नहीं हो सकता है। इसलिए साता और असाता के बन्ध के साथ इन परिणामों की जिस प्रकार व्याप्ति घटित होती है, उस प्रकार अन्य प्रकृतियों के बन्ध के साथ नहीं है। यही कारण है कि 'महाबन्ध' में सब संसारी जीवों को दो भागों में विभक्त कर दिया है—साताबन्धक और असाताबन्धक। साताबन्धक जीव तीन प्रकार के हैं--चतुःस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और द्विस्थानबन्धक। इसी प्रकार असाताबन्धक जीव भी तीन प्रकार के हैं—द्विस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और चतुःस्थानबन्धक। इनमें जो साता के चतुःस्थानबन्धक जीव होते हैं वे सर्वविशुद्ध होते हैं, जो त्रिस्थानबन्धक जीव होते हैं वे संक्लिष्टतर होते हैं और जो द्विस्थानबन्धक जीव होते हैं वे इनसे भी संक्लिष्टतर होते हैं। इसी प्रकार जो असाता के द्विस्थानबन्धक जीव होते हैं वे सर्वविशुद्ध होते हैं, जो त्रिस्थानबन्धक जीव होते हैं वे संक्लिष्टतर होते हैं और जो चतुःस्थानबन्धक जीव होते हैं वे इनसे भी संक्लिष्टतर होते हैं।

यहाँ साता के चतुःस्थानबन्धक जीव को और असाता के द्विस्थानबन्धक जीव को सर्वविशुद्ध और शेष सबको संक्लिष्टतर कहा गया है। इस प्रकार संक्लेशरूप और विशुद्धिरूप परिणामों में भेद होकर भी उनका उल्लेख स्थितिबन्ध के अनुसार सर्वविशुद्ध और संक्लिष्टतर इन्हीं शब्दों के द्वारा किया जाता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए जहाँ जिस पद से जो विशेष अर्थ लिया गया हो, वहाँ उसे जानकर ही उसका ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ प्रसंग से एक बात और कह देनी है। वह यह कि पाँच ज्ञानावरण आदि ४७ प्रकृतियों का बन्ध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्ति होने तक संक्लेशरूप और विशुद्धिरूप दोनों प्रकार के परिणामों से सदा काल होता रहता है, इसलिए उन्हें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कहा गया है। वे सैंतालीस प्रकृतियाँ ये हैं—

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णाओ।
सत्तेतालधुवाणं चधुदा सेसाणयं तु दुधा ॥१२४॥ (गोम्मटसार, कर्मकाण्ड)

मोहनीय के विना तीन घातिक कर्मों की १६ प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भयद्विक, तैजसद्विक, अगुरुलघुद्विक, निर्माण और वर्णचतुष्क ये ४७ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं।

इस प्रकार यहाँ हमने 'महाबन्ध' के प्रस्तुत भाग का सामान्य परिचय कराते हुए कुछ विशेष विषयों की ही पर्यालोचना की है। शेष विषयों का यथास्थान विशेष ऊहापोह मूल में किया ही है। यहाँ हमने पुनरुक्ति दोष के भय से पुनः उनकी पर्यालोचना नहीं की है।

प्रस्तुत मुद्रित भाग में मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध का और उत्तरप्रकृतिबन्ध के एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगमतक के विषय का समावेश ही किया गया है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१
स्थितिबन्धके भेद	१
मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध	**१-२१८**
मूलप्रकृति स्थितिबन्धके चार अनुयोगद्वार	१-१६
१ **स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा**	२-५
स्थितिबन्ध स्थान	२
संक्लेश विशुद्धिस्थान	३
स्थितिबन्ध अल्पबहुत्व	४-५
२ **निषेक प्ररूपणा**	६-११
निषेकप्ररूपणाके दो अनुयोगद्वार	६
अनन्तरोपनिधा	६-११
परम्परोपनिधा	११-१२
३ **आबाधाकाण्डकप्ररूपणा**	**१२-१३**
४ **अल्पबहुत्वप्ररूपणा**	१३-१६
मूलप्रकृति स्थितिबन्धके २४ आदि शेष अनुयोगद्वारोंकी सूचना	१६
२४ अनुयोगद्वार	**१६-१४४**
१ **अद्धाच्छेदप्ररूपणा**	१७-२९
अद्धाच्छेदके भेद	१७
उत्कृष्ट अद्धाच्छेद	१७-२३
जघन्य ,,	२३-२६
२-३ **सर्व-नोसर्वबन्धप्र०**	३०
४-५ **उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्धप्र०**	३०-३१
६-७ **जघन्य-अजघन्यबन्धप्र०**	३१
८-११ **सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव०**	३१-३२
१२ **स्वामित्वप्ररूपणा**	३२-४६
स्वामित्वके दो भेद	३२
उत्कृष्ट स्वामित्व	३२-४०
जघन्य स्वामित्व	४०-४६
१३ **बन्धकालप्ररूपणा**	४७-५८
बन्धकालके दो भेद	४७
उत्कृष्ट बन्धकाल	४७-५३
जघन्य बन्धकाल	५३-५८
१४ **अन्तरप्ररूपणा**	५६-७७
बन्धान्तरके दो भेद	५६
उत्कृष्ट बन्धान्तर	५६-६६
जघन्य बन्धान्तर	६६-७७
१५ **बन्धसन्निकर्ष**	७७-८३
बन्धसन्निकर्षके दो भेद	७७
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	७७-८०
जघन्य सन्निकर्ष	८०-८३
१६ **नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय**	८३-८७
भङ्ग विचयके दो भेद	८३
उत्कृष्ट भङ्गविचय	८३-८६
जघन्य भङ्गविचय	८६-८७
१७ **भागाभागप्ररूपणा**	८८-९१
भागाभागके दो भेद	८८
उत्कृष्ट भागाभाग	८८-९०
जघन्य भागाभाग	९०-९१
१८ **परिमाणप्ररूपणा**	९१-९५
परिमाणके दो भेद	९१
उत्कृष्ट परिमाण	९१-९३
जघन्य परिमाण	९३-९५
१९ **क्षेत्रप्ररूपणा**	९६-१०१
क्षेत्रके दो भेद	९६
उत्कृष्ट क्षेत्र	९६-९९
जघन्य क्षेत्र	९९-१०१
२० **स्पर्शनप्ररूपणा**	**१०१-११०**
स्पर्शनके दो भेद	१०१
उत्कृष्ट स्पर्शन	१०१-१०८
जघन्य स्पर्शन	१०८-११०
२१ **कालप्ररूपणा**	११०-११८
कालके दो भेद	११०
उत्कृष्ट काल	११०-११५
जघन्य काल	११५-११८
२२ **अन्तर प्ररूपणा**	११८-१२५
अन्तरके दो भेद	११८
उत्कृष्ट अन्तर	११८-१२२
जघन्य अन्तर	१२२-१२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
२३ **भावप्ररूपणा**	**१२५–१२६**
भावके दो भेद	१२५
उत्कृष्ट भाव	१२५
जघन्य भाव	१२६
२४ **अल्पबहुत्व**	**१२६–१४४**
अल्पबहुत्वके दो भेद	१२६
जीव अल्पबहुत्व	१२६–१३१
जीवअल्पबहुत्वके तीन भेद	१२६
उत्कृष्ट जीव अल्पबहुत्व	१२६–१२७
जघन्य जीव अल्पबहुत्व	१२७
जघन्योत्कृष्ट जीव अल्पबहुत्व	१२७–१३१
स्थिति अल्पबहुत्व	१३१–१३३
स्थिति अल्पबहुत्वके तीन भेद	१३१
उत्कृष्ट स्थिति अल्पबहुत्व	१३१
जघन्य स्थिति अल्पबहुत्व	१३१
जघन्योत्कृष्ट स्थिति अल्पबहुत्व	१३१–१३३
भूयःस्थिति अल्पबहुत्व	१३३
भूयःस्थिति अल्पबहुत्वके दो भेद	१३३
स्वस्थान अल्पबहुत्व	१३३
परस्थान अल्पबहुत्व	१३३–१४४
परस्थान अल्पबहुत्वके तीन भेद	१३३
उत्कृष्ट परस्थान अल्पबहुत्व	१३४–१३६
जघन्य परस्थान अल्पबहुत्व	१३६–१३८
जघन्योत्कृष्ट परस्थान अल्पबहुत्व	१३८–१४४
भुजगारबन्ध	**१४५–१७५**
भुजगारबन्धके १३ अनुयोगद्वार	१४५
समुत्कीर्तनानुगम	१४५–१४७
स्वामित्वानुगम	१४७–१४८
कालानुगम	१४८–१५१
अन्तरानुगम	१५१–१५७
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग विचयानुगम	१५७–१५६
भागाभागानुगम	१५६–१६०
परिमाणानुगम	१६१–१६२
क्षेत्रानुगम	१६२–१६३
स्पर्शनानुगम	१६३–१६६
कालानुगम	१६६–१६६
अन्तरानुगम	१६६–१७२
भावानुगम	१७५
अल्पबहुत्वानुगम	१७३–१७१
पदनिक्षेप	**१७५–१८५**
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वार	१७६
समुत्कीर्तना	१७५–१७२
स्वामित्व	१७६–१७६
स्वामित्वके दो भेद	१७६
उत्कृष्ट स्वामित्व	१७६–१७६
जघन्य स्वामित्व	१७६
अल्पबहुत्व	१८०–१८१
अल्पबहुत्वके दो भेद	१८०
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१८०–१८१
जघन्य अल्पबहुत्व	१८१
वृद्धिबन्ध	**१८२–२०८**
वृद्धिबन्धके १३ अनुयोगद्वार	१८२
समुत्कीर्तना	१८२–१८४
स्वामित्वानुगम	१८४–१८७
काल	१८७–१८८
अन्तर	१८८–१६४
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	१६५
भागाभाग	१६५
परिमाण	१६६–१६७
क्षेत्र	१६७–१६८
स्पर्शन	१६८–२०१
काल	२०१–२०२
अन्तर	२०२–२०३
भाव	२०३
अल्पबहुत्व	२०३–२०८
अध्यवसान समुदाहार	**२०८**
अध्यवसान समुदाहारके तीन भेद	२०८
१ प्रकृतिसमुदाहार	२०६
प्रकृतिसमुदाहारके दो भेद	२०६
प्रमाणानुगम	२०६
अल्पबहुत्व	२०६
२ स्थितिसमुदाहार	२०६
स्थितिसमुदाहारके तीन भेद	२०६
प्रमाणानुगम	२०६–२१०
श्रेणिप्ररूपणा व उसके दो भेद	२१०–२११
अनन्तरोपनिधा	२१०
परम्परोपनिधा	२१०–२११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	विषय	पृष्ठ
	अनुकृष्टि	२११
३	तीव्रमन्दता	२११–२१२
	जीवसमुदाहार	**२१२**
	जीवोंके दो भेद	२१२
	सातबन्धक जीवोंके तीन भेद	२१२
	असातबन्धक जीवोंके तीन भेद	२१२
	उक्त जीवोंकी स्थितिबन्ध व्यवस्था	२१२–२१३
	इनकी प्ररूपणा सम्बन्धी दो अनुयोगद्वार प्रतिज्ञा	२१३
	अनन्तरोपनिधा	२१३–२१४
	परम्परोपनिधा	२१५–२१६
	साता और असाताके अनाकार और साकार प्रायोग्य स्थान	२१६
	यवमध्यमें अल्पबहुत्व	२१६–२१७
	पूर्वोक्त अर्थपदके अनुसार सातबन्धक और असातबन्धक जीवोंका अल्पबहुत्व	२१८
	उत्तर प्रकृति स्थितिबन्ध	**२२१–४३६**
	उत्तर प्रकृति स्थितिबन्धके चार अनुयोगद्वार	२२१–२३०
१	**स्थितिबंधस्थान प्ररूपणा**	**२२१–२२८**
	स्थितिबन्ध स्थान	२२१–२२३
	संक्लेशविशुद्धिस्थान	२२३–२२४
	अल्पबहुत्व	२२४–२२८
२	**निषेक प्ररूपणा**	**२२८–२२९**
	निषेक प्ररूपणाके दो अनुयोगद्वार	२२८
	अनन्तरोपनिधा	२२८
	परम्परोपनिधा	२२९
३	**आबाधाकाण्डकप्ररूपणा**	**२२९**
४	**अल्पबहुत्वप्ररूपणा**	**२३०**
	उत्तर प्रकृति स्थितिबन्धके २४ आदि शेष अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२३१
२४	**अनुयोगद्वार**	**२३१**
१	**अद्धाच्छेद**	**२३१–२५२**
	अद्धाच्छेदके दो भेद	२३१
	उत्कृष्ट अद्धाच्छेद	२३१–२४२
	जघन्य अद्धाच्छेद	२४२–२५२
२-३	**सर्व-नोसर्वबन्ध**	**२५२–२५३**
४-५	**उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्ध**	**२५३**
६-७	**जघन्य-अजघन्यबन्ध**	**२५३**
११	**सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्ध**	**२५४**
१२	**स्वामित्व प्ररूपणा**	**२५५–३१३**
	स्वामित्वके दो भेद	२५५
	उत्कृष्ट स्वामित्व	२५५–२८५
	जघन्य स्वामित्व	२८५–३१३
१३	**बन्धकाल प्ररूपणा**	**३१४–३६५**
	बन्धकालके दो भेद	३१४
	उत्कृष्ट बन्धकाल	३१४–३४३
	जघन्य बन्धकाल	३४४–३६५
१४	**अन्तरकाल प्ररूपणा**	**३६५–४३९**
	अन्तरके दो भेद	३६५
	उत्कृष्ट अन्तरकाल	३६५–३९९
	जघन्य अन्तरकाल	४००–४३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत विवरण

१	पंच सं०	पञ्चसंग्रह
२	गा०	गाथा
३	गो० क०	गोम्मटसार कर्मकाण्ड
४	मूलप्रति एवं आदर्शप्रति	मूल मेनुस्क्रिप्ट जिसके आधारसे अनुवाद और सम्पादन हुआ है
५	जीव० चू०	जीवस्थान चूलिका
६	ध० पु०	धवला पुस्तक
७	तत्त्वा०	तत्त्वार्थ सूत्र
८	बंधन क०	बन्धनकरण
९	मुद्रित प्रति	ज्ञानपीठसे प्रकाशित प्रकृतिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

बिदियो ट्ठिदिबंधाहियारो

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

१. एत्तो ट्ठिदिबंधो दुविधो—मूलपगदिट्ठिदिबंधो चेव उत्तरपगदिट्ठिदिबंधो चेव। एत्तो मूलपगदिट्ठिदिबंधो पुव्वं गमणिज्जं। तत्थ इमाणि चत्तारि[1] अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जधा—ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आबाधाकंडयपरूवणा अप्पाबहुगे त्ति।

सब अरिहन्तोंको नमस्कार हो, सब सिद्धोंको नमस्कार हो, सब आचार्योंको नमस्कार हो, सब उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकमें साधुओंको नमस्कार हो ॥१॥

१. आगे स्थितिबन्धका विचार करते हैं। वह दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध और उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध। आगे मूलप्रकृतिस्थितिबन्धका पहले विचार करते हैं। उसके ये चार अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। यथा—स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधाकाण्डकप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

विशेषार्थ—राग, द्वेष और मोहके निमित्तसे आत्माके साथ जो कर्म सम्बन्धको प्राप्त होते हैं उनके अवस्थान कालको स्थिति कहते हैं। कर्मबन्धके समय जिस कर्मकी जो स्थिति प्राप्त होती है, उसका नाम स्थितिबन्ध है। वह ज्ञानावरण आदि मूलप्रकृति और मतिज्ञानावरण आदि उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे दो प्रकारका है। इस अनुयोगद्वारमें इन्हीं दो प्रकारके स्थितिबन्धोंका विविध प्रकरणों द्वारा विस्तारके साथ विचार किया गया है। सर्व प्रथम मूलप्रकृतिस्थितिबंधका विचार किया गया है और तदनन्तर उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धका विचार किया गया है। मूलप्रकृतिस्थितिबन्धका विचार करते हुए मुख्य रूपसे उसका चार अनुयोगद्वारोंके द्वारा विचार किया गया है। उपअनुयोगद्वार अनेक हैं। चार अनुयोगद्वारोंके नाम मूलमें ही दिये हैं। जिसमें स्थितिबन्धके स्थानोंका विचार किया जाता है वह स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा है। यहाँ स्थितिबन्धस्थान पदसे प्रत्येक कर्मके जघन्य स्थितिबंधस्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबंधस्थानतकके कुल विकल्प

---

1. पंचसं०, बंधक०, गा० ९९-१००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा

२. ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वत्थोवा[1] सुहुमस्स अपज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि। बादरस्स अपज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। सुहुमस्स पज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। बादरस्स पज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। बेइंदियअपज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्तस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। तेइंदि० अपज्ज० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगुणाणि। चदुरिंदियअपज्ज० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगुणाणि। पंचिंदिय-असण्णिअपज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखे०गु०। तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदि बंध० संखे०गु०। पंचिंदिय-सण्णि-अपज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखे० गु०। तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगुणाणि।

परिगृहीत किये गये हैं। एक समयमें बद्ध कर्मोंका उस समय प्राप्त स्थितिमें जिस क्रमसे निक्षेप होता है, उसकी निषेकरचना संज्ञा है। इसका विचार करनेवाली प्ररूपणाका नाम निषेकप्ररूपणा है। बँधनेवाले कर्म स्वभावतः या अपकर्षण आदिके निमित्तसे जितने काल बाद फल देनेमें समर्थ होते हैं, उस कालका नाम आबाधाकाल है और जितने स्थितिविकल्पोंके प्रति एक एक आबाधाकाल प्राप्त होता है उतने स्थितिविकल्पोंकी एक आबाधा होनेसे उसकी आबाधाकांडक संज्ञा है। इसका विचार जिस प्रकरण द्वारा किया जाता है उसे आबाधाकांडकप्ररूपणा कहते हैं। अल्पबहुत्व पदका अर्थ स्पष्ट ही है। इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिबंधकी प्ररूपणा चार प्रकारकी होती है।

स्थितिबंधस्थानप्ररूपणा

२. अब सर्वप्रथम स्थितिबंधस्थानप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तके स्थितिबंधस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे बादर अपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे सूक्ष्मपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे बादर पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे त्रींद्रिय अपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिंद्रिय अपर्याप्तकके स्थिति बंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिंद्रिय पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय असंज्ञी पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय संज्ञी अपर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं और इनसे पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितिबंधस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यहाँ किसके कितने गुणे स्थितिबन्धस्थान होते हैं; इसका विचार चौदह जीवसमासोंके द्वारा किया गया है। सामान्यसे एकेन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागर और जघन्य पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग कम एक सागर होता है। द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पच्चीस सागर और जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम पच्चीस सागर होता है। त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास सागर

---

1. गो० क०, गा० १४८, १४९, १५०। पंचसं०, द्वार ५, गा० ५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सव्वत्थोवा सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तस्स संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि[1]। बादरेइंदिय-अपज्जत्त-संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। सुहुमेइंदिय-पज्जत्तसंकिलेस-विसोधिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। बादरेइंदिय-पज्जत्त० संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। बेइंदिय० अपज्ज० संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। तस्सेव पज्जत्त० संकिलेस-विसोधिट्ठाणाणि असंखे०गु०। तेइंदिय-अपज्ज० संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि असंखे गु०। तस्सेव पज्जत० संकिलेसविसोहिट्ठाणाणि असंखे० गु०। चतुरिंदि० अपज्ज० संकिलेसविसोधिट्ठाणाणि असंखे० गु०। तस्सेव पज्जत्त० संकिलेसविसो० असंखे०गु०। पंचिंदियअसण्णि-अपज्ज० संकिलेसविसोधि० असंखे०गु०। तस्सेव पज्जत्त० संकिलेसविसोधि० असंखेज्जगु०। पंचिंदिय० सण्णि० अपज्ज० संकिलेसविसोधि० असंखेज्जगु०। तस्सेव पज्ज० संकिलेसविसोधि० असं० गु०।

और जघन्य स्थितिबंध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम पचास सागर होता है। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेंद्रियके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबंध क्रमसे सौ और एक हजार सागर तथा जघन्य स्थितिबंध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है। इस हिसाबसे विचार करने पर एकेंद्रियके कुल स्थितिबंधविकल्प पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण और द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेंद्रिय तक प्रत्येकके पल्यके संख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होते हैं। यहाँ एकेंद्रियके चार और द्वीन्द्रिय आदि प्रत्येकके दो-दो भेद करके स्थिति स्थानोंका अल्पबहुत्व बतलाया गया है। यह तो स्पष्ट है कि एकेंद्रियोंके चारों भेदोंमें प्रत्येकके स्थितिबंध विकल्प पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, पर उनका अल्पबहुत्व किस क्रमसे है, यही यहाँ बतलाया गया है। द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञीतक प्रत्येकके दो-दो भेदोंमें स्थितिबंधविकल्प पल्यके संख्यातवें भाग प्रमाण हैं, पर एकेन्द्रियके स्थितिबंधविकल्पोंसे वे कितने गुणे हैं और परस्परमें किस क्रमसे कितने गुणे हैं, यह भी यहाँ बतलाया गया है। पल्यके असंख्यातवें भागसे पल्यका संख्यातवाँ भाग असंख्यातगुणा होता है। इसीसे बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके स्थितिबंधस्थानोंसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तके स्थितिबंधस्थान असंख्यातगुणे कहे हैं। शेष कथन सुगम है।

३. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके संक्लेशविशुद्धिस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे चतुरिन्द्रियपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं और इनसे पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्तके संक्लेशविशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं।

१. पंचसं०, द्वार ५, गा० ५६ टीका म०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. सव्वत्थोवा[1] संजदस्स जहएणओ ट्ठिदिबंधो। बादरएइंदिय-पज्जत्तस्स जहएणओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। सुहुम-एइंदिय-पज्जत्तस्स जहएणओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। बादर-एइंदिय-अपज्ज० जहएण० ट्ठिदिबं० विसे०। सुहुमेइंदिय-अपज्जत्तस्स जह० ट्ठिदिबं० विसे०। तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। बादरएइंदि० अपज्ज० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। सुहुमएइंदि० पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। बादर एइंदि० पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। बेइंदि० पज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० संखेगु०। तस्सेव अपज्ज० जह० ट्ठिदिबं० विसे०। तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। तस्सेव पज्ज० उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। तेइंदि० पज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० विसे०। तस्सेव अपज्ज० जह० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदि० विसे०। चदुरिंदिय-पज्जत्त० जह० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव अपज्जत्त० जह० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदि विसे०। पंचिंदिय-असरिएण-पज्जत्त० जह० ट्ठिदि० संखे० गु०। तस्सेव अपज्ज० जह० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदि० विसे०। तस्सेव पज्ज० उक्क०

विशेषार्थ—ज्ञानावरण आदि कर्मोंके बन्ध योग्य परिणामोंकी संक्लेशविशुद्धिस्थान संज्ञा है। इनमेंसे जो साताके बंध योग्य परिणाम होते हैं। अर्थात् जिन परिणामोंके होनेपर असाता प्रकृतिका बंध न होकर साता प्रकृतिका बंध होता है उनकी विशुद्धि संज्ञा है और असाताके बंधके योग्य जो परिणाम होते हैं उनकी संक्लेश संज्ञा है। यहाँ स्थितिविकल्पोंको ध्यानमें रखकर संक्लेशविशुद्धिस्थानोंका यह अल्पबहुत्व कहा गया है।

४. संयतके जघन्य स्थितिबंध सबसे स्तोक है। इससे बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा है। इससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे बादर एकेंद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म एकेंद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म एकेंद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे बादर एकेंद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे द्वींद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। इससे द्वींद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे द्वींद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे द्वींद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे त्रींद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे चतुरिंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे पंचेंद्रिय असंज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है। इससे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष अधिक है। इससे पंचेंद्रिय असंज्ञी पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध विशेष

१. पंचसं०, बंधनक०, गा० ९९-१०० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० विसे० । संजदस्स उक्क० ट्ठिदि० संखे० गुणो । संजदासंजदस्स जह० ट्ठिदि० संखेज्जगुणो । तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । असंजदसम्मादिट्ठि-पज्जत्तस्स जह० ट्ठिदि० संखे०गु० । तस्सेव अपज्ज जह० ट्ठिदि० संखेज्जगु० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदि०संखेज्जगु० । तस्सेव पज्ज० उक्क० ट्ठिदि० संखेज्जगु० । पंचिंदिय-सण्णि-मिच्छादिट्ठि-पज्जत्त० जह० ट्ठिदि० संखेज्ज० । तस्सेव अपज्ज० जह० ट्ठिदि० संखेज्ज० । तस्सेव अपज्ज० उक्क० ट्ठिदि० संखेज्ज० । तस्सेव पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदि० संखेज्ज० ।

एवं ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा समत्ता ।

अधिक है । इससे संयतके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे संयतासंयतके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे संयतासंयतके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त (निर्वृत्त्यपर्याप्त) के जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है । इससे पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंध संख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ संयतके जघन्य स्थितिबंधसे लेकर संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबंध तक अल्पबहुत्वका विचार किया गया है । संयतके वेदनीयका बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रका आठ मुहूर्त तथा शेष चार कर्मोंका अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थितिबंध कहा है और बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग होता है । मोहनीयका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम एक सागर होता है और नाम और गोत्रका एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम दो बटे सात भाग होता है । यही कारण है कि संयतके जघन्य स्थितिबंधसे बादर एकेंद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध असंख्यातगुणा कहा है । बादर एकेंद्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिबंध एक सागर होता है और द्वीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका संख्यातवां भाग कम पच्चीस सागर होता है । यह कुछ कम पच्चीस गुणा है । यही कारण है कि बादर एकेंद्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा कहा है । द्वीन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिबंध पूरा पच्चीस सागर है और त्रीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम पचास सागर है । यह दूनेसे कुछ कम है । यही कारण है कि द्वीन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक कहा है । त्रीन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिबंध पचास सागर है और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सौ सागर है । यह दूनेसे कुछ कम है । इसीसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक कहा है । चतुरिन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट स्थितिबंध सौ सागर है और असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध पल्यका संख्यातवाँ भाग कम एक हजार सागर है । यह कुछ कम दसगुणा है । इसीसे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबंधसे असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तका जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा कहा है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार स्थितिबंधस्थानकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिसेगपरूवणा

५. णिसेगपरूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा य। अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छादिट्ठीणं पज्जत्ताणं णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-अंतराइगाणं तिण्णि वस्स-सहस्साणि आबाधा[1] मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं। जं विदिय-समए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ त्ति। पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छादिट्ठीणं पज्जत्ताणं मोहणीयस्स सत्तवस्स-सहस्साणि आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं। विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ त्ति। पंचिंदियस्स सण्णिमिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा आयुगस्स पुव्वकोडितिभागं[2] आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं। जं विदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छादिट्ठीणं पज्ज० णामागोदाणं बेवस्ससहस्साणि

निषेकप्ररूपणा

५. अब निषेकप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसके ये दो अनुयोगद्वार हैं—अनंतरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनंतरोपनिधाकी अपेक्षा पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवोंके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्मोंके आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म परमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं वे विशेष हीन हैं। जो तीसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष हीन विशेष हीन कर्म परमाणु निक्षिप्त होते हैं। पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवोंके मोहनीयके सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके आयु कर्मके एक पूर्वकोटिकी त्रिभागप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट आयुके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। पंचेंद्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीवके नाम और गोत्र कर्मके दो हजार

---

१. पंचसं०, द्वार ५, गा० ५० । गो० क०, गा० १६१, १६२ । २. गो० क०, गा० १६० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं। जं विदिय० तं विसे०। जं तदिय० तं विसे०। एवं विसेसहीणं विसेस० जाव उक्कस्सेण वीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ त्ति।

वर्षप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

विशेषार्थ—'अनन्तर'का अर्थ व्यवधान रहित और 'उपनिधाका' अर्थ मार्गणा है। जिस प्रकरणमें अव्यवधान रूपसे वस्तुका विचार किया जाता है वह अनन्तरोपनिधा अनु-योगद्वार है। यहां यह बतलाया गया है कि प्रति समय जो कर्म बंधते हैं वे अपनी स्थिति के अनुसार किस क्रमसे निक्षिप्त होते हैं। मूलमें इतना ही निर्देश किया गया है कि प्रथम समयमें बहुत कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। दूसरे समयमें एक चय कम कर्मपर-माणु निक्षिप्त होते हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक सब समयोंमें एक-एक चय कम कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। इसका विशेष खुलासा इस प्रकार है—मान लो किसी जीवने ६३०० कर्म परमाणुओंका बंध किया और उनको उत्कृष्ट स्थिति ५१ समय पड़ी। यहाँ तीन समय आबाधाके हैं, इसलिये उन्हें छोड़कर बाकीके ४८ समयोंमें उक्त ६३०० कर्म परमाणुओंको निक्षिप्त करना है जो उत्तरोत्तर विशेषहीन क्रमसे दिये जाते हैं। प्रथम गुणहानिमें चयका जो प्रमाण होता है, दूसरीमें उससे आधा होता है। इस तरह अंतिम गुणहानिके अन्तिम निषेकतक उत्तरोत्तर चय आधा-आधा होता जाता है। ४८ समयोंमें निक्षिप्त परमाणुओंकी निषेक-रचना इस प्रकार होती है—

५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
२८८	१४४	७२	३६	१८	९

इस रचनामें प्रथम निषेकसे दूसरा निषेक विशेषहीन दिखाई देता है और यह क्रम अन्तिम निषेक तक चला गया है। अन्य कर्मोंसे आयु कर्ममें यही अन्तर है कि अन्य कर्मों की आबाधा स्थिति बन्धके भीतर परिगणित की जाती है, पर आयु कर्ममें उसे स्थितिबन्ध से अलग गिना जाता है — यथा इस उदाहरणमें ५१ समयका स्थितिबन्ध मानकर ३ समय आबाधाके लिये छोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार आयु कर्मके स्थितिबन्धके जितने समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. पंचिंदियस्स सण्णिस्स अपज्जत्तयस्स आयुगवज्जाणं सत्तण्णं कम्माणं अंतोमुहुत्तं आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए० तं बहुगं। जं विदियसमए० तं विसे०। जं तदियसमए० तं विसे०। एवं विसे० विसेसहीणं जाव उक्कस्सेण अंतोकोडाकोडि त्ति। आयुग० अंतोमुहुत्तं आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए० तं बहुगं। जं विदिय० तं विसे०। जं तदियस० तं विसेस०। एवं विसे० विसेसहीणं याव उक्कस्सेण पुव्वकोडि त्ति।

७. पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्ताणं आयुगवज्जाणं सत्तण्णं कम्माणं अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमसम० तं बहुगं। विदियसम० तं विसे०। तदियसम० तं विसेस०। एवं विसे० विसे० जाव उक्कस्सेण सागरोवम-सहस्स० तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा, वेसत्त भागा पडिपुण्णा त्ति। आयुगस्स पुव्वकोडितिभागं आबाधा मोत्तूण जं पढमसम० तं बहुगं। जं विदियसम० तं विसे०। जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्कस्सेण पलदोवमस्स असंखेज्जदिभागो त्ति।

८. पंचिंदिय-असण्णि-अपज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोमु-

---

होते हैं, उनमेंसे आबाधाके समय छोड़कर शेषमें निषेक रचना नहीं होती; किन्तु जो स्थिति बन्ध होता है उन सबमें निषेक रचना होती है। प्रथम निषेकसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा निषेक कितना हीन है, इस प्रकार व्यवधानके बिना यहां विचार किया गया है, इसलिये इसे अनन्तरोपनिधा कहते हैं।

६. पंचेंद्रिय संज्ञी अपर्याप्तकके आयु कर्मके सिवा शेष सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्म परमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते है वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार अंतःकोटाकोटि प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्व कोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निक्षिप्त होते हैं।

७. पंचेंद्रिय असंज्ञी पर्याप्तकोंके आयुकर्मके सिवा शेष सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक हजार सागरके तीन बटे सात भाग, एक हजार सागरके सात बटे सात भाग और एक हजार सागरके दो बटे सात भाग प्रमाण परिपूर्ण स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके पूर्वकोटिके त्रिभागप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

८. पंचेंद्रिय असंज्ञी अपर्याप्तकोंके आयुकर्मके सिवा शेष सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुत्तं आबाधा मोत्तूण जं पढमसम० तं दहुगं। विदियस० तं विसे०। जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदि भागेण ऊणिया त्ति। आयुगस्स अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमस० तं बहुगं। जं विदियसम० तं विसे०। जं तदिय-स० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० पुव्वकोडि त्ति।

९. चदुरिंदि०-तेइंदि०-बेइंदि० पज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए तं बहुगं। विदियस० तं विसे०। जं तदि-यस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्कस्सेण सागरोवमसदस्स सागरोवम-पण्णारसाए सागरोवमपणुवीसाए तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा बे-सत्त भागा पडिपुण्णा त्ति। आयुगस्स बे मासं सोलस रादिंदियाणि सादिरेयाणि चत्तारि वस्साणि आबाधा मोत्तूण जं पढम स० तं बहुगं। जं विदियस० तं विसे०। जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्कस्सेण पुव्वकोडि त्ति।

१०. चदुरिंदि०-तेइंदिय०-बेइंदिय० अपज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं

आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग प्रमाण, एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सात बटे सात भागप्रमाण और एक हजार सागरके पल्यका संख्यातवाँ भाग कम दो बटे सात भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयु-कर्मके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

९. चतुरिंद्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त और द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्त प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार क्रमसे सौ सागरका, पचास सागरका और पच्चीस सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण, सात बटे सात भागप्रमाण और दो बटे सात भागप्रमाण परिपूर्ण उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके क्रमसे दो माह, साधिक सोलह दिनरात और चार वर्षप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

१०. चतुरिंद्रिय, त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके आयुके सिवा सात कर्मोंके अंत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमसम० तं बहुगं। जं विदियसम० तं विसे०। जं तदियसम० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० सागरोवमसदस्स सागरोवम-पण्णारसाए सागरोवमपणुवीसाए तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्तभागा बे-सत्त भागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणिया। आयुगस्स अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए० तं बहुगं। जं विदियसमए तं विसे०। जं तदिय स० तं विसे०। एवं विसे० विसे० याव उक्कस्सेण पुव्वकोडि त्ति।

११. बादरएइंदियाणं पज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढम स० तं बहुगं, जं विदियस० तं विसे०। जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० सागरोवमस्स तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा बे-सत्त भागा पडिपुण्णा त्ति। आयुगस्स सत्तवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि आबाधा मोत्तूण जं पढमस० तं बहुगं। जं विदियस० तं विसे०। जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० पुव्वकोडि त्ति।

१२. बादरएइंदियअपज्जत्ताणं सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं च सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमस० तं बहुगं। जं विदियस० तं

मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार क्रमसे सौ सागरका, पचास सागरका और पच्चीस सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, पल्यका संख्यातवाँ भाग कम सात बटे सात भाग और पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समय तक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटि-प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन निक्षिप्त होते हैं।

११. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके आयुके सिवा सात कर्मोंके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्म निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्म निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक सागरके तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण परिपूर्ण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं।

१२. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विसे० । जं तदियस० तं विसे०। एवं विसे० विसे० जाव उक्क० सागरोवमस्स तिण्णि-सत्त भागा, सत्त-सत्त भागा, बे-सत्त भागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणि-गा त्ति । आयुगस्स अंतोमु० आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए० तं बहुगं। जं विदियस० तं विसे० । जं तदियस० तं विसे० । एवं विसे० विसे० जाव उक्क० पुव्वकोडि त्ति ।

एवमणंतरोवणिधा समत्ता ।

१३. परंपरोवणिधाए[1] पंचिंदिय-सण्णि-असण्णिपज्जत्ताणं अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० आबाधा मोत्तूण जं पढमसमए पदेसग्गादो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ।

१४. पंचिंदियाणं सण्णि-असण्णिअपज्जत्ताणं चतुरिंदि०-तेइंदि०-बेइंदि०-

होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार एक सागरका पल्यका असंख्यातवां भागकम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं। आयुकर्मके अंतर्मुहूर्तप्रमाण आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे बहुत हैं। जो दूसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। जो तीसरे समयमें कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं वे विशेषहीन हैं। इस प्रकार पूर्वकोटिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिके अंतिम समयतक विशेषहीन विशेषहीन कर्म-परमाणु निक्षिप्त होते हैं।

विशेषार्थ—संज्ञी पंचेन्द्रियसंबंधी दोनों जीवसमासोंके बंधनेवाले कर्मपरमाणुओंका सब स्थितियोंमें किस क्रमसे निक्षेप होता है, इसका पहले विचार कर आये हैं। यहाँ शेष जीवसमासोंमें विचार किया गया है। सब जीवसमासोंमें बंधनेवाले कर्मपरमाणुओंके निक्षेपका क्रम एक ही है, उसमें कोई अन्तर नहीं है, फिर भी सब जीवसमासोंमें निक्षेप क्रमका पृथक्-पृथक् विवेचन करनेका कारण यह है कि प्रत्येक जीवसमासमें आठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध अलग-अलग होता है, इसलिये जिसके जिस कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबंध जितना हो वहाँ तक ही प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेषहीन क्रमसे निक्षेपविधि जाननी चाहिये। मात्र आबाधाकालमें निषेकरचना न होनेसे वहां कर्मपरमाणुओंका निक्षेप नहीं होता है, इतना विशेष जानना चाहिये।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

१३. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त-के आठों कर्मोंके आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें निक्षिप्त हुए कर्मपरमाणुओंसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं अर्थात् आधे रह जाते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते जाते हैं।

१४. पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतु-रिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एके-

१. पञ्चसं०, पञ्चम द्वार, गा० ५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादरएइंदिय०-सुहुमएइंदिय० पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं उक्कसिया आबाधा मोत्तूण जं पढमसमयपदेसग्गादो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुण० जाव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति ।

१५. एयपदेसियदुगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि । णाणापदेसदुगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमस्स वग्गमूल० असंखेज्जदिभागो ।

१६. णाणापदेसदुगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि । एयपदेसदुगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं ।

आबाधाकंडयपरूवणा

१७. आबाधाकंडयपरूवणदाए[1] पंचिंदियसण्णि-असण्णि-चतुरिंदिय-तेइंदिय-बेइंदिय-बादरएइंदिय-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं उक्कस्सादो ट्ठिदीदो समये समये पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं ओसरिदूण एयमा-

---

न्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंके उत्कृष्ट आबाधाको छोड़कर प्रथम समयमें निक्षिप्त हुए कर्मपरमाणुओंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते जाते हैं।

१५. एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण हैं। नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

१६. नाना प्रदेश द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एक प्रदेश द्विगुणहानि स्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—पहले प्रथम निषेकमें कितना द्रव्य होता है और द्वितीयादिक निषेकोंमें वह कितना-कितना कम होता जाता है, इसका विचार कर आये हैं। यहाँ प्रथम निषेकके द्रव्यसे कितने स्थान जानेपर वह उत्तरोत्तर आधा-आधा रहता जाता है, इसका विचार किया गया है। मूलमें बतलाया है कि प्रथम समयमें निक्षिप्त हुए कर्म परमाणुओंसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर वे आधे रह जाते हैं। इस प्रकार पुनः-पुनः पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जानेपर वे उत्तरोत्तर आधे-आधे शेष रहते हैं। यहां नाना-प्रदेश गुणहानि स्थानान्तर पदसे नाना गुणहानियां ली गई हैं और एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरपदसे एक गुणहानिके निषेक लिए गये हैं।

आबाधाकाण्डकप्ररूपणा

१७. अब आबाधाकाण्डककी प्ररूपणा करते हैं। इसकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त, पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसे समय समय उतरते हुए पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति उतर कर एक आबाधाकाण्ड करता

---

१. पञ्चसं०, पञ्चम द्वार, गा० ५३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाधाकंडयं करेदि। एस कमो जाव जहण्णिया ट्ठिदि त्ति।

अप्पाबहुगपरूवणा

१८. अप्पाबहुगे त्ति पंचिंदियाणं सण्णीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं णाणावरणीयस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाधा[1]। आबाधट्ठाणाणि आबाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेज्जगुणाणि। उक्कस्सिया आबाधा विसेसाहिया। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि। एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं। एयमाबाधाखंडयमसंखेज्जगुणं। जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाधिओ। एवं छण्णं कम्माणं।

है और यह क्रम जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक चालू रहता है।

विशेषार्थ—यहाँ कितनी स्थितिकी कितनी आबाधा होती है इसका विचार किया गया है। कर्मस्थितिविकल्प बहुत हैं और आबाधाके विकल्प थोड़े हैं, इसलिये जितने स्थितिविकल्पोंके प्रति एक आबाधाका विकल्प प्राप्त होता है उसे आबाधाकाण्डक कहते हैं। एक आबाधाकाण्डक यहाँ पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है इसका अभिप्राय यह है कि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्रति एक आबाधाविकल्प प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ—सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण दर्शनमोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको ६४ मान लिया जाय, सात हजार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आबाधाको १६ मान लिया जाय और पल्यके असंख्यातवें भागको ४ मान लिया जाय तो—६४, ६३, ६२ और ६१ इन चारकी १६ समय आबाधा होगी। यह एक आबाधाकाण्डक है। तथा ६०, ५९, ५८ और ५७ की १५ समय आबाधा होगी यह दूसरा आबाधाकाण्डक है। इस तरह जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेतक एक-एक आबाधाकाण्डकके प्रति आबाधाका एक-एक समय कम होते हुए जघन्य स्थितिकी जघन्य आबाधा रह जाती है।

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

१८. अब अल्पबहुत्वका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त जीवोंके ज्ञानावरणीयकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है। इससे आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक ये दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इससे एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है। इससे जघन्यस्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार छह कर्मोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ अबतक स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा और आबाधाकाण्डकप्ररूपणा इन तीन अधिकारोंमें जिन विषयोंकी चरचा की है, उनमें कौन कितना अल्प है और कौन कितना बहुत है, यह तुलनात्मक ढंगसे बतलाया गया है। यह अल्पबहुत्व जघन्य आबाधासे प्रारम्भ होकर उत्कृष्ट स्थितिपर समाप्त होता है। मात्र इसमें

---

१. पञ्चसं०, बन्धनक०, गा० १०१-१०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयतकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका निर्देश नहीं किया है। ज्ञानावरणकी जघन्य स्थिति संयतके होती है और सबसे जघन्य आबाधा उसीकी हो सकती है। इसलिये यह प्रश्न होता है कि इस अल्पबहुत्वमें यह जघन्य आबाधा किसकी ली गई है। आगे उत्तरप्रकृति स्थितिबन्धमें अल्पबहुत्वका निर्देश करते हुए कहा है कि 'सबसे स्तोक जघन्य आबाधा है और उससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।' इससे वहाँ तो जघन्य आबाधा किसकी ली गई है इसका पता लग जाता है, पर यहाँका प्रश्न इस दृष्टिसे विचारणीय रहता है। यहाँ ज्ञानावरणके अल्पबहुत्वको कहनेके बाद 'एवं छण्णं कम्माणं' ऐसा कहा है। संयतके क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें छह कर्मोंका बन्ध तो होता है, पर मोहनीयका नहीं होता। इसलिये इस निर्देशसे यही ज्ञात होता है कि इस अल्पबहुत्वमें संयतकी जघन्य स्थितिका कथन अविवक्षित रहा है। मालूम पड़ता है कि यहाँ मिथ्यादृष्टिकी जघन्य स्थितिकी आबाधा ली गई है, क्योंकि इस अल्पबहुत्वमें इस स्थितिका ग्रहण भी किया है। यह सबसे स्तोक होती है। आबाधाके कुल विकल्प आबाधास्थान कहलाते हैं और इतने ही आबाधाकाण्डक होते हैं। ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट आबाधा तीन हजार वर्षमेंसे जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्तको कम कर एक मिला देनेपर कुल आबाधाके विकल्प होते हैं। ये विकल्प अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य आबाधासे संख्यातगुणे होनेके कारण आबाधास्थान और आबाधाकाण्डकोंको जघन्य आबाधासे संख्यातगुणा कहा है। ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट आबाधा पूरी तीन हजार वर्ष प्रमाण है जो आबाधास्थानोंमें अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हों, एक कम उतने समयोंके मिलानेपर प्राप्त होती है। इसीसे उक्त दोनों पदोंसे उत्कृष्ट आबाधाको विशेष अधिक कहा है। नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरोंका प्रमाण पहले पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं। यह प्रमाण तीन हजार वर्षके समयोंसे असंख्यातगुणा है। इसीसे उत्कृष्ट आबाधाके प्रमाणसे यह प्रमाण असंख्यातगुणा कहा है। एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरका प्रमाण पहले पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूलोंके बराबर बतला आये हैं। यह प्रमाण नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरके प्रमाणसे असंख्यातगुणा है, यह स्पष्ट ही है। इसीसे नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरके प्रमाणसे इसे असंख्यातगुणा कहा है। एक आबाधाकाण्डकका प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है यह एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तरसे असंख्यातगुणा होनेके कारण असंख्यातगुणा कहा गया है। मिथ्यादृष्टिके ज्ञानावरणकर्मकी जघन्य स्थिति अन्तःकोटाकोटिसागर प्रमाण होती है जो एक आबाधाकाण्डकके प्रमाणसे असंख्यातगुणी होती है। इसीसे आबाधाकाण्डकसे जघन्य स्थितिको असंख्यातगुणी कहा है। उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटिसागरमेंसे अन्तःकोटाकोटिसागरको कम करके जो लब्ध आवे उसमें एक मिलानेपर स्थितिस्थान प्राप्त होते हैं। यतः ये जघन्य स्थितिके प्रमाणसे संख्यातगुणे हैं, अतः जघन्य स्थितिके प्रमाणसे स्थितिस्थानोंका प्रमाण संख्यातगुणा कहा है। उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूरा तीस कोटाकोटिके समय प्रमाण होता है और स्थितिस्थान इसमेंसे अन्तःकोटाकोटिके समयोंको घटाकर एक मिलानेपर प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि स्थितिस्थानके प्रमाणसे उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक है। इसीसे स्थितिस्थानके प्रमाणसे उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण विशेष अधिक कहा है। यह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी मुख्यतासे अल्पबहुत्वका खुलासा है। मात्र इसमें इन्हींके अपर्याप्तकी अपेक्षा प्राप्त होनेवाला अल्पबहुत्व गर्भित है। आयुके सिवा दर्शनावरण आदि शेष छह कर्मोंके उक्त सब पदोंका अल्पबहुत्व इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदिमें अन्तरके होनेपर भी उससे अल्पबहुत्वमें कोई अन्तर नहीं आता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. पंचिंदियसण्णि-असण्णि-पज्जत्ताणं सव्वत्थोवा[1] आयुगस्स जहण्णिया आबाधा। जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। आबाधाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। उक्कस्सिया आबाधा विसेसाधिया। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जगुणाणि। एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं। ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

२०. [2]पंचिंदियाणं असण्णीणं पज्जत्तापज्जत्ताणं चउरिंदिय०-तेइंदि०-बेइंदि० पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं आबाधाट्ठाणाणि आबाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि। जहण्णिया आबाधा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया आबाधा विसे०। णाणापदेसगु० असंखे०गु०। एयपदेसगु० असं०गु०। एयं आबाधाखंडयं असं०गु०। ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०।

२१. बादरएइंदिय-सुहुमएइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं आयुगवज्जाणं आबाधाट्ठाणाणि आबाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि थोवाणि। जहण्णि-

१९. पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त जीवोंके आयुकर्मकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है। इससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इससे स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

२०. पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त, पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त और द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुके सिवा सात कर्मोंके आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक ये दोनों तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। इससे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इनसे एकप्रदेश गुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इससे एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है। इससे स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिबन्धस्थान पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण हैं और जघन्य स्थिति पल्यका संख्यातवाँ भाग कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसीसे यहाँ स्थितिस्थानोंके प्रमाणसे जघन्य स्थितिको संख्यातगुणा कहा है। शेष कथन सुगम है।

२१. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंके आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक ये दोनों तुल्य होकर स्तोक हैं। इनसे जघन्य आबाधा असंख्यातगुणी है। इससे

१. पञ्चसं०, बन्धनक०, गा० १०३–१०४। २. मूलप्रतौ पंचिंदि०..........याणं असंखेज्ज ....एइंदि० बेइंदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या आबाधा असं०गु० । उक्क० आबाधा विसे० । णाणापदेसगु० असं०गु० । एयपदेसगु० असं०गु० । एयं आबाधाखंडयं असं०गु० । ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असं०-गु० । जह० ट्ठिदि० असं०गु० । उक्क० ट्ठिदि० विसे० ।

२२. अवसेसाणं बारसण्णं जीवसमासाणं आयुगस्स सव्वत्थोवा जहण्णिया आबाधा । जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । आबाधाट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । उक्क० आबाधा विसेसा० । ट्ठिदिबं० संखेज्जगुणाणि । उक्क० ट्ठिदि० विसेसा० ।

एवमप्पाबहुगं समत्तं

चउवीस-अणिओगद्दारपरूवणा

२३. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चउवीसमणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा, अद्धाच्छेदो सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्क० अणुक्क० जह० अजह०सादि० अणादि० धुवबं० अद्धुवबं० एवं याव अप्पाबहुगे त्ति । भुजगारबंधो पदणिक्खेओ वड्ढिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारे जीवसमुदाहारे त्ति ।

उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है । इससे नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इससे एक आबाधाकाण्डक असंख्यातगुणा है । इससे स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं । इससे जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

विशेषार्थ—इन जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरके भीतर होता है और आबाधा, आबाधाकाण्डक आदि उसी हिसाबसे होते हैं । यही कारण है कि इनके सात कर्मोंके सब पदोंका अल्पबहुत्व उक्त प्रमाणसे होता है ।

२२. अवशेष रहे बारह जीवसमासोंके आयुकर्मकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है । इससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे आबाधास्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है । इससे स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक है ।

विशेषार्थ—यहाँ अल्पबहुत्वमें आबाधाकाण्डक, नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर, एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर और एक आबाधाकाण्डक परिगणित नहीं किये गये हैं । कारण कि इन बारह जीवसमासोंमें आयुकर्मका जितना स्थितिबन्ध होता है,वह इतना अल्प है,जिससे उसमें ये पद सम्भव नहीं हैं । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

चौबीस अनुयोगद्वारप्ररूपणा

२३. इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं । यथा—अद्धाच्छेद, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक । तथा भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार ।

विशेषार्थ—अध्रुवबन्धसे लेकर अल्पबहुत्वतक ऐसा सामान्य निर्देश करके शेष बारह अनुयोगद्वार गिनाये नहीं हैं । वे ये हैं—स्वामित्व, बन्धकाल, बन्धान्तर, बन्ध सन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्धाच्छेदपरूवणा

२४. अद्धाच्छेदो दुविधो—जहण्णओ उक्कस्सओ च। उक्कस्सगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइगाणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ[1]। तिण्णि वस्ससहस्साणि आबाधा[2]। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो[3]। मोहणीयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ। सत्तवस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आयुगस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि। पुव्वकोडितिभागं आबाधा[4]। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ[5]। णामागोदाणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ। बेवस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। एवमोघभंगो सवणिरय-तिरिक्ख४-मणुस०३-देवो याव सहस्सार त्ति पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-वेउव्वियका०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसा०—मदि०-सुद०-विभंग०—असंजद०—चक्खुदं—अचक्खुदं०-पंचले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि-सण्णि-आहारग त्ति। णवरि आयु०

अन्तर और भाव। आगे इन चौबीस अनुयोगद्वारोंका आश्रय कर स्थितिबन्धका विचार करके पुनः उसका भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धि, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार इन द्वारा और इनके अवान्तर अनुयोगों द्वारा विचार किया गया है।

अद्धाच्छेदप्ररूपणा

२४. अद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। आबाधा तीन हजार वर्ष प्रमाण है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। सात हजार वर्षप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर है। पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है, दो हजार वर्षप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और पंचेन्द्रिय योनिनीतिर्यंच ये चार प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी ये तीन प्रकारके मनुष्य; देव, सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, पांच लेश्यावाले, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु आयुकर्मके विषयमें

१. जीव० चू० ६। गो० क०, गा० १२७। २. गो० क०, गा० १५६। ३. गो० क०, गा० १६०। ४. गो० क०, गा० १५७। ५. गो० क०, गा० १५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसेसो। देवणेरइगाणं आयुगस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो पुव्वकोडी। छम्मासं आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। एवं वेउव्वियका०। चदुण्णं लेस्साणं आयुगस्स उक्क० ट्ठिदिबंधो सत्तारस सागरोवमं सत्त सागरोवमं बे-अट्ठारस सागरोवमं सादि०। पुव्वकोडितिभागं आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ।

२५. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ताणं सत्तणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमुहु० आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आयुगस्स उक्क० ट्ठिदिबं० पुव्वकोडी। अंतोमुहुत्तं च आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। एवं मणुसअपज्जत्त-पंचिंदिय-तसअपज्जत्त-ओरालियमिस्सा त्ति। एवं चेव आणद याव सव्वट्ठा त्ति वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमि०[1]-कम्मइग०-आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओधिदं०-सुक्कले०-

कुछ विशेषता है। यथा—देव और नारकियोंके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण होता है, छह महीना की आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगवालोंके जानना चाहिये। नील आदि चार लेश्यावालोंके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे सत्रह सागरप्रमाण, सात सागरप्रमाण, साधिक दो सागरप्रमाण और साधिक अठारह सागरप्रमाण है, पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वप्रथम ओघसे आठों कर्मोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध, उत्कृष्ट आबाधा और उत्कृष्ट निषेकरचनाका निर्देश करके यह ओघप्ररूपणा जिन-जिन मार्गणाओंमें सम्भव है उसका विचार किया गया है। आयुकर्मके सिवा सात कर्मोंकी आबाधा स्थितिबन्धमें गर्भित रहती है, इसलिये इन कर्मोंकी निषेकरचना आबाधाको न्यून कर शेष स्थितिप्रमाण कही गई है। पर आयुकर्ममें इस प्रकार स्थितिबन्धके अनुसार प्रतिभागसे आबाधा नहीं प्राप्त होती है; किन्तु जिस पर्यायमें विवक्षित आयुका बन्ध होता है उस पर्यायकी शेष रही आयु ही बध्यमान आयुकर्मकी आबाधा होती है, इसलिये आयुकर्मके स्थितिबन्धमें यह आबाधा गर्भित न रहनेसे आयुकर्मकी उसका जितना स्थितिबन्ध होता है, तत्प्रमाण निषेकरचना होती है। यहाँ जिन मार्गणाओंका निर्देश किया है, उनमेंसे जिन मार्गणाओं में आयुकर्मके बन्धके सम्बन्धमें अपवाद है, उसका पृथक्से निर्देश किया ही है। कारण स्पष्ट है।

२५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटि है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ल लेश्यावाले,

1. 'छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥'-गो० क०, गा० ११८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मादिट्ठि-खइगस०-वेदग०-उवसमस०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारग त्ति। णवरि आयुविसेसो। आणद याव सव्वट्ठ त्ति देवोघं। वेउव्वियमि०-कम्मइग०-उवसम०-सम्मामि०-अणाहार० आयुगं णत्थि। संजदासंजद० आयुग० उक्क० ट्ठिदि० बावीसं सागरोवमं। पुव्वकोडितिभागं आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सासणे आयुग० उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमं। पुव्वकोडितिभागं आबाधा। कम्मट्ठिदी[1] कम्मणिसेगो। आहारकायजोगी आदिं कादूण आयु० ओघं।

सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यक् मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु आयुकर्मके विषयमें कुछ विशेषता है। यथा—आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक देवोंके आयुकर्मका कथन सामान्य देवोंके समान है। तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। संयतासंयतोंके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बाईस सागर होता है। पूर्वकोटिका तीसरा भाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। सासादनमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इकतीस सागर होता है, पूर्वकोटिका तीसरा भागप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। आहारककाययोगीसे लेकर शेषके आयुकर्मका विचार ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त पदसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव लिये गये हैं। अन्तःकोटाकोटी सागरसे आगेका स्थितिबन्ध संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके ही होता है। किन्तु यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें जो पर्याप्त अवस्थासे सम्बन्ध रखनेवाली मार्गणाएँ हैं, वे मिथ्यादृष्टि नहीं हैं और जो मिथ्यात्व अवस्थासे सम्बन्ध रखनेवाली मार्गणाएँ हैं वे पर्याप्त नहीं, अतः इन सब मार्गणाओंमें आयुके सिवा शेष सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटी सागरप्रमाण बन जाता है। आयुकर्मके स्थितिबन्धके सम्बन्धमें जो विशेषता है, वह अलगसे कही है। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण ही होता है; परन्तु उत्कृष्ट आबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण न होकर छह महीनाकी होती है, इसलिये इनके आयुकर्मके स्थितिबन्धका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान न कह कर सामान्य देवोंके समान कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, यह स्पष्ट ही है। यहाँ जिस प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें आयुबन्धका निषेध किया है, उस प्रकार आहारकमिश्रकाययोगमें आयुबन्धका निषेध नहीं किया। इतना ही नहीं, किन्तु इस व आगेके प्रकरणोंको देखनेसे विदित होता है कि 'महाबन्ध'के अनुसार आहारककाययोगके समान आहारकमिश्रकाययोगमें भी आयुबन्ध होता है। किन्तु 'गोम्मटसार' कर्मकाण्डमें आहारकमिश्रकाययोगमें आयुबन्धका निषेध किया है। संयतासंयत जीवोंका गमन सोलहवें कल्पतक और सासादनसम्यग्दृष्टियोंका गमन अन्तिम ग्रैवेयकतक होता है। इससे इनके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे बाईस और इकतीस सागर प्रमाण बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

---

1. मूलप्रतौ—ट्ठिदी कम्माणं सेसाणं। आहार—इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. एइंदिएसु बादर-बादरपज्जत्तस्स सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा बे सत्तभागा। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आयुगस्स उक्कस्सट्ठिदिबंधो पुव्वकोडी। सत्तवस्ससहस्साणि सादिरेयाणि आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणि०। बादरएइंदियअपज्जत्त-सुहुमएइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबं० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुगस्स उक्क० ट्ठिदिबं० पुव्वकोडी। अंतोमुहुत्तं आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्म०। सव्वपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदिपत्तेगसरीर० एइंदियभंगो। णवरि आयु० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। सत्तवस्ससहस्साणि सादि० वेवस्ससहस्साणि सादि० एक्करादिंदिया० एक्कवस्ससहस्सा० तिण्णिवस्ससहस्साणि सादि० आबाधा। कम्म० कम्मणिसेगो। णिगोदजीवाणं सत्तण्णं कम्माणं पुढविकाइयभंगो। आयु० सव्वणियोदाणं सुहुमएइंदियभंगो।

२६. एकेन्द्रियोंमें बादर और बादर पर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है, साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है, और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंके सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है, आबाधा क्रमसे साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो हजार वर्ष, एक दिनरात, एक हजार वर्ष और साधिक तीन हजार वर्ष प्रमाण है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। निगोद जीवोंके सातों कर्मोंका स्थितिबन्ध आदि पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। तथा सब निगोद जीवोंके आयुकर्मका स्थितिबन्ध आदि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा एक सागरप्रमाण होता है और नाम और गोत्रका एक सागरका दो बटे सात भागप्रमाण होता है। पर्याप्त एकेन्द्रियोंके और बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके इन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इसी प्रकार होता है। शेष बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियोंके इसमेंसे पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम कर देनेपर उत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

२७. वेइंदि०-तेइंदि०-चउरिंदि० तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवमसदस्स तिण्णि सत्त-भागा सत्त सत्तभागा बे सत्तभागा। अंतोमु० आबाधा। [आबाधूणिया] कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुग० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। चत्तारिवस्साणि सोलसरादिंदियाणि सादिरेयाणि बे मासं च आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म०। तेसिं चेव अपज्जताणं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबं० एवं चेव। णवरि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं। [अंतोमुहुत्तमाबाधा।] कम्मट्ठिदी कम्म०। आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ख० अपज्जत्तभंगो।

बन्ध होता है। एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके स्थितिबन्धका यह बीजपद है। इसी बीजपदके अनुसार पृथिवीकायिक आदिके बादर, सूक्ष्म और इनके पर्याप्त, अपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध जानना चाहिये। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सर्वत्र एक पूर्वकोटिप्रमाण होता है। मात्र आबाधामें अन्तर है; क्योंकि सब जीवोंकी आयु अलग-अलग कही है। इसलिये जिसकी जितनी उत्कृष्ट आयु कही है, उसके अनुसार उसके आयुकर्मका उत्कृष्ट आबाधाकाल जानना चाहिये। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

२७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इन्हींके पर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे पच्चीस, पचास और सौ सागर का तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण होता है, चार वर्ष, साधिक सोलह रातदिन और दो महीना प्रमाण उत्कृष्ट आबाधा होती है तथा कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। इन्हीं अपर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इसी प्रकार होता है। इतनी विशेषता है कि यह पल्यका संख्यातवाँ भाग कम होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पच्चीस सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा पच्चीस सागरप्रमाण होता है तथा नाम और गोत्रका पच्चीस सागरका दो बटे सात भागप्रमाण होता है। द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके सर्वत्र पल्यका संख्या-तवाँ भाग कम करनेपर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। त्रीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पचास सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा पचास सागरप्रमाण होता है तथा नाम और गोत्रका पचास सागरका दो बटे सात भागप्रमाण होता है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके सर्वत्र पल्यका संख्यातवाँ भाग कम करनेपर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। चतुरिन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सौ सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण होता है, मोहनीयका पूरा सौ सागरप्रमाण होता है तथा नाम और गोत्रका सौ सागरका दो बटे सात भाग-प्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तकोंके सर्वत्र पल्यका संख्यातवाँ भाग कम करने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइगाणं उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अंतोमु० आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्म०। वेदणीय-णामागोदाणं उक्क० ट्ठिदि० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अंतोमु० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्मणि०। मोहणीय० उक्क० ट्ठिदीबं० संखेज्जाणि वाससदाणि। अंतोमुहुत्तं आबा०। आबाधूणि० कम्मट्ठिदी कम्म०। सुहुमसंप० तिण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबं० मुहुत्तपुधत्तं। अंतोमु० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। वेदणीय-णामा-गोदाणं उक्क० ट्ठिदिबं० मासपुधत्तं। अंतोमु० आवाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०।

२९. असण्णीसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबं० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा बे सत्तभागा। अंतोमुहुत्तं आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुग० उक्क० ट्ठिदिबं० पलिदोवमस्स असंखे० भागो।

पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। आबाधा सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सर्वत्र एक पूर्वकोटिप्रमाण है। मात्र इसकी आबाधामें अन्तर है, सब भेदोंकी उत्कृष्ट आयु अलग-अलग कही है। इसलिये जिसकी जितनी उत्कृष्ट आयु है, उसके अनुसार उसके आयुकर्मका उत्कृष्ट आबाधाकाल जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

२८. अपगतवेदवाले जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवाँ भागप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके तीन कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्म-स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं।

विशेषार्थ—यहाँ जो अपगतवेदी जीवके और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवके कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बतलाया है, वह उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें और अपगतवेदके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें मोहनीयका और श्रेणिमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिये सूक्ष्मसाम्परायसंयतके मोहनीय और आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका और अपगतवेदी जीवके मात्र आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका निर्देश नहीं किया। शेष कथन सुगम है।

२९. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार सागरका तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। आयुकर्मका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वकोडितिभागं च आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्म०। एवमुक्कस्सओ अद्धच्छेदो समत्तो।

३०. जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावर०-दंसणावर०-मोहणीय०-अंतराइगाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतो०। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। वेदणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्तं। अंतोमु० आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुग० जह० ट्ठिदिबं० खुद्दाभवग्गहणं। अंतो० आबा०। कम्मट्ठिदी कम्म०। [णामागोदाणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्तं। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।] एवमोघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-अवगदवे०-लोभक०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्जव०-संजद-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइगस०-सण्णि-आहारग त्ति। णवरि अवगदवे० आयुगं णत्थि। आभि०-सुद०-ओधिदं०-सम्मादि०-खइगस० आयुग० जह० ट्ठिदि० वासपुधत्तं। अंतोमु० आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। मणपज्जव०-संजदा० आयुग० जह० ट्ठिदिबं० पलिदोवमपुधत्तं। अंतोमु० आबाधा।

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, पूर्वकोटिके त्रिभागप्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीवोंके मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार सागरप्रमाण, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका एक हजार सागरका तीन बटे सात भागप्रमाण तथा नाम और गोत्रका एक हजार सागरका दो बटे सात भाग प्रमाण होता है। असंज्ञी जीव मरकर प्रथम नरकमें और भवनत्रिकमें भी उत्पन्न होते हैं, इसलिए इस दृष्टिसे इनके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

३०. अब जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक हैं। मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके इसी प्रकार ओघके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी जीवोंके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। मनःपर्ययज्ञानी और संयत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मट्ठिदी कम्म० । सुक्कले० आयु० जह० ट्ठिदिबं० मासपुधत्तं। अंतोमु० आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो[1] ।

३१. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदिबं० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि-सत्त भागा सत्त-सत्त भागा बे-सत्त भागा पलिदो० संखेज्जदिभागेण ऊणियं। अंतोमु० आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुग० जह० ट्ठिदिबं० अंतो०। अंतोमु० आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्म०। एवं पढम-

---

जीवोंके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। शुक्ललेश्यावालोंके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं।

विशेषार्थ—ओघसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होता है। मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें होता है और आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है। यहाँ अन्य जिन मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा कही है उनमें आयुके सिवा सात कर्मोंका तो ओघके समान स्थितिबन्ध बन जाता है, क्योंकि उन सब मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है। किन्तु उक्त मार्गणाओंमेंसे जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, उनमें आयुकर्मके स्थितिबन्धके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है, जिसका निर्देश मूलमें ही किया है। खुलासा इस प्रकार है—श्रेणिमें आयुबन्ध नहीं होता, इसलिये अपगतवेदीके आयुकर्मके बन्धका निषेध किया है। आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि ये मार्गणाएँ मनुष्यगति और तिर्यंचगतिके समान नरकगति और देवगतिमें भी सम्भव हैं। यतः नरकगतिमें सम्यक्त्व अवस्थामें जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है, अतः इन मार्गणाओंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। मनःपर्ययज्ञानी और संयत मनुष्य ही होते हैं। इनके संक्लेश परिणामोंकी बहुलता होनेपर छठवें गुणस्थानमें पल्योपमपृथक्त्वप्रमाण आयुबन्ध होता है। इसीसे इन मार्गणाओंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध, उक्त प्रमाण कहा है। शुक्ललेश्या मिथ्यात्व गुणस्थानमें भी सम्भव है। यदि शुक्ललेश्यारूप परिणामोंके हीयमान होनेपर आयुबन्ध हो तो मासपृथक्त्व प्रमाण स्थितिबन्ध सम्भव है। इसीसे शुक्ललेश्यामें उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध कहा है। शेष कथन सुगम है।

३१. आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक हजार सागरका पल्यका संख्यातवां भागकम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवी, देव-भवनवासीदेव और व्यन्तर देवोंमें जानना

---

१. गो० क०, गा० १३९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीए देवा-भवण०-वाणवें० । एवं चेव सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्जत्त-पंचिंदियअपज्जत्ता० । णवरि आयु० ओघं ?

३२. विदियाए याव सत्तमा त्ति सत्तण्णं कम्माणं जह० द्विदिबं० अंतोकोडाकोडी । अंतोमुहुत्तं आबाधा । आवाधू० कम्मट्ठिदिकम्म० । आयु० णिरयोघं । एवं जोदिसिय याव सव्वट्ठ त्ति वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद०-तेउले०-पम्मले०-वेदगस०-सासण०-सम्मामि० । णवरि एदेसु आयु० विसेसो । जोदिसिय-सोधम्मीसाण० आयु० जह० ट्ठिदि० अंतो० । सणक्कुमार-माहिंद० मुहुत्तपुधत्तं । बह्म-बह्मुत्तर-लंतव-काविट्ठ० दिवसपुधत्तं । सुक्क-महासुक्क-सदर-सहस्सार० पक्खपुधत्तं । आणद-पाणद-आरण-अच्चुद० मासपुधत्तं । उवरि याव सव्वट्ठ त्ति वासपुधत्तं । अंतोमु० आबा० । कम्मट्ठिदी कम्म० । वेउ-

---

चाहिये । तथा इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के जानना चाहिये । किंतु इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका कथन ओघके समान है ।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीव मर कर नरकमें उत्पन्न हो सकता है और ऐसे जीवके अपर्याप्त अवस्थामें असंज्ञीके योग्य बन्ध होता रहता है । इसीसे नरकमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध उक्त प्रमाण कहा है । संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त गर्भजकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होनेसे नरकमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । असंज्ञी जीव मर कर प्रथम नरक, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हो सकता है । इसीसे इन मार्गणाओंमें सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थितिबन्ध कहा है । सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त इन मार्गणाओंमें यद्यपि एकेन्द्रिय जीव भी मर कर उत्पन्न होता है, पर इन मार्गणाओंमें उत्पन्न होनेके बाद अपर्याप्त अवस्था में सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञीके होनेवाले स्थितिबन्धसे कम नहीं होता ऐसा नियम है । यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें भी सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध उक्त प्रमाण कहा है । इन मार्गणाओंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रकभव स्थितिप्रमाण होनेसे आयुकर्मकी प्ररूपणा ओघके समान कही है । शेष कथन सुगम है ।

३२. दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सातों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोडीकोडीसागरप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है । आयुकर्मका कथन सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके तथा वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें आयुकर्मके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है—ज्योतिषी देव तथा सौधर्म और ऐशान कल्पमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है । सानत्कुमार और माहेन्द्रमें मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है । ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर और लान्तव, कापिष्ठमें दिवसपृथक्त्वप्रमाण होता है । शुक्र,महाशुक्र और शतार,सहस्रारमें पक्षपृथक्त्वप्रमाण होता है । आनत, प्राणत और आरण,अच्युतमें मासपृथक्त्वप्रमाण होता है । आगे सर्वार्थसिद्धि तक वर्षपृथक्त्वप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्वियका० आयु० देवोघं। आहार०-आहारमि० आयु० जह० ट्ठिदिबं० पलिदोवमपुधत्तं। अंतोमु० आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्म०। एवं परिहार०-संजदासंजदा० त्ति। विभंगे आयु० ओघं। तेउलेस्सिया० सोधम्मभंगो। पम्माए सणक्कुमारभंगो। वेदगे आयु० ओधिभंगो। सासणे देवोघं।

३३. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० सागरोवमस्स तिण्णिसत्त भागा सत्तसत्त भागा बेसत्त भागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी क०। आयु० ओघं। एवं तिरिक्खभंगो सव्वएइंदिय-सव्वपंचकाय-ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंजद०-किण्ण०-णील-काउ०-अब्भसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारग त्ति। णवरि कम्मइ०-अणाहार० आयुगं णत्थि।

होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। वैक्रियिक काययोगमें आयुकर्मका विचार सामान्य देवोंके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्योपमपृथक्त्वप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होते हैं। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानमें आयुकर्मका कथन ओघके समान है। पीतलेश्यावालोंके आयुकर्मका कथन सौधर्मकल्पके समान है। पद्मलेश्यावालोंके आयुकर्मका कथन सानत्कुमार कल्पके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके आयुकर्मका कथन अवधिज्ञानियोंके समान है और सासादनमें आयुकर्मका कथन सामान्य देवोंके समान है।

विशेषार्थ—संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोडाकोडीसे कम नहीं होता। इसी नियम कोध्यानमें रखकर इन दूसरी पृथिवी आदि मार्गणाओंमें सात कर्मोंका स्थितिबन्ध कहा गया है। यद्यपि दूसरी पृथिवी आदिक मार्गणाओंमें निवृत्त्यपर्याप्त अवस्था भी होती है, पर यहां संज्ञी जीव ही मर कर उत्पन्न होता है, इसलिये यहां किसी भी हालतमें इससे कम स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। आयुकर्मके स्थितिबन्धमें जहां जो विशेषता कही है, वह जानकर समझ लेना चाहिये।

३३. तिर्यंचोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवां भाग कम तीन बटे सात भाग, सातबटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। आयुकर्मका कथन ओघके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब पांचों कायवाले, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—तिर्यंचगतिमें जघन्य स्थितिबन्धके विचारमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यता है। उनके जो जघन्य स्थितिबन्ध होता है, वही तिर्यंचगतिमें समझना चाहिये। यहां अन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं वे सब एकेन्द्रिय जीवोंके सम्भव हैं, इसलिये उन मार्गणाओंमें भी यही व्यवस्था जाननी चाहिये। इन सब मार्गणाओंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लकभवप्रमाण होता है, इसलिये आयुकर्मका कथन ओघके समान कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. बीइंदि०-तीइंदिय-चउरिंदि० तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदिबं० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवमसदस्स तिण्णिसत्त भागा सत्तसत्त भागा बेसत्त भागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणियं। अंतोमु० आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। आयुगस्स ओघं। तसपज्जत्त० बीइंदियभंगो।

३५. इत्थि०-णवुंस० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अंतोमु० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदिक०। वेदणीय-णामा-गोदाणं जह० ट्ठिदिबं० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अंतो० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी क०। मोहणी० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वस्ससदाणि। अंतो० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी क०। आयु० ओघं। पुरिसवे० छण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अंतो० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म०। मोहणीय० सोलस वासाणि। अंतो० आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी क०। आयु० ओघं। अधवा णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइगाणं जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वस्ससदाणि। अंतो० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठिदी क०।

---

३४. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके तथा इन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्रमसे पच्चीस सागरका, पचास सागरका और सौ सागरका, पल्यका संख्यातवां भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। आयुकर्मका विचार ओघके समान है। त्रस-पर्याप्तका विचार द्वीन्द्रियोंके समान है।

३५. स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्त आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। आयुकर्मका विचार ओघके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंके छः कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है, और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है। आयुकर्मका विचार ओघके समान है। अथवा, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्षप्रमाण होता है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक होता है।

विशेषार्थ—तीन वेदवाले जीवोंके सात कर्मोंका यह जघन्य स्थिति बन्ध क्षपक श्रेणीमें प्राप्त होता है और आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होता है, क्योंकि ओघके समान क्षुल्लक भवप्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध वहींपर सम्भव है। अन्यत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. कोध-माण-माय० छएणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । अंतोमु० आबा० । आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्म० । मोहणीय० जह० ट्ठिदिबं० कोधे बे मासा, माणे मासं, मायाए पक्खं । सव्वाणं अंतो० आबा० । आबाधू० । आयु० ओघं । अधवा कोधे सत्तएणं कम्माणं पुरिसभंगो । णवरि, मोह० जह० ट्ठिदिबं० बेमासं । अंतो० आबा० । आबाधू० कम्मट्ठि० । माणे तिण्णिक० जह० ट्ठिदिबं० वासपुधत्तं० । अंतो० आबा० । [आबाधूणिया कम्म० ।] वेदणीय-णामा-गोदाणं जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जाणि वाससदाणि । अंतोमु० आबा० । आबाधू० । मोहणीय० जह० मासं । अंतो० आबाधा० । [आबाधूणिया कम्म०] । मायाए तिएणं कम्माणं जह० मासपुधत्तं । अंतो० आबाधा० । [आबाधूणिया कम्म० ।] वेदणीय-णामा-गोदाणं जह०-वासपुधत्तं । अंतो० आबाधा० । [आबाधूणिया कम्म० ।] मोहणी० जह० पक्खं । अंतो० आबा० । आबाधू० ।

आयुकर्मका इतना कम स्थिति बन्ध नहीं होता। यहाँ पुरुषवेदमें 'अथवा' कहकर विकल्पान्तरकी सूचना की है सो विचारकर इस कथनका सामंजस्य बिठला लेना चाहिए। दूसरे विकल्पद्वारा इसी बातकी सूचना की है। इसीसे पुरुषवेदमें वेदनीय, नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका जघन्य स्थिति बन्ध संख्यात सौ वर्ष प्रमाण कहा है।

३६. क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण होता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म निषेक होता है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्रोधकषायवालेके दो महीना, मान कषायवालेके एक महीना और माया कषायवालेके एक पक्षप्रमाण होता है। सब कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा होती है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक होता है। आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध ओघके समान है। अथवा क्रोधकषायवालेके सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध पुरुष वेदवालेके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्म स्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। मानकषायवालेके तीन कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध एक महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। माया कषायवालेके तीन कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पक्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ—उक्त तीन कषायवाले जीवोंके सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. सामाइय-च्छेदोवट्ठावण० तिण्णि कम्माणं जह० मुहुत्तपुधत्तं । अंतो० आबा० । [आबाधूणि०] । वेदणीय-णामा-गोदाणं मासपुधत्तं । अंतो० आबा० । [आबाधू० ।] मोह० ओघं । आयुग० जह० पलिदोवमपुधत्तं । अंतोमु० आबाधा० । [कम्मट्ठिदी कम्म० ।] सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं ओघं ।

३८. उवसमस० चदुण्णं कम्माणं जह० [बे अंतोमुहु०] अंतो० आबा० । [आबाधू० ।] वेदणी० जह० चउवीसं मुहुत्तं । अंतो० आबाधा० । [आबाधू० ।] णामा-गोदाणं जह० सोलस मुहुत्तं । अंतो आबा० । [आबाधू० ।] एवं जहण्णओ अद्धच्छेदो समत्तो ।

एवं अद्धच्छेदो समत्तो ।

श्रेणीमें और आयु कर्मका मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है। यहाँ भी विकल्पान्तरके सम्बन्धमें वही बात जाननी चाहिए, जिसका निर्देश पुरुषवेदके समय कर आये हैं।

३७. सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके तीन कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध, आबाधा और निषेक रचना ओघके समान है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यपृथक्त्वप्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। सूक्ष्मसाम्पराय संयतके छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध, आबाधा और निषेक रचना ओघके समान है।

विशेषार्थ—उक्त दोनों संयम छठवें गुणस्थानसे लेकर नौवें गुणस्थान तक होते हैं। इसलिये क्षपकश्रेणीके नौवें गुणस्थानमें जहाँ जिस कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध होता है, वहाँ इनमें जघन्य स्थितिबन्ध जानना चाहिये। आयुकर्मका पल्योपमपृथक्त्वप्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध प्रमत्तसंयतके संक्लेश परिणामोंकी प्रचुरताके होनेपर होता है। ओघसे छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें ही प्राप्त होता है। इसीसे सूक्ष्मसाम्परायसंयतके छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि ओघके समान कहा है।

३८. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके चार कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध दो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्त है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टिके यह जघन्य स्थितिबन्ध उपशमश्रेणीमें प्राप्त होता है जो क्षपक श्रेणिमें प्राप्त हुए जघन्य स्थितिबन्धसे दूना होता है।

इस प्रकार जघन्य अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

इस प्रकार अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्व-णोसव्वबंधपरूवणा

३९. यो सो सव्वबंधो [णोसव्वबंधो] णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स ट्ठिदिबंधो किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वबंधो वा णोसव्वबंधो वा। सव्वाओ ट्ठिदी बंधदि त्ति सव्वबंधो। तदो [उणियं] ट्ठिदिं बंधदि त्ति णोसव्वबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं आणाहारग त्ति णेदव्वं।

उक्कस्स-अणुक्कस्सबंधपरूवणा

४०. यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स ट्ठिदिबंधो किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधदि त्ति उक्कस्सबंधो।

सर्वबन्ध नोसर्वबन्धप्ररूपणा

३९. जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है उसका यह निर्देश है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा ज्ञानवारणीयके स्थितिबन्धका क्या सर्वबन्ध होता है या नोसर्वबन्ध होता है? सर्वबन्ध भी होता है और नोसर्वबन्ध भी होता है। सब स्थितियोंको बाँधता है, इसलिये सर्वबन्ध होता है और उससे न्यून स्थितियोंको बाँधता है, इसलिये नोसर्वबन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंका कथन करना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोंके स्थितिबन्धका सर्वबन्ध भी होता है और नोसर्वबन्ध भी होता है, यह बतलाया है। जब विवक्षित कर्मकी सब स्थितियोंका बन्ध होता है तब सर्वबन्ध होता है; अन्यथा नोसर्वबन्ध होता है। उदाहरणार्थ—ओघसे ज्ञानावरणकी सब स्थितियाँ तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण हैं। जब इन सब स्थितियोंका बन्ध होता है तब सर्वबन्ध कहलाता है और जब इससे न्यून बन्ध होता है तब नोसर्वबन्ध कहलाता है। इसी प्रकार अन्य सात कर्मोंकी अलग अलग सब स्थितियोंका विचार कर सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धका कथन करना चाहिये। मार्गणाओंमें विचार करते समय जिन मार्गणाओंमें यह ओघ प्ररूपणा घटित हो जाय, वहाँ ओघके समान जानना चाहिये और जिन मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा घटित न हो, वहाँ आदेशसे जहाँ जो उत्कृष्ट स्थिति हो उसे ध्यानमें रखकर सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धका विचार करना चाहिये। उदाहरणार्थ—चारों गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, तीन योग, तीन वेद, चार कषाय, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान, असंयत, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, कृष्णादि तीन लेश्या, भव्य, अभव्य, मिथ्यात्व संज्ञी और आहारक इन मार्गणाओंमें ओघके समान सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध होता है। तथा शेष मार्गणाओंमें आदेशसे सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध घटित करना चाहिये।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा

४०. जो उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्ध है, उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीयके स्थितिबन्धका क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध? उत्कृष्टबन्ध भी होता है और अनुत्कृष्टबन्ध भी। सबसे उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है, इसलिए

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तदो ऊणियं बंधदि त्ति अणुक्कस्सबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं।

जहण्ण-अजहण्णबंधपरूवणा

४१. यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स ट्ठिदिबंधो किं जहण्ण० अजहण्ण० ? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णियं ट्ठिदिं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदो उवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं। णिरएसु आयुग०[1] अजहण्णबंधो। एवं सव्वअपज्जत्ताणं सत्तण्णं कम्माणं[2] अजहण्णबंधो। केइ अप्पप्पणो[3] [ट्ठिदिं पडुच्च परूवेंति। एवं] याव अणाहारग त्ति ओघं।

सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा

४२. यो सो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्स० अणुक्कस्स०

उत्कृष्टबन्ध होता है और उससे न्यून स्थितिको बाँधता है, इसलिये अनुत्कृष्टबन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंका कथन करना चाहिये। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सबसे उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी उत्कृष्टबन्ध संज्ञा है। जैसे, ज्ञानावरणका तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने पर अन्तिम निषेककी उत्कृष्टस्थितिबन्ध संज्ञा है और इससे न्यून स्थितिबन्ध होने पर वह अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहलाता है। शेष विचार सर्वबन्ध और नोसर्वबन्धके समान जानना चाहिये।

जघन्य-अजघन्यबन्धप्ररूपणा

४१. जो जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध है, उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरणीयके स्थितिबन्धका क्या जघन्यबन्ध होता है या अजघन्यबन्ध होता है ? जघन्यबन्ध भी होता है और अजघन्य बन्ध भी होता है। सबसे जघन्य स्थितिको बाँधनेवालेके जघन्य बन्ध होता है और इससे अधिक स्थितिको बाँधनेवालेके अजघन्य बन्ध होता है। इसी प्रकार सात कर्मोंका कथन करना चाहिये। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें आयुकर्मका अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तकोंके सात कर्मोंका अजघन्यबन्ध होता है। कितने ही आचार्य अपने-अपने स्थितिबन्धकी अपेक्षा जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्धका कथन करते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ओघको ध्यानमें रख कर कथन करना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा

४२. जो सादिबन्ध अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्ध है, उसका यह निर्देश है—ओघ और आदेश। उनमें से ओघसे सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध

---

१. मूलप्रतौ आयुग० णोसव्वबंधो इति पाठः। २. मूलप्रतौ कम्माणं णोसव्वबंधो इति पाठः।

३. मूलप्रतौ अप्पप्पणो ···· याव इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णबंधो किं सादि० अणादिय० धुव० अद्धुव० ? सादिय-अद्धुवबंधो । अजहण्णबंधो किं सादि० ४ ? सादियबंधो वा अणादियबंधो वा धुवबंधो वा अद्धुवबंधो वा[1] । आयुगस्स चत्तारि[2] वि सा- [दिय-अद्धुवबंधो । एवं अ-] चक्खुदं०-भवसि० । णवरि भवसि० धुवं णत्थि । एवं सेसाणं याव अणाहारग त्ति ओघेण साधिदूण णेदव्वं ।

सामित्तपरूवणा

४३. सामित्तं दुविधं, जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सेण पगदं । दुविधो णिद्देसो–

और जघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि है और अध्रुव है । अजघन्यस्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि है, अनादि है, ध्रुव है और अध्रुव है । आयुकर्मके चारों ही सादि और अध्रुव होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक शेष सब मार्गणाओंमें सादिस्थितिबन्ध आदि ओघसे साध कर जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—कर्मका जो बन्ध रुककर पुनः होता है, वह सादिबन्ध कहलाता है और बन्धव्युच्छित्तिके पूर्व तक अनादि कालसे जिसका बन्ध होता आ रहा है, वह अनादिबन्ध कहलाता है। ध्रुवबन्ध अभव्योंके और अध्रुवबन्ध भव्योंके होता है। ये चारों ही उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन चार भेदोंमें घटित करने पर सोलह प्रकारके होते हैं। आगे आठों कर्मोंका आश्रय कर इसी विषयका खुलासा करते हैं—आयुके विना ज्ञानावरण आदि सात कर्मोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कादाचित्क होते हैं तथा जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिये ये तीनों सादि और अध्रुवके भेदसे दो-दो प्रकार के होते हैं; किन्तु इस तरह अजघन्य स्थितिबन्ध कादाचित्क नहीं होता, क्योंकि जघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होनेके पूर्वतक अनादि कालसे जितना भी स्थितिबन्ध होता है, वह सब अजघन्य कहलाता है। तथा उपशम श्रेणिमें उक्त सात कर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति होने पर पुनः उनका अजघन्य स्थितिबन्ध होने लगता है, इसलिए अजघन्य स्थितिबन्धमें सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों विकल्प बन जाते हैं। आयुकर्ममें उत्कृष्ट आदि चारों विकल्प सादि और अध्रुव दो ही प्रकारके हैं–यह स्पष्ट ही है, क्योंकि आयुकर्मका सब जीवोंके कादाचित्क बन्ध होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणा एक तो कादाचित्क नहीं हैं और दूसरे ये क्रमसे क्षीणमोह और अयोगिकेवली होने तक रहती हैं; इसलिये इनमें सादि आदि प्ररूपणा पूर्ववत् बन जाती है, इसलिये इन मार्गणाओंमें उक्त प्ररूपणा पूर्ववत् कही है। केवल भव्य मार्गणामें ध्रुवविकल्प नहीं होता। कारण स्पष्ट है। शेष सब मार्गणाओंमें ये उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि चारों सादि और अध्रुव ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि अन्य सब मार्गणाएँ यथासम्भव बदलती रहती हैं या सादि हैं, इसलिए उनमें अनादि और ध्रुव ये विकल्प नहीं बनते। यद्यपि अभव्य मार्गणा ध्रुव है, फिर भी उसमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदिके अनादि और ध्रुव न होनेसे सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प घटित होते हैं।

स्वामित्वप्ररूपणा

४३. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश

---

१. गो० क०, गा० १५२ । २. मूलप्रतौ चत्तारि वि सो······चक्खुदं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधो कस्स होदि? अण्णदरस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स[1] सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागारसुदोवजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसेण वट्टमाणयस्स अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा। आयुगस्स उक्कस्सिओ ट्ठिदिबंधो कस्स होदि? अण्णदरस्स मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयस्स वा सण्णिस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागारसुदोवजुत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स वा तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स वा उक्कसियाए आबाधाए उक्कस्सगे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणयस्स।

४४. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो कस्स होदि? अण्णदरस्स वि मिच्छादिट्ठिस्स सागारजागारसुदोवजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सए ट्ठिदिसंकिलेसे वट्टमाणस्स अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स। आयुगस्स उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा सागारजागार० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्कस्सियाए आबाधाए उक्कस्सिए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। एवं सव्वासु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए पुढवीए आयु० मिच्छादिट्ठिस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स।

दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ उत्कृष्टस्थितिबन्धके योग्य संक्लेश परिणामवाला है अथवा ईषत् मध्यम परिणामवाला है, ऐसा कोई एक संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो संज्ञी है, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है या तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, ऐसा कोई एक मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिवाला जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—यहां ओघसे आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश किया गया है। विशेष वक्तव्य इतना ही है कि तेतीस सागर प्रमाण नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मूलमें दिये गये विशेषणोंसे युक्त मनुष्य और तिर्यंच दोनोंके होता है; किन्तु तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट देवायुका बन्ध मात्र मनुष्यके ही होता है।

४४. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ उत्कृष्टस्थितिबन्धके योग्य संक्लेश परिणामवाला है या ईषत् मध्यम परिणामवाला है, ऐसा कोई एक नारकी सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है, साकार और जागृत उपयोगवाला होकर भी विशुद्ध परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, ऐसा कोई एक नारकी आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य विशुद्ध

१. गो० क०, गा० १३४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। आयुगस्स मिच्छादिट्ठिस्स तप्पाओग्ग-संकिलिट्ठस्स। एवं पंचिंदियतिरिक्ख० ३। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तगेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्णदरस्स सण्णिस्स सागारजागारसुदोवजुत्तस्स तप्पाओग्गउक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सए ट्ठिदिसंकिलेसे वट्टमाणस्स। आयुगस्स उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्णद० सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा सागारजागारसुदो-वजुदस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० आबाधाए उक्कस्सिए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स।

४६. मणुस०४-पंचिंदिय०२-तस० २-पंचमण०-पंचवचि०-[1]कायजोगि-ओरालि-यका०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-सण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो। णवरि संजमविरहिदाणं तप्पाओग्गविसुद्धो त्ति ण भाणिदव्वं। आयुगस्स मणुसअपज्ज०-पंचिंदिय-तसअप-

परिणामवाला नारकी जीव आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है।

विशेषार्थ—नरकमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटि प्रमाण होता है। तथा प्रारम्भके छह नरकोंमें सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके नारकियोंके यह स्थिति-बन्ध सम्भव है, किन्तु सातवें नरकमें यह स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम है।

४५. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन ओघके समान है। आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला तिर्यञ्च होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो संज्ञी है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य संक्लेशपरिणामवाला है, ऐसा कोई एक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो संज्ञी है, या असंज्ञी है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, ऐसा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—संज्ञी या असंज्ञी दोनों प्रकारके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीव उनके योग्य पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट आयुका बन्ध करते हैं, इसलिये आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी दोनोंको बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

४६. मनुष्य चतुष्क, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्ग-ज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके सब कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामित्वका कथन ओघके समान करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें जो मार्गणाएँ संयम रहित हैं, उनमें तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है; यह नहीं कहना चाहिये। तथा मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त मार्गणाओंमें

१. मूलप्रतौ काजोगि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

४७. देवाणं णिरयभंगो याव सहस्सार त्ति। आणद याव उवरिमगेवज्जा त्ति सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स सागारजागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। आयु० देवभंगो। अणुदिस जाव सव्वट्ठ० त्ति सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्णदरस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। आयु० [उक्क० ट्ठिदि० कस्स०। अण्णद०] तप्पाओग्गविसुद्धस्स० उक्क० वट्टमा०।

आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पहले ओघ प्ररूपणामें आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थिति बन्धके स्वामीका कथन करते समय यह कह आये हैं कि जो संज्ञी है, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला या तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधासे युक्त होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, ऐसा मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिवाला जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है। सो यह कथन अविकल रूपसे यहाँ कही गई सभी मार्गणाओंमें घटित होता है। क्या यह एक प्रश्न है जिसका समाधान करते हुए यहाँ मूलमें कहा गया है कि जो मार्गणाएँ संयम रहित हैं, उनमें यह कथन अजिकलरूपसे घटित नहीं होता; क्योंकि संयम रहित मार्गणाओंमें आयुकर्मका तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणामवालेके न होकर तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवालेके ही होता है। वे मार्गणाएँ ये हैं—मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि। ऐसा नियम है कि मनुष्यायु, देवायु और तिर्यञ्चायुके सिवा शेष रहीं ११७ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवालोंके या तत्प्रायोग्य ईषत् मध्यम परिणामवालोंके ही होता है। इस नियमके अनुसार नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणामवालेके नहीं हो सकता और इन मार्गणाओंमें आयुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नरकायुका ही होता है, क्योंकि इन मार्गणाओंमें संयमकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं हो सकता। इसीलिये इन मार्गणाओंका वारण करनेके लिये मूलमें उक्त कथन किया है। शेष कथन सुगम है। किन्तु मनुष्य अपर्याप्त जीव भी संज्ञी ही होते हैं, इसलिये इनमें आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन करते समय असंज्ञी विशेषण नहीं लगाना चाहिये।

४७. देवोंमें सहस्रार कल्पतक आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी नारकियोंके समान है। आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? मिथ्यादृष्टि साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला कोई भी देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। यहाँ आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन सामान्य देवोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, ऐसा अन्यतर देव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णदर० बादरस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगस्स सागारजागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स । आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । एवं एइंदियबादरसुहुमपज्जत्ता-पज्जत्त-बीइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि पज्जत्तापज्जत्त–सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-पत्तेय०-णियोद-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० । णवरि पज्जत्तए पज्जत्तगहणं कादव्वं । अपज्जत्तए अपज्जत्तगहणं कादव्वं ।

४६. ओरालियका० सत्तण्णं कम्माणं ओघं । णवरि दुगदियस्स । आयु० ओघं । ओरालियमिस्से सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० दुगदियस्स मिच्छादिट्ठिस्स सण्णिस्स तप्पाओग्गसंकिले० से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति तप्पाओग्ग० उक्क० संकिलेसे वट्टमाणगस्स । आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ?

विशेषार्थ—यहाँ देवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन करते समय तीन विभाग कर दिये हैं—पहला सहस्रार स्वर्ग तकका, दूसरा नौ ग्रैवेयकतकका और तीसरा सर्वार्थसिद्धि तकका । नौ ग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों होते हैं तथा सहस्रार कल्पतक सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ओघके समान बन जाता है, इसलिए ये विभाग किये गये हैं । बाकीकी सब विशेषताएँ आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अद्धाच्छेदको देखकर समझ लेनी चाहिए ।

४८. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो बादर है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश-परिणामवाला है, ऐसा अन्यतर एकेन्द्रिय जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थिति बन्धका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, ऐसा अन्यतर एकेन्द्रिय जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा निगोद जीवोंके और इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंका कथन करते समय 'पर्याप्त' पदका ग्रहण करना चाहिए और अपर्याप्तकों-का कथन करते समय 'अपर्याप्त' पदका ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादि इन मार्गणाओंमें सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अद्धाच्छेद पहले कह आये हैं । उसे ध्यानमें रखकर यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका विचार कर लेना चाहिये । यहाँ केवल इतना ही बतलाया गया है कि विवक्षित मार्गणामें किस योग्यता-के होनेपर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ।

४९. औदारिककाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि यह दो गतिके जीवोंके होता है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । औदारिक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि है, संज्ञी है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम-वाला है, तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होनेवाला है और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे युक्त है, ऐसा अन्यतर दो गतिका जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अएणद० तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० । वेउव्विय० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अएणदर० देवस्स वा णेरइगस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठ० । आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अएणद० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठि० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । वेउव्वियमि० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अएणद० देवस्स वा णेरइयस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति । आहारका० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अएणद० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स । आयु० [उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अएणदर०] तप्पाओग्गविसुद्धस्स। एवं आहारमि०। णवरि से काले पज्जत्ती गाहिदि त्ति भाणिदव्वं। कम्मइ० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबं० कस्स ? अएणद० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सणिणस्स मिच्छादिट्ठिस्स सागारजागार-तप्पाओग्ग-उक्कस्ससंकिलट्ठस्स ।

५०. इत्थि०-पुरिस० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? तिगदियस्स संकिलिट्ठस्स मिच्छादिट्ठि० सागारजागार० उक्क०संकि० । आयु० ओघं। एवं णवुंसगवेदे । अवगदवे० सत्तएणं कम्मा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अएणद० उवसम-

---

बन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे युक्त अन्यतर जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । वैक्रियिककाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे युक्त अन्यतर देव या नारकी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वैक्रियिककाययोगी जीव आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो देव या नारकी अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा ऐसा अन्यतर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारक काययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयु कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारकमिश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि तदनन्तर समयमें पर्याप्तिको प्राप्त होगा ऐसी स्थितिमें इसके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये । कार्मणकाययोगमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो चार गतिका जीव पञ्चेन्द्रिय है, संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, ऐसा अन्यतर कार्मण काययोगी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

५०. स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो तीन गतिका जीव संक्लिष्ट परिणामवाला है, मिथ्यादृष्टि है और साकार जागृत उपयोगसे उपयुक्त है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें जानना चाहिये । अपगतवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? उपशम श्रेणिसे पतित होनेवाला जो अन्यतर अनिवृत्ति उपशमक जीव तदनन्तर समयमें सवेदी होगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गस्स परिवदमाणस्स अणियट्टिस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति चरिमे उक्क० ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स ।

५१. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स असंजदसं० मिच्छत्ताभिमुहस्स चरिमे उक्कस्सए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स । आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? पमत्तसंज० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदगसं० । मणपज्जव० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स असंजमाभिमुहस्स चरिमे उक्क० ट्ठिदि० वट्टमा० । आयु० ओधिभंगो । एवं संजदा-सामाइ०-छेदोव० । णवरि मिच्छत्ताभिमुहस्स ।

५२. परिहार० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० पमत्तसंजदस्स सामाइय-च्छेदोवट्ठावणाभिमुहस्स । आयु० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स । सुहुमसंप०

इस प्रकार जो अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है,ऐसा अपगतवेदी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—नारकी नपुंसक होते हैं, अतः यहां स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व नरक गतिके सिवा अन्य तीन गतियोंके जीवोंके कहना चाहिए । नपुंसकवेदकी अपेक्षा देवगतिके स्थानमें नरकगतिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि देव नपुंसक नहीं होते । शेष कथन सुगम है ।

५१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चतुर्गतिका असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वके अभिमुख है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें विद्यमान है,वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला प्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला है, असंयमके अभिमुख है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है,वह मनःपर्ययज्ञानी जीव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानीके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संक्लेशपरिणाममें होता है,इसलिये उक्त मार्गणाओंमें जिस मार्गणासे जहां के लिये पतन सम्भव है,उसके सन्मुख हुए जीवके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व कहा है । पर इन मार्गणाओंमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसलिये उत्कृष्ट आयुबन्धके योग्य जहां विशुद्ध परिणाम सम्भव हैं, उसे ध्यानमें रख कर सब मार्गणाओंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कहा है ।

५२. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयमके अभिमुख है,वह परिहारविशुद्धि संयत सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह परिहारविशुद्धि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० उवसामगस्स। संजदासंजद० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० दुगदियस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स। आयु० तप्पाओग्गविसुद्धस्स।

५३. किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? तिरिक्खस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागार० उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स। आयु० उक्क० ट्ठिदि० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सण्णिस्स पज्जत्तस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। णील-काऊणं सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० णेरइगस्स। आयु० किण्णभंगो। तेउले० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्णद० सोधम्मीसाणंतदेवस्स। आयु० ओधिभंगो। पम्माए सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० सहस्सारंतस्स मिच्छादिट्ठि०। आयु० तेउले० भंगो। सुक्काए सत्तण्णं क० उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० आणद०—देवस्स मिच्छादिट्ठिस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। आयु० पमत्तस्स०।

५४. खइगस० सत्तण्णं क० उक्क० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० चदुगदियस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। आयु० पमत्तसंज०। उपसमसम्मा०

संयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी उपशामक होता है। संयतासंयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ दो गतिका जीव होता है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला संयतासंयत जीव होता है।

५३. कृष्णलेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो तिर्यञ्चगतिका जीव संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत उपयोगसे उपयुक्त है और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो तिर्यंच या मनुष्य संज्ञी है, पर्याप्त है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। नील और कापोतलेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? कोई एक नारकी सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कृष्णलेश्याके समान है। पीतलेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? कोई एक सौधर्म और ऐशान कल्पतकका देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानीके समान है। पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का स्वामी कौन है? अन्यतर सहस्रार कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है। शुक्ल लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर आनत कल्पका मिथ्यादृष्टि और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला देव सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा प्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

५४. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो अन्यतर चार गतिका जीव असंयतसम्यग्दृष्टि है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० असंजदसम्मा० तप्पाओग्ग-उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स। सासणे सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स। आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० मणुसस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स। सम्मामि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० चदुगदियस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स।

५५. असण्णि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० पंचिंदियपज्जत्तस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स। आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं।

५६. जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण छण्णं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स खवगस्स सुहुमसंपराइगस्स चरिमे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। मोह० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद०

कौन है ? प्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्टस्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव सबसे अधिक संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

५५. असंज्ञियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय जीव पर्याप्त है और सबसे अधिक संक्लेश परिणामवाला है, वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला असंज्ञी जीव है, वह आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। अनाहारकोंमें सब कथन कार्मण काययोगियोंके समान है।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीव मरकर भवनवासी और व्यन्तर देव भी होते हैं और प्रथम नरकमें भी जाते हैं। यहां असंज्ञियोंके आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे ही कराया है। इससे विदित होता है कि असंज्ञियोंके देवायुकी अपेक्षा नरकायुका स्थितिबन्ध अधिक होता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

५६. अब जघन्य स्वामीका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक जीव अन्तिम स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मोहनीयके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्ति क्षपक जीव अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह मोहनीयके जघन्य

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

खवगअणियट्टिस्स चरिमे जह० वट्टमाणस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण-द० तिरिक्खस्स वा मणुस्सस्स वा एइंदि० वेइंदि० तेइंदि० चदुरिंदि० पंचिंदियस्स वा सण्णि०असण्णि० बादर० सुहुम० पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स जहण्णियाए आबाधाए जहण्णए ट्ठिदिबंधे वट्ट-माणयस्स । एवं मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरा-लियका०-अवगद०-लोभक०-आभि०-सुद०--ओधि०--मणपज्जव०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्ले०-भवसि०-सम्मादिट्ठि-खइग०-सण्णि-आहारग त्ति । णवरि आयु० विसेसो जाणिदव्वो । अवगद० आयुगं णत्थि । आभि०-सुद०-ओधि० ओधिदं०-सम्मादि०-खइग० आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० देवस्स वा णेरइयस्स वा तप्पाओग्गसंकिलि० जहण्णियाए आबाधाए जह० ट्ठिदि० वट्टमाण-गस्स । मणपज्जव०-संजद० आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० पमत्तसंज० तप्पा-ओग्गसंकिलिट्ठस्स । सुक्काए आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० देवस्स मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकि० जह०आबाधा० जह०ट्ठिदि० वट्टमाणस्स । सेसाणं ओघभंगो ।

स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तिर्यंच, मनुष्य, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त जो भी हो, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह आयु-कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रस-द्विक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, भव्यसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु आयुके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है । यथा—अपगतवेदी जीवके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । आभिनि-बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव या नारकी जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है, वह आयुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । शुक्ललेश्यामें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्या-दृष्टि है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है, वह आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष मार्गणाओंमें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ ओघसे आठों कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका विचार किया गया है । सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें जहाँ जिस कर्मकी बन्धव्युच्छित्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु उक्क० कम्म० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० असण्णिपंचिंदि० सागारजागा० सव्वविसुद्धस्स पढम-विदियस० वट्टमाण० । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० मिच्छादि० तप्पाओ० जह० सं० जह० आबा० जह०ट्ठिदि० वट्ट० । एवं पढमाए मणुसअपज्जत्त-देवा-भवण०-वाणवें० । विदियाए याव सत्तमाए सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० असंजद० सव्वविसुद्धस्स । आयु० पढमपुढविभंगो । एवं जोदिसिय याव सव्वट्ठ त्ति । णवरि अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति आयुग० सम्मादिट्ठि० ।

होती है वहाँ होता है। इस हिसाब से छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है और मोहनीयका क्षपक अनिवृत्तिकरणमें; क्यों कि सूक्ष्म साम्परायमें मोहनीय कर्मका बन्ध नहीं होता। तथा आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सब प्रकारके मनुष्य और तिर्यंचोंके होता है, क्योंकि इन सबके आसंक्षेपाद्धाकाल प्रमाण आयुकर्मके बन्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती। यहाँ अन्य वे मार्गणाएँ गिनाई हैं, जिनमें क्षपक श्रेणीकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है। मात्र इन सब मार्गणाओंमें ओघके समान आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध नहीं प्राप्त होता, क्यों कि इनमेंसे आभिनिबोधिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मिथ्यात्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं है और शुक्ललेश्यामें मिथ्यात्वकी प्राप्ति भी हो गई, तो वहाँ परिणामोंकी इतनी उज्वलता रहती है जिससे वहाँ आयुका आसंक्षेपाद्धा काल प्रमाण बन्ध नहीं होता। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है, इस बातका अलगसे निर्देश किया है।

५७. आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रियचर जीव साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है और प्रथम, द्वितीय समयमें स्थित है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर जो मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है, वह आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें, मनुष्य अपर्याप्त सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि सर्व विशुद्ध परिणामवाला जीव सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पहली पृथिवीके समान है। इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सम्यग्दृष्टि जीव आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—नरकमें असंज्ञी जीव भी मरकर उत्पन्न होता है और उसके अपर्याप्त अवस्थामें असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे सामान्यसे नरकमें असंज्ञी, पञ्चेन्द्रिय,चर जीवको सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहा है। प्रथम नरक, देव, भवनवासी और व्यन्तर देव इन मार्गणाओंमें भी असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है, इसलिये यहाँ सामान्य नरकके समान प्ररूपणा की है। द्वितीयादि नरकोंमें मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टिके सात कर्मोंका स्थितिबन्ध न्यून होता है। शेष रहे देवोंमें भी ऐसा ही जानना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० बादर-एइंदि० पज्जत्त० सव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । आयु० ओघं । एवं सव्व-एइंदि०-सव्वपंचकाय-ओरालियमि०-कम्मइग०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारग त्ति ।

५९. पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० असण्णिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । आयुगस्स जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा सागारजागार-तप्पाओग्गसंकिलि० जह० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-पंचिंदियअपज्जत्ता त्ति ।

चाहिये, इसलिये इन मार्गणाओंमें सर्व विशुद्ध परिणामवाले सम्यग्दृष्टिको सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहा है । अनुदिशसे लेकर आगे सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इसलिये वहाँ तो सम्यग्दृष्टि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंके होनेपर आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी होता है, पर यहाँ जो अन्य मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धकी योग्यता मिथ्यादृष्टिके ही पाई जाती है; क्यों कि यहाँ मिथ्यादृष्टिके आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धके योग्य संक्लेश परिणाम हो सकते हैं;उतने अन्य गुणस्थान-वालेके नहीं ।

५८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो बादर एकेन्द्रिय जीव पर्याप्त है, सर्व विशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले,नील-लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें सात कर्मोंका सबसे कम स्थितिबन्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है । इसीसे यहाँ तिर्यञ्चगतिमें सात कर्मोंके जघन्य स्थिति बन्धके स्वामीका कथन उनकी मुख्यतासे किया है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाऐं गिनाई हैं, उनमें प्रायः यह स्थितिबन्ध सम्भव होनेसे उनका कथन ओघ तिर्यंचोंके समान करनेका निर्देश किया है । इन सब मार्गणाओंमें आयु कर्मका क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है, इसलिये आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामीका कथन ओघके समान किया है ।

५९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो असंज्ञी जीव सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है,वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी या असंज्ञी जीव जो कि पर्याप्त हो या अपर्याप्त हो, साकार जागृत हो, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला हो और जघन्य स्थिति-बन्ध कर रहा हो,वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० पज्जत्तस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्ट० । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा तप्पाओग्गसंकिलि० जह० आबा० जह० ट्ठिदि० वट्ट० । एवं तेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्ता० । [1]तसअपज्जत्ता० बेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

६१. वेउव्वियका० सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० देवणेरइगस्स सम्मादिट्ठि० सागारजागारसव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० देवणेरइगस्स तप्पाओग्गसंकि० मिच्छादि० । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि सत्तण्णं कम्माणं से काले सरीरसज्जत्ती गाहिदि त्ति । आहार०-आहारमि० सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० पमत्तस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स । आहारमिस्से से काले सरीरपज्जत्ती गाहिदि त्ति । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स ।

६२. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवगस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । आयु० ओघं । णवरि इत्थि०-पुरिस०

६०. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अपर्याप्त जीव साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव पर्याप्त है या अपर्याप्त है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार इन तीनोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । तथा त्रस अपर्याप्तकोंमें द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

६१. वैक्रियिककाययोगमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जीव जो कि सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जीव जो कि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यादृष्टि है, वह आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी होता है । आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारकमिश्र काययोगमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला जीव आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

६२. स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्तिक्षपक जीव जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है ।

१. मूलप्रतौ तसपज्जत्ता० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु०[1] सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा [पज्जत्तस्स । णवुंस० सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा] पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा । एवं कोधमाण-माय० ।

६३. विभंगे सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० मणुसस्स संजमाभिमुहस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सागारजागार-संकिलि० जह० आबा० ।

६४. सामाइ०-छेदोव० सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवगस्स चरिमजह० ट्ठिदि० वट्टमा० । आयु० जह० ट्ठिदि० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । परिहारे सत्तण्णं कम्माणं जह० ट्ठिदि० अप्पमत्त० सव्वविसुद्धस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० आहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंपराइ० छण्णं कम्माणं ओघं । संजदासंजद० सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० मणुसस्स संजमाभिमुहस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स । आयु० दुगदियस्स तप्पाओग्गसंकिलि० ।

६५. तेउले०-पम्मले० सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० अप्पमत्त-

इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें जो संज्ञी हो, असंज्ञी हो और पर्याप्त हो, वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । नपुंसक वेदमें संज्ञी हो, असंज्ञी हो, पर्याप्त हो या अपर्याप्त हो, वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार क्रोध, मान और माया कषायमें भी जानना चाहिए ।

६३. विभङ्गज्ञानमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य संयमके अभिमुख है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य साकार है, जागृत है, संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह आयु-कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

६४. सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्तिक्षपक अन्तिम जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । परिहारविशुद्धिसंयममें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अप्रमत्तसंयत जीव सर्वविशुद्ध है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी आहारक काययोगीके समान है । सूक्ष्मसाम्पराय संयममें छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । संयता-संयतोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य संयमके अभिमुख है, साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो दो गतिका जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

६५. पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ?

१. आयु० संकिलिट्ठस्स वा असण्णिस्स इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजदस्स सागारजागारसव्वविसुद्धस्स । अथवा दंसणमोहखवगस्स से काले कद-करणिज्जो होहिदि त्ति । आयुगस्स जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० देवस्स मिच्छा-दिट्ठिस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स जह० आबाधा० जह० ट्ठिदि वट्टमा० ।

६६. वेदगसम्मा० सत्तण्णं क० तेउले०भंगो । आयु० देवणेरइयस्स तप्पा-ओगस्स संकिलिट्ठस्स । उवसमस० छण्णं क० जह०ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० सुहुमसंपराइग० चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । मोहणी० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिउवसमस्स चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । सासणे सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स सव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । अथवा संजमादो परिवदमाणस्स[1] । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदि-यस्स तप्पाओग्गसंकिलि० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । सम्मामिच्छा० सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० सागारजागारसव्वविसुद्धस्स से काले सम्मत्तं पडि-वज्जदि त्ति । एवं बंधसामित्तं समत्तं ।

जो अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। अथवा जो दर्शनमोहका क्षपक जीव तदनन्तर समयमें कृतकृत्यवेदक-सम्यग्दृष्टि होगा, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आयुकर्मके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर देव मिथ्यादृष्टि है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह आयुकर्मके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी है ।

६६. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो देव और नारकी जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें छह कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्प-रायिक जीव अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह छह कर्मोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी है । मोहनीय कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्ति उपशामक जीव अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह मोहनीयकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। सासादनसम्यक्त्वमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। अथवा संयमसे गिरकर जो सासादनसम्यग्दृष्टि हुआ है, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर चार गतिका जीव तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है। वह आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । सम्यग् मिथ्यादृष्टियों सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होगा, वह सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

---

१. मूलप्रतौ—माणस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । अथवा संजमादो परिवदमाणस्स । आयु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । सम्मामिच्छा० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधकालपरूवणा

६७. बंधकालं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। आयु० उक्क० केवचिरं कालादो० ? जहण्णे० एग०। अणुक्क० जहण्णु० अंतो। एवं मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि त्ति।

विशेषार्थ—पहले सब मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिबन्धके अद्धाच्छेदका कथन कर आये हैं। यहाँ उनके स्वामीका निर्देश किया है। इसलिये जहाँ जितना जघन्य स्थितिबन्ध कहा है, उसे ध्यान में रखकर उक्त प्रकारसे उसके स्वामित्वको घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार बन्धस्वामित्वका कथन समाप्त हुआ।

बन्धकाल-प्ररूपणा

६७. बन्धकाल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—स्थितिबन्ध पहले उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यके भेदसे चार प्रकारका बतला आये हैं। इनमें यहाँ सर्वप्रथम एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कमसे कम कितने काल तक और अधिकसे अधिक कितने काल तक होता रहता है, इसका विचार किया जा रहा है। यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाम अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं रहते। उसमें भी उन परिणामोंसे उतने काल तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होना ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है। किसी जीवके एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होने लगता है और किसीके अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता रहता है। यही कारण है कि यहाँ सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर पुनः वह अन्तर्मुहूर्त कालके पहले कभी नहीं होता। इसका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है; क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक समय तक और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। इससे अधिक काल तक आयुकर्मका बन्ध ही नहीं होता। यही कारण है कि आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ मत्यज्ञानी आदि जितनी मार्गणाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. आदेसेण णेरइएसु सत्तएणं कम्माणं उक्क० ओघं। अणुक० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोव०। आयु० ओघं। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि अणुक्कस्स० अप्पप्पणो ट्ठिदी भाणिदव्वा।

६९. तिरिक्खेसु ओघं। पंचिंदियतिरिक्ख०३-मणुस०३-देवा याव सव्वट्ठ त्ति यथासंखाए सत्तएणं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणुक० जह० एग०, उक्क०[1] [तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि] तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपु० तेत्तीसं सागरो० देवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी०। आयु० ओघं।

७०. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्जत्त-विगलिंदि०-पंचिंदिय-तसअपज्जत्ता० सत्तएणं कम्माणं उक्क० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु ओघं।

गिनाई हैं, उनमें आठों कर्मोंका यह काल अविकल घटित हो जाता है, इसलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है।

६८. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। आयुकर्मका काल ओघके समान है। इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्यसे और प्रत्येक नरकमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है। सो इसका कारण यह है कि जिस जीवने पूर्व भवमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेके बाद अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। इसके बाद वह मरकर नरकमें गया और वहाँ निरन्तर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता रहा। इस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है। आगे सर्वत्र अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

६९. तिर्यञ्चोंमें ओघके समान काल है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य, पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य, तेतीस सागर और देवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। आयुकर्मका ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय बतलानेका कारण यह है कि विवक्षित पर्यायमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया और दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके मरकर अन्य पर्यायमें चला गया। इससे यहाँ सर्वत्र स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। शेष कथनका अनुगम पूर्ववत् है।

७०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, विकेलन्द्रिय अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका ओघके समान है।

---

१. मूलप्रतौ उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गल० तिण्णि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० जह० अंतो, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादरएइंदि० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे । बादरएइंदि० पज्जत० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । अपज्ज० अणु० जह०एग, उक्क० अंतो० । सुहुमएइंदि० अणुक्क० जह० अंतो, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्ते अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपज्ज० अणु० जहण्णे० अंतो । सव्वेसिं उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो । सव्वेसु आयु० ओघं ।

७२.बेइंदि०-तेइंदि०-चउरिंदि०तेसिं चेव पज्जत्ता० सत्तण्णं कम्माणं उक्क०जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । आयु० ओघं ।

विशेषार्थ—इन सब पर्यायोंमें एक जीवके रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

७१. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। बादर एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इन सबके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन सबमें आयुकर्मका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—'खुद्दाबन्ध'में एकेन्द्रिय जीवका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल दिया है और इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण दिया है,किन्तु यहां पर इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण और अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इसका कारण क्या है,यह विचारणीय है। इन जीवोंका 'खुद्दाबन्ध'में जो उत्कृष्ट काल बतलाया है, उतने काल तक सात कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता, इसीसे यह काल दिया है। शेष कथन सुगम है। आगे सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदिका जो अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है,वहां भी इसी प्रकार विचारणा कर लेनी चाहिए।

७२. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। आयुकर्मका काल ओघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७३. पंचिंदिय-तसदोएणं सत्तएणं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क०जह० एग०, उक्क० [अप्पप्पणो सगट्ठिदीओ ।] आयु०ओघं ।

७४. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० सत्तएणं कम्माणं उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादरे कम्मट्ठिदी । बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सुहुमे० अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्ते उक्कस्स-अणुक्कस्स-बंधा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वणप्फदि० एइंदियभंगो । पत्तेगे कम्मट्ठिदी । पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णिगोदेसु एइंदियभंगो । णवरि बादरे कम्मट्ठिदी । सुहुमवणप्फदि०–सुहुमणिगोदअपज्जत्तं मोत्तूण सेसं अपज्ज० पंचिंदिय-अपज्जत्तभंगो । आयु० ओघं ।

७५. पंचमण०-पंचवचि० सत्तएणं कम्माणं उक्क० अणु० जह० एग, उक्क० अंतो० । आयु०उक्क०ओघं । अणुक्क०जह०एग०, उक्क०अंतो० । एवं वेउव्विय०-आहार०-कोधादि ४ । कायजोगि० सत्तएणं क० उक्क० ओघं । अणु० जह०

७३. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । आयुकर्मका काल ओघके समान है ।

७४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इन चारोंके बादरोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । इनके बादरपर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । उनके सूक्ष्म जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । वनस्पतिकायिकोंमें उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है । वनस्पति प्रत्येक कायिकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । इनके पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । निगोद जीवोंमें उक्त स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके बादरोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त और सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त जीवोंको छोड़ कर शेष अपर्याप्त जीवोंमें उक्त स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । आयुका काल ओघके समान है ।

७५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार वैक्रियिक काययोगी, आहारक काययोगी और क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके जानना चाहिए । काययोगी जीवों में सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एग०, उक्क०अणंतकालमसंखे० । आयु०मणजोगिभंगो । एवं णवुंस०-असण्णि० । आयु० ओघं । ओरालियकाजो० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० ज० एग०, उक्क०बावीसं वस्ससहस्साणि देसूणाणि । आयु०मणजोगिभंगो । ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहारमि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० एग०, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अणु० जहण्णु० अंतो । ओरालियमि० आयु० ओघं । आहारमिस्से मणजोगिभंगो । कम्मइगका०-अणाहा० सत्तण्णं कम्माणं उक्क०जह० एग०, उक्क० बेसम० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० तिण्णिस० ।

७६. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं । आयु० ओघं । अवगद० मणजोगिभंगो । एवं सुहुमसं० छण्णं कम्माणं ।

समय है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल-परिवर्तन प्रमाण है । आयुकर्मका काल मनोयोगियोंके समान है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । इनके आयुकर्मका काल ओघके समान है । औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । आयुकर्मका काल मनोयोगियोंके समान है । औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । औदारिक मिश्रमें आयुकर्मका काल ओघके समान है और आहारक मिश्रकाययोगमें आयुकर्मका काल मनोयोगियोंके समान है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

विशेषार्थ—औदारिक मिश्रकाययोगमें आयुबन्ध लब्ध्यपर्याप्तकोंके ही होता है, इसलिए यहाँ आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान बन जाता है । शेष जिन योगोंमें आयुकर्मका बन्ध कहा है, उनका जघन्य काल एक समय होनेसे उनमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है । किन्तु आहारक मिश्रकाययोगमें, कुछ विशेषता है । उसका यद्यपि जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है, तथापि वहाँ आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहनेका कारण यह है कि कोई जीव आहारक मिश्रकाययोगका एक समय काल शेष रहनेपर भी आयुकर्मका बन्ध कर सकता है, इसलिए यहाँ एक समय काल बन जाता है । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन होता है, इसका पहले विचार कर आये हैं । उसे देखते हुए ज्ञात होता है कि ऐसा जीव अधिकसे अधिक दो विग्रह लेकर ही उत्पन्न होता है । इसीसे यहाँ पर सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । शेष कथन सुगम है ।

७६. स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे पल्योपमशतपृथक्त्वप्रमाण और सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण है । आयुकर्मका काल ओघके समान है । अपगतवेदियोंमें सात कर्मोंका काल मनोयोगियोंके समान है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायमें छह कर्मोंका काल होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. विभंगे सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवम० देसू०। आयु० ओघं। आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरे०। आयु० ओघं। मणपज्ज० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० जह० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। आयु० ओघं। एवं संजद-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०। संजदासंजदाणं सत्तण्णं क० उक्क० जहण्णु० अंतो०। अणु० जह० अंतो, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। आयु० ओघं। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। ओधिदंसणि–सम्मादिट्ठि० ओधिभंगो।

७८. किण्ण०-णील०-काउ० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ओघं। अणु० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोव० सादि०। आयु० ओघं। एवं तेउ०-पम्मले०-सुक्कलेस्साए सत्तण्णं कम्माणं उक्क० ओघं[1]। अणु० जह० एग०, उक्क० बे अट्ठारस तेत्तीसं साग०। आयु० ओघं।

विशेषार्थ—अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

७७. विभङ्ग ज्ञानमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागरोपम है। आयु कर्मका काल ओघके समान है। आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागरोपम है। आयुकर्मका काल ओघके समान है। मनःपर्ययज्ञानमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। आयुकर्मका काल ओघके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके जानना चाहिए। संयतासंयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है। आयु कर्मका काल ओघके समान है। चक्षुदर्शनमें उक्त काल त्रसपर्याप्तकोंके समान है। अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टियोंमें उक्त काल अवधिज्ञानियोंके समान है।

७८. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। आयु कर्मका काल ओघके समान है। इसी प्रकार पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर, साधिक अठारह सागर और साधिक तेतीस सागर है। आयुकर्मका काल ओघके समान है।

1. मूलप्रतौ ओघं। आयु ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० बे अट्ठारस तेत्तीसं साग०। खइगसं० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. खइगस० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । आयु० ओघं । वेदगसम्मा० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह०उक्क० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० । आयु० ओघं । उवसमस०-सम्मामि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० जह० उक्क० अंतो० । सासण० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक० जह० एग०, उक्क० छावलिगाओ । आयु० ओघं ।

८०. सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो । एवं उक्कस्सबंधकालो समत्तो ।

८१. जहण्णए पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० जहण्णट्ठिदिबंधकालो केवचिरं कालादो होदि ? जह० उक्क० अंतो० । अजहण्ण० केवचिरं कालादो० ? अणादियो अपज्जवसिदो त्ति भंगो । यो सो सादि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं । आयु० उक्कस्सभंगो। एवं याव आहारग त्ति । आयु० ओघभंगो ।

---

७९. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरोपम है । आयु कर्मका काल ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है । आयु कर्मका काल ओघके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियों और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सासादनमें सात कर्मोंके उत्कृष्टस्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है । आयु कर्मका काल ओघके समान है ।

८०. संज्ञियोंमें सब कर्मोंका उक्त काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट बन्धकाल समाप्त हुआ ।

८१. अब जघन्य बन्ध कालका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका कितना काल है ? एक अनादि-अनन्त भङ्ग है और दूसरा सादि । उनमेंसे जो सादि भङ्ग है, उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । आयु कर्मका काल उत्कृष्ट के समान है ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और वह अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है । इसीसे सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । यद्यपि सात कर्मोंका अनादि कालसे अजघन्य स्थितिबन्ध ही होता है, पर जिसने अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणिपर आरोहण किया है, उसके उनका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि होता है । अब यदि यह अजघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर पुनः श्रेणि पर आरोहण करनेसे छूट जाता है, तो इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज्ज० जह० दसवस्ससहस्साणि बिसमयूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं पढमाए पुढवीए। णवरि सगट्ठिदी। विदियाए याव सत्तमा त्ति उक्कस्सभंगो। णवरि सत्तमाए अज० जह० अंतो०।

८३. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। पंचिंदियतिरिक्ख३ जहण्णं तिरिक्खोघं। अज० जह० एग०, उक्क० सगट्ठिदी०। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० जह० अजह० उक्कस्सभंगो।

जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है और यदि ऐसा जीव कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक पुनः श्रेणी पर नहीं चढ़ता है, तो इसका काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है। यही कारण है, कि सात कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है।

८२. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक कालकी प्ररूपणा उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला असंज्ञी जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होता है, उसके एक या दो समय तक सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे यहां सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। दस हजार वर्षप्रमाण नरककी जघन्य स्थितिमेंसे ये दो समय कम कर देनेपर वहां अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल होता है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है, यह स्पष्ट ही है। पहली पृथिवीकी अपेक्षा यह प्ररूपणा इसी प्रकार है। कारण कि असंज्ञी जीव पहली पृथिवीमें ही उत्पन्न होता है। मात्र यहां अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल यहां की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण कहना चाहिए। शेष पृथिवियोंमें जघन्य स्थितिबन्ध के कालका विचार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके समान कर लेना चाहिए।

८३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें जघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके समान है।

विशेषार्थ—यद्यपि तिर्यञ्च गतिमें एक जीवके रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, तथापि ऐसा जीव तिर्यंच गतिकी सब योनियोंमें परिभ्रमण कर लेता है, इसलिए सात कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इतना उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि इस जीवके पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है। अतः यहां सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके कालकी मुख्यतासे अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. मणुस३ जह० जहएणु० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० सगट्ठिदी० । मणुसअपज्ज० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अज० खुद्दाभव० बिसमयूणं, उक्क० अंतो० ।

८५. देवाणं णिरयोघं । भवण०-वाणवें० पढमपुढविभंगो । णवरि सगट्ठिदी० । जोदिसिय याव सव्वट्ठ त्ति उक्कस्सभंगो ।

८६. सव्वएइंदिएसु सत्तण्णं क० जह० तिरिक्खोघं । अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादर० अंगुलस्स असंखेज्जदि० । पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बादरअपज्ज० जह० एगसमयं, उक्क० अंतो० । सुहुमेइंदि० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्तापज्ज० जह० एगस०, उक्क० अंतो० ।

---

८४. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणीमें उपलब्ध होता है और वह अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है । इसीसे यहाँ इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । शेष कथन सुगम है ।

८५. देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान काल है । भवनवासी और व्यन्तरोंमें पहली पृथिवीके समान काल है । इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इन्हींके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके समान काल कहना चाहिए ।

८६. सब एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इनके बादरोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पर्याप्तकोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । बादर अपर्याप्तकोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इनके पर्याप्तकों और अपर्याप्तकोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य एकेन्द्रियोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार तिर्यञ्चोंमें घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार से घटित कर लेना चाहिए । तथा एकेन्द्रियके शेष अवान्तर भेदोंमें यह काल उस-उसकी कायस्थिति जान कर समझ लेना चाहिए । मात्र सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें यह काल अपनी कायस्थिति प्रमाण प्राप्त न होकर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होता है, इतना विशेष जानना चाहिए । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८७. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तण्णं क० जह० तिरिक्खोघं। अज० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जतभंगो। पंचिंदिय-तस० तेसिं चेव पज्जत्ताणं सत्तण्णं० क० जह० ओघं। अज० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी०। अपज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

८८. सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ-वणप्फदि-पत्तेय०-णिगोद० सत्तण्णं क० जह० एइंदियभंगो। अजह० जह० एग०, उक्क० अणुक्कस्सभंगो।

८९. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० जह० अजह० जह० एग०, उक्क० अंतो। कायजोगि० सत्तण्णं कम्माणं जह०जह०एग०, उक्क० अंतो०। अजह०जह० एग०, उक्क० अणंतका०। ओरालियका० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज०जह०एग०, उक्क ० बावीसं वस्ससहस्साणि देसू०। ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहारमि० उक्कस्सभंगो। वेउव्वियका० मणजोगिभंगो। एवं आहारका०। कम्मइ०-अणाहार० उक्कस्सभंगो।

८७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इन्हींके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। द्वीन्द्रिय आदि तीनों अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान काल है। पञ्चेन्द्रिय और त्रस तथा इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। इनके अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान काल है।

८८. सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, सब वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और सब निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है। इनमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट कालके समान है।

८९. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अनन्तकाल है। औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समान काल है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मनोयोगियोंके समान काल है। इसी प्रकार आहारककाययोगियोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें अपने-अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समान काल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तएणं क० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। जह० एग०, उक्क०अणंतकालमसंखे०। अवगद० सत्तएणं क० जह० ओघं। अज० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। एवं सुहुमसंप० छएणं कम्माणं।

९१. कोधादि४ सत्तएणं क० मणभंगो।

९२. मदि०-सुद० सत्तएणं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० ज० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। विभंगे सत्तएणं क० जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। आभिणि०-सुद०-

विशेषार्थ—काययोगमें जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी काय स्थितिप्रमाण घटित हो जाता है जो कि अनन्त काल अर्थात् असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

९०. स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। स्त्रीवेदमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण है। पुरुषवेदमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। तथा नपुंसकवेदमें जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण अनन्त काल है। अपगतवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयममें छह कर्मोंका काल है।

विशेषार्थ—जो जीव पुरुषवेदसे उपशमश्रेणि पर आरोहण करता है, वह उपशमश्रेणिमें मरण कर नियमसे पुरुषवेदी ही होता है, इसलिये इसमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि पुरुषवेदमें सातों कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय नहीं कहा। फिर भी यह काल कैसे प्राप्त होता है? यह घटित करके बतलाते हैं—एक पुरुषवेदी जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ा और उतर कर वह सात कर्मोंका अजघन्य स्थितिबन्ध करने लगा। पुनः अन्तर्मुहूर्तके बाद वह उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें उसने मोहनीयकी तथा सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें उसने शेष छह कर्मोंकी बन्धव्युच्छित्ति की। इस प्रकार यदि देखा जाय, तो यहाँ सात कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है। यही कारण है कि पुरुषवेदमें यह काल उक्त प्रकारसे कहा है। शेष कथन सुगम है।

९१. क्रोधादि चारमें सात कर्मोंका उक्त काल मनोयोगियोंके समान है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मनोयोगियोंके सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

९२. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। विभङ्गज्ञानमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। आभिनिबोधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० उक्कस्सभंगो। असंजद०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि मदिभंगो।

९३. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु०-भवसि० ओघं। णवरि भवसि० अणादियो अपज्जवसिदो णत्थि। ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग० उक्कस्सभंगो।

९४. किण्ण-णील-काउ० उक्कस्सभंगो। तेउले०-पम्मले० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० बे अट्ठारस सागरोव० सादिरे०। सुक्काए सत्तण्णं क० जह० जह० उक्क०[1] अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे०।

९५. उवसम० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० उक्क० अंतो०। सासणस० अट्ठण्णं क० सम्मामि० सत्तण्णं क० उक्कस्सभंगो। सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णि० तिरिक्खोघं।

९६. आहार० सत्तण्णं क० जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। एवं बंधकालो समत्तो।

ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत इनमें जघन्य स्थिति बन्धका काल उत्कृष्टके समान है। असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है।

९३. चक्षुदर्शनवालोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान है। अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंमें ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि भव्योंमें अनादि-अपर्यवसित विकल्प नहीं होता। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें काल अपने-अपने उत्कृष्टके समान है।

९४. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें काल अपने उत्कृष्टके समान है। पीत और पद्मलेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। शुक्लेश्यामें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

९५. उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें आठ कर्मोंका और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सात कर्मोंका काल उत्कृष्टके समान है। संज्ञियोंमें पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंके समान काल है और असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान काल है।

९६. आहारकोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

---

१. मूलप्रतौ उक्क० जह० अंतो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरपरूवणा

९७. बंधंतरं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदि-बंधंतरं जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयुग० उक्क० जह० पुव्वकोडिदसवस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० अणंतकालमसंखे०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे०।

विशेषार्थ—इस प्रकरणमें जहाँ जो विशेषता थी,उसका हम स्पष्टीकरण कर आये हैं। साधारणतः सर्वत्र अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण प्राप्त होता है और जहाँ भवस्थिति ही कायस्थिति है,वहाँ तत्प्रमाण प्राप्त होता है। बहुत-सी ऐसी भी मार्गणाएँ हैं,जिनमें भवस्थिति और कायस्थितिका प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, इसलिए वहाँ उस मार्गणाका जो उत्कृष्ट काल हो तत्प्रमाण अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। मात्र कुछ मार्गणाएँ इस नियमका अपवाद हैं। उदाहरणार्थ,मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है,पर इनमें अजघन्य स्थितिबन्ध का उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण ही प्राप्त होता है। सो इसका खुलासा सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जान लेना चाहिए। तथा इसी प्रकार सर्वत्र सब कर्मोंके जघन्य स्थिति-बन्धके जघन्य और उत्कृष्ट कालका तथा अजघन्य स्थितिबन्धके जघन्य कालका खुलासा ओघ प्ररूपणाको और बन्धस्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। यहाँ इतना विशेष कहना है कि यहाँ सर्वत्र आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल नहीं कहा है। सो इसका कारण यह है कि जहाँ आयुकर्मका बन्ध सम्भव है,वहाँ आयुकर्म के जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इसका कहीं भी निर्देश नहीं किया है।

इसप्रकार बन्धकाल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

९७. बन्धका अन्तरकाल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमें से ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि और दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेके बाद पुनः उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके एकेन्द्रिय और विकलत्रय पर्यायमें आवलिके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परिवर्तनकाल तक परिभ्रमण कर पुनः संज्ञी पंचेद्रिय पर्याप्त होकर उक्त कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, उसके उक्त सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. आदेसेण णेरइगेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो । आयुग० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू० । एवं सत्तपुढवीसु अप्पप्पणो ट्ठिदी देसूणा ।

उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ उक्त कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्मुर्हूर्त होनेसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्टअन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। ओघसे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिकी आयुवाला तिर्यञ्च और मनुष्य अपने प्रथम त्रिभाग कालके शेष रहने पर करता है। यदि ऐसा जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके और उसको अपकर्षण द्वारा दश हजार वर्ष प्रमाण करके प्रथम नरकमें या भवनवासी और व्यन्तरोंमें उत्पन्न होकर तथा वहां क्रमसे पूर्व कोटिप्रमाण आयुका बन्ध करके पुनः मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होकर पुनः प्रथम त्रिभागमें तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुका बन्ध करता है, तो आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि और दस हजार वर्ष प्रमाण उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इसका जघन्य अन्तर उक्त-प्रमाण कहा है। उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, यह स्पष्ट ही है। जो जीव अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे आयुकर्मका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, उसके उसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है और जिस मनुष्य और तिर्यञ्चने प्रथम त्रिभागमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया तथा इसके बाद द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिके साथ वह देव या नारकी हुआ। पुनः वहाँ उसने आयुके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर पुनः आयुका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया, तो उसके आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका साधिक तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है।

९८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रत्येक पृथिवीमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—सातों पृथिवियोंमें सातों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे या कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुके अन्तरसे हो सकता है। इसीसे यहाँ सातों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर सामान्यसे कुछ कम तेतीस सागर तथा प्रत्येक पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण कहा है। यहाँ आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अवसर यदि आता है, तो एकबार ही आता है। इसीसे आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं कहा है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

९९. तिरिक्खेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघभंगो। आयु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणु० ओघं। आयु० तिरिक्खोघं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जहण्णु० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० उक्क० जह० अंतो० समयूणं, उक्क० अंतो०। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं णादव्वं। मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

१००. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरे०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो। आयु० णिरयभंगो। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी देसूणा कादव्वा।

१०१. एइंदिएसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

---

९९. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होनेसे इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है।

१००. देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार सब देवोंके सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कहते समय वह कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—देवोंमें सात कर्मोंका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बारहवें कल्पतक होता है। इसीसे यहाँ सामान्य रूपसे देवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०१. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयु० उक्क० जह० बावीसं वस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० अणंतकालमसंखे० । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि सादि० । बादर० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । अणु० जह० एगस०, उक्क० अंतो० । सुहुम० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । पज्जत्ते अंतोमु० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयु० सव्वेसिं उक्क० जह० भवट्ठिदी समयू० । उक्कस्सेण सगट्ठिदी । अणु० पगदिअंतरं ।

१०२. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० तेसिं चेव पज्जत्ता० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । अणु० ओघं । आयुग० उक्क० जह० बारस वस्साणि एगूणवण्णरादिंदियाणि छम्मासाणि समयूणाणि । उक्क० कायट्ठिदी । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० बारसवस्साणि एगूणवण्णरादिंदियाणि छम्मासाणि सादिरेयाणि ।

समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म-एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इन सबके आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अपनी-अपनी भवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तर प्रमाण है ।

१०२. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा इन्हींके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनचास रात्रिदिन और एक समय कम छह महीना है । तथा उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक बारह वर्ष, साधिक उनचास दिन और साधिक छह महीना है ।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति बारह वर्ष, त्रीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति उनचास दिन रात तथा चतुरिन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति छह महीना है और इन सबकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है[1] । इस स्थितिको ध्यानमें रखकर यहां सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

१. ध० पु० ७,पृ० १२१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०३. पंचिंदिय-तस० तेसिं चेव पज्जत्ता० सत्तएणं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी। अणु० ओघं। आयु० ओघं। णवरि उक्कस्सं कायट्ठिदी।

१०४. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-पत्तेय०-णियोद० सत्तएणं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। पत्तेगे कायट्ठिदी। अणु० ओघं। आयु० उक्क० जह० बावीसं वस्ससहस्साणि सत्तवस्ससह० तिण्णि रादिंदियाणि तिण्णि वस्ससह० दसवस्ससह० अंतो० समयू०, उक्क० कायट्ठिदी। अणु० जह० अंतो०, उक्क० भवट्ठिदी सादिरे०। एवमेदेसिं बादराणं। णवरि सत्तएणं कम्माणं

उत्कृष्ट अन्तर तथा आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर तथा इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल मूलमें कही हुई विधिसे ले आना चाहिए। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अपनी-अपनी भवस्थिति प्रमाण कहा है सो इसका कारण यह है कि पूर्व पर्याय में जिस समय उत्कृष्ट आयुबन्ध हुआ, अगली पर्यायमें उसी समय उत्कृष्ट आयुबन्ध होनेपर एक समय कम अपनी-अपनी भवस्थिति प्रमाण जघन्य अन्तर-काल आ जाता है। शेष कथन सुगम है।

१०३. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयु कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी[1] उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सागरोपम-सहस्रप्रमाण, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण, त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरप्रमाण और त्रसकायिकपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति दो हजार सागर प्रमाण है। इस कायस्थितिको ध्यानमें रखकर यहाँ सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल व आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१०४. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर और निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्त-र्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। प्रत्येक वनस्पतिकायिकोंमें उत्कृष्ट अन्तर उनकी कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय कम बाईस हजार वर्ष, एक समय कम सात हजार वर्ष, एक समय कम तीन रात-दिन, एक समय कम तीन हजार वर्ष, दोमें एक समय कम दस हजार वर्ष और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु-हूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक भवस्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार इनके बादरोंमें अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कर्मस्थितिप्रमाण है तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरमें सात

1. ध० पु० ७, पृ० १४२ व १५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० ट्ठिदि० उक्कस्सं कम्मट्ठिदी। बादरवणप्फदि० अंगुलस्स असंखे०। एदेसिं पज्जत्ताणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। आयुग० उक्क० ट्ठिदि० जह० भवट्ठिदी समयू०, उक्क० सगट्ठिदी०। सव्वसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो।

१०५. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क अंतो०। आयुग० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। एवं वेउव्वियका०-आहारका०-कोधादि४। कायजोगि-ओरालि० एवं चेव। णवरि आयु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि सत्तवस्ससहस्साणि सादिरे०। ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहारमि०-कम्मइग०-अणाहारगेसु सत्तण्णं क० उक्क०

कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा इनके पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात हजार वर्ष है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम भवस्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। सब सूक्ष्मकायिकोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति प्रत्येककी असंख्यात लोकप्रमाण है।[1] तथा निगोद जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति ढाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।[2] बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर तथा बादर निगोद इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है।[3] तथा इन सब बादर पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण है।[4] इतनी विशेषता है कि बादर निगोद पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।[5] इन सब सूक्ष्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है और इनके पर्याप्तकोंकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है।[6] इस प्रकार इस कायस्थितिको ध्यानमें रखकर यहाँ आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१०५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी, आहारककायोगी और क्रोधादि चार कषायमें जानना चाहिए। काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक बाईस हजार वर्ष और साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी वैक्रियिकमिश्रकायोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। औदारिकमिश्रकाययोगमें आयुकर्मके उत्कृष्ट

---

१. ध० पु० ७, पृ० १४३। २. ध० पु० ७, पृ० १४८। ३. ध० पु० ७, पृ० १४४ और १४९। ४. ध० पु० ७, पृ० १४६। ५. ध० पु० ७, पृ० १४९। ६. ध० पु० ७, पृ० १४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुक्क० णत्थि अंतरं । आयु० ओरालियमि० उक्क० अणु० बादरएइंदियअपज्जत्त-भंगो । आहारमिस्स० आयु० णत्थि अंतरं ।

१०६. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तएणं कम्माणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं अणंतकालमसंखे० । अणु० ओघं । आयु० तिण्णं वि उक्क० जह० पुव्वकोडिदसवस्ससहस्साणि समयू० । उक्क० अप्पप्पणो कायट्ठिदी । अणु० जह०[1] अंतो०, उक्कस्सेण पणवण्णं पलिदो० सादि० तेत्तीसं-सादि० । अवगद० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० उक्क० अंतो ।

और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका निर्देश बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । तथा आहारकमिश्रकाययोगमें आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—जिस जीवके प्रारम्भमें सात कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर बीचमें एक समयके लिए उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उसके पांचों मनोयोग और पांचों वचन-योगमेंसे कोई एक योगमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है और उपशम श्रेणिपर चढ़कर और पुनः उतरकर विवक्षित योगमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध होता है । इन योगोंमेंसे प्रत्येकका काल इतना अल्प है जिससे इनमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध या दो बार उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट आयुकर्मका बन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका तथा आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरका निषेध किया है । काययोगमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल सम्भव नहीं है;यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि जो पिछली बार काययोगमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध कर चुका है,उसके दूसरी पर्यायमें पुनः उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करने तक बीचमें अनेक बार योगपरिवर्तन होकर मन, वचन और काय तीनों योग हो लेते हैं । हाँ, औदारिककाय-योगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण[2] होनेसे सामान्यसे काययोगमें साधिक बाईस हजार वर्ष प्रमाण तथा औदारिक काययोगमें साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आयुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अवश्य बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

१०६. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर तीनों वेदोंमें क्रमसे सौ पल्य पृथक्त्व[3] सौ सागरपृथक्त्व[4] और असंख्यात पुद्गल परिवर्तनोंमें लगनेवाले कालके बराबर अनन्त काल[5] है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है । तीनों ही वेदोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम एक पूर्वकोटि और दस हजार वर्ष है । तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर स्त्रीवेदमें साधिक पचपन पल्य तथा शेष दो वेदोंमें साधिक तेतीस सागर है । अपगतवेदमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्यपृथक्त्व, सौ सागरपृथक्त्व और अनन्त काल है । इसीसे यहाँ सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उक्त

1. मूलप्रतौ जह० जह० अंतो इति पाठः । 2. ध० पु० ७, पृ० १५३ ।
3. ध० पु० ७, पृ० १५६ । 4. ध० पु० ७, पृ० १५७ । 5. देखो ध० पु० ७, पृ० १५८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७. मदि०-सुद०-असंज०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि० मूलोघं। विभंगे सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। अणु० ओघं। आयु० णिरयोघं। आभि०-सुद० ओधि० सत्तण्णं कम्मा० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं। आयु[1]० उक्क० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० छावट्ठिसाग० देसू०। अणु० ओघं। एवं ओधिदं०-सम्मादि०। मणपज्जव० सत्तण्णं क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जहण्णु० अंतो०। आयु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतो०, उक्कस्सेण पुव्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजदाणं। सामाइ०-छेदो०-परिहार० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आयु० मणपज्जवभंगो। एवं संजदासंजदा०।

प्रमाण कहा है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल ओघ प्ररूपणामें जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं, उस प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी अपेक्षा उत्कृष्ट नरकायुका और स्त्रीवेद तथा पुरुषवेदकी अपेक्षा उत्कृष्ट देवायुका बन्ध कराके यह अन्तर काल लाना चाहिए। स्त्रीवेदी जीवकी उत्कृष्ट भवस्थिति पचपन पल्यप्रमाण और पुरुषवेदी व नपुंसकवेदीकी उत्कृष्ट भवस्थिति तेतीस सागर प्रमाण होनेसे आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर स्त्रीवेदमें साधिक पचपन पल्य तथा पुरुषवेद और नपुंसकवेदमें साधिक तेतीस सागर कहा है। अपगतवेदमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उपशमश्रेणीसे उतरते समय होता है। तथा इसके बाद वह सवेदी हो जाता है। इससे अपगतवेदमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा मरणके बिना उपशान्त मोहका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०७. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल मूलोघके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर[2] है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान है। तथा आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर सामान्य नारकियोंके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक पल्यप्रमाण[3] है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर[4] है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंमें जानना चाहिये। सामायिक संयत छेदोपस्थापना संयत और परिहारविशुद्धि संयतोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

१. मूलप्रतौ आयु० जह० उक्क० जह० इति पाठः। २. ध० पु० ७, पृ० १६३। ३. तत्त्वा०, अ० ४ सू० ३३। ४. ध० पु० ७, पृ० १८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमसंप० छण्णं कम्मा० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं।

१०८ चक्खुदंसणी० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं।

१०९ किण्ण-णील-काउ० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० सत्तारस-सत्तसागरो० देसू०। अणु० ओघं। आयु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो, उक्क० छम्मासं देसूणं। तेउ-पम्माए सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बे अट्ठारस सागरो० सादिरे०। सेसं देवोघं। सुक्काए सत्तण्णं

आयुकर्मका भंग मनःपर्ययज्ञानके समान है। इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिए। सूक्ष्मसाम्पराय- शुद्धिसंयतोंमें छह कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—विभङ्ग ज्ञानका उत्कृष्ट काल सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाले नारकीके कुछ कम तेतीस सागर होता है। इसीसे इसमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके सम्मुख हुए अविरत सम्यग्दृष्टिके होता है। यही कारण है कि इनमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। सौधर्म और ऐशान कल्पकी जघन्य स्थिति साधिक पल्यप्रमाण होती है। इसीसे इन तीन ज्ञानोंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक पल्यप्रमाण कहा है। भवनत्रिकमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद नहीं होता, इसलिए इससे कम अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता। मात्र यहाँ पूर्व-कोटिके आयुवाले मनुष्यके प्रथम त्रिभागमें तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट आयुका बन्ध करावे। पुनः अपकर्षण द्वारा आयुको साधिक पल्यप्रमाण स्थापित कराके सौधर्म और ऐशान कल्पमें उत्पन्न करावे। अनन्तर पुनः पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न कराके प्रथम त्रिभागमें तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयुका बन्ध कराके यह अन्तरकाल ले आवे। इनमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो कुछ कम छयासठ सागरप्रमाण कहा है सो यह वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रखकर कहा है। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कराके प्रारम्भमें और अन्तमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करानेसे यह अन्तरकाल प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

१०८. चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रस पर्याप्तकोंके समान भंग है और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान है।

विशेषार्थ—त्रस पर्याप्तकोंके समान चक्षुदर्शनी जीवोंकी कायस्थिति है, इसलिये इनमें आठ कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल त्रसपर्याप्तकोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१०९. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। पीत और पद्मलेश्यामें सात कर्मोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। शेष अन्तर सामान्य देवोंके समान है। शुक्ल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क० उक्क०बं० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि०। अणुक्क० ओघं। आयु० देवभंगो तिण्णं पि।

११० खइगस० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। अणु० ओघं। आयु० उक्क० णत्थि अंतरं। [अणुक्क० पगदिअंतरं।] वेदग० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आयु० उक्क० जह० पलिदो० सादिरे०, उक्क० छावट्ठिसाग० देसू०। अणु० पगदिअंतरं। उवसमस० सत्तण्णं क० ओधिभंगो। सासणस० सम्मामि० अट्ठण्णं क० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं।

लेश्यामें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मका भंग तीनों ही लेश्याओं में सामान्य देवोंके समान है।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कापोत लेश्याका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है। इसीसे इन लेश्याओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। मात्र नील और कापोत लेश्यामें यह कुछ कम उपलब्ध होता है। इन लेश्याओंका इतना बड़ा काल नरकमें ही उपलब्ध होता है और नरकमें आयुकर्मका बन्ध अधिकसे अधिक छह माह काल शेष रहनेपर होता है। इसीसे इन लेश्याओंमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम छह माह कहा है। पीत और पद्मलेश्याका उत्कृष्ट काल क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है। तथा शुक्ललेश्याका काल यद्यपि साधिक तेतीस सागर है,पर शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सहस्रार कल्पमें ही होता है।यही कारण है कि इन तीन लेश्याओंमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमसे साधिक दो सागर,साधिक अठारह सागर और साधिक अठारह सागर कहा है।

११०. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृति बन्धके अन्तरके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक पल्यप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिअन्तरके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंका अन्तर अवधिज्ञानीके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें क्रमसे आठ और सात कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—क्षायिकसम्यग्दृष्टिके अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे सात कर्मोंका अपने योग्य उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है। कारण कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध इससे कम अन्तरकाल से नहीं होता। तथा इसके साधिक तेतीस सागरके अन्तरसे भी सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है। कारण कि क्षायिक सम्यग्दर्शनके होने पर यह जीव संसारमें साधिक तेतीस सागर कालसे अधिक काल तक नहीं रहता। यतः यह जीव क्षायिकसम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेके प्रारम्भमें और अन्तमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करे और मध्यमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता रहे, तो यह अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है। यही कारण है कि इसके सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१११ सरिण० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असरिण० सत्तरणं क० मूलोघं । आयु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादिरे० ।

११२. आहार० सत्तरणं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे । अणु० ओघं । आयु० ओघं । णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा । एवं उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं समत्तं ।

११३. जहण्णए पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तरणं कम्माणं जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयु०-जह० जह० खुद्दाभव० समयूणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि सादि० । अज० जह०

अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। क्षायिकसम्यक्त्वमें देवायुके प्रकृतिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर एकपूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण कह आये हैं। वही यहां अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहां आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान कहा है।शेष कथन सुगम है।

१११. संज्ञी जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके स्थितिबन्धका अन्तर मूलोघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ सागरपृथक्त्व है। यही संज्ञियोंकी कायस्थिति है।[1] इसीसे यहां संज्ञियोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान कहा है। मूलोघ प्ररूपणामें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंज्ञियोंकी मुख्यतासे कहा है। यही कारण है कि यहां सात कर्मोंके स्थितिबन्धका अन्तरकाल मूलोघके समान घटित हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

११२. आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिबंधका अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—आहारकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है। यहां इससे असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल लिया गया है। यही कारण है कि सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबन्धान्तर समाप्त हुआ।

११३. अब जघन्य अन्तरकालका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुद्रक भवप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु-

---

१. देखो ध० पु० ७,पृ. १८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरे० । एवं अचक्खुदं०-भवसि० ।

११४. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० जह० अज० णत्थि अंतरं । आयु० जह० णत्थि अंतरं । अज० उक्कस्सभंगो । एवं पढमपुढवि-देवोघं-भवण०-वाणवें० । एवं चेव विदियाए याव सत्तमि त्ति । णवरि सत्तण्णं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अजहण्णा० अणुक्कस्सभंगो ।

हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरका निषेध किया है। जो जीव उपशमश्रेणिमें सात कर्मोंका एक समयके लिए अबन्धक होकर दूसरे समयमें मरणकर पुनः उनका बन्ध करने लगता है, उसके सात कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल उपलब्ध होता है और जो अन्तर्मुहूर्तके लिए अबन्धक होकर पुनः उनका बन्ध करता है, उसके सात कर्मोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रक भवग्रहण प्रमाण है। एक जीवने पूर्व भवमें जघन्य आयुका बन्ध किया। पुनः वही जीव दूसरे भवमें उसी समय जघन्य आयुका बन्ध करता है। इसीसे आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुद्रकभवग्रहण प्रमाण कहा है। त्रस पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दो हजार सागर है। किसी जीवको इतने कालतक जघन्य आयुका बन्ध नहीं होता। यही कारण है कि जघन्य आयुके स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक दो हजार सागर कहा है। जघन्य स्थितिबन्धके सिवा अजघन्य स्थितिबन्ध है। इसका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। इसी से यहाँ आयुकर्मके अजघन्य स्थितिबन्धका यह अन्तर काल कहा है। आगे जहाँ ओघके समान अन्तर काल आवे, उसे इसी प्रकार घटित करना चाहिए।

११४. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और वानव्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञीचर जीवके प्रथम और द्वितीय समयमें सम्भव है और इसके बाद अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। तथा जो असंज्ञीचर नहीं है, उसके सर्वदा अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे सामान्यसे नरकमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे जघन्य आबाधा कालके रहने पर होता है। इसके बाद पुनः आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। यही कारण है कि यहाँ आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका भी निषेध किया है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है, यह स्पष्ट ही है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

११५. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० ओघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० पलिदोव० असंखे०। अज० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० जह० जह० अंतो, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अज० ओघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अज० अणुक्कस्सभंगो। णवरि पज्जत्त-जोणिणीसु आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। पंचिंदियतिरिक्खअप-ज्जत्त० सत्तण्णं क० जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० ओघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० अंतो०। अज० जहण्णु० अंतो०। एवं सव्वअपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च। णवरि मणुसअपज्जत्त० सत्तण्णं क० जह० अज० णत्थि अंतरं। मणुस०३ सत्तण्णं क० जह० अजह० णत्थि अंतरं। आयु० पंचिंदियतिरिक्ख भंगो। जोदिसिय याव सव्वट्ठ त्ति उक्कस्सभंगो।

यतः असंज्ञी जीव प्रथम नरकमें तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें उत्पन्न होता है, अतः प्रथम नरक, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सामान्य नरकके समान प्ररूपणा बन जाती है। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें सामान्य नरकके समान अन्तरकाल कहा है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध कभी भी सम्भव है। इसीसे इनमें जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

११५. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य प्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयु-कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्त और योनिनी जीवोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और स्थावर सब अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्या-प्तकोंके सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके स्थितिबन्ध-का अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक अन्तर उत्कृष्टके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११६. एइंदिएसु सत्तएणं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० ओघं। आयुग० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससह० सादिरे०। बादरएइंदिय० सत्तएणं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० ओघं। सेसं तं चेव। बादरपज्जत्ते सत्तएणं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अज० ओघं। आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। सव्वबादरे पज्जत्त० आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। सुहुमेइंदि० सत्तएणं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० ओघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अज० जहएणुक्क० अंतो। पज्जत्ते सत्तएणं क० अपज्जत्तभंगो। आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

विशेषार्थ—यद्यपि तिर्यञ्च सामान्यकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त कालप्रमाण है, पर यह सब तिर्यञ्चोंकी है। इसीसे इनमें जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उनकी कायस्थितिप्रमाण न कहकर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है; क्योंकि जो तिर्यञ्च सूक्ष्म एकेन्द्रिय होकर परिभ्रमण करते हैं, उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण होती है और इनमें सामान्य तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे जघन्य आयुका बन्ध अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक नहीं होता। इसीसे इनमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें काल प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

११६. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। शेष अन्तर वही है। बादर पर्याप्तके सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। सब बादर पर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समयकम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अपर्याप्तकोंके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११७. बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० अट्ठण्णं कम्माणं उक्कस्सभंगो। आयु० जह० जह० ओघं। उक्कस्सं सगट्ठिदी। अज० अणुक्कस्सभंगो। एवं पज्जत्ता०। णवरि आयु० जह० णत्थि अंतरं।

११८. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं कम्माणं मूलोघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयूणं, उक्क० सगट्ठिदी। पज्जत्ते णत्थि अंतरं। अज० ओघं।

विशेषार्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी बातको ध्यानमें रखकर एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालका खुलासा सामान्य तिर्यञ्चोंकी प्ररूपणाके समय कर ही आये हैं। एकेन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। इसीसे इनके आयुकर्मके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्षप्रमाण कहा है। बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे इनमें आठों कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। यही कारण है कि इनके सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। इनके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध होने पर मर कर ये बादर पर्याप्त नहीं होते। इसीसे इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट ही है; किन्तु यहाँ और सर्वत्र इतना विशेष समझना चाहिए कि जहाँ जिसकी कायस्थिति आदिप्रमाण अन्तरकाल कहा है वहाँ उस स्थितिके प्रारम्भ और अन्तमें विवक्षित स्थितिका बन्ध कराकर इस प्रकार अन्तरकाल ले आवे।

११७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्ट के समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार इनके पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय आदि पर्याप्तकोंके जघन्य आयु क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण बँधती है, जिससे वे भवान्तरमें पर्याप्त नहीं रहते। इससे इनमें जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता। यही कारण है कि इनमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन स्पष्ट है।

११८. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा सबके अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्व है, त्रस कायिकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है और त्रसकायिक पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति दो हजार सागर है। इसे ध्यानमें रखकर इन चारोंमें आयुकर्मके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११९. पुढवि०आउ०-तेउ-वाउ-वणप्फदि-पत्तेग० सत्तण्णं क० उक्कस्सभंगो। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयूणं, उक्क० पलिदो० असंखे०। पज्जत्तगे णत्थि अंतरं। अजह० पगदिअंतरं। णिगोदेसु सत्तण्णं कम्माणं एइंदियभंगो। आयुग० सुहुमेइंदियभंगो। बादरणिगोद० सत्तण्णं कम्माणं जह० जह० अंतो, उक्क० कम्मट्ठिदी। अज० ओघं। आयु० जह० [जह०] खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अज० जहण्णु० अंतो०। बादरणिगोदपज्ज० बादरपज्जत्तभंगो। सुहुमणिगोद० सत्तण्णं क० जह० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अज० अणुक्कस्सभंगो। सुहुमणिगोदपज्जत्ता० सुहुमएइंदियपज्जत्तभंगो।

१२० पंचमण०-पंचवचि० जह० अज० णत्थि अंतरं। एवं कोधादि०४। णवरि लोभे मोहणी० ओघं।

स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। इनके पर्याप्तकोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालके निषेधका वही कारण है जो द्वीन्द्रिय आदि पर्याप्तकोंमें अन्तरकालका कथन करते समय बतला आये हैं। शेष कथन सुगम है।

११९. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और वनस्पति प्रत्येकशरीर जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भव ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इनके पर्याप्तकोंमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है। तथा आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है। बादर निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कर्मस्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। बादर निगोद पर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। सूक्ष्म निगोद जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है।

१२०. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें मोहनीयका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—लोभकषाय दसवें गुणस्थानतक होता है, इसलिए इसमें ओघके समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२१. कायजोगि० सत्तण्णं क०[1] ओघं। ओरालियका० सत्तण्णं क० मणजोगिभंगो। आयु० उक्कस्सभंगो। ओरालियमिस्स० सत्तण्णं क० उक्कस्सभंगो। आयु० मणुसअपज्जत्तभंगो। वेउव्वियका० सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० जह० अजह० णत्थि अंतरं। एवं आहारकायजो०। वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० आहारमि० अट्ठण्णं क० कम्मइ०—अणाहार० सत्तण्णं क० जह० अजह० णत्थि अंतरं।

१२२. इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० सत्तण्णं क० जह० अजह० णत्थि अंतरं। आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्कस्सभंगो। णवरि णवुंस० आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयूणं, उक्कस्सं सागरोवमसदपुधत्तं। अवगद० सत्तण्णं० क० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

मोहनीय कर्मके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

१२१. काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओधके समान है। औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल मनोयोगियोंके समान है। तथा आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। तथा आयुकर्मका भङ्ग मनुष्य-अपर्याप्तकोंके समान है। वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आहारककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंके तथा कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

१२२. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। अपगतवेदमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। नपुंसकवेदमें आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण बतलानेका कारण यह है कि इतने कालतक यह जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यायमें रह सकता है जिससे इसके योग्य आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध न हो। इसके बाद यह एकेन्द्रिय पर्यायमें जाकर यथायोग्य काल आनेपर जघन्य आयुका बन्ध करता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१. मूलप्रतौ ओघं एइंदियभंगो। ओरालियका० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. मदि-सुदअण्णा० सत्तण्णं क० तिरिक्खोघं। आयु० मूलोघं। एवं असंजद०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि त्ति। विभंगे णिरयोघं। आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० जह० जह० पलिदो० सादिरे०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादि०। अज० अणुक्कस्सभंगो। एवं ओधिदं०-सम्मादिट्ठि०। मणपज्जव०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप०-संजदासंजदा० उक्कस्सभंगो। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो।

१२४. छण्णं लेस्साणं सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० उक्कस्सभंगो। णवरि तेउ-पम्माणं यदि दंसणमोहखवगस्स दिज्जदि सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

१२५. खइग० सत्तण्णं क० ओघं। आयु० जह० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। वेदगस० सत्तण्णं क० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

---

१२३. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल मूलोघके समान है। इसी प्रकार असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। विभङ्गज्ञानमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान है। आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धि संयत, सूक्ष्मसाम्पराय संयत और संयतासंयत जीवोंमें इनके उत्कृष्टके समान अन्तरकाल है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

१२४. छह लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि पीत और पद्मलेश्यामें यदि दर्शन मोहनीयकी क्षपणा होती है, तो इनमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल तो नहीं ही है, पर अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पहले जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश कर आये हैं। वहाँ पीत और पद्मलेश्यामें जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी दो प्रकारका जीव बतलाया है—एक प्रमत्तसंयत जीव और दूसरा दर्शन मोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल दो प्रकारसे कहा है। शेष कथन सुगम है।

१२५. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० उक्कस्सभंगो। अज० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। उवसमस०-सासण०-सम्मामि० उक्कसभंगो। सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णि० सत्तण्णं क० तिरिक्खोघं। आयु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादिरे०। आहाराणुवादेण आहारा० अट्ठण्णं कम्माणं ओघं। एवं बंधंतरं समत्तं।

बंधसण्णियासपरूवणा

१२६. बंधसण्णियासं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो छण्णं कम्माणं णियमा बंधगो। तं तु उक्कस्सा वा अणुकस्सा वा। उक्कस्सादो अणुकस्सा समयूणमादिं कादूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागूणं बंधदि। आयुगस्स सिया बंधगो सिया अबंधगो, णियमा उक्कस्सा। आबाधा पुण भयणिज्जा। एवं छण्णं कम्माणं। आयुगस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो सत्तण्णं कम्माणं णियमा बंधगा। तं तु उक्कस्सा वा अणुकस्सा वा, उकस्सादो अणुकस्सा तिट्ठाणपदिदं बंधदि—असंखे-

---

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सभी कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। संज्ञी जीवोंमें आठों कर्मोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है। आहार मार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें आठों कर्मोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है।

इस प्रकार बन्धान्तर समाप्त हुआ।

बन्धसन्निकर्षप्ररूपणा

१२६. बन्ध सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा ज्ञानावरणीयकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला छह कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है, परन्तु उसे उत्कृष्ट बांधता है या अनुत्कृष्ट बाँधता है। यदि अनुत्कृष्ट बांधता है, तो उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समयसे लेकर पल्यका असंख्यातवां भाग न्यूनतक बांधता है। यह जीव आयु कर्मका कदाचित् बन्धक होता है और कदाचित् बन्धक नहीं होता है। यदि बन्धक होता है तो नियमसे उत्कृष्ट बांधता है, परन्तु आबाधा भजनीय होती है। इसी प्रकार छह कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है। परन्तु उसे उत्कृष्ट बांधता है अथवा अनुत्कृष्ट बांधता है। यदि अनुत्कृष्ट बांधता है तो उत्कृष्टकी अपेक्षा वह तीन स्थान पतित बांधता है। असंख्यातवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्जदिभागहीणं वा संखेज्जदिभागहीणं वा संखेज्जगुणहीणं वा। एवं ओघभंगो तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख०३-मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०–पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि-सुद०-विभंगणा०-असंजद०-चक्खुदं०-[अचक्खुदं०-] किण्णले०–भवसि०--अ०भवसि०–मिच्छादि०–सण्णि०–आहारग त्ति।

१२७. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णवरि आयु० ण बंधदि। आयु० उक्क० बंधंतो सत्तण्णं क० णियमा बंधगो। णियमा अणु०

भाग हीन बांधता है अथवा संख्यातवां भाग हीन बांधता है अथवा संख्यात गुणहीन बांधता है। इस प्रकार ओघके समान तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रिय द्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थको मिलाकर विचार करना सन्निकर्ष है। यहाँ बन्धका प्रकरण है और सामान्यसे आठों कर्मोंके स्थितिबन्धका विचार चल रहा है, इसलिए इस सन्निकर्ष अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि किस-किस कर्मका कितना स्थितिबन्ध होनेपर अन्य किन कर्मोंका कितना स्थितिबन्ध होता है। पहिले ओघसे विचार किया गया है। सब कर्म आठ हैं, उनमेंसे ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर आयुके सिवा अन्य शेष छह कर्मोंका स्थितिबन्ध नियमसे होता है। कारण कि ज्ञानावरणीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वमें होनेसे वहाँ दर्शनावरणादि शेष छह कर्मोंका भी बन्ध होता है। यह तो मानी हुई बात है कि एक कर्मके स्थितिबन्धके योग्य उत्कृष्ट परिणाम होने पर अन्य कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम हों अथवा न भी हों, इसलिए जब ज्ञानावरणीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, तब अन्य छह कर्मोंका स्थितिबन्ध उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है। यही बात दर्शनावरण आदिकी अपेक्षासे भी जान लेनी चाहिए। यह बात सुनिश्चित है कि आयुकर्मका बन्ध त्रिभागके पहिले नहीं होता, त्रिभागमें भी यदि आयुबन्धके योग्य परिणाम होते हैं तो ही होता है; अन्यथा नहीं, इसलिए जो जीव ज्ञानावरणकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, वह आयुकर्मका स्थितिबन्ध करता भी है और नहीं भी करता है। यदि करता है तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ही करता है; अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है। अब रहा आयुकर्म, सो आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है, यह तो सुनिश्चित है। केवल देखना यह है कि शेष कर्मोंकी स्थिति कितनी बँधती है सो यह बात उन-उन कर्मोंके बन्धके योग्य परिणामों पर निर्भर है, इसलिए यहाँ यह बतलाया है कि आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति भी बाँधता है अथवा अनुत्कृष्ट स्थिति भी बाँधता है। यहाँ कुछ अन्य मार्गणाएँ गिनाई हैं, जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है। यहाँ इन मार्गणाओंके संकलनमें इस बातका ध्यान रक्खा गया है कि जिन मार्गणाओंमें आठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है, वे मार्गणायें ही यहाँ ली गई हैं।

१२७. आदेशसे नरक गतिमें नारकियोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सन्निकर्ष ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। आयुकर्मका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणहीणं बंधदि। एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-पंचिंदिय-तसअपज्ज०-ओरालियमि०-वेउव्वियका०-आहारका०-आहारमि०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओधिदं०-णील०-काउ०-तेउ०-पम्म०-सुक्कलेस्सा-सम्मादिट्ठि-खइगस०-वेदगस०-सासण०। उवसम० सत्तण्णं क०।

१२८. एइंदिएसु सत्तण्णं क० ओघं। आयुगं ण बंधदि। आयुग० उक्क० बंधंतो सत्तण्णं क० णियमा अणु०। उक्क० अणु० असंखेज्जभागहीणं बंधदि। एवं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं णिगोदाणं च। णवरि विगलिंदिएसु आयु० उक्क० बंधंतो सत्तण्णं क० संखेज्जभागहीणं बंधदि।

१२९. वेउव्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहार० सत्तण्णं० क० मूलोघं

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है। परन्तु नियमसे संख्यातगुणी हीन अनुत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके सात कर्मोंका इसी प्रकार सन्निकर्ष है।

विशेषार्थ—एक उपशम सम्यग्दृष्टि मार्गणाको छोड़कर यहाँ कही गई शेष सब मार्गणाओंमें सात या आठ कर्मोंका बन्ध सम्भव है। किन्तु इन मार्गणाओंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणामोंके होने पर आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। और यह बात उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश करनेवाले अनुयोगद्वारसे भली भांति जानी जा सकती है।

१२८. एकेन्द्रिय जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सन्निकर्ष ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यह आयुकर्मका बन्ध नहीं करता। आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंका नियमसे अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है। तथापि उत्कृष्टकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातवें भागहीन करता है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पाँच स्थावरकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रियोंमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंकी स्थिति अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा संख्यातवें भागहीन बाँधता है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियों और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सात कर्मोंमेंसे प्रत्येकके स्थितिबन्धके कुल भेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और विकलत्रयोंमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसलिए एकेन्द्रियों और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धिके समान असंख्यात भागहानि ही सम्भव है तथा विकलत्रयोंमें दो वृद्धियोंके समान दो हानियाँ भी सम्भव हैं। यही कारण है कि यहाँ उक्त जीवोंमें इस बातको ध्यानमें रखकर सन्निकर्षका निर्देश किया है।

१२९. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० वज्ज० । अवगद० णाणावर० उक्क० बंधंतो छण्णं कम्माणं णियमा बंधगो । णियमा उक्कस्सा । एवं छण्णं कम्माणं । एवं सुहुमसंप० छण्णं क० ।

१३०. असण्णि० सत्तण्णं कम्माणं ओघं । आयु० उक्क० सत्तण्णं कम्माणं णियमा बंधगो । तं तु उक्क० अणु०[1] विट्ठाणपदिदं बंधदि—असंखेज्जभागहीणं संखेज्जभागहीणं वा । एवमुक्कस्सओ बंधसण्णियासो समत्तो ।

१३१. जहण्णए पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण णाणावरणीयस्स जहण्णं ट्ठिदिं बंधंतो पंचण्णं कम्माणं णियमा बंधदि । णियमा जहण्ण० । दोण्णं पगदीणं अबंधगो[2] । मोह० जहण्णट्ठिदिबंधगो

जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सन्निकर्ष मूलोघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता । अपगतवेदमें ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव छह कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है । तथा नियमसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्धक होता है । इसी प्रकार शेष छह कर्मोंके आश्रयसे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयतके छह कर्मोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ ग्रहण की हैं, उन सबमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, यह स्पष्ट है । अपगतवेद और सूक्ष्मसाम्परायमें एक समयका परिणाम एक-सी विशुद्धिको लिये हुए होता है, इसलिए एक कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर सबका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है । यही कारण है कि यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके सन्निकर्षका विधान नहीं किया । तथा मोहनीयका बन्ध नौवें गुणस्थान तक ही होता है, इसलिए सूक्ष्मसाम्परायमें मोहनीयके बिना छह कर्मका सन्निकर्ष कहा है ।

१३०. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका सन्निकर्ष ओघके समान है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला सात कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है । किन्तु उसे अनुत्कृष्ट बाँधता है जो उत्कृष्टकी अपेक्षा दो स्थानपतित बाँधता है । या तो असंख्यातवाँ भागहीन बाँधता है या संख्यातवाँ भागहीन बाँधता है ।

विशेषार्थ—असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक जीव लिये गए हैं । जो द्वीन्द्रियादिक जीव हैं वे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते समय शेष कर्मोंका अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे संख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं और जो एकेन्द्रिय जीव हैं वे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते समय अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे असंख्यात भागहीन अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं । इसीसे असंज्ञी जीवोंमें उक्त प्रकारसे सन्निकर्ष कहा है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट बन्धसन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

१३१. अब जघन्य सन्निकर्षका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला पाँच कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है । जो नियमसे जघन्य स्थितिका बन्धक होता है और दो प्रकृतियोंका अबन्धक होता है । मोहनीयकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला

१. मूलप्रतौ अणु० बंधदि विट्ठाण-इति पाठः । २. मूलप्रतौ अबंधगो एवं पंचिंदि० जहण्णुक्क० मोह० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

छरणं क० णियमा बं० । णियमा अज० । जह० अज० संखेज्जगुणब्भहियं बंधदि । आयुगं ण बंधदि । आयु० जह० द्विदि० बंधंतो सत्तरणं कम्माणं णियमा बंधदि । णियमा अज० । जह० अज० असंखेज्जगुणब्भहियं बंधदि । एवं ओघभंगोमणुस० ३-पंचिंदिय-तस० २-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालियका०-इत्थिवे०--पुरिसवे०-णवुंस०-अवगदवे०-कोधादि०४-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्जव०--संजदा-चक्खुदं०-अचक्खुदं-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइगस०-उवसम०-सरिण--आहारग त्ति । णवरि इत्थिवे० णाणाव० जह० छरणं कम्माणं णियमा जहरणा। आयुगं ण बंधदि । एवं छरणं कम्माणं । एवं पुरिस०-णवुंस०-कोध-माण-मायाकसायाणं ।

१३२. आदेसेण णिरएसु णाणावरणीयं जह० द्विदी बं० छरणं क०

जीव छह कर्मोका नियमसे बन्धक होता है, किन्तु अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। जो अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिकी अपेक्षा संख्यातगुणी अधिक बाँधता है। यह आयुकर्मको नहीं बाँधता। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोका नियमसे बन्धक होता है। किन्तु अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। जो जघन्यकी अपेक्षा अजघन्य स्थिति असंख्यातगुणी अधिक बाँधता है। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदमें ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला छह कर्मोकी नियमसे जघन्य स्थितिका बन्धक होता है। किन्तु यह आयुकर्मको नहीं बाँधता। इसी प्रकार छह कर्मोकी अपेक्षा जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोधकषाय, मानकषाय और मायाकषायवाले जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरणादि छह कर्मोका जघन्य स्थितिबन्ध होता है और मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक अनिवृत्तिकरणमें होता है, किन्तु तब शेष छह कर्मोका अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। तथा आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है। इसी बीजपदको ध्यानमें रखकर यहां ओघसे सन्निकर्ष कहा है। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमेंसे कुछ को छोड़कर शेष सब मार्गणाओंमें यथासम्भव यह ओघप्ररूणा बन जाती है। किन्तु जिन मार्गणाओंमें कुछ विशेषता है, उसे जानकर उस मार्गणामें उतनी विशेषता कहनी चाहिए। उदाहरणार्थ, उपशमसम्यग्दृष्टि मार्गणामें उपशम श्रेणिकी अपेक्षा ज्ञानावरण आदिका स्थितिसन्निकर्ष कहना चाहिए और इसमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता; इस लिए इसकी अपेक्षासे सन्निकर्षका कथन नहीं करना चाहिए। स्त्रीवेद आदि मार्गणाओंमें जो विशेषता है, वह अलगसे कही ही है।

१३२. आदेशसे नारकियोंमें ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णियमा० । तं तु जहण्णा[1] वा०२ समउत्तरमादिं कादूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागब्भहियं बंधदि । आयु० अबंधगा । एवं छण्णं कम्माणं । आयु० जह० ट्ठिदि० बं० सत्तण्णं क०[2] णियमा० अज० संखेज्जगुणब्भहियं बंधदि । एवं सव्वणिरय-मणुसअपज्जत्त-सव्वदेव-वेउव्वियकायजोगि-आहारका०-आहारमि०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद०-तेउ०पम्म०-वेदग०-सासण त्ति ।

१३३. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० णिरयभंगो । आयु० जह० ट्ठिदि०बं० सत्तण्णं क० णियमा अज०[3] तिट्ठाणपदिदं—असंखेज्जभागब्भहियं वा [संखेज्जभागब्भहियं वा] संखेज्जगुणब्भहियं वा बंधदि । एवं पंचिंदियतिरिक्ख०४ । णवरि जह० ट्ठिदि० बं० सत्तण्णं क० णियमा० अज० विट्ठाणपदिदं—संखेज्जदिभागब्भहियं वा संखेज्ज-

कर्मोंका नियमसे बन्धक होता है। किन्तु उनकी जघन्य स्थितिका बन्धक होता है अथवा अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। यदि अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है, तो एक समयसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक स्थितिका बन्धक होता है। यह जीव आयुकर्मका अबन्धक होता है। इसी प्रकार छह कर्मोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिए। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मोंकी नियमसे अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। उसका बन्धक होता हुआ भी जघन्यकी अपेक्षा नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। इसी प्रकार सब नारकी, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अन्य कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध होते समय आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध नहीं होता और आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध होते समय अन्य कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध नहीं होता, यह सामान्य नियम है जो ओघ और आदेश दोनों प्रकारसे घटित होता है। इसलिए आयुकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके साथ अन्य कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका सन्निकर्ष घटित नहीं होता; यह स्पष्ट ही है। साथ ही श्रेणिके सिवा अन्यत्र शेष सात कर्मोंमेंसे किसी एककी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्य कर्मकी अजघन्य स्थितिका ही बन्ध करता है; यह भी नियम है। इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर यहाँ उक्त प्रकारसे सन्निकर्ष कहा है।

१३३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका सन्निकर्ष नारकियोंके समान है। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मकी नियमसे तीन स्थानपतित अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। जो या तो असंख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है या संख्यातवाँभाग अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है अथवा संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव सात कर्मकी नियमसे दो स्थानपतित अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। वह

१. जहण्णा वा ४ सम-इति पाठः । २. मूलप्रतौ क० णियमा० णियमा० अज० इति पाठः । ३. अज० बिट्ठाणपदिदं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणब्भहियं वा। एवं पंचिंदिय-तसअपज्जत्ता०। तिरिक्खोघभंगो ओरालियमि०-मदि०-सुद०-असंजद०-किएण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असरिण त्ति। एवं चेव एइंदिय०-वेइंदिय०-तेइंदि०-चदुरिंदिय०-पंचका०-णिगोदाणं च। णवरि एइंदिय-थावरकाएसु आयु० जह० द्विदिबं० सेसं असं०भागब्भहियं बंधदि। विगलिंदि० संखेज्जदिभागब्भहियं बंधदि।

१३४. वेउव्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहार० आयु० वज्ज णिरयभंगो। अवगदवे० सत्तएणं क० सुहुमसंप० छएणं कम्माणं ओघं। एवं जहएणसएिणयासो समत्तो। एवं बंधसएिणयासो समत्तो।

णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा

१३५. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुविधं—जहएणयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। तत्थ इमं अट्ठपदं—ये णाणावरणीयस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए बंधगा जीवा ते अणुक्कस्सियाए अबंधगा। ये अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए बंधगा जीवा ते उक्कस्सि-

---

या तो संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है अथवा संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जानना चाहिए। तथा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय और निगोद जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय और स्थावरकायिक जीवोंमें आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव शेष कर्मोंकी असंख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है तथा विकलेन्द्रियोंमें संख्यातवाँ भाग अधिक अजघन्य स्थितिका बन्धक होता है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवोंका समावेश होता है। इसीसे यहाँ आयुकी जघन्य स्थितिके बन्धके समय शेष कर्मोंका जो बन्ध होता है,वह जघन्यसे अजघन्य तीन स्थानपतित होता है;ऐसा कहा है। एकेन्द्रियों और विकलत्रयके कथनका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है।

१३४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें आयुकर्मके सिवा शेष सन्निकर्ष नारकियोंके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका तथा सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंमें छह कर्मोंका सन्निकर्ष ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ कही गई मार्गणाओंमें आयु कर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ आयुकर्मको छोड़कर ऐसा कहा है। शेष कथन सुगम है। इस प्रकार जघन्य सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

इस प्रकार बन्धसन्निकर्ष समाप्त हुआ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयप्ररूपणा

१३५. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद है—जो ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक जीव होते हैं,वे उसकी अनुत्कृष्ट स्थितिके अबन्धक होते हैं। जो ज्ञानावरणकी अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याए ट्ठिदीए अबंधगा । एवं पगदिं बंधंति तेसु पगदं, अबंधगेसु अव्ववहारो । एदेण अट्ठपदेण दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठण्णं कम्माणं उक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगो य, सिया अबंधगा य बंधगा य । एवं अणुक्कस्से वि । णवरि पडिलोमं भाणिदव्वं । एवमोघभंगो तिरिक्खोघं-कायजोगि-ओरालियकाय०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंसय०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ण०-णीलले०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति । णवरि कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं कम्माणं भाणिदव्वं ।

स्थितिके बन्धक जीव होते हैं,वे उसकी उत्कृष्ट स्थितिके अबन्धक होते हैं । इस प्रकार जो जीव प्रकृतिका बन्ध करते हैं, उनका यहां प्रकरण है । अबन्धकोंका प्रकरण नहीं है । इस अर्थपदकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सब जीव अबन्धक हैं, कदाचित् बहुत जीव अबन्धक हैं और एक जीव बन्धक है तथा कदाचित् बहुत जीव अबन्धक हैं और बहुत जीव बन्धक हैं । इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धमें भी कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वहां इससे प्रतिलोम रूपसे कथन करना चाहिए । इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्गविचय कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—भङ्गविचय शब्दका अर्थ है-भेदोंका वर्गीकरण करना । यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंके अबन्धकोंके साथ किस प्रकार कितने भङ्ग होते हैं,यह बतलाया गया है । आठों कर्मोंकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक जीव कदाचित् एक भी नहीं होता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् नाना होते हैं । तथा इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धक जीव कदाचित् सब होते हैं, कदाचित् एक कम सब होते हैं और कदाचित् नाना होते हैं । इसलिए अबन्धकोंको मिलाकर इनके भङ्ग लानेपर इस प्रकार होते हैं—कदाचित् ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके सब अबन्धक होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अबन्धक होते हैं और एक जीव बन्धक होता है तथा कदाचित् बहुत जीव अबन्धक होते हैं और बहुत जीव बन्धक होते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव बन्धक होते हैं । कदाचित् बहुत जीव बन्धक होते हैं और एक जीव अबन्धक होता है तथा कदाचित् बहुत जीव बन्धक होते हैं और बहुत जीव अबन्धक होते हैं । यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं,उनमें यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है; इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध जहां जो सम्भव हो,वह लेना चाहिए । मात्र कार्मणकाययोग और अनाहारक इन दो मार्गणाओंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें सात कर्मोंकी अपेक्षा भङ्गविचय कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। आयु० उक्क० अणु० अट्ठभंगो। उक्कस्सं अबंधपुव्वं, अणुक्कस्सं बंधपुव्वं। एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-सव्वमणुस्स०-सव्वदेवा०-बेइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि० तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता० पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्तापज्जत्ता०-बादरपुढविकाइय-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-पज्जत्ता० पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्जव-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-चक्खुदं०-ओधिदं०-तेउले०-पम्मले० सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-सण्णि त्ति। णवरि मणुसअपज्जत्त० अट्ठण्णं कम्माणं विवरीदा अट्ठ भंगा कादव्वा। एवं आहार०-आहारमि०-सासण त्ति। एवं चेव वेउव्वियमिस्स०-अवगद०-सुहुमसं० उवसम०-सम्मामि० अप्पप्पगदी०।

१३७. एइंदिए० सत्तण्णं क० उक्क० अणुक्क० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। आयु० ओघं। एवं बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० बादर-पुढविकाइय-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्जत्त० सव्वसुहुमपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-सव्व-

१३६. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंका भङ्गविचय ओघके समान है। आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके आठ भङ्ग होते हैं। उत्कृष्ट स्थितिबन्धके भङ्ग अबन्धपूर्वक कहने चाहिए और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके भङ्ग बन्धपूर्वक कहने चाहिए। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा इन तीनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त, त्रस और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें आठ कर्मोंके विपरीत क्रमसे आठ भङ्ग करने चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके आठ भङ्ग कहने चाहिए। तथा इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भङ्ग कहने चाहिए।

१३७. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अनेक जीव बन्धक हैं और अनेक जीव अबन्धक हैं। आयुकर्मका भङ्गविचय ओघके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सब सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सब सूक्ष्म जलकायिक, सब सूक्ष्म अग्निकायिक, सब सूक्ष्म वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, और सब निगोद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणप्फदि-णिगोदाणं च। पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादर० बादरवणप्फदि-पत्तेय० अट्ठण्णं कम्माणं मूलोघं। एवं उक्कस्सं समत्तं।

१३८. जहण्णगे पगदं। तं चेव अट्ठपदं कादव्वं। तस्स दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं कम्माणं उक्कस्सभंगो। आयु० जह० अजह० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं ओघभंगो पुढवि०-आउ०-तेउ०वाउ० तेसिं चेव बादर० वणप्फदिपत्तेय०-कायजोगि-ओरलियका०-णवुंस-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

जीवोंके जानना चाहिए। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन चारोंके बादर तथा बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंके आठों कर्मोंका भङ्गविचय मूलोघके समान है।

विशेषार्थ—ओघप्ररूपणामें उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अबन्धक होते हैं, कदाचित् नाना जीव अबन्धक होते हैं और एक जीव बन्धक होता है तथा कदाचित् नाना जीव अबन्धक होते हैं और नाना जीव बन्धक होते हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव बन्धक होते हैं, कदाचित् नाना जीव बन्धक होते हैं और एक जीव अबन्धक होता है और कदाचित् नाना जीव बन्धक होते हैं और नाना जीव अबन्धक होते हैं;यह बतला आये हैं। प्रकृतमें आयुकर्मकी अपेक्षा इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार उत्कृष्ट भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१३८. अब जघन्य भङ्गविचयका प्रकरण है। यहाँ अर्थपद पूर्वोक्त ही जानना चाहिए। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंका भङ्गविचय उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अनेक जीव बन्धक हैं और अनेक जीव अबन्धक हैं। इस प्रकार ओघके समान पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इन चारोंके बादर, वनस्पतिकायिक, प्रत्येकशरीर, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां ओघसे सात कर्मोंका भङ्गविचय उत्कृष्टके समान है। सो इस कथन का यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार ओघसे सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्गविचय कह आये हैं, उस प्रकार यहां जघन्य स्थितिबन्धका कहना चाहिए और जिस प्रकार ओघसे सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्गविचय कह आये हैं, उस प्रकार यहां अजघन्य स्थितिबन्धका कहना चाहिए। इसके अनुसार निम्न भङ्ग उपलब्ध होते हैं—कदाचित् सब जीव जघन्य स्थितिके अबन्धक होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अबन्धक होते हैं और एक जीव बन्धक होता है, कदाचित् बहुत जीव अबन्धक होते हैं और बहुत जीव बन्धक होते हैं। अजघन्यकी अपेक्षा—कदाचित् सब जीव अजघन्य स्थितिके बन्धक होते हैं, कदाचित् बहुत जीव बन्धक होते हैं, और एक जीव अबन्धक होता है तथा कदाचित् बहुत जीव बन्धक होते हैं और बहुत जीव अबन्धक होते हैं। आयुकर्मका विचार स्पष्ट है, क्योंकि उसकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके बन्धक और अबन्धक जीव सतत उपलब्ध होते हैं। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं,उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है;इसलिए उनका कथन ओघके समान कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३९. आदेसेण णेरइएसु अट्ठण्णं वि कम्माणं उक्कस्सभंगो । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-तस-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्जत्ताणं पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-इत्थि०-पुरिस०-अवगदवे०-विभंग०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार-सुहुमसंप०-संजदासंजद०-चक्खुदं०-ओधिदंस०-तेउले०-पम्मले०-सुक्कले०-सम्मादिट्ठि-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति ।

१४०. तिरिक्खेसु अट्ठण्णं क० जह० अजह० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं सव्वएइंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय० अपज्जत्ता तेसिं सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० सव्ववणप्फदि-णिगोद-ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्णले०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि-असण्णि-अणाहारग त्ति। एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं ।

१३९. आदेशसे नारकियोंमें आठों ही कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब त्रस, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

१४०. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अनेक जीव बन्धक हैं और अनेक जीव अबन्धक हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, इनके सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इन मार्गणाओंमें सर्वदा जघन्य स्थितिके बन्धक नाना जीव हैं और अजघन्य स्थितिके बन्धक नाना जीव हैं। इसलिए यहां अन्य भङ्ग सम्भव नहीं हैं।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागाभागपरूवणा

१४१. भागाभागं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्णं वि कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो? अणंतभागो। अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगा जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो?[1] अणंता भागा। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि०-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-किण्ण०-णील०-काउले०-भवसि-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहार०-अणाहारग त्ति।

१४२. आदेसेण णेरइएसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० बंध० केव०? असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० बंध० केव०? असंखेज्जा भागा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्जत्त-देव-भवणादि याव सहस्सार त्ति आणद याव अणुत्तरा त्ति सत्तण्णं कम्माणं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तसपज्जत्तापज्जत्त-सव्व-

भागाभागप्ररूपणा

१४१. भागाभाग दो प्रकारका है–जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों ही कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं? अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंका भागाभाग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले कुल जीव असंख्यात होते हैं। और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले अनन्त होते हैं। इस संख्याको ध्यानमें रख कर ही यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भाग प्रमाण कहे गये हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके अनन्त बहु भाग प्रमाण कहे गये हैं। यहाँ पर गिनाई गईं अन्य मार्गणाओंमें यह भागाभाग घटित हो जाता है, इसलिए उनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है।

१४२. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव आयुकर्मके बिना सात कर्मोंके बन्धकी अपेक्षा आनतकल्पसे लेकर अनुत्तर विमानवासी देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त और अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक सब

१. मूलप्रतौ अणंतभागो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढवि०–आउ०–तेउ०–वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०–पंचमण–पंचवचि०–वेउव्विय०–वेउव्वियमि०–इत्थि०–पुरिस०–विभंग०–आभि०–सुद०–ओधि०–संजदासंजद०–चक्खुदं०–ओधिदं०–तेउ०–पम्मले०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसमस०-सासण०–सम्मामिच्छादि०–सण्णि त्ति।

१४३. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अणुक्क० बंध० केव० ? संखेज्जा भागा। एवं सव्वट्ठ–आहार०-आहारमि०-अवगदवे०–मणपज्जव०–संजदा–सामाइ०–छेदो०–परिहार०–सुहुमसं०।

अग्निकायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंका भागाभाग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्यसे आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव संख्यात हैं, फिर भी उत्कृष्टसे अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं। यही कारण है कि यहाँ आठों कर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव सब नारकी जीवोंके असंख्यातवें भाग कहे हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीव सब नारकी जीवोंके असंख्यात बहुभाग प्रमाण कहे हैं। यहाँ गिनाई गई अन्य सब मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसीलिए उनके भागाभागका कथन सामान्य नारकियोंके समान कहा है। मात्र आयुकर्मकी अपेक्षा आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देव, शुक्ललेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टि इन मार्गणाओंमें भागाभागके प्रमाणमें कुछ विशेषता है, जिसका निर्देश आगे करनेवाले हैं। यहाँ मूलमें 'अनुत्तरा' ऐसा पाठ है, इससे पाँच अनुत्तर विमानोंका ग्रहण होना चाहिए, किन्तु सर्वार्थसिद्धिका भागाभाग स्वतन्त्र रूपसे कहा है; इसलिए इस पद द्वारा चार अनुत्तर विमान ही लिए गए हैं। दूसरे सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंकी संख्या संख्यातप्रमाण ही है और यहाँ पर असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंका भागाभाग कहा गया है, इसलिए भी अनुत्तर पदसे यहाँ पर सर्वार्थसिद्धिका ग्रहण नहीं होता है। इस प्रकरणमें उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये दो ऐसी मार्गणाएँ भी गिनाई हैं जिनमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए उनमें सात कर्मोंकी अपेक्षा यह भागाभाग जानना चाहिए।

१४३. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ये सब मार्गणाएँ संख्यात संख्यावाली हैं, इसीलिए उक्त प्रमाण भागाभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. आणद याव अपराजिदा त्ति सुक्कले०-खइग० आयु० सव्वट्ठभंगो ।

१४५. एइंदिएसु सत्तएणं कम्माणं णिरयभंगो । आयु० ओघं । एवं वणप्फदि-णियोदेसु । एवं उक्कस्सं सम्मत्तं ।

१४६. जहण्णगे पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्तएणं कम्माणं जह० अजह० उक्कस्सभंगो । आयु० जह० ट्ठिदिबंध० केवडियो भागो ? असंखेज्जदिभागो । अजह० ट्ठिदि० केवडि० ? असंखेज्जा भागा । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियका०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति ।

बन जाता है । मात्र इनमेंसे अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत इन दो मार्गणाओंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें सात कर्मोंको अपेक्षा भागाभाग जानना चाहिए।

१४४. आनतकल्पसे लेकर अपराजित विमान तकके देव शुक्ल लेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भागाभाग सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान है ।

विशेषार्थ—ये सब मार्गणाएँ यद्यपि असंख्यात संख्यावाली हैं,तथापि इनमें आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें आयुकर्मकी अपेक्षा सर्वार्थसिद्धिके समान भागाभाग हो जाता है ।

१४५. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका भागाभाग नारकियोंके समान है। आयुकर्मका भागाभाग ओघके समान है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यद्यपि ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं, तथापि इनमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अपनी-अपनी जीवराशिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं,इसलिए इनका भागाभाग नारकियोंके समान कहा है । मात्र इनमें आयुकर्मकी अपेक्षा भागाभाग का विचार ओघके समान करना चाहिए, क्योंकि इन मार्गणाओंमें आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण ही होते हैं और शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण जीव अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले होते हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभाग समाप्त हुआ ।

१४६. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भागाभाग उत्कृष्टके समान है । आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहिले उत्कृष्ट भागाभागका विचार कर आए हैं,उसी प्रकार यहाँ भी विचार कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्मकी अपेक्षा इस भागाभागमें कुछ अन्तर है । यहाँ आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सब जीव राशिके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं, इसीलिए आयुकर्मकी जघन्य स्थितिको बाँधनेवाले जीव सब जीवराशिके

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

१४७. मणुसपज्जत्त–मणुसिणीसु आणद याव सव्वट्ठ त्ति आहार०-आहारमि०-अवगदवे०–मणपज्जव०–संजद०–सामाइ०–छेदो०–परिहार०–सुहुमसंप०–सुक्कले०–खइग० जह० अजह० उक्कस्सभंगो। सेसाणं सव्वेसिं सव्वपगदीणं जह० ट्ठिदि० केव०? असं०भागो। अज० ट्ठिदि० केव०? असंखेज्जा भागा। एवं भागाभागा समत्तं।

परिमाणपरूवणा

१४८. परिमाणं दुविधं, जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सगे पगदं। दुविधं—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदिबंध० केवडिया? असंखेज्जा। अणुक्क० ट्ठिदि० केव०? अणंता। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउले०-भवसि०-अब्भवसि०–मिच्छादि०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग त्ति।

असंख्यातवें भागप्रमाण कहे हैं और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण कहे हैं।

१४७. मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, आहारक काययोगी, आहारक मिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, शुक्ललेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भागाभाग उत्कृष्टके समान है। शेष सब मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाएँ कहीं है, उनमेंसे किन्हींकी संख्या संख्यात है, किन्हींकी असंख्यात है और किन्हींकी अनन्त है। जिन मार्गणाओंका भागाभाग उत्कृष्टके समान कहा है, उनमें बहुतोंकी संख्या संख्यात है और कुछकी असंख्यात, इत्यादि सब बातोंको ध्यानमें रखकर भागाभागका विचार कर लेना चाहिए।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाणप्ररूपणा

१४८. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, कार्मण काययोगी, नपुंसक वेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीको देखते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि ओघसे और इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातसे अधिक नहीं हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४९. आदेसेण णेरइएसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० अणु० ट्ठिदिबंध० केव० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्जत्त० देवा भवणादि याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-तस-सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०—बादरवणप्फदिपत्तेय०—पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-[तेउले०-] पम्मले०-सण्णि त्ति । णवरि तेउ-पम्म० उक्क० संखेज्जा ।

१५०. मणुस्सेसु अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि० बंध० केव० ? संखेज्जा । अणुक्क० ट्ठिदि० बंध० केव० ? असंखेज्जा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०—सुहुमसं० सत्तण्णं क० उक्क० अणुक्क० ट्ठिदिबंध० केव० ? संखेज्जा ।

१५१. सव्वएइंदि० सत्तण्णं क० उक्क० अणुक्क० ट्ठिदिबंध० केव० ?

सकते । उदाहरणार्थ—ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त संक्लेश परिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव करता है । गणनाकी अपेक्षा ये असंख्यात ही होते हैं । यही कारण है कि यहांपर आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बतलाए हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त कहे हैं ।

१४९. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब त्रस, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंका परिमाण जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पीत लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात होते हैं ।

विशेषार्थ—ये सब मार्गणाएँ असंख्यात संख्यावाली हैं और इनमें उत्कृष्ट स्थिति व अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात बन जाते हैं, इसलिए इनका उक्त प्रमाण परिमाण कहा है । जिन दो मार्गणाओंमें अपवाद है, उनका निर्देश अलगसे किया ही है ।

१५०. मनुष्योंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारक मिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धि संयत और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—ये मनुष्य पर्याप्त आदि सब मार्गणाएँ संख्यात संख्यावाली हैं, इसलिए इनमें उक्त प्रमाण घटित हो जाता है ।

१५१. सब एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंता। आयु० उक्क० ट्ठिदिबं० केव० ? असंखेज्जा। अणु० ट्ठिदिबं० केव० ? अणंता। एवं सव्ववणप्फदि-णिगोदाणं।

१५२. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० अणुक्क० ट्ठिदिबं० केव० ? असंखेज्जा। आयु० उक्क० संखेज्जा। अणु० ट्ठिदि० असंखेज्जा। एवं संजदासंजद०-ओधि०-सम्मादि०-वेदग०-सासण०-सम्मामिच्छा०। आणद याव अवराइदा त्ति सुक्कले०-खइग० सत्तण्णं क० उक्क० अणुक्क० असंखेज्जा। आयु० मणुसिभंगो।

१५३. जहण्णए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदिबंध० केत्तिया ? संखेज्जा। अजह० के० ? अणंता। आयु० जह० अज० ट्ठिदि० अणंता। एवं कायजोगि-ओरालियका०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार सब वनस्पति और सब निगोदिया जीवोंका परिमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली हैं,तथापि इनमें आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तवें भाग प्रमाण ही होते हैं, इसलिए यहां इनकी संख्या असंख्यात बतलाई है। शेष कथन सुगम है।

१५२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका परिमाण जानना चाहिए। आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देव, शुक्ल लेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। तथा आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव मनुष्यिनियोंके समान हैं।

विशेषार्थ—यहां गिनाई गई सब मार्गणाएँ असंख्यात संख्यावाली हैं,तथापि इनमें आयुकर्मकी अपेक्षा कुछ विशेषता है जिसका निर्देश अलग-अलग मूलमें किया ही है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

१५३. अब जघन्य परिमाणका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंका परिमाण जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए यहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५४. आदेसेण णेरइएसु० उक्कस्सभंगो। तिरिक्खेसु अट्ठण्णं कम्माणं जह० अजह० ट्ठिदिबं० केव० ? अणंता। एवं सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि-असण्णि-अणाहारग त्ति।

१५५. सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-विगलिंदिय-सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-वेउव्विय०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहार-मि०-मणपज्ज०-अवगदवे०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० उक्कस्सभंगो। णवरि मणुसोघं आयु० जह० अजह० असंखेज्जा।

१५६. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं कम्माणं जह० बंध० संखेज्जा। अजह० असं-खेज्जा। आयु० जह० अजह० असंखेज्जा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-

सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं। बाकी सब जीव अनन्त हैं, इसलिए अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त कहे हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं; यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एकेन्द्रिय आदि अधिकतर जीव इन दोनों आयुओंका बन्ध करते हैं। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसीलिए उनका परि-माण ओघके समान कहा है।

१५४. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुता-ज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक मार्गणाओंमें परिमाण जानना चाहिए।

१५५. सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, अपगतवेदी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धि-संयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत मार्गणाओंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अपने अपने उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्योंमें आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले मनुष्य असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले मनुष्योंमें अपर्याप्त मनुष्योंकी मुख्यता है, इसलिए यहां इनका परिमाण असंख्यात कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५६. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्ग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति ।

१५७. आभि०-सुद०-ओधि० अट्ठण्णं कम्माणं जह० संखेज्जा । अज० असंखेज्जा । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदगस० ।

१५८. तेउ०-पम्मले० सत्तण्णं क० जह० संखेज्जा । अजह० असंखेज्जा । आयुग० जह० अज० असंखे० ।

१५९. सुक्कले०-खइग० सत्तण्णं क० जह० संखेज्जा । अज० असंखेज्जा । आयु० जह० अज० संखेज्जा ।

१६०. सासण० सम्मामि० अट्ठण्णं कम्माणं सत्तण्णं कम्माणं जह० अजह० असंखेज्जा । एवं परिमाणं समत्तं ।

ज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी और संज्ञी मार्गणाओंमें परिमाण जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो विभङ्गज्ञानी और संयतासंयत जीव संयमके अभिमुख होता है, उसीके सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध सम्भव है । यतः ऐसे जीव संख्यात होते हैं, अतः इन दोनों मार्गणाओंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१५७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि मार्गणाओंमें परिमाण जानना चाहिए ।

१५८. पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयत जीव जो पीत और पद्मलेश्यावाले होते हैं, उनके सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है । इस अपेक्षासे इन दोनों मार्गणाओंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं । शेष कथन सुगम है ।

१५९. शुक्ललेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं तथा आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ मनुष्य ही करते हैं और वे संख्यात होते हैं । यद्यपि अन्य तीन गतियोंमें सञ्चयकी अपेक्षा ये असंख्यात होते हैं, पर गति और आगतिकी अपेक्षा ये संख्यातसे अधिक नहीं होते । यही कारण है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं । इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें या तो देवायुका बन्ध होता है या मनुष्यायु का । इसीसे इसमें आयुकर्म की जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले संख्यात कहे हैं ।

१६०. सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें क्रमसे आठों कर्मों और सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात होते हैं ।

विशेषार्थ—इन दोनों मार्गणाओंमेंसे प्रत्येक मार्गणावाले जीवोंकी संख्या पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कही है । इससे यहाँ सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंकी असंख्यात संख्याके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्तपरूवणा

१६१. खेत्तं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० ट्ठिदि-बंध० खेवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अणुक्क०बंध० केव०? सव्वलोगे। एसिं परिमाणे उक्क०ट्ठिदिबंधगा असंखेज्जा अणुक्क०बंध० अणंता तेसिं उक्कस्स०बंध० केव० खेत्ते? लोगस्स असं०, अणु० सव्वलोगे एइंदिय-पंचकायाणं मोत्तूण। सेसाणं सव्वेसिं सव्वे भंगा उक्क० अणु०बंध० लोगस्स असंखेज्ज०।

१६२. एइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० सव्वलोगे। आयु० उक्क० लोगस्स असं०। अणु० सव्वलोगे। बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु०बंध० केव०? सव्वलो०। आयु०

क्षेत्र प्ररूपणा

१६१. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है-उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकका असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। जिनकी संख्या उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकी अपेक्षा असंख्यात है और अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धकी अपेक्षा अनन्त है, उनका उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकी अपेक्षा कितना क्षेत्र है? लोकका असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवालोंका सब लोक क्षेत्र है। मात्र एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकाय जीवोंको छोड़कर यह क्षेत्र कहा है। शेष सब जीवोंके सब भङ्ग अर्थात् उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले शेष जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संज्ञो पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीवके संक्लेशरूप परिणामोंके होने पर होता है। तथा आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध इसके या सर्व विशुद्ध परिणामवाले संयतके होता है। यतः इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण क्षेत्र कहा है। तथा आठों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है; यह स्पष्ट ही है। यहाँ शेष सब मार्गणाओंको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है। एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंको स्वतंत्र छोड़ दिया है, क्योंकि इनका क्षेत्र आगे कहनेवाले हैं। शेष अनन्त संख्यावाली मार्गणाओंका क्षेत्र यहीं बतला दिया है और शेष जितनी असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गणाएँ बचती हैं, उन सबमें सब पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

१६२. एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। बादर एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० लोगस्स असंखेज्ज० । अणु० लोग० संखेज्जदिभागे ।

१६३. पुढवि०-आउ०-तेउ० अट्ठण्णं कम्माणं मूलोघं । तेसिं सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० एइंदियभंगो । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० सत्तण्णं क० उक्क० लोगस्स असं० । अणु० सव्वलोगे । आयु० उक्क० अणु० लोगस्स असंखेज्जदि० । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०पज्जत्ता० अट्ठण्णं क० उक्क० अणु० लोगस्स असं० । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०अपज्जत्ता० सत्तण्णं क० एइंदियभंगो । आयु० उक्क० अणु० लोगस्स असं० ।

जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

१६३. पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र मूलोघके समान है । इन्हींके सूक्ष्म तथा पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें आठ कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र एकेन्द्रियोंके समान है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोकप्रमाण है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र एकेन्द्रियोंके समान है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक, जलकायिक और अग्निकायिक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है, इसलिए इनमें आठों कर्मोंकी अपेक्षा क्षेत्र ओघके समान कहा है । पहले एकेन्द्रिय सूक्ष्म और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंकी अपेक्षा क्षेत्रका विचार कर आये हैं । उसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिक, और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंकी अपेक्षा क्षेत्र प्राप्त होता है, इसलिए इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और बादर अग्निकायिक जीवोंका मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र होते हुए भी स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका व आयुकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवालोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है । सात कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक है; यह स्पष्ट ही है । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद सभी पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है, इसलिए इनमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है । यद्यपि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घात व उपपादपदकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६४. वाउ० सत्तण्णं क० उक्क० बं० केव० ? लोग० संखेज्जदिभागे । अणु० सव्वलो० । आयु० ओघं । बादरवाउ० सत्तण्णं क० उक्क० लोग० संखेज्ज० । अणु० सव्वलो० । आयु० उक्क० लोग० असं० । अणु'० लोगस्स० संखेज्ज० । बादरवाउपज्जत्ता० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० लोग० संखेज्ज० । आयु० उक्क० लोग० असं० । अणु० लोग० संखेज्ज० । बादरवाउअपज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलोगे । आयु० उक्क० लोग० असंखे० । अणु० लोग० संखेज्जदि० । सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलोगे । आयु० ओघं ।

तथापि इनमें सात कर्मोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र एकेन्द्रियोंके समान प्राप्त होता है, इसलिए इस क्षेत्रको एकेन्द्रियोंके समान कहा है। पर इनका स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें, आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

१६४. वायुकायिक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र कितना है ? लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। बादर वायुकायिक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। बादरवायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। सूक्ष्म वायुकायिक और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है।

विशेषार्थ—बादरवायुकायिक और उनमें अपर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकका संख्यातवां भागप्रमाण तथा मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान समुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र है। इसी विशेषताको ध्यानमें रख कर इन जीवोंमें सात कर्मोंके व आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट क्षेत्र का विचार कर लेना चाहिए। मात्र आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

1. मूलप्रतौ अणु० उक्क० संखेज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६५. वणप्फदि-णिगोद० तेसिं सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलोगे। आयु० ओघं। बादरवणप्फदि-णिगोद० सत्तण्णं क० सुहुमभंगो। आयु० मणुसिभंगो। बादरवणप्फदिपत्तेय० बादरपुढविकाइयभंगो। एवं उक्कस्सयं समत्तं।

१६६. जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदिबंध० केव०? लोगस्स असंखेज्ज०। अज० सव्वलोगे। आयु० जह० अजह० सव्वलो०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियका०-णवुंस०-

---

१६५. वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सूक्ष्म जीवोंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र मनुष्यिनियोंके समान है बादरवनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके सूक्ष्म और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसीसे इनमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र कहा है। ओघसे आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोकप्रमाण बतला आये हैं। उक्त मार्गणावाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक होनेसे इनमें भी ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, इसलिए इनमें आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान कहा है। पहले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंका क्षेत्र बतला आये हैं। वह क्षेत्र यहां बादरवनस्पतिकायिक और बादर निगोद जीवोंमें अविकल घटित हो जाता है इसलिए सात कर्मोंकी अपेक्षा इनकी प्ररूपणाको सूक्ष्म जीवोंके समान कहा है। बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मनुष्यिनियोंका स्वस्थान क्षेत्र भी इतना ही है, इसलिए इन मार्गणाओंमें आयुकर्मकी अपेक्षा मनुष्यिनियोंके समान क्षेत्र कहा है। बादर पृथिवीकायिकोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र है। बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंका क्षेत्र भी इतना ही है। इसीसे इनमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र बादरपृथिवीकायिक जीवोंके समान कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्र समाप्त हुआ।

१६६. अब जघन्य क्षेत्रका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार ओघके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति ।

१६७. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्सभंगो । एवं सव्वणिरय० ।

१६८. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० जह० लोग० संखे० । अज० सव्वलोगे । आयु० ओघं । एवं एइंदिय-वाउ०-ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण० णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारग त्ति ।

१६९. बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० सत्तण्णं क० जह० लोग० संखेज्ज० । अज० सव्वलो० । आयु० जह० अज० लोग० संखेज्ज० । सुहुमेइंदि०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-सुहुमवण०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त०अट्ठण्णं क०

समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध क्षपकश्रेणीमें होता है, इसलिए इसका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा अजघन्य स्थितिका बन्ध शेष सबके होता है और वे समस्त लोकमें व्याप्त हैं, इसलिए सात कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवालोंका सब लोक क्षेत्र कहा । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थिति एकेन्द्रियादि अधिकतर जीव बाँधते हैं और वे सब लोकमें व्याप्त हैं, इसलिए आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र कहा है । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं,उनमें यह ओघ व्यवस्था अविकल उपलब्ध होती है, इसलिए उनका कथन ओघके समान कहा है ।

१६७. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब नारकी जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि सामान्यसे और प्रत्येक पृथिवीके अलग-अलग नारकी जीव असंख्यात हैं तथा इनका क्षेत्र भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले उक्त नारकियोंका उत्कृष्टके समान ही क्षेत्र प्राप्त होता है । इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक मार्गणामें,उस मार्गणाके क्षेत्रको ध्यानमें लेकर विचार कर लेना चाहिए ।

१६८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, वायुकायिक, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक मार्गणाओंमें जानना चाहिए ।

१६९. बादर एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद तथा इन सबके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जह० अजह० सव्वलो० । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० तेसिं च अपज्जत्ता० बादरवणप्फदि-णिगोदपज्जत्तापज्ज० बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव अपज्जत्त० सत्तएणं क० ओघं । आयु० णिरयभंगो । बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-पज्जत्ता० बादरवणप्फ०पत्तेय-पज्जत्ता०अट्ठएणं कम्माणं उक्कस्सभंगो । बादरवाउ०अपज्जत्ता० सत्तएणं क० तिरिक्खोघं । आयु० जह० अज० लोग० संखेज्ज० । बादरवाउ०पज्जत्त० अट्ठएणं क० जह० अजह० लोग० संखेज्ज० । सेसाणं सव्वेसिं सव्वे भंगा । एवं खेत्तं समत्तं ।

फोसणपरूवणा

१७०. फोसणं दुविधं—जहएणयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविधं—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्तएणं कम्माणं उक्कस्सट्ठिदिबंधगेहि केविडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० अट्ठ-तेरह चोद्दसभागा । अणुक्क० बंध० सव्वलो० । आयु० उक्क० अणु० खेत्तभंगो । एवं ओघभंगो कायजोगि०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-आहारग त्ति ।

आठ कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । बादर पृथ्वीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और इनके अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र नारकियोंके समान है । बादर पृथ्वीकायिक, पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें आठ कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्टके समान है । बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें आठ कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । शेष सब मार्गणाओंमें सब भङ्ग होते हैं ।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ ।

स्पर्शनप्ररूपणा

१७०. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, कुछ कम आठबटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक मार्गणाओंमें स्पर्शन जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७१. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० उक्क० अणु० छच्चोद० । आयु० खेत्तभंगो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियाए याव सत्तमा त्ति सत्तण्णं क० उक्क० अणु० बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छच्चोद्दस० । आयु० खेत्तभंगो । तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० उक्क० छच्चोद० । अणु० सव्वलोगो । आयु० खेत्तभंगो । एवं णवुंस०-किण्णले० ।

१७२. पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० उक्क० छच्चोद० । अणु० लोग० असंखे० सव्वलो० । आयु० खेत्तभंगो ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त संक्लेश परिणामवाले जीव करते हैं। इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत कालीन स्पर्शन विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा तेरह बटे चौदह राजू है। यही जानकर यहां उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७१. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयु-कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पहिली पृथ्वीमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने क्रमसे कुछ कम एक बटे चौदह राजू, कुछ कम दो बटे चौदह राजु, कुछ कम तीन बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू कुछ कम पांच बटे चौदह राजु और कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी और कृष्णलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंका अतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। प्रथम पृथिवीमें लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शन है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें कुछ कम एक बटे चौदह राजू आदि स्पर्शन है। इसे ध्यानमें रखकर सामान्यसे नरकमें और प्रत्येक पृथिवीमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चोंमें जो नीचे सातवीं पृथिवीतक मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उन्हींके सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू उपलब्ध होता है, यह जानकर उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें सात कर्मोंकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें कुछ कम छह बटे चौदह राजू का स्पष्टीकरण सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंका वर्तमान निवास लोकके असं-ख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन निवास मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोक है। यह जानकर इनमें सात कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७३. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० लोग० असंखे०' सव्वलोगो वा। आयु० खेत्तभंगो। एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तसअपज्जत्ता० बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० बादरवणप्फदि०पत्तेयपज्जत्ता०।

१७४. मणुस० सत्तण्णं क० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० लोग० असंखे० सव्वलो०। आयु० खेत्तभंगो। देवेसु सत्तण्णं क० उक्क० अणु० अट्ठ-णवचोद्दस०। आयु० उक्क० अणु० अट्ठचोद्दस०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं।

१७५. एइंदिएसु सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलोगो। आयु० उक्क० लोग० असंखे०। अणु० बंध० सव्वलोगो। एवं बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्ता०। णवरि

तिर्यञ्चोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और मारणान्तिक व उपपाद पदकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक है। यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनका स्पर्शन इसी प्रकार है, इसलिए इनमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

१७४. मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सबलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—देव विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं। किन्तु मारणान्तिक समुद्घात के समय आयुबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके आयुकर्मकी अपेक्षा केवल कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। भवनवासी आदि देवोंमें अपने-अपने स्पर्शनको जानकर यहां यथासम्भव स्पर्शनका निर्देश करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१७५. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० अणु० लोग० संखे० । सुहुमएइंदियपज्जत्तापज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० सव्वलो० । आयु० उक्क० लोग० असंखे० सव्वलो० । अणु० सव्वलोगो । एवं सव्वसुहुमाणं ।

१७६. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं क० उक्क० अट्ठ-तेरह० । अणु० अट्ठचोद्दस० सव्वोलोगो वा । आयु० उक्क० खेत्तभंगो । [अणुक्क०-]अट्ठचोद्दस० । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदंसणि त्ति ।

स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सबलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयु-कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सबलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब सूक्ष्म जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन दो प्रकारका कहा है सो उसमें से लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान कालकी अपेक्षा कहा है और सब लोकप्रमाण स्पर्शन अतीत कालकी अपेक्षा कहा है । शेष कथनका विचार इन मार्गणाओंके स्पर्शनको देखकर कर लेना चाहिए ।

१७६. पञ्चेन्द्रिय; पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी और चक्षुदर्शनी जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु स्पर्शन उपलब्ध होता है । यह सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा स्पर्शन है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा तो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक स्पर्शन उपलब्ध होता है । इनमेंसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्शनका खुलासा पूर्ववत् है और सब लोकप्रमाण स्पर्शन मारणा-न्तिक समुद्घातकी अपेक्षा जानना चाहिए । कारण कि अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले उक्त जीव सब लोकमें मारणान्तिक समुद्घात करते हुए उपलब्ध होते हैं । आयुकर्मकी अपेक्षा स्पर्शनका विचार करते हुए अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन केवल कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्घातके समय आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, अतएव विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्शन ही यहाँ सम्भव है, इससे अधिक नहीं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७७. पुढवि०-आउ-तेउ० तेसिं च बादर० सत्तएणं क० उक्क० लोग० असंखे० सव्वलो०। अणु० सव्वलो०। आयु० खेत्तभंगो। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ० अपज्ज-त्ता० सत्तएणं क० उक्क० अणु० सव्वलो०। आयु० खेत्तभंगो। बादरवणप्फदिपत्तेय० बादरपुढविभंगो। वाउ० पुढवि०भंगो। णवरि जम्हि लोगस्स असंखे० तम्हि लोगस्स संखेज्ज०। वणप्फदि-णिगोद० पुढविकाइयभंगो। णवरि सत्तएणं क० उक्क० सव्वलो०।

१७८. ओरालियका० सत्तएणं क० उक्क० छच्चोद्दस०। अणु० सव्वलो०। आयु०खेत्तभंगो। ओरालियमि० अट्ठएणं क० उक्क० लोग० असंखे०। अणु० सव्वलो०। वेउव्वियका० सत्तएणं क० उक्क० अणु० अट्ठतेरह[1]०। आयु० उक्क० अणु० अट्ठ-

१७७. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और इनके बादर जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन बादर पृथिवीकायिकके समान है। वायुकायिक जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पृथिवीकायिकके समान है। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग लेना चाहिए। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पृथ्वीकायिकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ पृथिवीकायिक आदि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वर्तमान कालकी अपेक्षासे कहा है। शेष स्पर्शन यहाँ कही गईं मार्गणाओंके स्पर्शनका ध्यान रखकर जान लेना चाहिए।

१७८. औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें आठ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिककाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

1. मूलप्रतौ —तेरह०। आयु० उक्क० अणु० अट्ठतेरह०, आउ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दस० । वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-मणपज्ज०-संजदा-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेत्तभंगो । कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० उक्क० बारहचोद्दस० । अणु० सव्वलोगो ।

१७६. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० अट्ठचोद्दस० । आयु० उक्क० खेत्तभंगो। अणु० अट्ठ० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसमस० ।

१८०. संजदासंजद० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० खेत्त० । अणु० छच्चोद्दस० । आयु० उक्क० अणु० खेत्तभंगो ।

१८१. णील०-काउ सत्तण्णं क० उक्क० चत्तारि-बे-चोद्दस० । अणु० सव्वलो०,

---

वैक्रियिक मिश्रकाययोगवाले, आहारककाययोगवाले आहारकमिश्रकाययोगवाले, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें आठ कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। कार्मणकाययोगवाले और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले औदारिक काययोगी जीव नीचे सातवीं पृथिवी तक मारणान्तिक समुद्धात करते हैं इसलिए इनका कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है । औदारिकमिश्रकाययोगमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध उक्त योगवाले सब जीवोंके न होकर कतिपय जीवोंके ही होता है । जिनका कुल स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं होता, इसलिए इनका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । मारणान्तिक समुद्धातमें आयुबन्ध नहीं होता, इसलिए वैक्रियिककाययोगमें आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन केवल कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है ।

१७९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उक्त मार्गणाओंमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन यथासम्भव विहारवत्स्वस्थान आदि पदोंकी अपेक्षा होता है । शेष कथन सुगम है ।

१८०. संयतासंयतोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंका मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन होता है ।

१८१. नीललेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने क्रमसे कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० ओघं । तेउ०-पम्म०-सुक्कले० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० अट्ठ-णवचोद्दस० अट्ठचोद्दस० छच्चोद्दस० । आयु० उक्क० खेत्त० । अणु० अट्ठ० अट्ठचोद्दस० छच्चोद्दस० ।

१८२. सासण० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० अट्ठ-बारह० । आयु० उक्क० खेत्तभंगो । अणु० अट्ठचोद्दस० । सम्मामि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० अट्ठचोद्दस० । असण्णि० खेत्त० । एवं उक्कस्सफोसणं समत्तं ।

राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है । पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने पीतलेश्याकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू व कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका, पद्मलेश्याकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका और शुक्ललेश्याकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने क्रमसे कुछ कम आठ बटे चौदह राजू, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—पाँचवीं पृथिवी यहाँसे कुछ कम चार राजू और तीसरी पृथिवी कुछ कम दो राजू है । इसी बातको ध्यानमें रखकर नील और कापोतलेश्यामें क्रमसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कुछ कम चार राजू और कुछ कम दो राजू स्पर्शन कहा है । यह स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा उपलब्ध होता है । शेष कथन स्पष्ट है । इतनी विशेषता है कि पीतलेश्यामें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू होता है । कारण कि मारणान्तिक समुद्घातके समय आयुबन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ कुछ कम नौ बटे चौदह राजू स्पर्शन उपलब्ध नहीं होता ।

१८२. सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । असंज्ञियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—सासादनमें विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ बारह बटे चौदह राजू स्पर्शन होता है । आयुका बन्ध होते समय मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता । इन बातोंको ध्यानमें रखकर सासादनमें उक्त स्पर्शन कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शन समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. जहएणगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठएणं क० जह० अज० खेत्तभंगो। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादर-बादरअपज्जत्ता० सव्ववणप्फदि-णिगोद०-सव्वसुहुम० कायजो०-ओरालियका०-ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइय० णवुंस०-अवगदवे०-कोधादि०४-मदि०-सुद०--मणपज्जव०--संजद--सामाइ०--छेदो०--परिहार०-सुहुमसं०-असंजद०-अचक्खुदं०-किएण०--णील०--काउ०--भवसि०--अब्भवसि०-मिच्छादि०-असरिण-आहार०-अणाहारग त्ति।

१८४. आदेसेण णेरइएसु सत्तएणं कम्माणं जह० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। आयु० खेत्तभंगो। विदियाए याव सत्तमा त्ति सत्तएणं क० जह० खेत्त०। अज० अणु०भंगो। आयु० खेत्त०।

---

१८३. अब जघन्य स्पर्शनका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठ कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। इसी प्रकार पहली पृथ्वी, तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इन पृथिवी आदिके बादर और बादर अपर्याप्त, सब वनस्पति, सब निगोद, सब सूक्ष्मकायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले, भव्य,अभव्य,मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है और इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान ही है, क्योंकि इन जीवोंने त्रिकालमें लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक क्षेत्रका स्पर्शन नहीं किया। तथा सात कर्मोंकी अजघन्य और आयुकर्मकी जघन्य व अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान सब लोक है; यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके ये स्थितियाँ यथायोग्य उपलब्ध होती हैं। यहाँ पहली पृथिवी आदि अन्य मार्गणाओंमें स्पर्शन प्ररूपणा इसी प्रकार जानना चाहिए-यह कहा है सो इस कथनका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार ओघ स्पर्शन अपने क्षेत्रके समान है,उसी प्रकार पहली पृथिवी आदि मार्गणाओंमें प्राप्त होनेवाला स्पर्शन अपने-अपने क्षेत्रके समान है। उदाहरणार्थ,पहली पृथिवीमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यहाँ प्राप्त होनेवाला स्पर्शन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१८४. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्यस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है। आयुकर्मका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८५. पंचिंदियतिरिक्ख०४-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-तस-बादरपुढवि०-आउ-तेउ०-वाउ०-पज्जत्ता० बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव पज्जत्तापज्जत्त० पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-आभि०-सुद०-ओधि०-संजदासंजद-चक्खुदं०-ओधिदं०-तेउ०-पम्मले०-सुक्कले०--सम्मादि०-खइग०--वेदगस०-उवसमस०-सण्णि त्ति एदेसिं सव्वेसिं सत्तण्णं क० जह० खेत्त०। अज० अप्पप्पणो अणुक्कस्सफोसणभंगो। णवरि आयु० एसिं जह० ट्ठिदिबं० खुद्दाभवग्गहणं तेसिं जह० खेत्तभंगो। अज० अणु०भंगो। सेसाणं उक्कस्सभंगो। णवरि जोदिसियादिउवरिमदेवाणं सत्तण्णं क० जह० सव्वदेवाणं आयु० जहण्णयस्स च विहारवद् फोसणं कादव्वं।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं, उन्हींके जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है। इसीसे नरकमें जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। कारण कि ये प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। इनके सिवा शेष सब नारकियोंके अजघन्य स्थितिबन्ध होता है। यही कारण है कि अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकी जीवोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंके समान कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। यह सामान्य नारकियोंके स्पर्शनका विचार है। इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंके स्पर्शनका विचार कर लेना चाहिए। मात्र प्रत्येक पृथिवीमें अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकियोंका स्पर्शन अपने-अपने अनुत्कृष्टके समान प्रत्येक पृथिवीके स्पर्शनके अनुसार कथन करना चाहिए।

१८५. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्क, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब त्रस, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादरअग्निकायिकपर्याप्त, बादरवायुकायिक पर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इन्हींके पर्याप्त-अपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी इन सब जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन अपने-अपने अनुत्कृष्ट स्पर्शनके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें जिनके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुद्रक भवग्रहण प्रमाण होता है, उनके जघन्य स्थितिकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है। शेष सब जीवोंके आयुकर्मकी अपेक्षा स्पर्शन उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियोंसे लेकर ऊपरके देवोंके सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका और सब देवोंके आयु कर्मके जघन्य स्थितिबन्धका विहारवत् स्वस्थान पदके समान स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध उत्पत्तिके प्रथम और द्वितीय समयमें उपलब्ध होता है, क्योंकि इनमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन दो प्रकारके देवोंको छोड़कर ज्योतिषियोंसे लेकर शेष सब देवोंके सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध और सब देवोंके आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध विहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८६. वेउव्वियका० सत्तण्णं क० जह० अट्ठचोद्दस० । अज० अट्ठ-तेरह० । आयु० जह० अज० अट्ठचोद्दस० । सासण० सत्तण्णं क० जह० अज० अट्ठ-बारह० । आयु० जह० अट्ठचोद्दस० । सम्मामिच्छादि० सत्तण्णं क० जह० अज० अट्ठ-चोद्दस० । एवं फोसणं समत्तं ।

कालपरूवणा

१८७. कालं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० उक्क० ट्ठिदिबं० केवचि० ? जह० एगस०, उक्क० पलिदोव०असंखे० । अणुक्क० ट्ठिदिबं० केवचि० ? सव्वद्धा ।

वत्स्वस्थानमें सम्भव होनेसे इनकी अपेक्षा जहाँ विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा जो स्पर्शन हो,उतना स्पर्शन होता है । इसी बातको ध्यानमें रखकर मूलमें इस स्पर्शनका विशेष रूपसे अलगसे उल्लेख किया है । शेष सब मार्गणाओंके सम्बन्धमें जहाँ जो विशेष बात कही है, उसे ध्यानमें रखकर स्पर्शन प्राप्त कर लेना चाहिए ।

१८६. वैक्रियिककाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयु कर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछकम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगमें कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा उपलब्ध होता है । यहां इस अवस्थामें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका व आयुकर्मका बन्ध नहीं होता,अतः इस अपेक्षासे उक्त मार्गणामें यह स्पर्शन नहीं कहा है । किन्तु सासादनमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है, इसलिए इसमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू कहा है । मात्र मारणान्तिक समुद्घातके समय यहां आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण ही स्पर्शन कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ ।

कालप्ररूपणा

१८७. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उसमें से ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलियाए असंखेज्जदि० । अणु० सव्वद्धा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं पुढवि-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्ते०-कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइग०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहार-अणाहारग त्ति । णवरि कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

१८८. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं मूलोघो । आयु० उक्कस्स० ओघभंगो । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे० । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख० देवा याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-तस-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्जत्ता० पंचमण०-पंचवचि०-

---

काल है ? सब काल है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, पृथिवी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंमें काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

विशेषार्थ—एक जीवकी अपेक्षा कालका विचार पहले कर आये हैं । यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया गया है । आशय यह है कि नाना जीव अन्तरके बिना आठों कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका कमसे कम कितने काल तक और अधिकसे अधिक कितने काल तक बन्ध करते रहते हैं, इसी बातका इस अनुयोगद्वारमें निर्देश किया है। यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है, यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि ओघसे अनन्तानन्त जीव और यहाँ गिनाई गई मार्गणाओंमेंसे प्रत्येक मार्गणावाले यथासम्भव अनन्त या असंख्यात जीव प्रति समय आठों कर्मोंकी उत्कृष्टके सिवा किसी न किसी स्थितिका अवश्य बन्ध करते हैं । उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध काल मूलमें निर्दिष्ट किया ही है । इसका आशय यह है कि जिस स्थितिका जघन्य या उत्कृष्ट जो काल कहा है, उतने काल तक किसी न किसी जीवके उस स्थितिका निरन्तर बन्ध होता रहता है । आगे अन्तरकाल आ जाता है ।

१८८. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल मूलोघके समान है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, देव, सहस्रार कल्पतकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब त्रस, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादरजलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति। णवरि पंच-मण०-पंचवचि०-वेउव्वियका० आयु० अणु० जह० एग०।

१८६. मणुसेसु सत्तण्णं क० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणु० सव्वद्धा। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम०। अणु० णिरयभंगो। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सत्तण्णं क० मणुसोघं। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम०। अणु० जह० उक्क० अंतो०। एवं सव्वट्ठे। मणुसअपज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे०। आयु० णिरयभंगो।

शरीर पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंमें स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—नरकमें सब जीवराशि असंख्यात है और आयुकर्मका बन्ध प्रत्येक जीवके अन्य कर्मके समान सर्वदा होता नहीं, इस लिए वहाँ आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सर्वदा काल न होकर वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, ऐसा यहाँ समझना चाहिए। तथा पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोग और वैक्रियिककाययोग इनमेंसे प्रत्येक योगका जघन्य काल एक समय होनेसे इन योगोंमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

१८९. मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल नारकियोंके समान है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध पर्याप्त अवस्थाके होने पर ही होता है और पर्याप्त मनुष्य संख्यात है। यही कारण है कि मनुष्योंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक होता है, इसलिए जघन्य काल एक समय कहा है तथा एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब मान लो संख्यात मनुष्य एकके बाद एक उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रारम्भ करते हैं, तो उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही होगा। इसलिए उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०. आणद याव अवराजिदा त्ति सत्तएणं कम्माणं ओघं। आयु० मणुसिभंगो। एवं सुक्कले०-खइग०।

१६१. सव्वएइंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय० अपज्जत्ता तेसिं चेव सव्वसुहुम० सव्ववणप्फदि-णिगोदाणं च सत्तएणं क० उक्क० अणु०

मनुष्यगति मार्गणाके जीव निरन्तर उपलब्ध होते हैं, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध सर्वदा पाये जानेके कारण इसका काल सर्वदा कहा है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध एक समय तक होता है, इसलिए यदि कोई एक मनुष्य प्रथम समयमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है और द्वितीयादि समयोंमें कोई आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं करता, तो मनुष्योंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका एक समय काल उपलब्ध होता है और यदि संख्यात समय तक निरन्तर संख्यात मनुष्य आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते रहते हैं, तो आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका संख्यात समय काल उपलब्ध होता है। यहाँ आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका इससे अधिक काल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि पर्याप्त मनुष्य ही उत्कृष्ट आयुका बन्ध करते हैं और वे संख्यात होते हैं। यही कारण है कि सामान्य मनुष्योंमें आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि एक बारमें एक जीवके आयुकर्मका बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है। तथा उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर इतने काल तक नाना जीव आयुबन्ध कर सकते हैं। इसमें लब्ध्यपर्याप्त जीवोंकी प्रधानता होनेसे यह काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि मनुष्योंमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यह सामान्य मनुष्योंकी अपेक्षा काल घटित करके बतलाया है। मनुष्योंके शेष भेदोंमें इस कालको ध्यानमें रखकर कालका विचार कर लेना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिके देव संख्यात होते हैं, इसलिए उनमें मनुष्यिनियोंके समान आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा काल उपलब्ध होता है, यह स्पष्ट ही है।

१६०. आनत कल्पसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल ओघके समान है। आयु कर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें काल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें लगातार आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, इसलिए इनमें आयु कर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान कहा है। मनुष्यपर्याप्तकोंके समान न कहकर मनुष्यिनियोंके समान कहनेका कारण यह है कि मनुष्य पर्याप्तकोंसे मनुष्यिनियोंकी संख्या तिगुनी होती है, जिससे उत्कृष्ट काल अधिक उपलब्ध होता है।

१६१. सब एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके अपर्याप्त और इन्हींके सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक और सब निगोद जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वद्धा। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अणु० सव्वद्धा।

१९२. वेउव्वियमि० सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० ट्ठिदिबं० कालो जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०। आहारका० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमया। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आहारमि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० जह० उक्क० अंतो०। आयु० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० अंतो०। अवगदवे० सुहुम० सत्तण्णं क० छण्णं क० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१९३. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अणु० सव्वद्धा। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्ज०। अणु० णिरयभंगो। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदग०।

१९४. मणपज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० सव्वद्धा। आयु० मणुसिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। संजदासंजदा० अट्ठण्णं

करनेवाले जीवोंका काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है।

१९२. वैक्रियिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आहारककाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे संख्यात समय और अन्तर्मुहूर्त है। अपगतवेदवाले और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात और छह कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

१९३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल नारकियोंके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें काल जानना चाहिए।

१९४. मनःपर्ययज्ञानवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार संयत,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्माणं ओधिभंगो। उवसम०-सम्मामि० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो०। सासण० सत्तण्णं क० मणुसअपज्जत्तभंगो। आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम०। अणु० देवोघं। एवं उक्कस्सकालं समत्तं।

१६५. जहण्णगे पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० जह० ट्ठिदिबंध० जह० उक्क० अंतो०। अज० सव्वद्धा। आयु० जह० अज० सव्वद्धा। एवं ओघभंगो णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति।

१६६. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अज० सव्वद्धा। आयु० उक्कस्सभंगो। एवं पढमाए देव-भवण०-वाणवें०। विदियादि याव सत्तमा त्ति उक्कस्सभंगो।

सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें काल जानना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें आठों कर्मोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है। उपशम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सामान्य देवोंके समान है। इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

१९५. अब जघन्य कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयु कर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार ओघके समान नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९६. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक सब कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—यदि एक या नाना असंज्ञी जीव मरकर नरकमें एक साथ उत्पन्न होते हैं और वहां तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका एक समय बन्ध करते हैं, तो सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है और आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उत्पन्न होते रहते हैं, तो इतना काल उपलब्ध होता है। यही कारण है कि नरकमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रथम पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. तिरिक्खेसु अट्ठण्णं क० जह० अज० सव्वद्धा। एवं सव्वएइंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०अपज्ज० तेसिं च सव्वसुहुम० सव्ववणप्फदि-णिगोद०-बादरवण०पत्तेय०अपज्जत्ता० ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारग त्ति। पंचिंदिय-तिरिक्ख०४ अट्ठण्णं क० जह० अज० उक्कस्सभंगो।

१६८. मणुसेसु सत्तण्णं क० ओघं। आयु० जह० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०। एवं मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि आयु० उक्कस्सभंगो। मणुसअपज्ज० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० आवलियाए असंखे०। अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं त्रिसमयूणं, उक्क० पलिदो० असंखे०। आयु० उक्कस्सभंगो।

व्यन्तर देवोंमें यह काल इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए इन मार्गणाओंमें यह काल उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१९७. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त तथा इन्हींके सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध एकेन्द्रियोंके होता है और अजघन्य स्थितिका बन्ध यथासम्भव सबके होता है तथा आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध यथासम्भव सबके होता है और अजघन्य स्थितिका बन्ध भी सबके होता है, इसलिये यहां इनका सब काल बन जाता है। यहां गिनाई गई अन्य मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार सब काल घटित कर लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनाहारकोंके आयु-कर्मकी स्थितिके बन्धका काल नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। शेष कथन सुगम है।

१९८. मनुष्योंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल ओघके समान है। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल दो समय कम क्षुद्रक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. जोदिसिय याव सव्वट्ठा त्ति उक्कस्सभंगो। सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस०अपज्जत्त-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०पज्जत्ता० बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्जत्ताणं च मूलोघं। एवं पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादर० वणप्फदिपत्तेय०। णवरि आयु० ओघं।

२००. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं क० मूलोघं। आयु० णिरयभंगो। एवं इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-चक्खुदं०-तेउ०-पम्मले०-सण्णि त्ति।

२०१. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० सव्वद्धा। आयु० उक्कस्सभंगो। कायजोगि-ओरालियका० सत्तण्णं क० मणजोगिभंगो। आयु० मूलोघं। वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-मणपज्ज० संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सम्मामि० जह० अज० उक्कस्सभंगो। अवगद०

विशेषार्थ—मनुष्योंमें सात कर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धमें क्षपक श्रेणिको प्राप्त मनुष्योंकी मुख्यता है और अजघन्य स्थिति बन्धमें शेष सब मनुष्योंकी मुख्यता है, इसलिए यहाँ सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका ओघके समान काल बन जाता है। आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धमें यथासम्भव सब मनुष्योंकी मुख्यता है, इसलिए यहाँ आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका मूलमें कहा हुआ काल बन जाता है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंकी संख्या संख्यात होनेसे इनमें आयुकर्मके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान ही घटित होता है।

१९९. ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है। सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक-पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इनके बादर तथा वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है।

२००. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मूलोघके समान है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है, इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

२०१. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। काययोगी और औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मनोयोगियोंके समान है। आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल उत्कृष्टके समान है। अपगतवेदी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तएणं क० सुहुम० छएणं क० जह० मूलोघं। अज० अणु०भंगो।

२०२. आभि०-सुद०-ओधि०-सुक्क०-सम्मा०-खइगसम्मा०-वेदगस० सत्तएणं क० मूलोघं। सुकाए खइग० आयु० मणुसिभंगो। सेसाणं उक्कस्सभंगो।

२०३. उवसमस० सत्तएणं क० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०। सासण० सत्तएणं क० जह० अज० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे०। आयु० णिरयभंगो। एवं कालं समत्तं।

अंतरपरूवणा

२०४. अंतरं दुविधं—जहएणयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठएणं क० उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। अणु० णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव बादर० बादर०वण०पत्तेय० कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-

---

जीवोंमें सात कर्मोंकी और सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंमें छह कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल मूलोघके समान है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल अनुत्कृष्टके समान है।

२०२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग मूलोघके समान है। शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है तथा शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

२०३. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरप्ररूपणा

२०४. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकालके बराबर है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इनके बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु-किण्ण०णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहाराणाहारग त्ति ।

२०५. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं उक्क० अणु० ट्ठिदिबंधंतरं ओघो । आयु० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंगुल० असंखे० असं० ओसप्पि० उस्सप्पि० । अणु० जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहु० अडदालीसं मुहुत्तं पक्खं मासं वे मासं चत्तारि मासं छम्मासं बारसमासं ।

२०६. पंचिंदिय-तिरिक्ख० सत्तण्णं क० ओघं । आयु० उक्क० ओघं ।

कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा आठों कर्मोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निरूपण किया गया है । ओघसे सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग काल प्रमाण है । सो इसका यह अभिप्राय है कि यदि सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध न हो, तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सात कर्मोंमेंसे प्रत्येक कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव नहीं होता । परन्तु अनुकृष्ट स्थितिके बन्धके लिए यह बात नहीं है । उसका बन्ध करनेवाले सब या बहुत जीव सर्वदा पाये जाते हैं । यह ओघ प्ररूपणा अन्य जिन मार्गणाओंमें सम्भव है, उनका निरूपण ओघके समान है; ऐसा कहकर यहाँ उनका नाम निर्देश किया है । मात्र इनमेंसे कितनी ही मार्गणाओंमें ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और कितनी ही मार्गणाओंमें आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए ।

२०५. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर ओघके समान है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके बराबर है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे चौबीस मुहूर्त, अड़तालीस मुहूर्त, एक पक्ष, एक महीना, दो महीना, चार महीना, छह महीना और बारह महिना है ।

विशेषार्थ—नरक सामान्य, और प्रथम पृथिवी आदि सात पृथिवियोंमें आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अलग-अलग है जो उक्त आठ स्थानोंमें उत्पत्तिके अन्तर कालके समान है । तात्पर्य यह है कि यदि कोई जीव मरकर नरकमें उत्पन्न हो, तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक बारह मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता । इसके बाद कोई न कोई जीव किसी न किसी नरकमें अवश्य ही उत्पन्न होता है । इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियोंमें क्रमसे अड़तालीस मुहूर्त आदि काल प्रमाण उत्कृष्ट उत्पत्तिका अन्तर है । जो यह उत्पत्तिका अन्तर है, वही अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । शेष कथन सुगम है ।

२०६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पज्जत्त-जोणिणीसु चउवीसं मुहुत्तं। अपज्जत्ते अंतो०।

२०७. मणुस०३ सत्तण्णं क० ओघं। आयु० उक्क० ओघं। अणु० णिरय-भंगो। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। णवरि अट्ठण्णं क० अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असंखे०।

२०८. देवा० णिरयभंगो। णवरि सव्वट्ठे आयु० अणुक्क० जह० एग०, उक्क० पलिदो० संखेज्ज०।

२०९. सव्वएइंदि०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०अपज्जत्ता तेसिं चेव सव्व-सुहुम० सव्ववणप्फदि-णिगोद० बादरवण०पत्तेय०अपज्जत्त० सत्तण्णं क० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आयु० मूलोघं। सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-तस० सव्वपंचिंदियतिरिक्खभंगो। बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०पज्जत्ता० बादरवणप्फदि-

उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्त तिर्यञ्च और योगिनी तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है। तथा अपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहां पर्याप्त तिर्यञ्च और योगिनी तिर्यञ्चोंमें चौबीस मुहूर्त आयुकर्मके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कहा है। तथा सामान्य और अपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें यह अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सो इस कथनका यह तात्पर्य प्रतीत होता है कि यदि इस बीच आयुकी उत्कृष्ट स्थितिका भी बन्ध न हो तो जिसका जितना अन्तरकाल कहा है, उतने काल-तक उस-उस मार्गणामें आयुकर्मका बन्ध करनेवाला एक भी जीव नहीं होता।

२०७. मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आठों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

२०८. देवोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके सख्यातवें भागप्रमाण है।

२०९. सब एकेन्द्रिय, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादरअग्निकायिक अपर्याप्त, बादरवायुकायिक अपर्याप्त और उन्हींके सब सूक्ष्म, सब वनस्पति, सब निगोद, बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय और सब त्रसोंका भङ्ग सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि तेउ० आयु० अणु० जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहुत्तं।

२१०. पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि० मणुसभंगो। वेउव्वियमि० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० बारस मुहुत्तं[1]। आहार०-आहारमि० अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० ओघो। अणु० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं[2]।

२११. अवगद०-सुहुमसं० सत्तण्णं क० छण्णं क० उक्क० जह० एग, उक्क० वासपुधत्तं। अणु० जह० एग०, उक्क० छम्मासं।

२१२. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० ओघं। आयु० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० मासपुधत्तं। एवं ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइगस०-

पर्याप्त जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है।

२१०. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है।

विशेषार्थ—लोकमें वैक्रियिक मिश्रकाययोग कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक बारह मुहूर्ततक नहीं होता। इसी प्रकार आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। इसीसे वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा है। तथा आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगमें आठों कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२११. अपगतवेदी और सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात और छह कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

विशेषार्थ—उक्त मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर उपशम श्रेणिके अन्तरकी और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर क्षपकश्रेणिके अन्तरकी अपेक्षासे कहा है।

२१२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और

१. ध० पु० ७, पृ० ४८५। २. ध० पु० ७, पृ० ४८५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदग० । णवरि खइग० आयु० अणु० उक्क० वासपुधत्तं । मणपज्ज सत्तण्णं कम्माणं ओघं । आयु० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं । एवं परिहार०-संजद-सामाइ०-छेदो० । संजदासंजदा० ओधिभंगो ।

२१३. तेउ०-पम्म० सत्तण्णं क० ओघं । आयु० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० अडदालीसं मुहुत्तं पक्खं । उवसम० सत्तण्णं क० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । सासण०-सम्मामि० मणुसअपज्जत्तभंगो ।

२१४. जहण्णए पगदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

उत्कृष्ट अन्तर मास पृथक्त्व है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मकी अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए । संयतासंयतोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है ।

विशेषार्थ—यहां जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं वे सब निरन्तर मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनमें सात कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव निरन्तर पाये जाते हैं;यह तो स्पष्ट ही है । पर आयुकर्मका बन्ध सर्वदा न होकर त्रिभागमें तद्योग्य परिणामोंके होनेपर ही होता है, इसलिए आयुकर्मके स्थितिबन्धकी अपेक्षा अन्तरकाल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती । फिर भी वह अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा कितना होता है,यह ही स्वतन्त्र रूपसे यहां बतलाया गया है । शेष कथन सुगम है ।

२१३. पीत लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे अड़तालीस मुहूर्त और एक पक्ष है । उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका भङ्ग ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है ।

विशेषार्थ—पीत और पद्मलेश्या भी निरन्तर मार्गणाएँ हैं । तथापि इनमें आयुकर्मका सर्वदा बन्ध नहीं होता । इसलिए उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर तो ओघके समान है और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कितना है,यही बात यहां स्वतन्त्र रूपसे बतलाई गई है । यहां कही गईं उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन सान्तर मार्गणाएँ हैं, इसलिए इनका जघन्य और उत्कृष्ट जो अन्तरकाल है, वही इनमें अपने-अपने कर्मोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर है । उसमें भी सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है,इसलिए इनका कथन मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान कहा है । शेष कथन सुगम है ।

२१४. जघन्य अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तण्णं क० जह० द्विदिबं० जह० एग०, उक्क० छम्मासं। अज० णत्थि अंतरं। आयु० जह० अजह० णत्थि अंतरं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियका०-कोधादि०४-अचक्खुदंसणि-आहारग त्ति।

२१५. सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तसअपज्ज०-वेउव्वि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद०-तेउ०-पम्म०-वेदग०-सासण०-सम्मामि० एदेसिं उक्कस्सभंगो।

२१६. तिरिक्खेसु अट्ठण्णं क० जह० अज० णत्थि अंतरं। एवं सव्वएइंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०अपज्जत्ता० तेसिं चेव सव्वसुहुम० सव्ववणप्फदि-णियोद०-बादरवण०पत्ते०अपज्जत्त०-ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किरण-णील-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहारग त्ति।

आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवों का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—क्षपक श्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है। यही कारण है कि यहाँपर जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण कहा है। सात कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका बन्ध और आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव निरन्तर उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनका अन्तर नहीं कहा है। यहाँ गिनाई गई अन्य मार्गणाओंमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिए उनका अन्तर ओघके समान कहा है।

२१५. सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि उत्कृष्ट काल प्ररूपणामें जिस प्रकार इन मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर कहा है, उसी प्रकार यहांपर जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल जानना चाहिए और जिस प्रकार वहां अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल कहा है, उसी प्रकार यहां अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल जानना चाहिए।

२१६. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और उन्हींके सब सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१७. मणुस०३ सत्तण्णं क० ओघं। णवरि मणुसिणीसु वासपुधत्तं। आयु० उक्कस्सभंगो। मणुसपज्जत्तभंगो पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खुदंसणि त्ति। णवरि पुरिस० सत्तण्णं क० वासं सादिरेयं।

२१८. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं बादर० बादरवणप्फदिपत्तेय० सत्तण्णं क० उक्कस्सभंगो। आयु० अजह० जह० णत्थि अंतरं। तेसिं पज्जत्ता० उक्कस्सभंगो। इत्थि० उक्कस्सभंगो। णवरि सत्तण्णं क० जह० जह० ए०, उक्क० वासपुधत्तं। एवं णवुंस०। णवरि आयु० ओघं। अवगदवे०-सुहुम० सत्तण्णं क० छण्णं क० जह० अज० जह० एगस०, उक्क० छम्मासं।

२१९. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० ओघं। णवरि ओधि० वासपु-

---

२१७. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व-प्रमाण है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, पुरुषवेदी और चक्षुदर्शनी जीवोंमें अन्तरकाल मनुष्य-पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है।

विशेषार्थ—वैसे पुरुषवेदकी अपेक्षा क्षपकश्रेणीमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, पर 'मनुष्य पर्याप्त' शब्दसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण होता है, इसलिए मनुष्य पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान छह महीना कहा है। क्षपकश्रेणिमें स्त्रीवेदका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, इसलिये मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका यह उत्कृष्ट अन्तर कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२१८. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और इनके बादर तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। आयुकर्मकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इनके पर्याप्त जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। स्त्रीवेदवाले जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। अपगत-वेदी और सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्मों और छह कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होनेसे अपगतवेद और सूक्ष्मसाम्परायसंयतका यही अन्तर उपलब्ध होता है। यही कारण है कि इन दोनों मार्गणाओंमें क्रमसे सात और छह कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उक्त प्रमाण अन्तर काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२१९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धत्तं । आयु० उक्कस्सभंगो । एवं ओधिदं० । सुक्क०-सम्मादि०-खइग० आभिणि०-भंगो । मणपज्ज० सत्तणं क० जह० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सेसाणं उक्कस्सभंगो ।

२२०. संजदे सत्तण्णं क० ओघं । आयु० उक्कस्सभंगो । एवं सामाइ०-छेदो० । परिहार० मणपज्जवभंगो । उवसम० सत्तण्णं क० जह० जह० एग०, उक्क० वासपुध० । अज० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि[1] । एवं अंतरं समत्तं ।

भावपरूवणा

२२१. भावाणुगमेण दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्क० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । तत्थ ओघेण अट्ठण्णं कम्माणं उक्कस्साणु०बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

है कि अवधिज्ञानमें जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। आयुकर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। अवधिज्ञानी जीवोंके समान अवधिदर्शनी जीवोंके जानना चाहिए। शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और अवधिदर्शनका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे इन मार्गणाओंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२२०. संयतोंमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। आयु कर्मका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयतोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है।

विशेषार्थ—उपशम श्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे यहां उपशमसम्यक्त्वमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात होनेसे इसमें इन्हीं सात कर्मोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

भावप्ररूपणा

२२१. भावानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

1. ध० पु० ७, पृ० ४६१, ४६२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२२. जह० पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । तत्थ ओघेण अट्ठएणं क० जह० अज० को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति ऐदव्वं ।

जीवअप्पाबहुगपरूवणा

२२३. अप्पाबहुगं दुविधं—जीवअप्पाबहुगं चेव ट्ठिदिअप्पाबहुगं चेव । जीव-अप्पाबहुगं तिविधं—जहएणं उक्कस्सं जहएणुक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अट्ठएणं क० उक्कस्सगट्ठिदिबंधगा जीवा । अणु० ट्ठिदिबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अच-क्खु०-किएण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असरिण०-आहार०-अणाहारग त्ति ।

---

२२२. अब जघन्य भावानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यद्यपि ज्ञानावरण आदि आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कोई भी भाव होता है, पर यहां पर स्थितिबन्धके कारणभूत भावका ग्रहण किया है । यह भाव सिवा औदयिकके अन्य नहीं हो सकता, इसीसे यहां एक मात्र औदयिक भावका निर्देश किया है । अन्यत्र भी स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका कारणभूत भाव एकमात्र कषाय बतलाया है । इससे भी उक्त कथनकी ही पुष्टि होती है ।

इस प्रकार भावप्ररूपणा समाप्त हुई ।

जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणा

२२३. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जीव अल्पबहुत्व और स्थिति अल्पबहुत्व । जीव अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक मार्गणाओंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ अल्पबहुत्व दो प्रकारका कहा है—जीव अल्पबहुत्व और स्थिति अल्पबहुत्व । कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट तथा जघन्य और अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका ओघ और आदेशसे अल्पबहुत्व जिस प्रकरणमें कहा गया है, वह जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणा है और जिस प्रकरणमें कर्मोंकी उत्कृष्टादि स्थिति, उनकी आबाधा आदिका अल्पबहुत्व कहा गया है, वह स्थिति अल्पबहुत्व है । उनमेंसे सर्वप्रथम जीव अल्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२४. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अट्ठण्णं क० उक्क०बंध०। [अणुक्कस्स-]ट्ठिदिबं० जीवा असंखेज्जगुणा। एवं णिरयभंगो सव्वेसिं असंखेज्जरासीणं। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा अट्ठण्णं क० [उक्कस्सट्ठिदि-] बं० जीवा। अणु०बं० जीवा संखेज्जगुणा। एवं सव्वेसिं संखेज्जरासीणं। एइंदिय-वणप्फदि-णियोदेसु आयु० मूलोघं। सत्तण्णं कम्माणं णिरयभंगो।

२२५. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण—सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०। अज०बंध० जीवा अणंतगु०। आयु० सव्वत्थोवा जह०। अज०-बंध०जीवा असंखेज्जगु०। एवमोघभंगो कायजोगि-ओरालियका०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खुदं०-भवसि०-अणाहारग त्ति। सेसाणं सव्वेसिं परित्तापरित्ताणं रासीणं [1]घेत्तूण अट्ठण्णं सत्तण्णं पि सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं०। अजह०ट्ठिदिबं० जीवा असंखेज्जगुणा। संखेज्जरासीणं पि सव्वत्थोवा जह०। अजह[2]० संखेज्जगु०।

२२६. जहण्णुक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण सव्वत्थोवा

बहुत्वका आश्रय लेकर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहा गया है। ओघसे आठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए उक्त प्रमाण अल्पबहुत्व कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

२२४. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार नारकियोंके समान सब असंख्यात राशियोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सब संख्यात राशियोंका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें आयुकर्मका अल्पबहुत्व मूलोघके समान है। तथा सात कर्मोंका अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है।

२२५. जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी जघन्यस्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषाय वाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य, और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। शेष सब परीतापरीत राशियोंको ग्रहणकर आठ कर्मों और सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। संख्यात राशियोंकी अपेक्षा भी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। अजघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

२२६. जघन्योत्कृष्ट अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका

---

१. मूलप्रतौ सोत्तूण इति पाठः। २. मूलप्रतौ अजह० असंखेज्जगु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तण्णं क० जह०ट्ठिदिबं० जीवा । उक्कस्सट्ठिदिबंध० जीवा असंखेज्जगुणा । अजहण्णमणुक्कस्सट्ठिदिबं० जीवा अणंतगु० । आयुग० सव्वत्थोवा[1] उक्क०ट्ठिदिबं० जीवा । जह०ट्ठिदिबं० जीवा अणंतगु० । अज०अणु० असंखेज्जगु० । एवं ओघभंगो कायजोगि–ओरालियका०–णवुंस०–कोधादि०४–अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति ।

२२७. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा सत्तण्णं क० जह०ट्ठिदिबं० । उक्क०ट्ठिदिबं० असंखेज्जगु० । अज०अणु० असं० गु० । आयु० सव्वत्थोवा उक्क० । जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । अजहण्णमणु०बं० असं०गु० । एवं सव्वणिरय० देवाणं याव सहस्सार त्ति ।

२२८. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा अट्ठण्णं कम्माणं उक्क०ट्ठिदिबं० जीवा । जह०ट्ठिदिबं० जी० अणंतगु० । अज०मणु० ट्ठिदिबं० असं०गु० । पंचिंदियतिरिक्ख०४ सव्वत्थोवा अट्ठण्णं कम्माणं उक्क० । जह० असं०गु० । [अज०मणु० असं०गु० ।] एवं पंचिंदिय-तसअपज्ज० ।

२२९. मणुसेसु सत्तण्णं कम्माणं थोवा जह०ट्ठिदिबं० । उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । अज०मणु० असं०गु० । आयु० णिरयभंगो । एवं मणुसपज्जत्त-मणु-

बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने वाले जीव सबसे स्तोक हैं। जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात गुणे हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२२७. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य देव, सहस्रारकल्प तकके देवोंके जानना चाहिए।

२२८. तिर्यञ्चोंमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च चतुष्कमें आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

२२९. मनुष्योंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि असं-

१. मूलप्रतौ सव्वत्थोवा सत्तण्णं क० उक्क० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिणीसु। णवरि संखेज्जं कादव्वं। एवं सव्वट्ठे। मणुसअपज्जत्ता० णिरयभंगो।

२३०. आणद याव णवगेवज्जा त्ति सत्तण्णं क० थोवा उक्क०ट्ठिदिबं०।[जह०] संखे०गु०। अजह०मणु० असंखेज्जगु०। आयु० मणुसिभंगो। अणुदिसादि याव अवराइदा त्ति सत्तण्णं क० थोवा जह०ट्ठिदिबं०। उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। अज०मणु० असंखेज्जगु०। आयु० मणुसिभंगो।

२३१. एइंदिएसु सत्तण्णं क० थोवा जह०ट्ठिदिबं०। उक्क०ट्ठिदिबंध० संखेज्जगु०। अज०मणुट्ठिदिबं० असंखेज्जगु०। आयु० मूलोघं। एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि-णियोद०-बादरवणप्फ०पत्तेय०। णवरि वणप्फदि-णियोदेसु आयु० एइंदियभंगो। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

२३२. पंचिंदिय-तस० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं०। उक्कट्ठिदिबं० असंखेज्जगु०। अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु०। आयु० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदा-संजद०-चक्खुदं०-तेउ०-पम्म०-सम्मामि०-सण्णि त्ति। ओरालियमि० सव्वत्थोवा

ख्यातके स्थानमें संख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंका भङ्ग नारकियोंके समान है।

२३०. आनतकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले देव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले देव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले देव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है।

२३१. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है और शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

२३२. पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायिक जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठण्णं क० उक्क०ट्ठिदिबं० । जह०ट्ठिदिबं० अणंतगु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु० । एवं कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारग त्ति । आहार०-आहारमि० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं । उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं० सं०गु० । आयु० मणुसिभंगो । एवं मणपज्जव-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहारग त्ति । अवगदवे०-सुहुमसं० सत्तण्णं क० छण्णं क० उक्क०ट्ठिदिबं० थोवा । जह०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं०[1] संखेज्जगु० ।

२३३. आभि-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं० । उक्क०-ट्ठिदिबं० असं०गु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु० । आयु० सव्वत्थोवा उक्क० ट्ठिदिबं० । जह०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-वेदगसम्मादि० ।

२३४. सुक्कले० सत्तण्णं क०सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं०। उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें आठ कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक है। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। आहारक काययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात कर्म और छह कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

२३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टिके जानना चाहिए।

२३४. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे

---

1. मूलप्रतौ ट्ठिदिबं० असं० गु० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु० । आयु० मणुसिभंगो । एवं खइगस० । उवसम० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं० । उक्क० असं०गु० । अज०मणुट्ठिदिबं० असंखे०गु० । सासण० सव्वत्थोवा सत्तण्णं क० जह०ट्ठिदिबं० । उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । अज०मणु०ट्ठिदिबं० असं०गु० । आयु० सव्वत्थोवा उक्क०ट्ठिदिबं० । जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । अज०मणुट्ठिदिबं० असं०गु०। एवं जीवअप्पाबहुगं समत्तं ।

ट्ठिदिअप्पाबहुगपरूवणा

२३५. ट्ठिदिअप्पाबहुगं तिविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं जहण्णुक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । सव्वत्थोवा अट्ठण्णं कम्माणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो । यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

२३६. जहण्णए पगदं । अट्ठण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा जहण्णओ ट्ठिदिबंधो । यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

२३७. जहण्णुक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघेण अट्ठण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा जहण्णट्ठिदिबंधो । यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो । उक्कस्सट्ठिदिबंधो असंखेज्जगु० । यट्ठिदिबंधो विसेसा० । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-

---

अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । आयुकर्मका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान जानना चाहिए । इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिए । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

इस प्रकार जीव अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

स्थिति अल्पबहुत्वप्ररूपणा

२३५. स्थिति अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्य उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा आठों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

२३६. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा आठों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

२३७. जघन्य उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा आठ कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइगस०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति।

२३८. आदेसेण णेरइएसु अट्ठण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबंधो। यट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। उक्क०ट्ठिदिबं० संखे०गु०। यट्ठिदिबंधो विसेसाधिओ। एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-पंचिंदिय-तस-अपज्ज०-ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग त्ति।

२३९. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबंधो। यट्ठिदिबंधो विसे०। उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसेसा०। आयु० जह०ट्ठिदिबं० सव्वत्थोवा। यट्ठिदिबंधो विसेसाधिओ। उक्क०ट्ठिदिबं० असंखे०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। एवं तिरिक्खोघभंगो पंचिंदियतिरिक्ख०३-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-तेउले०-पम्मले०-अब्भवसि०-सासण०-मिच्छादिट्ठि त्ति।

२४०. एइंदिएसु सत्तण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं०

मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२३८. आदेशसे नारकियोंमें आठों कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन दो मार्गणाओंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें सात कर्मोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

२३९. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

२४०. एकेन्द्रियोंमें सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसे० । उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसेसा० । आयुग० णिरयभंगो । एवं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं ।

२४१. अवगदवे० णाणाव०-दंसणाव०-मोह०-अंतराइग० सव्वत्थोवा जह०-ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणीय-णामा-गोदाणं सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । उक्क०-ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२४२. मणपज्ज० सत्तण्णं क० ओघं । आयु० णिरयभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो० ।

२४३. सुहुमसं० छण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२४४. परिहार०-संजदासंज०-वेदगस० देवभंगो । णवरि वेदग० आयु० ओधिभंगो । असण्णि० सत्तण्णं क० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । आयु० मूलोघभंगो । एवं ट्ठिदिअप्पाबहुगं समत्तं ।

२४५. भूयो ट्ठिदिअप्पाबहुगं दुविधं—सत्थाणअप्पाबहुगं चेव परत्थाणअप्पा-बहुगं चेव । सत्थाणअप्पाबहुगं ट्ठिदिअप्पाबहुगभंगो । परत्थाणप्पाबहुगं तिविधं—

विशेष अधिक है । आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है । इस प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच कायवाले जीवोंके जानना चाहिए ।

२४१. अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२४२. मनःपर्ययज्ञानमें सात कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है । आयुकर्मका भङ्ग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए ।

२४३. सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंमें छह कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२४४. परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सामान्य देवोंके समान अल्पबहुत्व है । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों-के समान है और आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है ।

इस प्रकार स्थिति अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

२४५. पुनः स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व । स्वस्थान अल्पबहुत्व स्थिति अल्पबहुत्वके समान है । परस्थान अल्पबहुत्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णयं उक्कस्सयं जहण्णुक्कस्सं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा आयु० उक्कट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० । चदुण्णं क० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२४६. आदेसेण णेइरएसु सव्वत्थोवा आयु० उक्क०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० असं० गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । चदुण्णं क० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सव्व-एइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं पंचिंदिय-तसअपज्ज०-ओरालियमि०-वेउव्वियका०-असण्णि त्ति ।

२४७. ओघभंगो तिरिक्ख०४-मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-किण्ण०-णील०-काउ०-तेउ०-पम्मले०-सुक्कले०-भव-सि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-सण्णि-आहारग त्ति ।

२४८. सव्वदेवा० णिरयभंगो । णवरि अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति उवरि

तीन प्रकारका है—जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्य उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२४६. आदेशसे नारकियोंमें आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पांचों स्थावरकाय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक-काययोगी और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए ।

२४७. तिर्यञ्च चतुष्क, मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भङ्ग हैं ।

२४८. सब देवोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे

१. मूलप्रतौ उवरि बहुसं० मोह० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह० उक्क०ट्ठिदि० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२४९. आहार०-आहारमि० सव्वट्ठभंगो । णवरि णामा-गोदा० संखेज्जगु० । वेउव्वियमि० सव्वत्थोवा णामा-गोदा०उक्क०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । चदुण्णं क० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग त्ति । णवरि सम्मामि० मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२५०. अवगद० सव्वत्थोवा मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं असं०गु० । यट्ठिदिबं विसे० । वेदणी०उक्क०ट्ठिदिबं०विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२५१. आभि०-सुद०-ओधिदं० अट्ठण्णं क० मूलोघं । णवरि मोह० उक्क०-ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओधिदं-सम्मादि०-खइग० वेदग०-उवसम०-सासण त्ति[1] । णवरि उवसमे आयु० णत्थि ।

लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२४९. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२५०. अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेषअधिक है ।

२५१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आठों कर्मोंका भङ्ग मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक-संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उपशमसम्यक्त्वमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता ।

१. मूलप्रतौ खइग० यट्ठिदिबं० वेदग इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५२. सुहुमसंप० सव्वथोवा णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० उक्क०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०। णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। वेदणी० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे०। [यट्ठिदिबं० विसेसाहिओ।] एवं उक्कस्सं समत्तं।

२५३. जहण्णगे पगदं। सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०। मोह० जह०ट्ठिदिबं० संखे०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णामागोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। वेदणी० जह०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं०विसे०। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२--पंचमण--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालियका०-पुरिस०-कोधादि०४-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-भवसि०-सण्णि-आहारग त्ति।

२५४. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्सभंगो। णवरि विदियादि याव सत्तमा त्ति मोह० जह०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०।

२५५. तिरिक्खेसु सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचिंदिय-तसअपज्ज०-सव्वपंचकायाणं ओरालियमि०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंजद०-पंचले०-अ०भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति एदेसिं सव्वेसिं णिरयोघं।

---

२५२. सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

२५३. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसीप्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

२५४. आदेशसे नारकियोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मका जघन्य स्थिति बन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

२५५. तिर्यञ्चोंमें सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, सब पाँच स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, पाँचलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि जोदिसिय याव सव्वट्ठा त्ति वेउव्वियका०-तेउ०-पम्मले० विदियपुढविभंगो। एवं वेउव्वियमि०। णवरि आयु० णत्थि।

२५६. कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग त्ति उक्कस्सभंगो। आहार०-आहारमि०-उक्कस्सभंगो।

२५७. इत्थि०-णवुंस० सव्वत्थोवा आयु० जह० ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०। मोह० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० संखे०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० असंखे०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। वेदणी० जह०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। अवगदवे० मूलोघं। णवरि आयुगं णत्थि। एवं सुहुमस०। णवरि मोह० वज्ज०।

२५८. आभि०-सुद०-ओधि० सव्वत्थोवा मोह० जह०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०। णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। वेदणी० जह०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। आयु० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। एवं ओधिदं०-

---

इन सबके अल्पबहुत्वका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव वैक्रियिककाययोगी, पीत लेश्यावाले और पद्म लेश्यावाले जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग दूसरी पृथिवीके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका भङ्ग नहीं होता।

२५६. कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

२५७. स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें आयुकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। अपगतवेदी जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके मोहनीय कर्मको छोड़कर अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

२५८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुक्कले०-सम्मादि०-खइग० । मणपज्जव०-संजद-सामाइ०-छेदो० ओधिभंगो । णवरि आयु० जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । परिहार० उक्कस्सभंगो । वेदगसम्मादि० विदियपुढविभंगो । उवसम० आयु० वज्ज मूलोघं । सासणे विदियपुढविभंगो । एवं जहण्णयं समत्तं ।

२५६. जहण्णुक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघेण सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदि० विसे० । णाणाव०-दंसणा०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं०विसे० । वेदणीय० जह०ट्ठिदिबं०विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । आयु० उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तीसिगाणं उक्कस्स-ट्ठिदिबं विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०–कायजोगि-ओरालियका०-इत्थि०–पुरिस०-णवुंस०–कोधादि०४–चक्खु०–अचक्खु०–भवसि०-

तगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्वका भङ्ग दूसरी पृथिवीके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके सिवा शेषका अल्पबहुत्व मूलोघके समान है । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व दूसरी पृथ्वीके समान है ।

इस प्रकार जघन्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

२५९. जघन्य उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सण्णि-आहारग त्ति । णवरि इत्थि०-णवुंस० णामा-गोदा० जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२६०. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-वेदणी०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० जह०ट्ठिदि० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तीसिगाणं उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० संखे०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं पढमपुढवि०-देवोघं-भवण०-वाणवेंतर त्ति । विदियाए याव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि मोह० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं विसे० । तीसिगाणं उक्क०ट्ठिदिबं०-विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२६१. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । चदुण्णं क० जह०-

---

और नपुंसकवेदी जीवोंमें नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२६०. आदेशसे नारकियोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसिय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसिय कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२६१. तिर्यञ्चोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । आयु० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं० गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तीसिगाणं उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं विसे० ।

२६२. पंचिंदियति०३-विभंगे० सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं । यट्ठिदिबं० विसे० । उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०-ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । चदुण्णं क० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तीसिगाणं उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं असण्णि० । णवरि णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० असंखे०गुणं कादव्वं ।

२६३. मदि०-सुद०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि० तिरिक्खोघ-भंगो । पंचिंदियतिरिक्खअप०-मणुसअप०-पंचिंदिय-तसअप०-ओरालियमि० णिरय-भंगो । जोदिसिय-प्पहुडि याव उवरिमगेवज्जा त्ति विदियपुढविभंगो ।

अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२६२. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक और विभङ्गज्ञानी जीवोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे चार कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा कहना चाहिए ।

२६३. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान अल्पबहुत्व है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारकियोंके समान अल्पबहुत्व है । ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति आणदभंगो। णवरि मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०।

२६४. एइंदिएसु सव्वत्थोवा आयु० जह०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०। उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० असं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। तेसिं चेव उक्कस्सट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। चदुण्णं क० जह०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। तेसिं चेव उक्क०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। मोह० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। यट्ठिदिबं० विसे०। तस्सेव उक्क०ट्ठिदिबं० विसे०। यट्ठिदिबं० विसे०। एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं।

२६५. वेउव्वियका० विदियपुढविभंगो। एवं वेउव्वियमि०। णवरि आयु० णत्थि। सम्मामिच्छादिट्ठी० सव्वट्ठभंगो। आयु० णत्थि। आहार०-आहारमि० सव्वट्ठभंगो। णवरि णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु०। कम्मइ०-अणाहारग त्ति पढमपुढविभंगो। आयु० णत्थि।

२६६. अवगदवे० सव्वथोवा मोह० जह०ट्ठिदिबं०। यट्ठिदिबं० विसे०।

दूसरी पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आनत कल्पके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि अनुदिशादिकमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

२६४. एकेन्द्रियोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यात गुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उन्हींका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे चार कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उन्हींका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीयका जघन्य स्थिति बन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उसीका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और सब पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

२६५. वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान अल्पबहुत्व है। किन्तु इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनमें नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें पहली पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। पर इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता।

२६६. अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणी० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणी० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० ।[यट्ठिदिबंधो विसेसाहियो ।]

२६७. आभि०-सुद०-ओधि० सव्वत्थोवा मोह० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं०-विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणीय० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । आयु० जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तस्सेव उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तीसिगाणं उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । एवं ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग० । णवरि सुक्कले० मोह० उक्कट्ठिदिबं०

जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२६७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । मनःपर्ययज्ञानी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । मणपज्ज०-सामाइ०-छेदो० तं चेव । णवरि आयु० जह०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । तस्सेव उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

२६८. परिहार०-संजदासंजद० आहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंप० सव्वत्थोवा णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं जह०ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणी० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-अंतराइ० उक्कट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोद० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । वेदणी० उक्क०-ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । असंज० मदिभंगो ।

२६९. तेउ०-पम्म० सव्वत्थोवा आयुग० जह०ट्ठिदिबं० । यट्ठिदिबं० विसे० । तस्सेव उक्क०ट्ठिदिबं० असं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामागोदाणं जह०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । णाणाव०-दंसणाव०-वेदणी०-अंतराइ० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० जह०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । णामा-गोदाणं उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिदिबं० विसे० । सेसाणं तीसिगाणं

सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके यही अल्पबहुत्व है । इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

२६८. परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें आहारक काययोगी जीवोंके समान अल्पबहुत्व है । सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्र कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । असंयतोंमें सब कर्मोंका मत्यज्ञानियोंके समान अल्पबहुत्व है ।

२६९. पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे उसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे मोहनीयका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे नाम और गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । इससे शेष तीसियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० । मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० सं०गु० । यट्ठिबं० विसे० । एवं वेदगस०-सासण० । णवरि मोह० उक्क०ट्ठिदिबं० विसे० । यट्ठिदिबं० विसे० ।

एवं परत्थाणअप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं भूयो ट्ठिदिअप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं मूलपगदिट्ठिदिबंधे चउवीसमणियोगद्दारं समत्तं ।

विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इसी प्रकार वेदक-सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

इस प्रकार परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार भूयः स्थितिबन्ध अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार मूल प्रकृति-स्थितिबन्धमें चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुजगारबंधो

२७०. भुजगारबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याओ एण्हिं द्विदीओ बंधदि अणंतरादिसक्काविदविदिक्कंते समये अप्पदरादो बहुदरं बंधदि त्ति एसो भुजगारबंधो णाम। अप्पदरबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याओ एण्हिं ट्ठिदीओ बंधदि अणंतरउस्सक्काविदविदिक्कंते समए बहुदरादो अप्पदरं बंधदि त्ति एसो अप्पदरबंधो णाम। अवट्ठिदबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—याओ एण्हिं ट्ठिदीओ बंधदि अणंतरओसक्काविद-उस्सक्काविदविदिक्कंते समए तत्तियाओ तत्तियाओ चेव बंधदि त्ति एसो अवट्ठिदबंधो णाम। अवत्तव्वबंधे त्ति तत्थ इमं अट्ठपदं—अबंधदो बंधदि त्ति एसो अवत्तव्वबंधो णाम। एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि-समुक्कित्तणा सामित्तं जाव अप्पाबहुगे त्ति।

समुक्कित्तणाणुगमो

२७१. समुक्कित्तणाए दुवि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सत्तण्णं क० अत्थि भुजगारबंधगा अप्पदरबंधगा अवट्ठिदबंधगा अवत्तव्वबंधगा य। आयुगस्स

भुजगारबन्धप्ररूपणा

२७०. भुजगारबन्ध यथा—उसके सम्बन्धमें यह अर्थपद है—वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको बाँधता है, उन्हें अनन्तर अतिक्रान्त समयमें घटी हुई बाँधी गई अल्पतर स्थितिसे बहुतर बाँधता है, यह भुजगार बन्ध है। अल्पतरबन्ध यथा—उसके विषयमें यह अर्थपद है—वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको बाँधता है, उन्हें अनन्तर अतिक्रान्त समयमें बढ़ी हुई बाँधी गई बहुतर स्थितिसे अल्पतर बाँधता है, यह अल्पतरबन्ध है। अवस्थितबन्ध यथा—इसके विषयमें यह अर्थपद है—वर्तमान समयमें जिन स्थितियोंको बाँधता है, उन्हें अनन्तर अतिक्रान्त समयमें घटी हुई या बढ़ी हुई बाँधी गई स्थितिसे उतनी ही उतनी ही बाँधता है, यह अवस्थितबन्ध है। अवक्तव्यबन्ध यथा—उसके विषयमें यह अर्थपद है—बन्धका अभाव होनेके बाद पुनः बाँधता है, यह अवक्तव्यबन्ध है। इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये तेरह अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना और स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व तक।

विशेषार्थ—यहाँ भुजगार आदिके द्वारा बन्धका विचार किया जा रहा है। प्रथम समयमें अल्पका बन्ध करके अनन्तर बहुतका बन्ध करना भुजगारबन्ध है। इसी प्रकार बहुतका बन्ध करके अल्पका बन्ध करना अल्पतरबन्ध है। पिछले समयमें जितना बन्ध किया है, अगले समयमें उतना ही बन्ध करना अवस्थितबन्ध है और विवक्षित कर्मके बन्धका अभाव होने पर पुनः बन्ध होना अवक्तव्य बन्ध है। प्रकृतमें स्थितिबन्धका प्रकरण है, इसलिए ये चारों स्थितिबन्धकी अपेक्षा घटित करने चाहिए। यहाँ इसका विचार तेरह अनुयोगोंके द्वारा किया गया है। अनुयोगद्वार ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तनानुगम

२७१. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंका भुजगारबन्ध करनेवाले जीव हैं, अल्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं, अवस्थितबन्ध करनेवाले जीव हैं और अवक्तव्यबन्ध करनेवाले जीव हैं। आयुकर्मका अवक्तव्य बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि अवत्तव्वबंधगा अप्पदरबंधगा य। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-सण्णि-आहारग त्ति।

२७२. वेउव्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहारग० सत्तण्णं क० सुहुमसं० छ० अत्थि भुज० अप्पद० अवट्ठिद०। अवगद०-उवसमस० सत्तण्णं क० अत्थि भुज० अप्पद० अवट्ठि० अवत्तव्वबंधगा य। सेसाणं सव्वेसिं सत्तण्णं क० अत्थि भुज० [अप्पदर०] अवट्ठिदबंधगा य। आयु० मूलोघं। णवरि लोभे मोहणी० ओघं।

करनेवाले जीव हैं और अल्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रिय द्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आयुकर्मका प्रथम समयमें जो बन्ध होता है, वह अवक्तव्य ही होता है, क्योंकि बन्धमें अन्तर पड़कर पुनः बन्ध होना इसीका नाम अवक्तव्य है। इसे भुजगार, अल्पतर या अवस्थितबन्ध नहीं कह सकते, इसलिए इसकी अवक्तव्य संज्ञा है। तथा द्वितीयादि समयोंमें अल्पतर बन्ध होता है; क्योंकि आयुकर्मका प्रथम समयमें जो स्थितिबन्ध होता है, उससे द्वितीयादि समयोंमें उत्तरोत्तर वह हीन हीनतर ही होता है, ऐसा नियम है। यह तो आयुकर्मकी व्यवस्था हुई। अब रह गये शेष कर्म सो उनके भुजगार आदि चारों बन्ध सम्भव हैं। इनमें अवक्तव्य बन्ध तो उपशमश्रेणि पर चढ़कर पुनः प्रतिपातकी अपेक्षा या मरणकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिए। तथा शेष तीन किसीके भी हो सकते हैं। पिछले समयकी अपेक्षा अगले समयमें स्थितिबन्धकी वृद्धिके कारणभूत संक्लेश परिणामोंके होने पर भुजगार स्थितिबन्ध होता है, स्थितिबन्धकी हानिके कारणभूत विशुद्ध परिणामोंके होने पर अल्पतर स्थितिबन्ध होता है और अवस्थित स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंके होने पर अवस्थित स्थितिबन्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

२७२. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें छह कर्मोंका भुजगार बन्ध करनेवाले जीव हैं, अल्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं और अवस्थितबन्ध करनेवाले जीव हैं। अपगतवेदी और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंका भुजगारबन्ध करनेवाले जीव हैं, अल्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं, अवस्थितबन्ध करनेवाले जीव हैं और अवक्तव्य बन्ध करनेवाले जीव हैं। शेष सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंका भुजगारबन्ध करनेवाले जीव हैं, अल्पतरबन्ध करनेवाले जीव हैं और अवस्थितबन्ध करनेवाले जीव हैं। तथा आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभकषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—उपशमसम्यक्त्व और अपगतवेद उपशम श्रेणि पर चढ़ते और उतरते समय दोनों अवस्थाओंमें उपलब्ध होते हैं, इसलिए इन दोनों मार्गणाओंमें सात कर्मोंके चारों पद होते हैं। लोभकषाय सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक होता है, इसलिए इसमें मोहनीयकर्मके चारों पद सम्भव हैं, शेष छह कर्मोंके नहीं; क्योंकि इस मार्गणामें शेष छह कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पद ही होते हैं। इसलिए इसमें मोहनीयका भङ्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामित्ताणुगमो

२७३. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० भुज० अप्पद० [अवट्ठि०] कस्स ? अण्णदरस्स। अवत्तव्वबंधो कस्स ? अण्णदरस्स उवसमणादो परिवदमाणगस्स मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमय-देवस्स वा। एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि० कायजोगि-ओरालियका०-अवगद०-आभि० सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०—सम्मादि०-खइग०-उवसमस०-सण्णि-आहारग त्ति। णवरि मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियका०-अवगद०-मणपज्ज०-संजदा० सत्तण्णं क० अवत्तव्व० कस्स ? अण्णदरस्स उवसमणादो परिवदमाणस्स। एदेसिं सव्वेसिं आयु० अवत्तव्वबंधो कस्स ? अण्णदरस्स पढमसमए आयुबंधमाणस्स। तेण परं अप्पदरबंधो।

२७४. वेउव्वियमि०-कम्मइ०-सम्मामि०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज० अप्प० अवट्ठि० कस्स ? अण्णदरस्स। एवं सुहुमसं० छण्णं कम्माणं। सेसाणं-

---

ओघके समान कहा है; शेषका नहीं। इनके सिवा यहाँ अन्य जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है, उनमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति या उपशम श्रेणिके उपशान्त मोह गुणस्थानकी प्राप्ति होकर पुनः पतन सम्भव नहीं है, इसलिए उनमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका विधान नहीं किया। शेष कथन सुगम है।

स्वामित्वानुगम

२७३. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगारबन्ध, अल्पतरबन्ध और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जीव इनका स्वामी है। अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनी उपशमश्रेणिसे गिर रहा है या उपशमश्रेणिमें मरकर प्रथम समयवर्ती देव हुआ है, वह अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रिय-द्विक, त्रसद्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अप-गतवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो उपशमश्रेणिसे पतित हो रहा है, वह सात कर्मोंके अवक्तव्यबन्धका स्वामी है। इन सब मार्गणाओंमें आयु-कर्मके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो प्रथम समयमें आयुकर्मका बन्ध कर रहा है, वह अवक्तव्य बन्धका स्वामी है। इससे आगे अल्पतरबन्ध होता है।

२७४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगारबन्ध, अल्पतरबन्ध और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर उक्त मार्गणावाला जीव स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धोंका स्वामित्व जान लेना चाहिए। शेष सब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वेसिं सत्तएणं कम्माणं भुज० अप्पद० अवट्ठिदि० कस्स ? अएणदरस्स । आयु० मूलोघं । णवरि लोभे मोह० अोघं ।

कालाणुगमो

२७५. कालाणुगमेण दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य ।तत्थ ओघेण सत्तएणं क० भुज० केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगस०, उक्क०चत्तारि सम० । अप्पद० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० । अवट्ठिद० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त० जहएणु० एगस० । आयु० अवत्त० जहएणु० एगस० । अप्पद० जह० उक्क० अंतो० । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं तस-तसपज्जत्ता० । णवरि तिरिक्खोघं अवत्तव्वं णत्थि ।

मार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्तत्मार्गणावाला जीव स्वामी है । आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें मोहनीय कर्मका भङ्ग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ आठों कर्मोंके भुजगारस्थितिबन्ध आदिमेंसे किसका ओघ और आदेश से कौन स्वामी है, इस बातका विचार किया गया है । ओघसे इनके स्वामित्वका विचार सुगम है और जिन मार्गणाओंमें ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, उनका विचार भी सुगम है । मात्र जिन मार्गणाओंमें उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव नहीं वहां सात कर्मोंका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता और जिन मार्गणाओंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता, उनमें आयुकर्मकी अपेक्षा भङ्ग नहीं प्राप्त होते;इतना विशेष जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

कालानुगम

२७५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगारबन्धका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय है । अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । आयुकर्मके अवक्तव्य-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अल्पतरबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंके सात कर्मोंका अवक्तव्य-बन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—यहां भुजगार आदि बन्धोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है, यह बतलाया गया है । भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है । मात्र इनके उत्कृष्ट कालका विचार करना है । ओघसे भुजगारबन्ध और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट काल दो पर्यायोंकी अपेक्षा उपलब्ध होता है । जो एकेन्द्रिय आदि द्वीन्द्रिय आदिमें और पञ्चेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय आदिमें मरकर जन्म लेते हैं, उनके क्रमसे भुजगारबन्धका उत्कृष्ट काल चार समय और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय उपलब्ध होता है । अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । कारण कि भुजगार या अल्पतर बन्ध होनेके बाद अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक समान स्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७६. णिरएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०बं० जह० एग०, उक्क० बे सम० । अवट्ठिद० ओघं । आयु० ओघो चेव । एवं सव्वणिरय-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वए-इंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचकाय०-पंचमण०-पंचवचि०--ओरालियमि०-वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परि-हार०-संजदासंजद०-सासण त्ति । णवरि आयु० जोगेसु अप्पद० जह० एग० । आभि०-सुद०-ओधि०-ओधिदं०-तेउ०-पम्मले०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसमस०-सण्णि त्ति एवं चेव । णवरि भुज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम० । एदेसिं सव्वेसिं सत्तण्णं क० एसिं अवत्तव्वबं० यम्हि अत्थि तेसिं ओघं कादव्वं ।

होता रहता है । उपशान्तमोहसे सूक्ष्मसाम्परायमें आनेपर मोहनीय और आयुके बिना छह कर्मोंका तथा सूक्ष्मसाम्परायसे अनिवृत्तिकरणमें आनेपर मोहनीयका अथवा उपशान्त मोहमें मरकर देव होनेपर प्रथम समयमें आयुके बिना सात कर्मोंका अवक्तव्यबन्ध होता है । इसीसे अवक्तव्यबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा है । यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं,उनमें चारों पदोंका ओघके समान काल उपलब्ध हो जाता है; इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है । मात्र सामान्य तिर्यञ्चोंके उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे इनमें अवक्तव्य पदका निषेध किया है । आयुकर्मका मात्र त्रिभागमें या मरणके अन्तर्मुहूर्त काल पूर्व अन्तर्मुहूर्त कालतक बन्ध होता है । और वह बन्ध नियमसे प्रथम समयमें अवक्तव्य और इसके बाद अल्पतर ही होता है । यही कारण है कि इसमें अवक्तव्य और अल्पतर ये दो पद कहकर इनका क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त काल कहा है ।

२७६. नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । अवस्थितबन्धका काल ओघके समान है । आयुकर्मका भङ्ग ओघके ही समान है । इसी प्रकार सब नारकी, सब मनुष्य, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, पाँचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि योगोंमें आयुकर्मके अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगारबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा इन सब सामान्य नारकी आदि पूर्वोक्त मार्गणाओंमेंसे जिन मार्गणाओंमें अवक्तव्यबन्ध है, वहां उसका काल ओघके समान कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—एक पर्यायमें भुजगार और अल्पतरबन्ध लगातार अधिकसे अधिक दो समयतक होता है, इसलिए सामान्य नारकियोंमें या जो मार्गणाएँ एक पर्यायतक सीमित हैं या एक पर्यायके भीतर बदलती रहती हैं, उनमें भुजगार और अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है । तथा आभिनिबोधिकज्ञानी आदि मार्गणाएँ एक पर्यायतक ही सीमित नहीं हैं । पर्यायके बदलनेपर भी वे बनी रहती हैं, इसलिए इनमें भुजगार बन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७७. पंचिंदियतिरिक्खेसु सत्तरणं कम्माणं भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०। अवट्ठिद० आयुगं मूलोघं। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्ज०-जोणिणीसु पंचिंदियतिरिक्खअप० पंचिंदि० तस्सेव पज्जत्तापज्जत्ता० ओरालियमि०-इत्थि०-पुरिस०-असरिण०-आहारग त्ति। णवरि पंचिंदि० तस्सेव पज्ज० अवत्त० ओघं।

२७८. कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-किरण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि० सत्तरणं क० भुज० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। अप्पद० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आयु० ओघं। णवरि सत्तरणं क० यम्हि अवत्त० अत्थि तम्हि ओघं।

२७९. कम्मइ०-अणाहा० सत्तरणं क० भुज०-अप्प० जहरणुक्क० एग०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम०।

२८०. अवगद० सत्तरणं क० भुज०-अप्प०-अवत्तव्व० जहरणु० एग०। अवट्ठि०

उत्कृष्ट काल तीन समय उपलब्ध होनेसे वह तीन समय कहा है। साधारणतः आयु कर्मके अल्पतरबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कह आये हैं, पर किसी भी योगमें योग-परिवर्तनकी अपेक्षा या अन्य प्रकारसे उसका जघन्य काल एक समय घटित हो जाता है, इसलिए योगोंमें आयुकर्मके अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

२७७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अवस्थित बन्धका और आयुकर्मका भङ्ग मूलोघके समान है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्त अपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य बन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और अन्य मार्गणाओंमें भुजगार और अल्पतर-बन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय दो पर्यायोंकी अपेक्षा कहा है। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार आगे भी यथासम्भव कालका विचार कर लेना चाहिए।

२७८. काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय है। अल्पतर बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अवस्थित बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंका जिन मार्गणाओंमें अवक्तव्य बन्ध है, उनमें उसका काल ओघके समान है।

२७९. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

२८०. अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य बन्धका

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ओघं । सुहुमसं० छएणं क० भुज०-अप्प० जहएणु० एग० । अवट्ठि० ओघं । सम्मामि० सत्तएणं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० बे सम० । अवट्ठि० ओघं । अथवा आभि०-सुद०-ओधि०-सम्मादि०-खइगस०-सरिण-तिरिणले० भुज० जह० एग०, उक्क० सत्थाणे दो लभदि । कालगदे एक्कं लभदि ।

एवं कालो समत्तो ।

अंतराणुगमो

२८१. अंतरं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तएणं कम्माणं भुज०-अप्पद०-अवट्ठि०बंधंतरं केवचिरं ? जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्त०बंध० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० । आयु० अवत्त०-अप्प० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । एवं ओघभंगो अचक्खु०-भवसि० ।

जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितबन्धका काल ओघके समान है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितबन्धका काल ओघके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । अवस्थितबन्धका काल ओघके समान है । अथवा आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और तीन लेश्याओंमें भुजगारबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल स्वस्थानमें दो समय और मरनेपर एक समय उपलब्ध होता है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

अन्तरानुगम

२८१. अन्तर दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल है । आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर बन्धका जघन्य अन्तरअन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार ओघके समान अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—भुजगार अल्पतर और अवस्थित बन्धोंके परस्पर एक दूसरेसे एक समयके लिए व्यवहित होनेपर इनका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होता है । तथा अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे भुजगार और अल्पतर बन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है । जो जीव उपशमश्रेणीपर आरोहण करके अन्तर्मुहूर्त काल तक सात कर्मोंका बन्ध नहीं करता है, उसके अवस्थित बन्धका अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । एकबार उपशमश्रेणीपर आरोहण करनेके बाद उतरकर पुनः उपशम श्रेणीपर आरोहण करके उपशान्तमोह होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल लगता है । इसीलिए सात कर्मोंके अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण कहा है । एकबार आयुका बन्ध होनेके बाद पुनः दूसरी बार आयुके बन्ध होनेमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८२. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० बे सम० । आयु० अवत्त०-अप्पद० जह० अंतो०, उक्कस्सेण छम्मासं देसूणं । एवं सव्वणिरय-सव्वदेव-वेउव्वियमि०-विभंग० ।

२८३. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम० । आयु० अवत्त०-अप्पद० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । एवं णवुंस०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादि० । णवरि आयु० किण्ण०-णील०-काउले० णिरयभंगो । सेसाणं मूलोघं ।

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल लगता है। इसीसे आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। अचक्षुदर्शन और भव्य जीवोंमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इनमें उक्त पदोंका अन्तरकाल ओघके समान कहा है।

२८२. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। आयुकर्मके अवक्तव्य और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सब नारकी, सब देव, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

२८३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य नारकियोंके समान है। तथा शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मके पदोंका अन्तर मलोघके समान है।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएँ नरकमें सतत बनी रहती हैं। अन्यत्र इनका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है, इसलिए आयुकर्मकी अपेक्षा दोनों पदोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छह महीना जैसा कि नारकियोंके कह आये हैं, उसी प्रकार इन लेश्याओंमें प्राप्त होनेसे इनका अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। तथा ओघसे आयुकर्मके दो पदोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहां कही गई नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि मार्गणाओंमें भी जान लेना चाहिए, क्योंकि नारकियोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण होनेसे जिसने पूर्वभवमें पूर्वकोटिके त्रिभागमें आयुबन्ध करके पुनः नरकगतिमें छह महीना कालके शेष रहनेपर आयुबन्ध किया है, उसके आयुकर्मके दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है। इन मार्गणाओंमें इन पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८४. पंचिंदियतिरिक्खेसु सत्तएणं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिरिण सम० । आयु० तिरिक्खोघं । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअप०-इत्थि०-पुरिस०-असरिण त्ति । एदेसिं आयु० विसेसो। पंचिंदियतिरिक्ख०अप० जहएणु० अंतो०। इत्थि०-पुरिस०-असरिण० जह० अंतो०, उक्क० पणवएणं पलिदो० सादि० तेत्तीसं सा० सादि० पुव्वकोडी सादिरे० ।

२८५. मणुस० सत्तएणं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० मूलोघं । अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । आयु० तिरिक्खोघं। मणुसअप० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । णवरि अवट्ठि० उक्क० वे० सम० ।

२८६. सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं आयु० मोत्तूण णिरयभंगो। सव्व-

२८४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। आयुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए, किन्तु इनके आयुकर्मके पदोंके अन्तरमें विशेषता है। यथा—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और असंज्ञी जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक पचपन पल्य, साधिक तेतीस सागर और साधिक एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—यहाँ स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और असंज्ञी जीवोंकी भवस्थितिको जानकर आयुकर्मके दोनों पदोंका उससे साधिक उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है। शेष कथन सुगम है।

२८५. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर मूलोघके समान है। अवक्तव्य बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व है। आयुकर्मके पदोंका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके अवक्तव्य बन्धका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व कहनेका कारण इनकी अपनी-अपनी कायस्थिति है। क्योंकि जिसने अपनी-अपनी कायस्थितिके प्रारम्भमें आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके होने पर और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उपशमश्रेणि पर आरोहण कर उतरते समय सात कर्मोंका अवक्तव्य बन्ध किया है, उसके इस पदका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण प्राप्त होता है। तथा मनुष्य अपर्याप्तमें भुजगार और अल्पतर बन्धका उत्कृष्ट काल दो समय होनेसे इसमें अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार आगे भी यथासम्भव भुजगार आदि पदोंका काल और उस-उस मार्गणाकी कायस्थिति आदि जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए।

२८६. सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पाँच स्थावरकाय जीवोंमें आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। सब सूक्ष्म और सब अपर्याप्तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुम-सव्वअपज्जत्ताणं च आयु० पंचिंदियतिरिक्ख[1]अपज्जत्तभंगो। सेसाणं आयु० अवत्त०-अप्प० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि सादि० बारसवस्साणि एगुणवण्णरादिंदियाणि छम्मासं सादि० बावीसं वस्ससह० [सत्त वस्ससह०] तिण्णि रादिंदियाणि० तिण्णिवस्ससह० दसवस्ससह० सादि०। सव्वणियोद० जहण्णुक्क० अंतो०।

२८७. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघं। अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी। आयु० ओघं। एवं चक्खु०-सण्णि त्ति। आहारगा० एवं चेव। णवरि सत्तण्णं क० अवत्तव्व० उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखे० ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ। पंचिंदियअपज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। तसअपज्जत्तगे सत्तण्णं कम्माणं भुज० अप्पद[2]० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जह० ए०, उक्क० चत्तारि समयं। आयु० पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

२८८. पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-आहारका०-आहारमि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० देवोघं। आयु० अप्प०-अवत्त० णत्थि अंतरं। णवरि पंचमण०-पंचवचि० अट्ठण्णं क० अवत्त० णत्थि अंतरं। कायजोगी० सत्तण्णं क० भुज०-

जीवोंमें आयुकर्मके पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान हैं। शेष मार्गणाओंमें आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे साधिक बाईस हजार वर्ष, साधिक बारह वर्ष, साधिक उनचास दिन-रात, साधिक छह महीना, साधिक बाईस हजार वर्ष, साधिक सात हजार वर्ष, साधिक तीन दिन-रात, साधिक तीन हजार वर्ष और साधिक दश हजार वर्ष है। सब निगोद जीवोंमें आयुकर्मके सब पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

२८७. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर ओघके समान है। अवक्तव्य बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। आयुकर्मका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। आहारक जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके अवक्तव्य बन्धका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। जो असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके बराबर है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंके सम्भव पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। त्रस अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मके पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है।

२८८. पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर सामान्य देवोंके समान है। आयुकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य पदका अन्तर नहीं है। इतनी विशेषता है कि पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आठों कर्मोंके अवक्तव्य पदका अन्तर नहीं है। काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित

१. मूलप्रतौ—तिरिक्खपज्जत्तभंगो इति पाठः। २. मूलप्रतौ अप्पद० जह० अप० जह० एगस० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्प०-अवट्ठि० मूलोघं। अवत्त० णत्थि अंतरं। आयु० अप्पद०-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि सादि०। ओरालि० सत्तण्णं क० मण०-भंगो। आयु० अप्पद०-अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादिरे०। ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं भुज०-अप्पद० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम०। आयु० अप०भंगो। वेउव्वियमि०-सम्मामि० सत्तण्णं क० णिरय-भंगो। कम्मइ०-अणाहा० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जहण्णु० एग०।

२८९. अवगद० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जहण्णु० अंतो०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं।

२९०. कोधादि०४ सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० चत्तारि सम०। आयु० मणजोगिभंगो। णवरि लोभे मोह० अवत्त० णत्थि अंतरं।

पदोंका अन्तर मूलोघके समान है। अवक्तव्य पदका अन्तर नहीं है। आयुकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। औदारिक काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके पदोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है। आयुकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। आयुकर्मका भङ्ग अपर्याप्तकोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके सम्भव पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका अन्तर नहीं है। अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

२८९. अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्य बन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहां भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। किन्तु यहां भुजगार और अल्पतरबन्धका काल एक समय होनेसे अवस्थित बन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। तथा मोहनीयके बन्धकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तमोहसे अन्तरित होकर और आयुके बिना शेष छह कर्मोंकी अपेक्षा उपशान्तमोहसे अन्तरित होकर अपगतवेदमें सात कर्मोंका अवस्थितबन्ध भी होता है, इसलिए यहां सात कर्मोंके अवस्थित-बन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन कर्मोंका अवक्तव्य बन्ध उपशमश्रेणिसे उतरते समय एक बार होता है, इसलिये यहां अवक्तव्य बन्धके अन्तरका निषेध किया है।

२९०. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। आयुकर्मका भङ्ग मनोयोगियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि लोभक-षायमें मोहनीय कर्मके अवक्तव्यबन्धका अन्तर काल नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६१. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तएणं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघं। अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरे०। आयु० ओघं। एवं ओधिदं-सम्मादि०-खइग०। णवरि खइग० अवत्त० उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। मणपज्ज० सत्तएणं कम्मा० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० ओघं। अवत्त० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। आयु० अवत्त०-अप्पद० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। एवं संजदा०। एवं चेव सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०। णवरि सत्तएणं क० अवट्ठि० वेसम०। अवत्त० णत्थि।

२६२. सुहुमसं० छएणं कम्माणं जहएणु० भुज-अप्प० अंतो०। अवट्ठि० जहएणु'० एगस०।

२६३. तेउ०-पम्म० सत्तएणं क० भुज०-अप्पद० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम०। आयु० देवोघं। एवं वेदगे। णवरि आयु० ओधिभंगो।

विशेषार्थ—यद्यपि लोभकषायमें मोहनीय कर्मका अवक्तव्य बन्ध होता है पर अन्तर काल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि अन्तरकाल प्राप्त करनेके लिए दो बार उपशमश्रेणि पर आरोहण कराना पड़ता है पर प्रत्येक कषायका इतना बड़ा काल नहीं है। इसीसे यहाँ लोभकषायमें मोहनीयके अवक्तव्यबन्धके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

२९१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। आयुकर्मका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवक्तव्य बन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर ओघके समान है। अवक्तव्य बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सात कर्मोंके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर दो समय है। तथा इनके अवक्तव्यबन्ध नहीं है।

२९२. सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें छह कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

२९३. पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। आयुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका भङ्ग अवधि-

१. मूलप्रतौ अवट्ठि० जह० एगस० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुक्कले० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघं । अवत्तव्व० णत्थि अंतरं । आयु० देवोघं ।

२९४. उवसमस० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघं । अवत्त० णत्थि अंतरं । सासणे सत्तण्णं क० णिरयभंगो । आयु० दो वि पदा णत्थि अंतरं । एवं अंतरं समत्तं ।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

२९५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि०बंधगा णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तव्वबंधगो य, सिया एदे य अवत्तव्वबंधगा य । आयु० अवत्त० अप्पदरबंधगा य णियमा अत्थि । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियका०-अचक्खुदं०-भवसि०-आहारग त्ति ।

२९६. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० अवट्ठि०बंध० णियमा अत्थि । सेसपदाणि भयणिज्जाणि ।

ज्ञानियोंके समान है । शुक्लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार अल्पतर और अवस्थित बन्धका अन्तर ओघके समान है । अवक्तव्यबन्धका अन्तर नहीं है । आयुकर्मका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है ।

२९४. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-बन्धका अन्तर ओघके समान है । अवक्तव्य बन्धका अन्तर नहीं है । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका अन्तर नहीं है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम

२९५. नानाजीवोंका अवलम्बन कर भङ्गविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंका भुजगार अल्पतर और अवस्थित बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं । कदाचित् ये हैं और अवक्तव्यबन्ध करनेवाला एक जीव है । कदाचित् ये हैं और अवक्तव्य बन्ध करनेवाले अनेक जीव हैं । आयुकर्मका अवक्तव्य और अल्पतर बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं । इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजगारबन्ध आदिके भङ्ग लाये गये हैं । ओघसे सात कर्मोंका भुजगार, अल्पतर और अवस्थित बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं । यह एक ध्रुव भङ्ग है । तथा ये और कदाचित् अवक्तव्य बन्ध करनेवाला एक जीव है अथवा ये और कदाचित् अवक्तव्य भङ्गवाले नाना जीव हैं । इस प्रकार ये दो अध्रुव भङ्ग हैं । कुल भङ्ग तीन होते हैं । आयुकर्मकी अपेक्षा अवक्तव्य और अल्पतरबन्धवाले जीव नियमसे हैं, यही एक ध्रुव भङ्ग होता है । यहां काययोगी आदि जो मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनका कथन ओघके समान कहा है ।

२९६. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंका अवस्थित बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पद भजनीय हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयणिज्जपदा तिगुणा अण्णोण्णगुणा हवेज्ज कादव्वा ।
धुवरहिदा रूवूणा[1] धुवसहिदा तत्तिया चेव ॥ १ ॥

२९७. आयुगस्स दो वि पदा भयणिज्जा । एवं सव्वणिरयस्स सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस०अप०—बादरपुढ०—आउ०—तेउ०—वाउ०-बादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्जत्त०-वेउव्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-तेउ०-पम्म०-वेदग त्ति ।

२९८. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० आयु० अवत्त०-अप्पदर० णियमा अत्थि । एवं तिरिक्खोघभंगो सव्वएइंदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अप० तेसिं चेव सव्वसुहुम-सव्व-वणप्फदि-णियोद-बादरवणप्फ०पत्तेय० तस्सेव अप० ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०—णील०-काउ०-अब्भवसि०—मिच्छादि०—असण्णि त्ति ।

भजनीय पदोंका १ १ इस प्रकार विरलन करके तिगुना करे। पुनः उसी तिगुनी विरलित राशिका परस्परमें गुणा करे । इस क्रियाके करनेसे जो लब्ध आता है,उससे अध्रुव भङ्ग एक कम होते हैं और ध्रुव भङ्ग सहित अध्रुवभङ्ग उक्त संख्याप्रमाण होते हैं ॥१॥

२९७. आयुकर्मके दोनों ही पद भजनीय हैं । इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ सात कर्मोंकी अपेक्षा अवस्थित बन्धवाले जीव नियमसे हैं । यह एक ध्रुव भङ्ग है और भुजगार व अल्पतर ये दो पद भजनीय हैं। अतएव पूर्वोक्त गाथामें कहे गये नियमके अनुसार इन दो का १, १ इस प्रकार विरलनकर तथा इन्हें ३, ३ इस प्रकार तिगुना कर इनका परस्परमें ३ × ३ = ९ इस प्रकार गुणा करनेपर कुल ९ भङ्ग होते हैं । इनमें से ८ अध्रुव भङ्ग और एक ध्रुव भङ्ग है । ये ९ भङ्ग ज्ञानावरण आदि एक-एक कर्मकी अपेक्षासे होते हैं । आयुकर्म के दोनों पद भजनीय हैं, इसलिए इनके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एक संयोगी और द्विसंयोगी कुल आठ भङ्ग होते हैं ।

२९८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंका भुजगार, अल्पतर और अवस्थितका बन्ध करनेवाले जीव तथा आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतरका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके समान सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और इन सबके अपर्याप्त, तथा इनके ही सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके ही अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए ।

१. मूलप्रतौ-रहिदा रूवेण धुव इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९९. मणुस०३ सत्तरणं क० अवट्ठिदबंधगा णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। आयु० दो वि पदा भयणिज्जा। एवं पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-सण्णि त्ति।

३००. मणुसअप० अट्ठण्णं क० सव्वपदा भयणिज्जा। एवं वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०।

३०१. कम्मइग०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि।

भागाभागाणुगमो

३०२. भागाभागाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०बंधगा सव्वजीवेहि केवडियो? असंखेज्जदिभागो। अवट्ठि० केव०? असंखेज्जा भागा। अवत्तव्वबंधगा केवडि०? अणंतभागो। आयु० अवत्त०बंध०-केवडि०? असंखेज्जदिभागो। अप्पद०बंध० केवडि०? असंखेज्जा भागा। एवं

---

२९९. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। आयुकर्मके दोनों ही पद भजनीय हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां सात कर्मोंकी अपेक्षा ३ पद भजनीय होनेसे प्रत्येक कर्मका ध्रुव १ और अध्रुव २६ कुल २७ भङ्ग होते हैं। आयुकर्मके दोनों पद भजनीय होनेसे कुल ८ अध्रुव भङ्ग होते हैं।

३००. मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें आठों कर्मोंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारक मिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमेंसे जिसमें सात कर्मोंकी अपेक्षा जितने पद सम्भव हों, उनके अनुसार अध्रुव भङ्ग ले आने चाहिए। नियमका निर्देश पहले ही कर आये हैं।

३०१. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

३०२. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थित पदवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आयुकर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयु० याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । असंखेज्जजीविगाणं अणंतजीविगाणं वा एदेसिं सत्तण्णं पि कम्माणं ओघे चेव । णवरि ये असंखेज्जा जीवा तेसिं सत्तण्णं कम्माणं अवत्त० भुजगारेण सह भाणिदव्वं ।

३०३. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद० सव्वजीवे० केवडि०[1] ? असंखेज्जदिभागो । अवट्ठि० केव० ? असंखेज्जा भागा । एवं सव्वेसिं असंखेज्जरासीणं अणंतरासीणं वि अवत्तव्वबंधवज्जाणं ।

३०४. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं । संखेज्जं कादव्वं । अवगद० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवत्त०बं० केव[2]० ? संखेज्जदिभा० । अवट्ठि०बं० केव० ? संखेज्जा भागा । सुहुमसंप० छण्णं क० भुज०-अप्प० संखेज्जदिभागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । सेसाणं सव्वाणं संखेज्जजीविगाणं सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० संखेज्जदिभागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा[3] । आयु० अवत्त० संखेज्जदिभागो । अप्पद० संखेज्जा भागा । येसिं सत्तण्णं क० अवत्त० अत्थि तेसिं संखेज्जजीविगाणं मणुसिभंगो ।

हैं । अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार आयुकर्मकी अपेक्षा अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। असंख्यात जीववाली और अनन्त जीववाली मार्गणाओंमें सात कर्मोंका कथन ओघके समान ही है । इतनी विशेषता है कि जिनमें असंख्यात जीव हैं, उनमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका कथन भुजगारके साथ करना चाहिए ।

३०३. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । अवक्तव्य बन्धके सिवा और पदोंका बन्ध करनेवाली और जितनी असंख्यात और अनन्त राशियाँ हैं,उन सबका भागाभाग इसी प्रकार जानना चाहिए ।

३०४. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब पदोंका भागाभाग ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँ संख्यात कहना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार अल्पतर और अवक्तव्य पदोंका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं, अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । शेष संख्यात संख्यावाली सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । आयुकर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । जिन मार्गणाओंमें सात कर्मोंका अवक्तव्य पद होता है, उनमें संख्यात संख्यावाली राशियोंका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

१. मूलप्रतौ केवडि ? असंखेज्जा भागा । अवट्ठि० इति पाठः । २. मूलप्रतौ केव० संखेज्जा भा० । अवट्ठि० इति पाठः । ३. मूलप्रतौ संखेज्जदिभागो आयु० इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परिमाणाणुगमो

३०५. परिमाणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता। अवत्त० केत्तिया ? संखेज्जा। आयु० अवत्त०-[अप्पद०] अणंता। एवमोघभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-णियोद-कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारग त्ति। णवरि कायजोगि-ओरालियका०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति एदेसिं सत्तण्णं क० अवत्तव्व० लोभे मोह० अवत्तव्वबंधगा च अत्थि।

३०६. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० आयु० दो वि पदा असंखेज्जा। एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअप० देवा याव सहस्सार त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवण०पत्ते०-पंचिंदिय-तसअप०-वेउव्वियका०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-संजदासंजद०-तेउ०-पम्मले०-वेदग०-सासण त्ति।

३०७. मणुसेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० असंखेज्जा। अवत्त०

परिमाणानुगम

३०५. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि काययोगी, औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक इन मार्गणाओंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका और लोभ कषायमें मोहनीयके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव हैं।

३०६. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव तथा आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्यदेव, सहस्रार कल्पतकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

३०७. मनुष्योंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। आयुकर्मके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जा । आयु० दो वि पदा असंखेज्जा। एवं पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग० । [णवरि सुक्कले०-खइगस०] आयु० दो पदा संखेज्जा । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वे भंगा संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ-आहार०-आहारमि०-अवगदवे०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंपरा० ।

३०८. कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अणंता । एवं परिमाणं समत्तं ।

खेत्ताणुगमो

३०९. खेत्तं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केवडि खेत्ते? सव्वलोगे। अवत्त० लोग० असंखे०भागे । आयु० अवत्त०-अप्पद० सव्वलोगे। एवं सव्वअणंतरासीणं। णवरि तेसिं चेत्र सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि । बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्त० आयु० लोग० असंखे० । वणप्फदि-बादर-णियोद-पज्जत्तापज्जत्ता० आयु० लोग० असं०भागे । पुढवि०-आउ०-तेउ०-

---

दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय द्विक, त्रस द्विक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सभी पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

३०८. कार्मण काययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

क्षेत्रानुगम

३०९. क्षेत्र दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सब लोक क्षेत्र है। अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार सब अनन्त राशियोंका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह उन्हींका जानना चाहिए जिनके सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं होता। बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर वनस्पति पर्याप्त और अपर्याप्त तथा निगोद पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इनके बादर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाउ० तेसिं बादर-बादरअपज्ज० तेसिं चेव सव्वसुहुम०बादरवणप्फदि०पत्ते० तस्सेव अपज्ज० सव्वे भंगा सव्वलोगे। णवरि बादरेसु लोग० असं०। वाउ० लोगस्स सखे०। सेसाणं संखेज्ज-असंखेज्जरासीणं सव्वे भंगा लोगस्स असं०। णवरि वाउ० पज्जत्ते लोगस्स संखेज्जदिभागे। एवं खेत्तं समत्तं।

फोसणाणुगमो

३१०. फोसणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि०बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। अवत्त० लोग० असं०। आयु० अवत्त०-अप्पद० सव्वलोगो। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं सव्वएइंदि०-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं अपज्जत्ता० तेसिं

और बादर अपर्याप्त तथा इन्हींके सब सूक्ष्म बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इन्हींके अपर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका क्षेत्र सब लोक है। इतनी विशेषता है कि बादरोंमें लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है और बादर वायुकायिकोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। शेष रहीं संख्यात और असंख्यात राशियोंमें सब पदोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है।

विशेषार्थ—यहां भुजगारबन्ध आदिकी अपेक्षा क्षेत्रका विचार किया गया है। लोकमें प्रायः एकेन्द्रियादि सभी जीव सात कर्मोंका भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्ध करते हैं, इसलिए इन पदोंका सामान्यरूपसे सब क्षेत्र कहा है। अवक्तव्यबन्ध उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवोंके या मोहनीयकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायमें और सात कर्मोंकी अपेक्षा उपशान्तमोहमें मरकर देव होनेवाले जीवोंके होता है, यतः इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, अतः सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्धवाले जीवोंका उक्तप्रमाण क्षेत्र कहा है। तथा आयुकर्मके दो पदोंकी प्राप्ति एकेन्द्रिय सब जीवोंके होती है, इसलिए आयुकर्मके दोनों पदवाले जीवोंका भी सब लोक क्षेत्र कहा है। यहां शेष मार्गणाओंमें सम्भव पदोंके क्षेत्रका सामान्यरूपसे संकेत किया ही है। सो उस मार्गणाके क्षेत्रको जानकर यथासम्भव उसे घटित कर लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन मार्गणाओंमें सात कर्मोंका बन्ध होता है, उन सबमें सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं होता, किन्तु जिन मार्गणाओंमें उपशमश्रेणिका आरोहण और अवरोहण सम्भव है उन्हींमें अवक्तव्य पद होता है। सो सर्वत्र इस पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

३१०. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकका स्पर्श किया है। अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। आयुकर्मके अवक्तव्य और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेव सव्वसुहुम० सव्ववणप्फदि-णियोद-बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव अज्जत्ता० । सव्वबादराणं आयु० दो पदा लोगस्स असं० । णवरि बादरएइंदि०-बादरवाउ० लोगस्स संखेज्ज० । कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारग त्ति ओघं । णवरि अवत्त० केसिं चेव णत्थि । येसिमत्थि तेसिमोघं ।

३११. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प-अवट्ठि० छच्चोद्दसभा० । आयु० खेत्तभंगो । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विदियादि याव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि सगफोसणं ।

३१२. सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस०-अपज्जत्ता० बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवण०पत्ते०पज्जत्ता० सत्तण्णं क०-भुज०-अप्प०-अवट्ठि० लोगस्स असं० सव्वलोगो वा । णवरि बादरवाउ० लोगस्स संखे० सव्वलो० । आयु० खेत्तभंगो । मणुस०३ सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अपज्जत्तभंगो । अवत्त० ओघं । आयु० खेत्तभंगो ।

कायिक और इनके अपर्याप्त तथा इन्हींके सब सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु सब बादरोंके आयुकर्मके दो पदोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय और बादर वायुकायिक जीवोंका आयुकर्मके दो पदोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमेंसे अवक्तव्य पद किन्हींके नहीं हैं। जिनके हैं उनके उसका स्पर्शन ओघके समान है।

३११. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आयुकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी पृथिवीका स्पर्शन कहना चाहिए।

३१२. सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है। इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें उक्त पदोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है। तथा इन सब मार्गणाओंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। अवक्तव्य पदका स्पर्शन ओघके समान है। तथा आयुकर्मके दोनों पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१३. देवेसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठ-णवचो० । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । भवण०-वाणवें०-जोदिसि० सत्तण्णं क० भुज-अप्प०-अवट्ठि० अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचो० । आयु० दो वि पदा अद्धुट्ठ-अट्ठचो० । सोधम्मीसाणे देवोघं। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति सव्वे भंगा अट्ठचो० । आणदादि अच्चुदा त्ति छच्चोद्द० । उवरि खेत्तं ।

३१४. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता० पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठचो० सव्वलोगो वा । अवत्त० ओघं । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० ।

३१५. वेउव्विय० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठ-तेरहचो० । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-कम्मइ०-अवगद०-मण-पज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं०-अणाहारग त्ति खेत्तभंगो ।

३१६. विभंगे सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठ-तेरहचोद्द० सव्वलो० । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० तिण्णिपदा०

---

३१३. देवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और नौ बटे चौदह राजू है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजू, आठ बटे चौदह राजू और नौ बटे चौदह राजू है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजु और आठ बटे चौदह राजू है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें सब पदोंका स्पर्शन सामान्य देवोंके समान है। सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। इससे आगेके देवोंमें सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३१४. पञ्चेन्द्रिय, त्रस और इन दोनोंके पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक है। अवक्तव्य पदका स्पर्शन ओघके समान है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है।

३१५. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और तेरह बटे चौदह राजू है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और अनाहारक जीवोंके अपने सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३१६. विभङ्गज्ञानमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू, कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू और सब लोक है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठचो० । अवत्त० खेत्तभंगो । आयु० दो पदा० अट्ठचो० । एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदग० । संजदासंज० सत्तण्णं क० तिण्णि पदा० छच्चोद्द० । आयु० खेत्तं ।

३१७. तेउले० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठ-णवचो० । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । पम्माए सव्वे भंगा अट्ठचो० । सुक्काए सव्वे भंगा छच्चो० । णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० [खेत्त-] भंगो ।

३१८. सासण० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठ-बारह० । आयु० दो पदा० अट्ठचो० । सम्मामि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अट्ठचोद्दस० । एवं फोसणं समत्तं ।

कालाणुगमो

३१९. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि केवचिरं कालादो होदि ? सव्वद्धा । अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं । आयु० दो वि पदा० सव्वद्धा । एवं सव्वाणं अणंतरासीणं सगपदाणं ।

चौदह राजू है । अवक्तव्य पदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके तीन पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है । आयुकर्मके दोनों पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

३१७. पीतलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजू है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है । पद्मलेश्यामें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है । शुक्ललेश्यामें सब पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है । इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

३१८. सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू है । इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

कालानुगम

३१९. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका कितना काल है ? सब काल है । अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका सब काल है । इसी प्रकार सब अनन्त राशियोंके अपने-अपने पदोंका काल जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२०. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० आवलि० असं०। अवट्ठि० सव्वद्धा। आयु० अवत्त० जह० एग०, उक्क० आवलि० असं०। अप्प० जह० अंतो, उक्क० पलिदो० असं०। एवं सव्वेसिं असंखेज्जरासीणं अवत्तव्वरहिदाणं सांतररासी असंखेज्जलोगरासी मोत्तूण। णवरि आणदादीणं आयु० अप्पदरबंध० जहण्णु० अंतो०। अवत्तव्व० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम[1]०।

३२१. मणुस-पंचिंदिय-तस०२ पज्जत्त० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० आवलि० असं०। अवट्ठि० सव्वद्धा। अवत्त० ओघं। आयु० णिरयभंगो।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा भुजगार आदि पदोंके कालका विचार किया जा रहा है। सात कर्मोंका अवक्तव्य पद उपशमश्रेणि पर चढ़कर उतरनेवाले और मरकर देव होनेवाले जीवोंके होता है। यतः उपशम श्रेणिपर चढ़नेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, इसलिए ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

३२०. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित पदका काल सर्वदा है। आयुकर्मके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतर पदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अवक्तव्य पदसे रहित सब असंख्यात राशियोंका काल जानना चाहिए। किन्तु जो सान्तर राशियां हैं और असंख्यात लोकप्रमाण संख्यावाली राशियां हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनतादिकमें आयुकर्मके अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—यह हम पहले ही बतला आये हैं कि आयुकर्मका बन्ध होनेके प्रथम समयमें अवक्तव्य पद होता है। और अनन्तर अल्पतर पद होता है, इसलिए यहां यह प्रश्न होता है कि आयुकर्मके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण रहने पर अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कैसे प्राप्त हो सकता है? समाधान यह है कि एक या नाना जीवोंने आयुकर्मका अवक्तव्यबन्ध किया और दूसरे समयसे वे अल्पतरबन्ध करने लगे। पुनः अल्पतरबन्धके कालके समाप्त होनेके अन्तिम समयमें दूसरे जीवोंने अवक्तव्यबन्ध किया और उसके दूसरे समयसे वे अल्पतरबन्ध करने लगे। इस प्रकार निरन्तर रूपसे अल्पतरबन्धका उत्कृष्ट काल लाने पर वह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहां अल्पतरपदका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आनतसे लेकर ऊपरके देव नियमसे मनुष्यायुका बन्ध करते हैं और गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं, इसलिए आनतादिमें आयुकर्मके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

३२१. मनुष्य, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित पदका काल सर्वदा है। तथा अवक्तव्यपदका काल ओघके

1. मूलप्रतौ संखेज्जसम० णिरयभंगो। मणुस– इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पंचमण०-पंचवचि०-आभि-सुद०-ओधि०-ओधिदं०-सम्मादिट्ठि-चक्खुदं०-सण्णि त्ति। णवरि पंचमण०-पंचवचि० आयु० अप्प० जह० एग०। सुक्कले०-खइग० एवं चेव। णवरि आयु० आणदभंगो।

३२२. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सत्तण्णं क० भुज०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं। अवट्टि० सव्वद्धा। आयुग० अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं। अप्पद० जहण्णु० अंतो०। एवं [1]सव्वसंखेज्जरासीणं। येसिं सत्तण्णं क० अवत्तव्वं णत्थि तेसिं पि तं चेव णादव्वं। मणुसअपज्ज० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क० आवलि० असं०। अवट्टि० जह० एग०, उक्क० पलिदो० असं०। आयु० णिरयभंगो। एवं सासण०। एवं चेव वेउव्वियमि०-सम्मामि०। आयु० णत्थि।

३२३. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अपज्ज० तेसिं सुहुम० बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव अपज्ज० सव्वे भंगा सव्वद्धा।

समान है। आयुकर्मके दोनों पदोंका काल नारकियोंके समान है। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें आयुकर्मके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है। शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें भी इसी प्रकार काल है। इतनी विशेषता है कि इनमें आयुकर्मके दोनों पदोंका काल आनत कल्पके समान है।

३२२. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अवस्थित पदका काल सर्वदा है। आयुकर्मके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अल्पतर पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब संख्यात राशियोंका काल जानना चाहिए। तथा जिन संख्यात राशियोंमें अवक्तव्य पदका बन्ध नहीं होता, उनमें भी यही काल जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके दोनों पदोंका काल नारकियोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकों के समान सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मका बन्ध नहीं होता।

३२३. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक तथा इनके अपर्याप्त और सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके अपर्याप्त जीवोंमें सम्भव सब पदोंका काल सर्वदा है।

१. मूलप्रतौ सव्वअसंखेजरासीणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२४. आहार०-आहारमि० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयु० अवत्तव्व० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । अप्प० जह० एग०, उक्क अंतो० ।

३२५. अवगद० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसम० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सुहुमसं० छण्णं क० । णवरि अवत्तव्वं णत्थि । कम्मइ०-अ'णाहा० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० सव्वद्धा । एवं कालं समत्तं ।

अंतराणुगमो

३२६. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । अवत्तव्वं० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं । आयु० दो पदा णत्थि अंतरं । एवं कायजोगि-ओरालिका०-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति ।

३२७. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० भुज०-अप्प० जह० एग०, उक्क०

३२४. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अवस्थित-पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आयुकर्मके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

३२५. अपगतवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें छह कर्मोंके पदोंका काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्य पद नहीं होता । कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका काल सर्वदा है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

अन्तरानुगम

३२६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्य-पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । आयुकर्मके दो पदोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व होने से यहां सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका अन्तर काल उक्तप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

३२७. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर

१. मूलप्रतौ कम्मइ० आयु० सत्तण्णं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो० । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । आयु० दो पदा० जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहुत्तं । एवं सव्वणेरइएसु । आयु० परिवादीए अडदालीसं मुहुत्तं पक्खं मासं बे मासं चत्तारिमासं छम्मासं बारसमासं । एवं चेव देवाणं पि कादव्वं। णवरि सव्वट्ठे पलिदोवमस्स संखेज्ज० ।

३२८. तिरिक्खेसु सव्वे भंगा णत्थि अंतरं । एवं सव्वएइंदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अप०-सुहुम०-सव्ववणप्फदि-णियोद-बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव अप० ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भव०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारग त्ति । णवरि लोभे मोह० ओघं ।

३२९. सव्वपंचिंदियतिरिक्ख० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । आयु० दो पदा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पज्जत्त-जोणिणीसु जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहु० । अपज्ज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

३३०. मणुसअप० सव्वे भंगा जह० एग०, उक्क० पलिदो० असं० । मणुस०३

काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है । आयुकर्मके दोनों पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। किन्तु आयुकर्मके दोनों पदोंका क्रमसे अड़तालीस मुहूर्त, एक पक्ष, एक माह, दो माह, चारमाह, छह माह और बारह माह है। इसी प्रकार देवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें पल्यका संख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है।

३२८. तिर्यञ्चोंमें सम्भव सब पदोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और इन्हींके अपर्याप्त व सूक्ष्म, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि-चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें मोहकर्मके पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है।

३२९. सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है। आयुकर्मके दो पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें आयुकर्मके दो पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस मुहूर्त है। तथा अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें अपने पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

३३०. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्भव सब पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० आयु० दो पदा० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। सत्तण्णं क० अवत्त० ओघं। सव्वविगलिंदिय० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। पंचिंदिय-तस० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि सत्तण्णं क० अवत्त० ओघं।

३३१. बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवण०पत्तेयपज्जत्ता० विगलिंदियअपज्जत्तभंगो। णवरि तेउका० आयु० दो वि पदा जह० एग०, उक्क० चउवीसं मुहु०।

३३२. पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वियका०-इत्थिवे०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति सगपदा० मणुसिभंगो। वेउव्वियमिस्स० सव्वे भंगे जह० एग०, उक्क० बारसमु०। आहार०-आहारमि० सव्वे भंगे जह० एय०, उक्क० वासपुधत्तं।

३३३. अवगदवे० सत्तण्णं क० भुज०-अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं। अप्प०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० छम्मासं। एवं सुहुमसं। सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि अंतरं।

भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका तथा आयुकर्मके दो पदोंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है। सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका अन्तरकाल ओघके समान है। सब विकलेन्द्रियोंमें सब पदोंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। तथा पञ्चेन्द्रिय और त्रसोंमें सब पदोंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका अन्तरकाल ओघके समान है।

३३१. बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका अन्तरकाल विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें आयुकर्मके दो पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस मुहूर्त है।

३३२. पाँचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें अपने-अपने पदोंका अन्तरकाल मनुष्यिनियोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

३३३. अपगतवेदमें सात कर्मोंके भुजगार और अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका अन्तर नहीं होता।

विशेषार्थ—भुजगार और अवक्तव्य पद उपशमश्रेणिमें होते हैं और उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसीसे यहां अपगतवेदी जीवोंके सात कर्मोंके भुजगार और अवक्तव्य पदोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है। सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके भुजगार पदका यह अन्तर मोहनीयके बिना छह कर्मोंका प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३४. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० मणुसभंगो। आयु० दो वि पदा० जह० एग०, उक्क० मासपुध०। एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-संजदासंजद-ओधिदं०-सम्मादि[1]०-वेदग० सगपदाणं। एवं चेव मणपज्ज०। णवरि आयु० दो वि पदा० जह० एग०, उक्क० वासपुध०। एवं परिहार०-खइग०।

३३५. तेउ०-पम्म० देवभंगो। आयु० दो वि पदा० जह० एग०, उक्क० अडदालीसं मुहु० पक्खं। सुक्काए ओधिभंगो।

३३६. उवसम० सत्तण्णं क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अवत्त० ओघं। सासण० अट्ठण्णं क० सम्मामि० सत्तण्णं क० सव्वपदा० जह० एग०, उक्क पलिदो०। एवं अंतरं समत्तं।

भावाणुगमो

३३७. भावाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० अट्ठण्णं क० सव्वपदाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। एवं जाव अणाहारग त्ति णादव्वं।

---

३३४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके सब पदोंका अन्तर मनुष्योंके समान है। आयुकर्मके दोनों पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्व है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना-संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके अपने-अपने पदोंका अन्तर जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मके दोनों ही पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। मनःपर्ययज्ञानियोंके समान परिहारविशुद्धिसंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

३३५. पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके अपने सब पदोंका अन्तर देवोंके समान है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे अड़तालीस मुहूर्त और एक पक्ष है। शुक्ललेश्यामें सब पदोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है।

३३६. उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। अवक्तव्य पदका अन्तर ओघके समान है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें आठों कर्मोंके और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सात कर्मोंके सब पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

भावानुगम

३३७. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आठों कर्मोंके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका कौनसा भाव है? औदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

---

१. मूलप्रतौ सम्मामि वेदग इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुगाणुगमो

३३८. अपाबहुगाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबंधगा । अप्पद०बंध० अणंतगु० । भुज०बं विसे० । अवट्टि० बंध० असं०गु० । आयु० सव्वत्थोवा अवत्त०बंधगा । अप्पद० असं०गु० । एवं तिरिक्खोघं कायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-आहारग त्ति । णवरि एसिं अवत्त० णत्थि तेसिं सव्वत्थोवा अप्पद० । भुज० विसे० । अवट्टि० असं०गु० ।

३३६. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा भुज०-अप्प० । अवट्टि० असं०गु० । आयु० ओघं । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअज्ज० देवा याव अवराजिदा त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकाय-ओरालियमि०-वेउव्विय[1]०-वेउव्वियमि०-इत्थि०-पुरिस०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदग०-सासण०-

---

विशेषार्थ—कर्मोंकी भुजगार आदि स्थितिका बन्ध कषायसे होता है और कषाय औदयिक भाव है, इसलिए यहाँ एक ही भाव कहा है। यहाँ किसी भी मार्गणामें आदेश प्ररूपणा सम्भव नहीं है। ओघके समान ही सर्वत्र जानना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम

३३८. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे भुजगार पदका बन्ध करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मके अवक्तव्यपदके बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिन मार्गणाओंमें सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं है, उनमें अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगार पदका बन्ध करनेवाले जीव विशेष अधिक हैं और इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

३३९. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतरपदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मके पदोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देव, अपराजित विमान तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि

---

१. मूलप्रतौ वेदय० वेउव्वियमि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामि०असरिण त्ति । णवरि आणदादि अवराजिदा त्ति आयु० संखेज्जं कादव्वं।

३४०. मणुसेसु सत्तएणं क० सव्वत्थोवा अवत्त०। भुज०-अप्पद० असं०गु० । अवट्ठि० असं०गु० । आयु० ओघं। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि संखेज्जं भाणिदव्वं । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदोवट्ठा०। णवरि मणपज्ज०-संजद० सत्तएणं क० अवत्त० अत्थि सेसाणं णत्थि ।

३४१. पंचिंदय०२-पंचमण०-पंचवचि०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सणिण त्ति मणुसभंगो। णवरि-सुक्कले०-खइग० आयु० मणुसिभंगो।

३४२. तस०२ ओघं! णवरि असंखेज्जं कादव्वं। एवं तसअप०। णवरि अवत्तव्वं णत्थि। ओरालियका० ओघं। णवरि भुज०-अप्प० तुल्लं। कम्मइ० सत्तएणं क० सव्वत्थोवा भुज०-अप्प०। अवट्ठि० असं०गु०। अवगद० सत्तएणं क० सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० संखे०गु० । अप्पद० सं०गु० । अवट्ठि० सं०गु० ।

आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें आयुकर्मके अल्पबहुत्वको कहते समय संख्यातगुणा कहना चाहिए।

३४०. मनुष्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मके दोनों पदोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंके जानना जाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ असंख्यातके स्थान पर संख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके सात कर्मोंका अवक्तव्य पद है; शेषके नहीं है।

३४१. पञ्चेन्द्रियद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंमें सब पदोंका अल्पबहुत्व मनुष्योंके समान है। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका अल्पबहुत्व मनुष्यिनियोंके समान है।

३४२. त्रसद्विकमें सब पदोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि अनन्तके स्थानमें असंख्यात कहना चाहिए। इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं होता। औदारिक काययोगी जीवोंमें सब पदोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव तुल्य होते हैं। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके भुजगार और अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे भुजगारपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक संयत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमसं० छण्णं क० सव्वत्थोवा भुज० । अप्प० सं०गु० । [अवट्ठिद० संखेज्जगु०] । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

पदणिक्खेवो

३४३. पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे त्ति ।

समुक्कित्तणा

३४४. समुक्कित्तणं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी उक्क० अवट्ठाणं । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं ।

३४५. जहण्णए पगदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० अत्थि

जीवोंमें छह कर्मोंके भुजगारपदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अल्पतर पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अल्पबहुत्व कार्मणकाययोगवालोंके समान है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप

३४३. अब पदनिक्षेपका अधिकार है। इसके ये तीन अधिकार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ।

विशेषार्थ—यहाँ 'पद' शब्दसे वृद्धि, हानि और अवस्थान इन तीन पदोंका ग्रहण किया गया है। ये तीनों पद उत्कृष्ट भी होते हैं और जघन्य भी। आशय यह है कि इस अनुयोगद्वारमें यह बतलाया गया है कि कोई एक जीव यदि प्रथम समयमें अपने योग्य जघन्य स्थितिबन्ध करता है और दूसरे समयमें वह स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करता है,तो उसके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी वृद्धि हो सकती है और कमसे कम कितनी वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है और अनन्तर समयमें वह स्थितिको घटा कर बन्ध करता है, तो उस जीवके बन्धमें अधिकसे अधिक कितनी हानि हो सकती है और कमसे कम कितनी हानि हो सकती है; यही सब विषय इस प्रकरणमें विविध अनुयोगोंके द्वारा दिखलाया गया है। वृद्धि और हानि होनेके बाद जो अवस्थित बन्ध होता है,उसे यहाँ अवस्थित बन्ध कहा है। यह जिस प्रकारकी वृद्धि और हानिके बाद होता है,उसका वही नाम पड़ता है।

समुत्कीर्तना

३४४. समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है–जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए।

३४५. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहरिणया वड्ढी [जहण्णिया हाणी] जह० अवट्ठाणं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

सामित्तं

३४६. सामित्तं दुवि०—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण सत्तण्णं क० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स होदि? याव दुट्ठाणिययव मज्झस्स उवरिं अंतोकोडाकोडिट्ठिदिबंधमाणो उक्कस्सयं संकिलेसं गदो उक्कस्सयं दाहं गदो तदो उक्कस्सयं ट्ठिदिबंधो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। उक्कस्सिया हाणी कस्स? यो उक्कस्सट्ठिदिबंधमाणो मदो एइंदियो जादो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्कस्सिया हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स होदि? उक्कस्सयं ट्ठिदिबंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए ट्ठिदिबंधट्ठाणे पडिदो तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। एवमोघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-आहारग त्ति।

आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

३४६. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो दोस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तकोटाकोटिसागरप्रमाण स्थितिका बन्ध करता हुआ उत्कृष्टसंक्लेश और उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए मर कर एकेन्द्रिय हो गया और वहां तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्ध करने लगता है, उसके उत्कृष्ट हानि होती है। उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है? जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोगके न रहनेसे संक्लेश परिणामोंसे च्युत होकर तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धस्थानको प्राप्त होता है, उसके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहां बन्धस्थितिकी वृद्धि, हानि और अवस्थानकी पदनिक्षेप संज्ञा है और जिस अनुयोगद्वारमें इसका विचार किया जाता है, वह पदनिक्षेप अनुयोगद्वार है। यह वृद्धि, हानि और अवस्थान जघन्य भी होता है और उत्कृष्ट भी होता है। यहां सर्वप्रथम उत्कृष्टका विचार करते हुए वह किसके होता है; यह बतलाया गया है। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके जघन्य स्थितिबंध अन्तःकोटाकोटिसागरप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। अब एक ऐसा जीव लो जो जघन्य स्थितिका बन्ध करते हुए उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणामोंके होने पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करने लगता है, तो यह स्थितिबन्धकी उत्कृष्ट वृद्धि होगी। यह उत्कृष्ट वृद्धि स्वस्थानमें ही सम्भव है, परस्थानमें सम्भव नहीं, इसलिए यहां स्वस्थान की अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४७. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० उक्कस्सिया वड्ढी-अवट्ठाणे ओघं। उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? यो उक्कस्सयं ट्ठिदिं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पडिदो तस्सेव उक्कस्सिया हाणी। एवं सव्वणिरय-पंचिंदिय० तिरिक्ख०३-मणुस०३ देवा याव सहस्सार त्ति पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेउव्वि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-विभंग०-चक्खुदं०-पंचले०-सण्णि त्ति।

३४८. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सत्तण्णं क० उक्क० वड्ढी कस्स० ? यो तप्पाओग्गजहण्णयं ट्ठिदिं बंधमाणो तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो तप्पाओग्गउक्कस्सयं ट्ठिदिबंधो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? यो तप्पाओग्गउक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्कस्सिया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं। एवं मणुसअ-

गई है। किन्तु उत्कृष्ट हानि परस्थानकी अपेक्षा प्राप्त होती है। कारण कि जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, वह मरकर एकेन्द्रिय भी हो सकता है और वहां एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिबन्ध करने लगता है। इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धि अन्तःकोडाकोडी कम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण प्राप्त होती है और उत्कृष्ट हानि पल्यके असंख्यातवें भागसे न्यून एक सागर कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण प्राप्त होती है। जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोगके क्षय होनेसे तत्प्रायोग्य जघन्य स्थिति बाँध कर दूसरे समयमें पुनः उसी स्थितिका बन्ध करता है, उसके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। परस्थानमें यह उत्कृष्ट अवस्थान सम्भव न होनेसे स्वस्थानकी अपेक्षा ही इसका निर्देश किया है। शेष व्याख्यान स्पष्ट है।

३४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान ओघके समान है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोगका क्षय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानि होकर तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करता है, उसीके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सब नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिक मनुष्य त्रिक, देव, सहस्रार कल्पतकके देव, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, विभङ्गज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पाँच लेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले ओघकी अपेक्षा परस्थानका अवलम्बन लेकर उत्कृष्ट हानि बतलाई थी। यहाँ जो मार्गणा विवक्षित हो उसीमें उत्कृष्ट हानि लाना इष्ट है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराते हुए तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्ध करा कर यह उत्कृष्ट हानि लाई गई है। यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई गई हैं इन सबमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि अवस्था सम्भव होनेसे उनकी अपेक्षा यह कथनी करनी चाहिए।

३४८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करते हुए तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोग का क्षय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानिवश तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करने लगता है, उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा इसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्ज० आणदादि उवरि सव्वट्ट त्ति सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-पंचिंदिय-तसअपज्ज०-सव्वपंचका०-ओरालियमि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदोव०-परिहार०-संजदासंजद-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसमस०-सासण०-सम्मामि० ।

३४६. कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स होदि ? यो तप्पाओग्गजहण्णयं ट्ठिदिं बंधमाणो तप्पाओग्गउक्कस्सयं संकिलेसं गदो तप्पाओग्गउक्कस्सयं ट्ठिदिबंधो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? यो तप्पाओग्गउक्कस्सयं ट्ठिदिं बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी । उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स होदि ? बादरएइंदियस्स तप्पाओग्गट्ठिदीदो हाणी उक्कस्सयं कादूण अवट्ठिदस्स तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

३५०. [अवगदवे०] सत्तण्णं क० उक्क० वड्ढी कस्स होदि ? उवसामगस्स परिवदमाणस्स अणियट्टिबादरसांपराइयस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति तस्स उक्क० वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स होदि ? उवसामय-

इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंमें आदेशसे उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है। दूसरे यहाँ उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानका जो कारण बतलाया है, वह सबमें घटित हो जाता है; इसलिए इनकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान कहा है।

३४९. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करते हुए तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए साकार उपयोगके क्षय होनेसे संक्लेश परिणामोंकी हानिवश तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करता है, उसके उत्कृष्ट हानि होती है। उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो बादर एकेन्द्रिय तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिमेंसे उत्कृष्ट हानि करके अवस्थित रहता है, उसके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

३५०. अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो उपशामक पतनको प्राप्त होता हुआ अनिवृत्तिबादर साम्परायको प्राप्त होकर अनन्तर समयमें वेदसहित होगा, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है और उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो उपशामक अनिवृत्तिबादर साम्पराय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणियट्टिबादरसांपराइयस्स पढमादो ट्ठिदिबंधादो विदिए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणयस्स तस्स उक्क० हाणी। एवं सुहुमसांपराइ० छण्णं क०।

३५१. असण्णि० सत्तण्णं क० उक्क० वड्ढी कस्स होदि ? एइंदियो असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो तस्स उक्क० वड्ढी होदि। असण्णिपंचिंदियो एइंदियेसु उववण्णो तस्स उक्क० हाणी। उक्कस्सयमवट्ठाणं असण्णिपंचिंदिय० सत्थाणं कादव्वं।

३५२. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० जहण्णिया वड्ढी कस्स होदि ? यो समयूणउक्कस्सियं ट्ठिदि बंधमाणो पुण्णाए ट्ठिदिबंधगद्धाए उक्कस्सयं संकिलेसं गदो उक्कस्सयं ट्ठिदिबंधो तस्स जहण्णिया वड्ढी। जहण्णिया हाणी कस्स होदि ? यो समयुत्तरं जहण्णयं ट्ठिदि बंधमाणो पुण्णाए ट्ठिदिबंधगद्धाए उक्कस्सयं विसोधिं गदो तस्स जहण्णयं ट्ठिदिबंधो तस्स जहण्णिया हाणी। एक्कदरत्थ अवट्ठाणं। एवं सत्थाणं याव अणाहारग त्ति। णवरि अवगद०-सुहुमसं० सत्तण्णं क०छण्णं क० जहण्णिया वड्ढी कस्स होदि? उवसामयस्स परिवदमाणस्स विदिए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स तस्स जह० वड्ढी। जहण्णिया हाणी कस्स० ? खवगस्स चरिमे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स तस्स जह० हाणी। तम्हि चेव जहण्णयमवट्ठाणं।

जीव प्रथम स्थितिबन्धके बाद द्वितीय स्थितिबन्धमें विद्यमान होता है, उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके छह कर्मोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान जानना चाहिए।

३५१. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किससे होती है ? जो एकेन्द्रिय असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है, उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है, उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उत्कृष्ट अवस्थान असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके स्वस्थानकी अपेक्षा कहना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

३५२. अब जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हुए स्थितिबन्धके कालके पूर्ण हो जानेपर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? जो एक समय अधिक जघन्य स्थितिका बन्ध करते हुए जघन्य स्थितिबन्धके कालके पूर्ण हो जानेपर उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर जघन्य स्थितिबन्ध करता है, उसके जघन्य हानि होती है। तथा इनमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है। इस प्रकार स्वस्थानकी अपेक्षा अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें क्रमसे सात और छह कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो उपशामक उपशम श्रेणिसे उतरते हुए दूसरे स्थितिबन्धका प्रारम्भ करता है, उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किससे होती है ? जो क्षपक अन्तिम स्थितिबन्ध कर रहा है, उसके जघन्य हानि होती है और इसीमें जघन्य अवस्थान होता है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुगं

३५३. अप्पाबहुगं दुवि०— जहण्णयं उकस्सयं च। उकस्सए पगदं। दुवि०— ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं कम्माणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी। उक्कस्सयमवट्ठाणं विसेसाहियं। उक्क० हाणी विसेसा०। ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-आहारग त्ति।

३५४. णिरएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी। उक्कस्सिया हाणी उक्कस्सयमवट्ठाणं च दो वि तुल्ला विसे०। एवं सव्वाणं अणाहारग त्ति। णवरि तिण्णं मिस्सगाणं सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी। उक्कस्सिया वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि संखेज्जगु०।

३५५. कम्मइ०-अणाहा० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा उक्कस्सयमवट्ठाणं। उक्क० वड्ढी० सं०गु०। उक्क० हाणी विसे०। अवगद० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी। उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं असं०गु०। णवरि घादीणं संखेज्जगुणाए। एवं सुहुमसं० छण्णं क०। णवरि सव्वेसिं घादीणं भंगो।

३५६. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा उक्क० हाणी अवट्ठाणं। उक्क० वड्ढी सं०गु०। एवं मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-

---

३५३. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३५४. नारकियोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक सबके अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीनों मिश्रयोगवाले जीवोंके सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान ये दोनों तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं।

३५५. कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है और इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान असंख्यातगुणे हैं। इतनी विशेषता है कि घाति कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके उक्त पदोंका अल्पबहुत्व है। इतनी विशेषता है कि इनके सब कर्मोंके उक्त पदोंका अल्पबहुत्व घातिकर्मोंके समान है।

३५६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओधिदं०-सम्मादि०-वेदगस०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० । णवरि णिरयभंगो यदि सत्थाणे सामित्तं दिज्जदि । अथ मिच्छत्ताभिमुहस्स तदो वड्ढी[1] संखे०गुणं । खइगे णिरयभंगो । असण्णि० सव्वत्थोवा उक्क० अवट्ठाणं । उक्क० वड्ढी सं०गु० । उक्क० हाणी विसेसाहिया । एवं उक्कस्सं समत्तं ।

३५७. जहण्णए पगदं । दुवि—ओघे० आदे० । ओघेण सत्तण्णं क० जहण्णिया वड्ढी जहण्णिया हाणी जहण्णयमवट्ठाणं तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं याव अणाहारग त्ति । णवरि अवगदवे० सव्वत्थोवा सत्तण्णं कम्माणं जहण्णिया हाणी अवट्ठाणं । जह० वड्ढी सं०गु० । एवं सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं पदणिक्खेवे समत्ते ।

तासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि स्वस्थान की अपेक्षा स्वामित्व प्राप्त किया जाता है, तो नारकियोंके समान अल्पबहुत्व है और यदि मिथ्यात्वके अभिमुख हुए इन जीवोंका अल्पबहुत्व प्राप्त किया जाता है, तो वृद्धि संख्यातगुणी है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उक्त पदोंका अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है।

विशेषार्थ—यहाँ आभिनिबोधिकज्ञानीसे लेकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि तक जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, इन सब मार्गणावाले जीवोंका मिथ्यात्व गुणस्थानमें भी गमन सम्भव है। उसमें भी सासादन गुणस्थानवाले तो नियमसे मिथ्यात्वमें जाते हैं। इसलिए इन मार्गणाओंमें अल्पबहुत्व दो प्रकारका प्राप्त होता है। जबतक ये मिथ्यात्वके अभिमुख नहीं होते हैं, तब तक इनमें नारकियोंके समान अल्पबहुत्व है। अर्थात् सात कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है और इससे उत्कृष्ट हानि व उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। और जब ये मिथ्यात्वके अभिमुख होते हैं, तब अल्पबहुत्व इस प्रकार होता है—सात कर्मोंकी उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान दोनों तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं और इससे उत्कृष्ट वृद्धि संख्यातगुणी है। यहाँ ओघ और आदेशसे आयुकर्मका अल्पबहुत्व नहीं कहा है सो इसका कारण यह है कि आयुकर्मके स्थितिबन्धमें इस तरहकी वृद्धि, हानि और अवस्थान सम्भव नहीं है। उसमें केवल प्रथम समयके बन्धके बाद हानि ही होती है, इसलिए उसमें अल्पबहुत्व घटित नहीं होता।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

३५७. अब जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है। इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान ये तीनों ही तुल्य हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी जीवोंमें सात कर्मोंकी जघन्य हानि और अवस्थान सबसे स्तोक है। इनसे जघन्य वृद्धि संख्यातगुणी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंका अल्पबहुत्व है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ।

---

1. मूलप्रतौ वड्ढी सम गुणं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वड्ढिबंधो

३५८. वड्ढिबंधे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं एवं याव अप्पाबहुगे त्ति ।

समुक्कित्तणा

३५९. समुक्कित्तणदाए दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्तण्णं क० अत्थि चत्तारिवड्ढि०चत्तारिहाणि०अवट्ठिद०अवत्तव्वबंधगा य । आयु० अत्थि अवत्तव्वबंधगा य असंखेज्जभागहाणिबंधगा य । एवं आयु० याव अणाहारग त्ति । यथा ओघेण तथा मणुस०३-पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियका०-आभि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद०-चक्खुदं०-अचक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्णि-आहारग त्ति ।

वृद्धिबन्ध

३५८. अब वृद्धिबन्धका प्रकरण है । उसमें ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना और स्वामित्वसे लेकर अल्पबहुत्व तक ।

विशेषार्थ—जिसमें छहगुणी हानि-वृद्धिका विचार किया जाता है, उसे वृद्धि अनुयोगद्वार कहते हैं । यहाँ वृद्धि पद उपलक्षण है, इसलिए इस पदसे हानिका भी ग्रहण हो जाता है । यहाँ स्थितिबन्धका प्रकरण होनेसे इसका नाम वृद्धिबन्ध पड़ा है । मुख्यरूपसे इसका विचार तेरह अनुयोगद्वारोंके द्वारा किया जाता है । प्रकृतमें प्रारम्भके समुत्कीर्तना और स्वामित्व ये दो तथा अन्तिम अल्पबहुत्व इन तीनका नाम निर्देश किया है । सब अनुयोगद्वारोंके नाम ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, और अल्पबहुत्व ।

समुत्कीर्तना

३५९. समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं । आयुकर्मके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले और असंख्यात भागहानिपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं । इसी प्रकार आयुकर्मकी अपेक्षा अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए । तथा शेष सात कर्मोंकी अपेक्षा जिस प्रकार ओघमें कहा है, उसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्धका पहले निर्देश कर आये हैं । साथ ही यह भी बतला आये हैं कि आयुकर्मका अवक्तव्यबन्ध होनेके बाद अल्पतरबन्ध ही होता है । इस प्रकार इन आठों कर्मोंके स्थितिबन्धके कुल विकल्पोंको देखते हुए इनमें अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि तथा अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि तो कथमपि सम्भव नहीं हैं, क्योंकि कुल स्थितिविकल्प असंख्यात ही हैं, इसलिये इनमें ये दो वृद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६०. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क०[1] अत्थि तिण्णिवड्ढि० तिण्णिहाणि० अवट्ठिदबंधगा य । एवं णिरयभंगो[2] सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्जत्त-सव्वदेव-पंचिंदिय-तसअपज्जत्त-ओरालियमि०--वेउव्वि०--वेउव्वियमि०--आहार०--आहारमि०-कम्मइ०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०--विभंग०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-पंचले०-अब्भवसि०--वेदगस०--सासणस०--सम्मामिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारग त्ति । णवरि इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-सामाइ०-छेदो० सत्तण्णं क० अत्थि चत्तारिवड्ढि० चत्तारिहाणि० अवट्ठिदबंधगा य । लोभक० मोह० अवत्तव्वबंधगा य ।

और दो हानि सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँ ओघसे सात कर्मोंकी चार वृद्धि और चार हानियोंका निर्देश किया है। अवस्थित और अवक्तव्यपद स्पष्ट ही हैं। अब रहा आयुकर्म सो इसका जब बन्ध प्रारम्भ होता है, तब प्रथम समयमें एक मात्र अवक्तव्य पद ही होता है और अनन्तर अल्पतर पद होता है। फिर भी उस अल्पतर पदमें कौनसी हानि होती है, यही बतलानेके लिए यहाँ वह असंख्यातभागहानि ही होती है, यह स्पष्ट निर्देश किया है। इस प्रकार आठों कर्मोंमें कौन-कौन पद होते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि नरकगति मार्गणासे लेकर अनाहारक मार्गणा तक सब मार्गणाओंमेंसे जिसमें आयुकर्मका बन्ध होता है, उसमें अवक्तव्य और असंख्यातभागहानि ये दो पद ही होते हैं। इसलिए इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है, पर सात कर्मोंकी अपेक्षा भी अन्य जिन मार्गणाओंमें यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, उनकी प्ररूपणा भी ओघके समान कही है। ऐसी मार्गणाओंका नाम निर्देश मूलमें किया ही है।

३६०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। इसी प्रकार नारकियोंके समान सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, पाँच लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। तथा लोभकषायमें मोहनीय कर्मके अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं।

विशेषार्थ—यहां असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियां हैं। तथा असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि ये तीन हानियां हैं। इनमें असंख्यात गुणवृद्धि और असंख्यात गुणहानिके मिलानेपर चार वृद्धियां और चार हानियां होती हैं।

---

१. मूलप्रतौ क० अवट्ठि तिण्णि इति पाठः। २. मूलप्रतौ—भंगो सव्वमणुसतिरिक्खअपज्जत्त इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६१. एइंदिय-पंचका० सत्तण्णं क० अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि अवट्ठिदबंधगा य। सव्वविगलिंदिएसु सत्तण्णं क० अत्थि असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि०संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० अवट्ठिदबंधगा य। अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ०-अत्थि संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। वेदणीय-णामा-गोदाणं अत्थि संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० [संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि०] असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि०अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। मोहणीय० अत्थि संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य। सुहुमसंप० छण्णं क० अत्थि संखेज्ज भागवड्ढि-हाणि० अवट्ठिदबंधगा य। एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

३६२. सामित्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदेसे०। ओघेण सत्तण्णं क० असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स एइंदियस्स बीइंदि० तीइंदि० चदुरिंदि० पंचिंदि० सण्णि'०असण्णि० पज्जत्त० अपज्जत्तगस्स वा। संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० कस्स होदि ? अण्णदरस्स बेइंदियस्स वा तेइंदि० चदुरिंदि० पंचिंदि० सण्णि० असण्णि० पज्ज० अपज्ज०। संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिबंधो कस्स होदि ? अण्णदर० पंचिंदियस्स सण्णिस्स वा पज्जत्तस्स वा अपज्जत्तस्स वा। असंखेज्ज-

३६१. एकेन्द्रिय और पाँचों स्थावरकाय जीवोंमें सात कर्मोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। सब विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागहानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणहानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणहानि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। मोहनीय कर्मके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागहानि, अवस्थित और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव हैं।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

३६२. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंका असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित बन्ध किसके होता है ? अन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी इन सब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होता है। संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि बन्ध किसके होता है ? अन्यतर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी इन सब पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होता है। संख्यात गुणवृद्धि बन्ध और संख्यात गुणहानि बन्ध किसके होता है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त जीवके होता है। असंख्यात गुणवृद्धिबन्ध किसके

1. सण्णि त्ति असण्णि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणवड्ढिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स उवसामणादो परिवदमाणस्स अणियट्टि-बादरसांपराइगस्स पढमसमयदेवस्स वा । असंखेज्जगुणहाणिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा अणियट्टिबादरसांपराइगस्स । अवत्तव्व-बंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स उवसामगस्स परिवदमाणस्स मणुसस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा । आयुगस्स अवत्तव्वबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स पढमसमयआयुगबंधमाणस्स । तेण परं असंखेज्जभागहाणिबंधो । एवं कायजोगि-अचक्खु०-भवसि[1]०-आहारग त्ति ।

३६३. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं कम्माणं तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स । आयु० दो वि पदा ओघं । सव्वत्थ[2] आयु० ओघभंगो । एवं मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि त्ति । सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुस्सअपज्जत्त--सव्वदेव-पंचिंदिय--तसअपज्जत्ता--वेउव्विय०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद०--तेउ०--पम्मले०--वेदग०[3]-सासण०-सम्मामि० णिरयभंगो कादव्वो । एइंदिएसु सत्तण्णं क० एगवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स । एवं पंचकायाणं । विगलिंदिएसु सत्तण्णं क० दोण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स । एवं

होता है ? अन्यतर जो उपशम श्रेणिसे गिरकर अनिवृत्तिबादरसाम्पराय हुआ है अथवा प्रथम समयवर्ती देव हुआ है,उसके होता है । असंख्यात गुणहानिबन्ध किसके होता है ? अन्यतर उपशामक अनिवृत्तिबादरसाम्परायिक जीवके अथवा क्षपक अनिवृत्तिबादर साम्परायिक जीवके होता है । अवक्तव्यबन्ध किसके होता है ? उपशमश्रेणिसे गिरनेवाले अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और प्रथम समयवर्ती देवके होता है । आयुकर्मका अवक्तव्यबन्ध किसके होता है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती आयुकर्मका बन्ध करनेवाले जीवके होता है । इससे आगे आयुकर्मका असंख्यात भागहानिबन्ध होता है । इसी प्रकार काययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

३६३. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंका तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिबन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? अन्यतरके होता है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका स्वामित्व ओघके समान है । इसी प्रकार सर्वत्र आयुकर्मके दोनों पदोंका स्वामित्व ओघके समान जानना चाहिए । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धि-संयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके नारकियोंके समान भङ्ग करना चाहिए । एकेन्द्रियों में सात कर्मोंका एक वृद्धिबन्ध, एक हानिबन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? अन्य-तरके होता है । विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धियोंका बन्ध, दो हानियोंका बन्ध और

१. मूलप्रतौ भवसि० अणाहारग इति पाठः । २. मूलप्रतौ सव्वद्धा आयुओघ— इति पाठः । ३. मूलप्रतौ वेदग० सम्मादि० सासण० सम्मादि० णिरय—इति पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असण्णि० । णवरि संखेज्जगुणवड्ढिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स एइंदिय० विगलिंदियस्स वा विगलिंदिएसु असण्णिपंचिंदिएसु उववज्जमाणस्स । संखेज्ज-गुणहाणि तव्विवरीदं णेदव्वं ।

३६४. मणुस०३ सत्तण्णं क० ओघं । णवरि अवत्तव्वबंधो देवो त्ति ण भाणि-दव्वं । एवं ओरालियका०-मणपज्ज०-संजद० । ओरालियमि० तिरिक्खोघं कादव्वं ।

३६५. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्त० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिद-बंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्तव्वं ओघं । एवं आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुकले०-सम्मादिट्ठि-खइग०-सण्णि त्ति । पंचमण०-पंचवचि० मणुसभंगो ।

३६६. कम्मइ० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिद० कस्स ? अण्णदरस्स । एवं अणाहार० । तिण्णिवेद०--चत्तारिकसाय०-सामाइ०-छेदो० पंचिंदयभंगो । णवरि अवत्तव्वगं णत्थि । लोभे मोहणी० अवत्तव्वं[1] अत्थि । अवगद० णाणावर०-दंसणावर०-अंतराइ० संखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि-अवत्तव्वबंधो

अवस्थित बन्ध किसके होता है ? अन्यतरके होता है। इसी प्रकार असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात गुणवृद्धिबन्ध किसके होता है ? जो कोई एक एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर विकलेन्द्रियोंमें और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है, उसके होता है। इनके संख्यातगुणहानिबन्धका कथन इससे विपरीत क्रमसे जानना चाहिए।

३६४. मनुष्य त्रिकमें सात कर्मोंके सब पदोंका स्वामित्व ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य बन्धका स्वामी देव होता है, यह नहीं कहना चाहिए। इसी प्रकार औदारिक काययोगी, मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंके जानना चाहिए। औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें सम्भव सब पदोंका स्वामित्व सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहना चाहिए।

३६५. पञ्चेन्द्रिय, त्रस और इनके पर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियोंका बन्ध, तीन हानियोंका बन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? अन्यतरके होता है। असंख्यात गुणवृद्धिबन्ध, असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्त बन्धका स्वामित्व ओघके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधि-दर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी जीवोंके सब पदोंका स्वामित्व मनुष्योंके समान है।

३६६. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियोंका बन्ध, तीन हानियोंका बन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? अन्यतरके होता है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। तीन वेदवाले, चार कषायवाले, सामायिकसंयत और छेदोप-स्थापनासंयत जीवोंके सब पदोंका स्वामित्व पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपद नहीं है। किन्तु लोभकषायमें मोहनीय कर्मका अवक्तव्य पद है। अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मकी संख्यातभाग वृद्धिका बन्ध,

१. मूलप्रतौ अवत्तव्वं णत्थि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स परिवदमाणगस्स । दोहाणि० अवट्ठि० कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा । एवं मोहणीयस्स संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० अवट्ठिद० अवत्तव्वबंधगा य । वेदणीय-णामा-गोदाणं तिण्णिवड्ढि-अवत्तव्वबंधो कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स परिवदमाणस्स । तिण्णिहाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा । सुहुमसंप० छण्णं क० संखेज्जभागवड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स परिवदमाणस्स । संखेज्जभागहाणि-अवट्ठिदबंधो कस्स ? अण्णदरस्स उवसामगस्स वा खवगस्स वा । उवसमसम्मादिट्ठी० ओधिभंगो। णवरि खवग त्ति ण भाणिदव्वं । एवं सामित्तं समत्तं।

कालो

३६७. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघेण सत्तण्णं क० चत्तारि-वड्ढि-तिण्णिहाणिबंधो केव० ? जह० एग०, उक्क० बेसम० । असं०गुणहाणि-अवत्त०[1] जहण्णुक्क० एग० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आयुग० दो वि पदा० भुजगारभंगो । एवं ओघभंगो एसिं चत्तारिवड्ढि-हाणि० अवट्ठिद० अवत्तव्व-बंधगा य अत्थि तेसिं । णवरि मणुस०३-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियका०-इत्थि०-

संख्यातगुणवृद्धिका बन्ध और अवक्तव्य बन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । दो हानियोंका बन्ध और अवस्थित बन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक और क्षपकके होता है । इसी प्रकार मोहनीयकी संख्यात भागवृद्धि, संख्यातभाग-हानि, अवस्थित और अवक्तव्यबन्धका स्वामी जानना चाहिए । वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मकी तीन वृद्धियोंका बन्ध और अवक्तव्यबन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । तीन हानियोंका बन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक और क्षपकके होता है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी संख्यातभाग-वृद्धिका बन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक गिरनेवालेके होता है । संख्यातभाग-हानिबन्ध और अवस्थितबन्ध किसके होता है ? किसी भी उपशामक और क्षपकके होता है । उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सम्भव सब पदोंका स्वामित्व अवधिज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँपर 'क्षपकके होता है', ऐसा नहीं कहना चाहिए ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

काल

३६७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है – ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके चार वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्तव्य बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका काल भुजगारबन्धके समान है । जिन मार्गणाओंमें चारों वृद्धियों, चारों हानियों, अवस्थित और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव हैं, उनमें सब पदोंका काल इसी प्रकार ओघके समान जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री-

1. मूलप्रतौ अवत्त० जह० एग० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवुंस०-मणपज्जव-संजद-सामाइ०-छेदो० असंखेज्जगुणवड्डिबंधो० जहण्णु० एगस०।

३६८. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० तिण्णिहाणि-अवट्ठिद० ओघं। कम्मइ०-अवगदवे०-सुहुमसं०-अणाहार वज्ज सेसाणं सगपदा णिरयभंगो। णवरि असण्णि० संखेज्जगुणवड्डि-हाणि० जहण्णु० एगस०।

३६९. अवगद० तिण्णिक० दोवड्डि-हाणि० वेदणी०-णामा-गोदाणं तिण्णि-वड्डि-हाणि० मोहणी० एगवड्डि-हाणि० जहण्णु० एगस०। सत्तण्णं क० अवट्ठि०-अवत्त० ओघं। सुहुमसं० छण्णं क० एगवड्डि-हाणि० जहण्णुक० एग०। अवट्ठि० ओघं। कम्मइ०-अणाहार० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणि० जह० उक्क० एग०। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि समयं। एवं कालं समत्तं।

अंतरं

३७०. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण सत्तण्णं क० असंखेज्ज-भागवड्डि-हाणि-अवट्ठिदबंधंतरं जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोवड्डि-हाणिबंधंतरं

वेदी, नपुंसकवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामयिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—उपशामकके अनिवृत्तिकरणमें प्रथमबार और उसी समयमें मरकर देव होनेपर दूसरे समयमें उस पर्यायमें दूसरी बार असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध करनेसे असंख्यात-वृद्धिबन्धका दो समय उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट है।

३६८. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी तीन हानि और अवस्थितबन्धका काल ओघके समान है। कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और अनाहारक इन मार्गणाओंको छोड़कर शेष मार्गणाओंमें अपने-अपने पदोंका काल नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंज्ञी जीवोंमें संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

३६९. अपगतवेदी जीवोंमें तीन कर्मोंके दो वृद्धिबन्ध और दो हानिबन्धका, वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका तथा मोहनीयके एक वृद्धिबन्ध और एक हानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा सातों कर्मोंके अवस्थित-बन्ध और अवक्तव्यबन्धका काल ओघके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके एक वृद्धिबन्ध और एक हानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अव-स्थितबन्धका काल ओघके समान है। कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तर

३७०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके असंख्यातभागवृद्धिबन्ध, असंख्यातभागहानिबन्ध और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धिबन्ध और दो हानिबन्ध का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परि-वर्तनके बराबर है। असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपुग्ग० । असंखेज्जगुणवड्ढि० जह० एग०, उक्क० अद्धपोग्गलप० । असंखेज्जगुणहाणि-अवत्तव्वबंधंतरं जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० । आयु० भुजगारभंगो[1] । एवं ओघभंगो अचक्खु०-भवसि० ।

३७१. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० बेसम० । एवं सव्वणिरय-मणुस-अपज्जत्त-सव्वदेव० एइंदिय-विगलिंदियपंचकायाणं सगपदा० वेउव्विय०-विभंग०-परिहार०-संजदासंजद-तेउ०-पम्मले०-वेदगस०-सासण०-सम्माभि० ।

३७२. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि० ओघं । अवट्ठि जह० एग०, उक्क० चत्तारिसम० । एवं मदि०-सुद०-असंज०-अब्भवसि०-मिच्छादि० । पंचिंदियतिरिक्ख०३ सत्तण्णं क० दोवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिबंधंतरं जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम० । पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० सत्तण्णं क० तिण्णि

कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है । असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है । आयुकर्मके दोनों पदोंका अन्तर भुजगारबन्धके समान है । इसी प्रकार ओघके समान अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिन जीवोंके अन्तर्मुहूर्त काल तक अवस्थितबन्ध होता है,उनके असंख्यात भागहानि और असंख्यातभागवृद्धिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है । जो जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्त मोहमें रहकर गिरते हैं, उनके अवस्थितबन्धका अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । संख्यातभागवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणवृद्धिबन्ध तथा संख्यातभागहानिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्ध,ये एकेन्द्रियके नहीं होते, इसी बातको ध्यानमें रखकर इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है।और असंख्यातगुणहानिबन्ध तथा असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध यतः श्रेणिमें ही होते हैं, अतः इनका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

३७१. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धि और तीन हानि बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । इसी प्रकार सब नारकी, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंके तथा एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकाय जीवोंके अपने-अपने पदोंका तथा वैक्रियिककाययोगी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदगसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

३७२. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धि और तीन हानिबन्धका अन्तर ओघके समान है । अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सात कर्मोंके दो वृद्धि और दो हानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय

---

१. भंगो । सव्वद्धा एवं इति पाठः ।

वड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम० । एवं पंचिंदिय[1]अपज्ज० ।

३७३. मणुस०३ सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणिबंधंतरं जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं अवट्ठि० । असं०गुणवड्ढि-हाणि-अवत्तव्वबं० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं ।

३७४. पंचिंदिय-तसपज्जत्ता सत्तण्णं क० दोण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधंतरं जह० एग० उक्क० अंतो० । संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्तव्व० मूलोघं । णवरि सगट्ठिदि भाणिदव्वं । तस-[2]

और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । संख्यातगुण वृद्धि और संख्यागुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है । अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है । इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले भुजगारबन्धका उत्कृष्ट काल चार समय बतला आये हैं, इसलिए यहाँ सामान्य तिर्यञ्चोंमें अवस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल चार समय कहा है। परन्तु जो एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय विकलत्रय या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होगा, उसके ही यह अन्तर काल सम्भव है। वैसे अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल तीन समयसे अधिक उपलब्ध नहीं होता। यही कारण है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल तीन समय कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। इसीसे इनमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण कहा है, क्योंकि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमेंसे किसीने कायस्थितिके प्रारम्भमें संख्यातगुणवृद्धिबन्ध या संख्यातगुणहानिबन्ध किया। पश्चात् अपनी कायस्थितिके अन्तमें यह बन्ध किया, तो कुछ कम उक्त काल प्रमाण यह अन्तर आ जाता है। अन्य मार्गणाओंमें भी जहाँ कायस्थिति प्रमाण अन्तर कहा हो, वहाँ इसी प्रकार यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

३७३. मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अवस्थितबन्धका अन्तर है। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है।

३७४. पञ्चेन्द्रियपर्याप्त और त्रसपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धिबन्ध, दो हानिबन्ध और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इनके संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका अन्तर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है। तथा असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध, असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्तव्यबन्धका अन्तर मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनका उत्कृष्ट अन्तर कहते समय वह अपनी-

१. मूलप्रतौ पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्ज० इति पाठः । २. मूलप्रतौ तसपज्जत्त इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अपज्जत्त० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०[1]। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० चत्तारिसमयं।

३७५. पंचमण०-पंचवचि० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबं० णिरय-भंगो। असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० जहण्णु० अंतो०। अवत्तव्वं णत्थि अंतरं। एवं कोधादि०४। णवरि अवट्ठि० चत्तारिसम०। अवत्तव्वं णत्थि। लोभे मोह० अवत्तव्वं णत्थि अंतरं।

३७६. कायजोगि० सत्तण्णं क० असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि-असंखेज्जगुणवड्ढि-अवट्ठिदबं० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दो वड्ढि-हाणि० ओघं। असंखेज्जगुण-हाणि० मण०भंगो। अवत्तव्वं णत्थि अंतरं।

३७७. ओरालियका० मण०भंगो। ओरालियमि०-[वेउव्वियमि०] पंचिंदियअप-

अपनी कायस्थिति प्रमाण कहना चाहिए। त्रस अपर्याप्त जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है।

३७५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिबन्ध और अवस्थितबन्धका अन्तर नारकियोंके समान है। असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्य-बन्धका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय है; तथा इनके अवक्तव्यबन्ध नहीं होता। मात्र लोभ कषायमें मोहनीय कर्मका अवक्तव्यबन्ध होता है, पर उसका अन्तर काल नहीं उपलब्ध होता।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय या विकलत्रयके मरकर विकलत्रय या पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने पर भवके प्रथमादि समयोंमें मनोयोग और वचनयोग नहीं होता, इसलिए इन योगवाले जीवोंके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर नारकियोंके समान दो समय कहा है, किन्तु चारों कषायवाले जीवोंके उक्त प्रकारसे मरकर अन्य पर्यायमें उत्पन्न होते समय एक कषायका सद्भाव बना रहता है, इसलिए इनके अवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर चार समय घटित हो जानेके कारण वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३७६. काययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके असंख्यातभागवृद्धिबन्ध, असंख्यातभागहानिबन्ध असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धिबन्ध और दो हानिबन्धका अन्तर ओघके समान है। असंख्यातगुण-हानि बन्धका अन्तर मनोयोगियोंके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—किसी एक काययोगी जीवने उपशमश्रेणिसे उतरकर अनिवृत्तिकरणमें असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध किया और एक समयका अन्तर देकर वह मरकर देव हो गया। इस प्रकार असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय देखकर यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३७७. औदारिककाययोगी जीवोंमें सब पदोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है।

१. मूलप्रतौ अंतो०। अवट्ठिद० जह० एग० उक्क० अंतो०। अट्ठि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्जत्तभंगो। वेउव्वियमि० आयु० णत्थि। आहार०-आहारमि० सत्तण्णं क० णिरयभंगो। कम्मइ० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणिबं० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जहण्णु० एगस०।

३७८. इत्थि०-पुरिस० सत्तण्णं क० बेवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०।[1] संखेज्जगुण-[वड्डि]हाणिबंध० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम०। इत्थि०[2] असंखेज्जगुणवड्डिहाणि० जहण्णु० अंतो०। एवं पुरिस०। णवरि असंखेज्ज०वड्डि० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसद्-पुधत्तं। असंखेज्जगुणहाणि० जह० अंतो० उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। णवुंस० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणि० ओघं। अवट्ठिद० जह० एग०, उक्क० चत्तारि समयं। असंखेज्जगुणवड्डि-हाणि० जहण्णु० अंतो०। अवगद० णाणावर०-दंसणा-वर०-अंतराइ० संखेज्जभागवड्डि-हाणि-संखेज्जगुणवड्डि-हाणि० वेदणीय-णामा-गोदाणं तिण्णिवड्डि-हाणि० मोह० संखेजभागवड्डि-हाणि० जहण्णु० अंतो०।

औदारिक मिश्रकाययोगी और वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें अपने पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता। इनमें तथा आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

३७८. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके दो वृद्धिबन्ध और दो हानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। स्त्रीवेदमें असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन दोनों पदोंका अन्तरकाल इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ सागरपृथक्त्व है। असंख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नपुंसकवेदवाले जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अपगतवेदवाले जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके संख्यातभागवृद्धिबन्ध, संख्यातभागहानिबन्ध, संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका, वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके तीन वृद्धिबन्ध और तीन हानिबन्धका तथा मोहनीय कर्मके संख्यातभागवृद्धिबन्ध और संख्यातभागहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा

१. मूलप्रतौ संखअगुणहाणिबंधं० इति पाठः। २. मूलप्रतौ इत्थि० संखेजगुण---इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तराणं क० अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवत्तव्वं णत्थि अंतरं ।

३७६. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठिद० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि-सागरो० सादि० । णवरि वड्ढि० एग० । एवं ओधिदं०-सम्मादि० । एवं खइग० । णवरि तेत्तीसं साग० सादिरे० । मणपज्ज० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० ओधिभंगो । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्तव्व० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । एवं संजद० ।

सात कर्मोंके अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्यबन्धका अन्तर काल नहीं है ।

विशेषार्थ—यद्यपि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण करते समय और उतरते समय उपशमश्रेणिमें इन वेदोंके साथ मरण करते हैं,पर उनका मरणोत्तर कालमें वेद बदल जाता है; इसलिए इन दोनों वेदोंमें असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुण-हानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता। किन्तु पुरुषवेदी जीवका मरणोत्तर कालमें वही वेद बना रहता है, इसलिए इसमें असंख्यातगुण-वृद्धिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होता है; क्योंकि जो पुरुषवेदी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण कर अनिवृत्तिकरण या सूक्ष्मसाम्परायमें मरकर देव होकर असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका प्रारम्भ करता है। पश्चात् पुरुषवेदके साथ कुछ कम सौ सागरपृथक्त्व कालतक परिभ्रमण करते हुए अपनी कायस्थितिके अन्तमें पुनः उपशम-श्रेणिपर चढ़कर उतरते समय पुनः असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध करता है,उसके असंख्यातगुण-वृद्धिबन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। तथा इसके असंख्यातगुण-हानिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जो पुरुषवेदी उपशमश्रेणिपर आरोहण कर और अनिवृत्तिकरणमें असंख्यातगुणहानिबन्ध कर पश्चात् मरकर तेतीस सागर आयुके साथ देव होता है। पश्चात् वहांसे आकर और पुनः पुरुषवेदके साथ उपशमश्रेणिपर आरोहणकर अनिवृत्तिकरणमें असंख्यातगुणहानिबन्ध करता है,उसके इस पदका उक्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट है।

३७९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिबन्ध और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध, असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्तव्यबन्ध-का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर है। इतनी विशे-षता है कि असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। इसी प्रकार अवधि-दर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके साधिक छ्यासठ सागरके स्थानमें साधिक तेतीस सागर कहना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके तीन वृद्धिबन्ध, तीन हानिबन्ध और अवस्थित बन्धका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है। असंख्यातगुण-वृद्धिबन्ध, असंख्यातगुणहानिबन्ध और अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८०. सामाइ०-छेदो० सत्तण्णं क० णिरयभंगो। णवरि असंखेज्जगुण-वड्ढि-हाणि० जहण्णु० अंतो०। परिहार०-संजदासंजद० सत्तण्णं क० णिरयभंगो। सुहुमसंप० छण्णं कम्माणं संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० जह० उक्क० अंतो०। अवट्ठि० जहण्णु० एग०। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो।

३८१. तिण्णिले० सत्तण्णं क० णिरयभंगो। णवरि अवट्ठि० जह० एग० उक्क० चत्तारि समयं। सुक्काए आणदभंगो। णवरि असंखेज्जगुणवड्ढि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असंखेज्जगुणहाणि० जहण्णु० अंतो०। अवत्त० णत्थि अंतरं।

३८२. उवसम० सत्तण्णं क० चत्तारि वड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त० सुक्काए भंगो। असण्णीसु वड्ढि-हाणि० ओघं। अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम०। संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० खुद्दा०, उक्क० अणंतकालमसं०। सण्णि० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो। णवरि संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। आहारा० ओघं। णवरि सगट्ठिदि भाणिदव्वं। अणाहारा० कम्मइगभंगो। एवं अंतरं समत्तं।

३८०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यात गुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंके संख्यातभागवृद्धिबन्ध और संख्यातभागहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर त्रसपर्याप्तकोंके समान है।

३८१. तीन लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार समय है। शुक्ललेश्यामें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणवृद्धिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असंख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्यबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

३८२. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंके चार वृद्धिबन्ध, चार हानिबन्ध, अवस्थितबन्ध और अवक्तव्यबन्धका अन्तर शुक्ललेश्याके समान है। असंज्ञी जीवोंमें वृद्धिबन्ध और हानिबन्धका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन समय है। संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। संज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिबन्ध और संख्यातगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आहारक जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां असंख्यातगुणवृद्धिबन्ध और असंख्यातगुणहानिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कहते समय वह अपनी उत्कृष्ट कायस्थिति-प्रमाण कहना चाहिए। अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंके अपने पदोंका अन्तर कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है। इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणाजीवेहि भंगविचयो

३८३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविधो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सत्तण्णं कम्माणं असंखेज्जभागवड्ढि० हाणि० अवट्ठिदबंधगा य णियमा अत्थि। सेसाणि पदाणि भयणिज्जाणि। आयु० दो वि पदा णियमा अत्थि। एवं ओघभंगो तिरिक्खोघादि सव्वेसिं अणंतरासीणं सगपदाणि।

३८४. मणुसअपज्जत्त-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० सव्वपदाणि भयणिज्जाणि।

३८५. पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च बादर० बादरअपज्जत्ता० तेसिं सव्वसुहुम० बादरवण०पत्तेय० तस्सेव अपज्जत्त० अट्ठण्णं क० सव्वपदाणि णियमा अत्थि। सेसाणं णिरयादि याव सण्णि त्ति सत्तण्णं क० अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसाणि[1] पदाणि भयणिज्जाणि। आयु० दो पदाणि भयणिज्जाणि। एवं भंगविचयो समत्तो।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

३८३. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव नियमसे हैं। इस प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्चोंसे लेकर सब अनन्त राशियोंके अपने-अपने पदोंके अनुसार भङ्ग जानने चाहिए।

विशेषार्थ—कुल पद १० हैं—चार वृद्धिबन्ध, चार हानिबन्ध अवस्थितबन्ध और अवक्तव्यबन्ध। इनमेंसे ओघसे तीन पदवाले जीव नियमसे हैं, इसलिए यह एक ध्रुव भङ्ग है। तथा सात पद भजनीय होनेसे ३×३×३×३×३×३×३=२१८७−१=२१८६ अध्रुव भङ्ग होते हैं। तथा इनमें १ ध्रुव भङ्ग मिलानेपर ध्रुव और अध्रुव कुल भङ्ग २१८७ होते हैं।

३८४. मनुष्य अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओंमें सब पद भजनीय हैं।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्याप्तकोंके ७ पद, वैक्रियिकमिश्रकाययोगीके ७ पद, आहारककाययोगीके ७ पद, आहारकमिश्रकाययोगीके ७ पद, अपगतवेदीके ८, सूक्ष्मसाम्परायसंयतके ३, उपशमसम्यग्दृष्टिके १०, सासादनसम्यग्दृष्टिके ७ और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके ७ पद होते हैं। अतः सात पदवाली जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमेंसे प्रत्येकमें २१८६, अपगतवेद मार्गणामें ६५५८, सूक्ष्मसाम्परायसंयत मार्गणामें २६ और उपशम सम्यग्दृष्टि मार्गणामें ५९०४८ अध्रुवभङ्ग होते हैं। इन भङ्गोंके लानेकी विधि पहले कह आये हैं।

३८५. पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त तथा इनके सब सूक्ष्म, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और इनके अपर्याप्त जीवोंमें आठ कर्मोंके अपने-अपने सब पदवाले जीव नियमसे हैं। नारकियोंसे लेकर संज्ञीतक शेष सब मार्गणाओंमें सात कर्मोंके अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं। तथा शेष पद भजनीय हैं। तथा आयुकर्मके दोनों ही पद भजनीय हैं।

इस प्रकार भङ्गविचयानुगम समाप्त हुआ।

---

१. मूलप्रती सेसाणं पदाणि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागाभागो

३८६. भागाभागाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? असंखेज्जदिभागो । अवट्ठिदबंध० केवडियो भागो ? असंखेज्जा भागा । सेसाणं पदाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । आयु० भुजगारभंगो सव्वत्थ । एवं अणंतरासीणं सव्वेसिं । णवरि सगपदाणि जाणिदव्वाणि । सेसाणं असंखेज्जजीवाणं अवट्ठि० असंखेज्जा भागा । सेसपदाणि असंखेज्जदिभागो । संखेज्जजीवाणं पि अवट्ठि० संखेज्जा भागा । सेसपदा० संखेज्जदिभागो । एवं भागाभागं समत्तं ।

परिमाणं

३८७. परिमाणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधगा केत्तिया ? अणंता । दोवड्ढि-हाणिबंध० असंखेज्जा । असंखेज्जगुणवड्ढिहाणि-अवत्तव्वबंधगा संखेज्जा । आयु० दो पदा अणंता । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं एइंदिय-वणप्फदि-णियोद-कायजोगि-ओरालियका०-ओरालियमि०-

---

भागाभाग

३८६. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आयु-कर्मके दोनों पदोंका भागाभाग सर्वत्र भुजगार बन्धके समान है। इसी प्रकार सब अनन्त राशियोंका भागाभाग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने पदोंको जानकर भागाभाग कहना चाहिए। शेष असंख्यात जीवप्रमाण मार्गणाओंमें अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव अपनी-अपनी राशिके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें भी अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव अपनी-अपनी राशिके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं और शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

परिमाण

३८७. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार ओघके समान सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-किण्ण०-णील०-काउ०-भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-आहारग त्ति। णवरि सगपदाणि जाणिदव्वाणि।

३८८. मणुसेसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठि० आयु दो पदा० असंखेज्जा। [सत्तण्णं कम्माणं सेसपदा० संखेज्जा।] एवं पंचिंदिय-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-सुद०-ओधि०-चक्खुदं०-ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग०-सण्णि त्ति। णवरि इत्थिवे०-पुरिस० सत्तण्णं क० अवत्त० णत्थि। सुक्कले०-खइग० आयु० संखेज्जा।

३८९. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु[1] [सव्वपदा] आहार०-आहारमि०-अवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसं० सगपदा० संखेज्जा। सेसाणं णिरयादीणं अट्ठण्णं क० सगपदा० असंखेज्जा। णवरि आणदादि उवरिमदेवेसु आयु० दो वि पदा०[2] संखेज्जा। उवसमस० मणुसोघं। एवं परिमाणं समत्तं।

खेत्तं

३९०. खेत्ताणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं कम्माणं याणि पदाणि परिमाणे अणंता असंखेज्जा लोगाणि ताणि सव्वलोगे। सेसाणि पदाणि

श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने पद जानकर परिमाण कहना चाहिए।

३८८. मनुष्योंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित पदका तथा आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। तथा सात कर्मोंके शेष तीन पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव नहीं हैं। तथा शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

३८९. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब पदोंका तथा आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंमें अपने-अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। शेष नारकादि मार्गणाओंमें आठों कर्मोंके अपने-अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि आनतादि ऊपरके देवोंमें आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण सामान्य मनुष्योंके समान है। इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्र

३९०. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंके जिन पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका परिमाण अनन्त और असंख्यात

---

१. मूलप्रतौ मणुसिणीसु सव्व० आहार० इति पाठः। २. मूलप्रतौ पदा० असंखेज्जा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगस्स असं० । आयु० दो वि पदा सव्वलोगो । णवरि बादरएइंदिय-बादरवाउ० आयुग० दो वि पदा० लोगस्स संखेज्ज० । बादरवाउ०पज्जत्ता सव्वे भंगा लोगस्स संखेज्ज० । सेसबादर-बादरअपज्जत्ता० लोगस्स असंखेज्जदिभागे । सेसासु सव्वेसिं सव्वे भंगा लोग० असंखेज्जदिभागे । एवं खेत्तं समत्तं ।

फोसणं

३९१. फोसणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० असंखेज्जभागवड्डि-हाणि-अवट्ठिदबंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । दोवड्डि-हाणि० अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा । सेसपदा० खेत्तं । आयु० दो वि पदा० सव्वलोगे ।

३९२. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणि-अवट्ठिद० छचोद्दस० । आयु० खेत्तं[1] ।

लोकप्रमाण है, उनका क्षेत्र सब लोक है । तथा शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । इतनी विशेषता है कि बादर एकेन्द्रिय और बादर वायुकायिक जीवोंमें आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है । शेष रहे बादर और बादर अपर्याप्त जीवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । शेष रहीं सब मार्गणाओंमें सब कर्मोंके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ ।

स्पर्शन

३९१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकका स्पर्श किया है । दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानिका बन्ध द्वीन्द्रिय आदि जीवोंके होता है तथा संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध पञ्चेन्द्रियोंके होता है, यह पहले कह आये हैं । इस दृष्टिसे इन पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक कहा है । विशेष खुलासा खुद्दाबन्धको देखकर कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

३९२. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है । आयुकर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

1. मूलप्रतौ खेत्तं । एवं भुजगारभंगो तिरिक्खेसु इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६३. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० बेवड्ढि-हाणि० लोग० असं० सव्वलो० । सेसं ओघं । सव्वपंचिंदियतिरिक्खेसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० लोग० असं० सव्वलो० । आयु० खेत्तं । एवं मणुसअप० । विगलिंदि० बेवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० तं चेव । पंचिंदिय-तसअप०-मणुस०३ सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । सेसं खेत्तं । देवेसु भुजगारभंगो ।

३६४. सव्वएइंदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदिपत्तेय०-णियोदेसु अट्ठण्णं क० सव्वपदा० सव्वलोगो । णवरि सव्वबादरएइंदिय-बादरपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदि-णियोद-बादरवणप्फदिपत्तेय० आयु० खेत्तं । बादर-पुढवि०-आउ०-तेउ०पज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । एवं बादरवाउ० पज्ज० । णवरि लोग० संखेज्ज० ।

३६५. पंचिंदिय-तस०२ सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा । सेसपदा० खेत्तं । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । एवं पंचमण०-पंच-

---

३९३. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों,तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन इसी प्रकार है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और मनुष्यत्रिकमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन भुजगारानुगम के समान है।

३९४. सब एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और निगोद जीवोंमें आठों कर्मोंके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि सब बादर एकेन्द्रिय, सब बादर पृथिवीकायिक, सब बादर जलकायिक, सब बादर अग्निकायिक, सब बादर वायुकायिक, सब बादर वनस्पतिकायिक, सब बादर निगोद और सब बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंमें आयु कर्मके दोनों पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोकका संख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन है।

३९५. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि०। ओघभंगो कायजोगि-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खुदं०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-आहारग त्ति। एवं चेव ओरालि०-ओरालियमि०-णवुंस०-किण्ण०-णील०-काउ०। णवरि तिरिक्खोघो कादव्वो।

३६६. वेउव्वियकायजो० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अट्ठतेरह०। कम्मइ० खेत्तं। णवरि बेवड्ढि-हाणि० केव० खेत्तं फोसिदं? लोग० असं० एक्कारहचो०। विभंगे अट्ठचो०भा० सव्वलोगो०।

३६७. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० आयु० दो वि पदा अट्ठचो०। सेसं खेत्तं। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइग०-वेदगस०-उवसम०।

३६८. तेउ० देवोघं। पम्मले० सव्वे भंगा अट्ठचो०। सुक्काए छच्चोद्दस०।

आयु कर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंमें स्पर्शन ओघके समान है। तथा इसी प्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान स्पर्शन जानना चाहिए।

३९६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग व कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू, कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

३९७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने तथा आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

३९८. पीतलेश्यावाले जीवोंने अपने सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य देवोंके समान है। पद्मलेश्यावाले जीवोंमें सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें अपने सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है।

---

१. मूलप्रतौ अट्ठतेरह वा० सव्व- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९९. सासणे सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अट्ठ-बारहचो० । आयु० दो वि पदा अट्ठचो० । सम्मामि० सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० अट्ठचो० ।

४००. असण्णि० सत्तण्णं क० एकवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वलो० । दोवड्ढि-हाणि० लोग० असं० सव्वलो० । आयु० दो वि पदा सव्वलो० । अणाहार० सत्तण्णं क० असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सव्वलो० । वेवड्ढि-हाणि० लोग० असं० एक्कारसचो० । वेउव्वियमिस्सादि सेसं खेत्तं । एवं फोसणं समत्तं ।

कालो

४०१. कालाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० असंखेज्ज-भागवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदबंधगा केव० ? सव्वद्धा । वेवड्ढि-हाणिबंध० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० जह० एग०, उक्क० संखेज्जसमयं । एवं जम्हि असंखेज्जगुणवड्ढि-हाणि-अवत्त० तम्हि याव

---

३९९. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों, तीन हानियों और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है।

४००. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंकी एक वृद्धि, एक हानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनाहारक जीवोंमें सात कर्मोंकी असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्श किया है। वैक्रियिकमिश्र आदि शेष मार्गणाओंमें अपने पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

काल

४०१. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणहानि और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। जिन मार्गणाओंमें असंख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणाहारग त्ति णादव्वं। आयु० दो वि पदा सव्वद्धा। एवं अणंत-असंखेज्जलोगरासीणं अप्पप्पणो पदाणि।

४०२. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखेज्ज०। अवट्ठि० सव्वद्धा। आयु० भुजगारभंगो। एवं सव्वाणं असंखेज्जरासीणं। सव्वाणं संखेज्जरासीणं पि तं चेव। णवरि यम्हि आवलियाए असंखेज्जभागो तम्हि संखेज्जसमयं। भयणिज्जरासीसु अवट्ठि० जह० एग०, उक्क० पगदिकालो। तिरिक्खगदीए सेसेसु ओघभंगो जाणिदूण णेदव्वं। एवं कालं समत्तं।

अंतरं

४०३. अंतराणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० सत्तण्णं क० असंखेज्ज-भागवड्डि-हाणि-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। बेवड्डि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं अणंतरासीणं सव्वपदाणि। असंखेज्जगुणवड्डि-अवत्त० जह० एग०, उक्क० वासपुधत्तं। असं०गुणहाणि० जह० एग०, उक्क० छम्मासं। एवं याव अणाहारग

गुणवृद्धि, असंख्यात गुणहानि और अवक्तव्य पद होते हैं, उनमें अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार काल जानना चाहिए। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार अनन्त राशियों और असंख्यात लोकप्रमाण राशियोंका अपने-अपने पदोंकी अपेक्षा काल जानना चाहिए।

४०२. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों और तीन हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल सर्वदा है। आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका काल भुजगार बन्धके समान है। इसी प्रकार सब असंख्यात राशियोंका काल जानना चाहिए। तथा सब संख्यात राशियोंका काल भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि जहाँ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है, वहाँ संख्यात समय काल कहना चाहिए। तथा जितनी भजनीय राशियाँ हैं, उनमें अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपने-अपने प्रकृतिबन्धके कालके समान है। तिर्यञ्च गतिमें तथा शेष मार्गणाओंमें ओघके समान काल जानकर कथन करना चाहिए।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तर

४०३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सात कर्मोंकी असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल नहीं है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनन्त राशियोंके सब पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। असंख्यातगुणवृद्धि और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है। असंख्यात गुणहानिका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति । णवरि असंखेज्जगुणहाणि० जाणिदव्वं। एदेसिं आयुगं दो पदा भुजगारभंगो।

४०४. णिरएसु सत्तण्णं क० तिण्णिवड्ढि-हाणि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । आयु० भुजगारभंगो । यम्हि दो वड्ढि-हाणि० अत्थि तम्हि तेसिं ओघं । सेसपदा० सव्वत्थ भुजगारभंगो । णवरि सांतररासीणं सव्वपदा० पगदिअंतरं । एवं अंतरं समत्तं ।

भावो

४०५. भावाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० चत्तारिवड्ढि-हाणि-अवट्ठि०-अवत्त०बंधगा आयु० अवत्त०-असंखेज्जभागहाणिबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं । एवं भावं समत्तं ।

अप्पाबहुगं

४०६. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबंधगा । असंखेज्जगुणवड्ढिबंधगा संखेज्जगुणा । असंखेज्जगुणहाणिबंधगा

इनमें असंख्यात गुणहानिका अन्तर काल जानकर कहना चाहिए। इन सब जीवोंके आयु कर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल भुजगार बन्धके समान है ।

४०४. नारकियोंमें सात कर्मोंकी तीन वृद्धियों और तीन हानियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल नहीं है । आयुकर्मके दोनों ही पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका अन्तर काल भुजगारबन्धके समान है । जिन मार्गणाओंमें दो वृद्धियाँ और दो हानियाँ हैं उनमें उनका अन्तर काल ओघके समान है । तथा शेष पदोंका अन्तर काल सर्वत्र भुजगारबन्धके समान है । इतनी विशेषता है कि सान्तर राशियोंके सब पदोंका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

भाव

४०५. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा सात कर्मोंकी चार वृद्धियों, चार हानियों, अवस्थित और अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीवोंका तथा आयुकर्मके अवक्तव्य और असंख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीवोंका कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ ।

अल्पबहुत्व

४०६. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यात गुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणा। संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिबंधगा दो वि तुल्ला-असंखेज्जगुणा। संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिबंधगा दो वि तुल्ला असं०गु०। असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबंधगा दो वि तुल्ला अणंतगुणा। अवट्ठिद० असं०गु०। आयु० सव्वत्थोवा अवत्त०-बंधगा। असंखेज्जभागहाणि० असं०गु०। आयु० एवं याव अणाहारग त्ति। णवरि जम्हि संखेज्जा जीवा तम्हि संखेज्जगुणं कादव्वं। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारग त्ति। णवरि णवुंस०-कोध-माण-माया० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणवड्ढिबंध०। असंखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु०। उवरि ओघं। एवं लोभे। णवरि मोहणी० ओघं।

४०७. आदेसेण णेरइएसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिबंध०। संखेज्जभागवड्ढि-हाणिबंधगा दो वि तुल्ला संखेज्जगु०। असंखेज्जभागवड्ढि-हाणि-बंधगा दो वि तुल्ला संखेज्जगु०। अवट्ठि०बंध० असं०गु०। एवं सव्वणेरइएसु मणुसअपज्जत्त-सव्वदेव-वेउव्विय०-वेउव्वियमि०-विभंग०-तेउ०-पम्म०-वेदगस०-सासण०-सम्मामि०। णवरि सव्वट्ठे संखे० देवा।

करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे असंख्यातभाग-हानिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आयुकर्मकी अपेक्षा इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिस मार्गणामें संख्यात जीव हैं, उसमें संख्यातगुणे कहना चाहिए। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदी, क्रोध कषायवाले, मान कषायवाले और माया कषायवाले जीवोंमें सात कर्मोंकी असंख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे असंख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। तथा इसके आगेका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इसी प्रकार लोभ कषायमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें मोहनीय कर्मके सब पदोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है।

४०७. आदेशसे नारकियोंमें सात कर्मोंकी संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभङ्गज्ञानी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें देव संख्यातगुणे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०८. तिरिक्खेसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० । संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिबंध० दो वि तुल्लाणि असं०गु० । असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० दो वि तुल्ला अणंतगु० । अवट्ठि० असं०गु० । एवं ओरालियमि०-मदि०-सुद०-असंज०-किण्ण०-णील०-काउ०-अब्भवसि०-मिच्छादिट्ठि त्ति । पंचिंदियतिरिक्खेसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा [संखेज्जगुणवड्ढि-हाणिबंधया ।] संखेज्जभागवड्ढि-हाणि-बंध० दो वि तुल्ला असं०गु० । असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० दो वि तुल्ला संखे-ज्जगु० । अवट्ठिदबंध० असं०गु० । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-पंचिंदिय-तस-अपज्ज० । पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु एवं चेव । णवरि संखेज्जभागवड्ढि-हाणिबंध० संखेज्जगुणं कादव्वं ।

४०९. मणुसेसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तव्व० । असं०गुणवड्ढि० संखेज्जगुणा । असंखेज्जगुणहाणि० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला [असंखेज्जगुणा ।] संखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० दो वि तुल्ला संखेज्जगु० । [असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबंधया दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा ।] अवट्ठि०बं० सं०गु० । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि संखेज्जगुणं कादव्वं ।

---

४०८. तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी संख्यात गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं । असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभाग-हानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य, और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें सात कर्मोंकी संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीवोंको संख्यातगुणा करना चाहिए ।

४०९. मनुष्योंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणे करना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१०. एइंदिय-पंचकायाणं सत्तएणं क० सव्वत्थोवा असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० । अवट्ठि० असं०गु० । विगलिंदिएसु सत्तएणं क० सव्वत्थोवा संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिबं० । असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठि० असं-खेज्जगु० । पंचिंदिय-तस० सत्तएणं क० [सव्वत्थोवा अवत्तव्वबंधया । असंखेज्जगुणवड्ढिबंधया संखेज्जगुणा ।] असं०गुणहाणि० संखेज्जगु० । संखेज्ज-गुणवड्ढि-हाणिबं० असं०गु० । संखेज्जभागवड्ढि-हाणि० दो वि तुल्ला असं०गुणा । असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० दो वि तुल्ला संखेज्जगु० । अवट्ठि० असं०गु० । पंचिंदिय-तसपज्जत्तेसु तं चेव । णवरि संखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० संखेज्जगुणं कादव्वं । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खुदं०-सण्णि त्ति । णवरि इत्थि०-पुरिस० सत्तएणं क० अवत्तव्वं णत्थि । कम्मइगा० तिरिक्खोघं । आहार०-आहारमि०सव्वट्ठभंगो।

४११. [1]अवगद० णाणावर०-[दंसणावरण-अंतराय० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबं० ।

४१०. एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकाय जीवोंमें सात कर्मोंकी असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । विकलेन्द्रियोंमें सात कर्मोंकी संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । पञ्चेन्द्रिय और त्रसकायिक जीवोंमें अवक्तव्यपदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यातगुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें इसी प्रकार अल्पबहुत्व है । इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि-का बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे करने चाहिए । इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशे-शेषता है कि स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका अवक्तव्य पद नहीं है । कार्मणकाय-योगी जीवोंमें अपने पदोंका अल्पबहुत्व सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपने पदोंका अल्पबहुत्व सर्वार्थसिद्धिके समान है ।

४११. अपगतवेदी जीवोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे संख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले

१. मूलप्रतौ अवगद० णाणावर०-अवत्तव्वबं० । संखेज्जभागवड्ढि० असंखेज्जगु० । संखेज्जगुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागहाणिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठि संखेज्जगु० । मोह० सव्वत्थोवा अवत्त० । संखेज्जभागवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । असं०गुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागहाणिबं० संखेज्जगु०, संखेज्जगुणहाणि बं० संखेज्जगु० । असंखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठि०बं० सं०गु० इति पाठः ।

संखेज्जगुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागहाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठि० संखेज्जगु० । वेदणीय-णामा-गोदाणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वबं० । असंखेज्जगुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागवड्ढिबं० संखेज्जगु० । असंखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जगुणहाणिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागहाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठिदबं० संखेज्जगु० । मोह० सव्वत्थोवा अवत्त० । संखेज्जभागवड्ढिबं० संखेज्जगु० । संखेज्जभागहाणिबं० संखेज्जगु० । अवट्ठिदबं० संखेज्जगु० ।]

४१२. आभि०-सुद०-ओधि० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तव्वबं० । असंखेज्जगुणवड्ढि० सं०गु० । सेसं इत्थिभंगो । एवं ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइग० । मणपज्जव-संजद० मणुसिभंगो । एवं सामाइ०-छेदो० । णवरि अवत्तव्वं णत्थि । परिहार० सव्वट्ठभंगो ।

४१३. [सुहुमसंपरायसंजदेसु छण्णं कम्माणं संखेज्जभागवड्ढिबंधगा जीवा सव्वत्थोवा । संखेज्जभागहाणिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । अवट्ठिदबंधगा जीवा

जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात गुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात भागवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यात गुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । मोहनीय कर्मके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे संख्यात भागवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यात भागहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

४१२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके अवक्तव्य पदका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं । इनसे असंख्यात गुणवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इससे आगे शेष अल्पबहुत्व स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंमें अपने सब पदोंका अल्पबहुत्व मनुष्यिनियोंके समान है । इसी प्रकार सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्य पद नहीं है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके अपने पदोंका अल्पबहुत्व सर्वार्थसिद्धिके समान है ।

४१३. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंकी संख्यात भागवृद्धिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितपदका बन्ध करनेवाले जीव संख्यातगुणे हैं। संयतासंयत जीवोंमें सातकर्मोंकी संख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणा।] [1]संजदासंजद० सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा [संखेज्जगुणवड्ढि-हाणि० । संखेज्जभागवड्ढि-हा० दो वि तुल्ला सं०गु० । असंखेज्जभागवड्ढि-हा० दो वि तुल्ला संखेज्जगु० । अवट्ठिदबं० असंखेज्जगुणा ।]

४१४. असण्णीसु सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा संखेज्जगुणवड्ढि-हा० । संखेज्जभागवड्ढि-हा० दो वि तुल्ला असं०गु० । असंखेज्जभागवड्ढि-हाणिबं० दो वि तुल्ला अणंतगुणा। अवट्ठिदबं० असंखेज्जगु० । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं अप्पाबहुगं समत्तं ।

एवं वड्ढिबंधे त्ति समत्तं ।

अज्झवसाणसमुदाहारो

४१५. [2]अज्झवसाणसमुदाहारबंधे त्ति । तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पगदिसमुदाहारो ट्ठिदिसमुदाहारो तिव्वमंददा त्ति ।

गुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभाग वृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

४१४. असंज्ञी जीवोंमें सात कर्मोंकी संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिका बन्ध करनेवाले जीव दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हैं। इनसे अवस्थित पदका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनाहारक जीवोंमें अपने सब पदोंका अल्पबहुत्व कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार वृद्धिबन्ध समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहारबन्ध

४१५. अब अध्यवसानसमुदाहारबन्धका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—प्रकृतिसमुदाहार, स्थितिसमुदाहार और तीव्रमन्दता।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंकी अध्यवसान संज्ञा है और जिस अनुयोगद्वारमें इनकी अपेक्षा वर्णन किया गया है, उसकी अध्यवसानसमुदाहार संज्ञा है। इन परिणामोंके निमित्तसे प्रत्येक कर्मके कितने विकल्प हो जाते हैं, एक-एक स्थितिके प्रति कितने-कितने परिणाम कारण होते हैं तथा उनकी तीव्रता और मन्दता किस प्रकारकी है; इन्हीं सब प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए यहाँ इस अनुयोगद्वारके तीन भेद किये गये हैं—प्रकृतिसमुदाहार, स्थितिसमुदाहार और तीव्रमन्दता। पहले अनुयोगद्वारमें परिणामोंके अनुसार प्रत्येक कर्मके प्रकृतिविकल्प और उनका अल्पबहुत्व दिखलाया गया है। दूसरे अनुयोगद्वारमें प्रत्येक स्थितिके प्रति अध्यवसानोंका परिमाण, जघन्य स्थितिसे लेकर उत्तरोत्तर वे कितने अधिक हैं, इसका परिमाण और उनकी अनुकृष्टि रचनाका निर्देश किया गया

१. संजदासंजद०......सत्तण्णं क० सव्वत्थोवा अवत्तबं०, असंखेज्जगुणवड्ढिहाणि दो वि तुल्ला संखेज्जगु०, संखेज्जगुणवड्ढिहा० असं०गु० । असंखेज्जगुणवड्ढिहा० असंखेज्जगु० इति पाठः। २. मूलप्रतौ अज्झवसाण... बंधे त्ति । तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि......पगदिसमुदाहारे त्ति... तत्थ इमाणि दुवे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगदिसमुदाहारो

४१६. पगदिसमुदाहारे त्ति। तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—पमाणाणुगमो अप्पाबहुगे त्ति। पमाणाणुगमेण दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण णाणावरणीयस्स केत्तिगाओ पगदीओ? असंखेज्जलोगपगदीओ। एवं सत्तण्णं कम्माणं। एवं याव अणाहारग त्ति णादव्वं। णवरि अवगद०-सुहुमसं० एगेगपरिणद्धाणं। एवं पमाणाणुगमो समत्तो।

४१७. अप्पाबहुगं दुवि०—ओघे० आदे०। ओघेण सव्वत्थोवा आयुगस्स पगदीओ[1]। णामा-गोदाणं पगदीओ असंखेज्जगुणाओ। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइगाणं चदुण्हं वि पगदीओ असंखेज्जगुणाओ। मोहणीयस्स पगदीओ असंखेज्जगुणाओ। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

ट्ठिदिसमुदाहारो

४१८. ट्ठिदिसमुदाहारे त्ति। तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पमाणाणुगमो सेढिपरूवणा अणुकड्डिपरूवणा चेदि। णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा[2]। विदियाए ट्ठिदिबंधज्झवसाण-

है। तथा तीसरे अनुयोगद्वारमें उनके तीव्र,मन्द अनुभागका विचार किया गया है। इस प्रकार इस अनुयोगद्वारका क्या अभिप्राय है और उसमें कितने विषयोंका संकलन किया गया है;इस बातका विचार किया।

प्रकृतिसमुदाहार

४१६. प्रकृतिसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये दो अनुयोगद्वार हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व। प्रमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे ज्ञानावरण कर्मकी कितनी प्रकृतियाँ हैं? असंख्यात लोकप्रमाण प्रकृतियाँ हैं। इसी प्रकार शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। तथा इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें एक-एक भेदसे सम्बद्ध प्रकृतियाँ हैं।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

४१७. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे आयुकर्मकी प्रकृतियाँ सबसे स्तोक हैं। इनसे नाम और गोत्रकर्मकी प्रकृतियाँ असंख्यातगुणी हैं। इनसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्म इन चारों कर्मोंकी प्रकृतियाँ असंख्यातगुणी हैं। इनसे मोहनीयकर्मकी प्रकृतियाँ असंख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रकृतिसमुदाहार समाप्त हुआ।

स्थितिसमुदाहार

४१८. अब स्थिति समुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—प्रमाणानुगम, श्रेणिप्ररूपणा और अनुकृष्टि प्ररूपणा। ज्ञानावरणकर्मकी जघन्य स्थितिके स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं। दूसरी स्थितिके स्थिति बन्धाध्यवसाय

१. पञ्चसं० बन्धनक०, गा० १०७। २. मूलप्रतौ लोगा भागा विदियाए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा। तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा। एवं असंखेज्जा लोगा असंखेज्जा लोगा याव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति। एवं सत्तएणं कम्माणं। एवं याव अणाहारग त्ति। णवरि अवगद०-सुहुमसं० एगेगपरिणाट्ठाणं। एवं पमाणाणुगमो समत्तो।

४१९. सेढिपरूवणा दुविधा--अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा चेदि। अणंतरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि थोवाणि।[1] विदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसेसाधियाणि। तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि विसे०। एवं विसे० विसेसाधियाणि याव उक्कस्सियाए ट्ठिदि त्ति। एवं छण्णं कम्माणं। आयुगस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि[2] सव्वत्थोवाणि। विदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। एवं असंखेज्जगुणाणि असंखेज्जगुणाणि याव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

४२०. परंपरोवणिधाए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झव-

स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तीसरी स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक असंख्यातलोक प्रमाण जानना चाहिए। इसी प्रकार सात कर्मोंके जानना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीवोंके एक-एक परिणाम हैं।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

श्रेणिप्ररूपणा

४१९. श्रेणिप्ररूपणा दो प्रकारकी है--अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे दूसरी स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान विशेष अधिक विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार छह कर्मोंके जानना चाहिए। आयुकर्मकी जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणे हैं। इनसे तीसरी स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यातगुणे असंख्यात गुणे हैं। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक कथन करना चाहिए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

४२०. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय

१. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०५। २. मूलप्रतौ-ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। विदियाए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साणट्ठाणेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा[1]। एवं याव बंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-[हाणि-]ट्ठाणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। णाणा-ट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि अंगुलवग्गमूलच्छेदणयस्स असंखेज्जदिभागो। णाणाट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-हाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एयट्ठिदिबंधज्झवसाणदुगुणवड्ढि-[हाणि-]ट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं। एवं णादव्वं।

४२१. अणुकड्ढीए णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि याणि ताणि विदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि अपुव्वाणि। विदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि याणि ताणि तदियाए ट्ठिदीए ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि अपुव्वाणि च। एवं अपुव्वाणि अपुव्वाणि याव उक्कस्सियाए ट्ठिदि त्ति। एवं सत्तण्णं कम्माणं।

तिव्वमंददा

४२२. तिव्वमंददाए णाणावरणीयस्स[2] जहण्णियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणं सव्वमंदाणुभागं। तस्स उक्कस्सए अणंतगुणं। विदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणं अणंतगुणं। तिस्से उक्कस्सयं अणंतगुणं।

स्थानोंसे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार बन्धाध्यवसायद्विगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और नानास्थितिबन्धाध्यवसायद्विगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर अंगुलके वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थितिबन्धाध्यवसायद्विगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकस्थितिबन्धाध्यवसायद्विगुणवृद्धिहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार शेष कर्मोंके जानना चाहिए।

४२१. अनुकृष्टिका कथन करनेपर ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हैं, वे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान दूसरी स्थितिके अपूर्व हैं। दूसरी स्थितिके जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हैं, वे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान तीसरी स्थितिके अपूर्व हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान अपूर्व-अपूर्व हैं। इसी प्रकार सात कर्मोंके विषयमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जहां आगेके परिणामोंकी पिछले परिणामोंके साथ समानता होती है, वहां अनुकृष्टि रचना होती है। यहां प्रत्येक स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान अपूर्व-अपूर्व हैं, इसलिए अनुकृष्टि रचना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ, अधःकरणमें जैसी अनुकृष्टि रचना होती है, वैसी यहां सम्भव नहीं है। किन्तु यहांकी रचना अपूर्वकरणके समान जाननी चाहिए।

तीव्र-मन्दता

४२२—तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान सबसे मन्द अनुभागको लिये हुए है। इसका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे दूसरी स्थितिका जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए हैं। इससे इसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे तीसरी स्थितिका जघन्य

१. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०६। २. पञ्चसं० बन्धनक० गा० १०८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदियाए ट्ठिदीए जहण्णयं अणंतगुणं । तिस्से उक्कस्सयं अणंतगुणं । एवमणंतगुणम-णंतगुणं याव उक्कस्सियाए ट्ठिदि त्ति । एवं सत्तण्णं कम्माणं ।

अज्झवसाणसमुदाहारो समत्तो ।

जीवसमुदाहारो

४२३. जीवसमुदाहारे त्ति । तत्थ ए णाणावरणीयस्स बंधगा जीवा ते दुविहा—सादबंधा चेव असादबंधा चेव । ए ते सादबंधगा जीवा ते तिविधा—चदुट्ठाणबंधगा तिट्ठाणबंधगा विट्ठाणबंधगा । तत्थ ये ते असादबंधगा जीवा ते तिविधा—विट्ठाणबंधगा तिट्ठाणबंधगा चदुट्ठाणबंधगा । सव्वविसुद्धा सादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा । तिट्ठाणबंधगा जीवा संकिलिट्ठतरा । विट्ठाणबंधगा जीवा संकिलिट्ठतरा । सव्व-विसुद्धा असादस्स विट्ठाणबंधगा जीवा । तिट्ठाणबंधगा जीवा संकिलिट्ठतरा । चदुट्ठाणबंधगा जीवा संकिलिट्ठतरा ।

४२४. सादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णयं ट्ठिदि बंधंति । तिट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स अजहण्णअणुक्कस्सयं ट्ठिदि बंधंति । विट्ठाणबंधगा जीवा सादावेदणीयस्स उक्कस्सयं ट्ठिदि बंधंति । असाद० विट्ठाणबंधगा जीवा सट्ठाणेण णाणावरणीयस्स जहण्णयं ट्ठिदि बंधंति । तिट्ठाणबंधगा जीवा णाणावर-

---

स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इससे इसीका उत्कृष्ट स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक प्रत्येक स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियन्धाध्यवसाय स्थान उत्तरोत्तर अनन्तगुणे अनन्तगुणे अनुभागको लिये हुए है। इसी प्रकार सात कर्मोंका जानना चाहिए। इस प्रकार तीव्रमन्दताका विचार समाप्त हुआ।

इस प्रकार अध्यवसानसमुदाहार समाप्त हुआ।

जीव समुदाहार

४२३. अब जीव समुदाहारका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा जो ज्ञानावरणकर्मका बन्ध करनेवाले जीव हैं,वे दो प्रकारके हैं—सातबन्धक और असातबन्धक। जो सातबन्धक जीव हैं,वे तीन प्रकारके हैं—चतुःस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और द्विस्थानबन्धक। जो असात-बन्धक जीव हैं,वे तीन प्रकारके हैं—द्विस्थानबन्धक, त्रिस्थानबन्धक और चतुःस्थानबन्धक। जो सबसे विशुद्ध होते हैं,वे साताके चतुःस्थानबन्धक जीव हैं। इनसे त्रिस्थानबन्धक जीव संक्लिष्टतर होते हैं और इनसे द्विस्थानबन्धक जीव संक्लिष्टतर होते हैं। जो सबसे विशुद्ध होते हैं,वे असाताके द्विस्थानबन्धक जीव हैं। इनसे त्रिस्थानबन्धक जीव संक्लिष्टतर होते हैं और इनसे चतुःस्थानबन्धक जीव संक्लिष्टतर होते हैं।

४२४. साताके चतुःस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करते हैं। त्रिस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणकर्मकी अजघन्यानुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हैं। द्विस्थान-बन्धक जीव साता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हैं। असाताके द्विस्थानबन्धक जीव स्वस्थानकी अपेक्षा ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिका बन्ध करते हैं। त्रिस्थानबन्धक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णीयस्स अजहण्णमणुक्कस्सयं ट्ठिदिं बंधंति। चदुट्ठाणबंधगा जीवा असादस्स चेव उक्कस्सिया ट्ठिदिं बंधंति।

४२५. एदेसिं परूवणदाए तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा य। अणंतरोवणिधाए सादस्स चदुट्ठाण० तिट्ठाण० असादस्स विट्ठाण० तिट्ठाणबंधगा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा। विदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाधिया। तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाधिया। एवं विसेसाधिया२ याव सागरोवमसदपुधत्तं। तेण परं विसेसहीणा। एवं विसेसहीणा विसेसहीणा याव सागरोवमसदपुधत्तं। सादस्स विट्ठाणबंधगा जीवा असादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवा थोवा। विदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाधिया। तदियाए ट्ठिदीए जीवा विसेसाधिया। एवं विसेसाधिया विसेसाधिया याव सागरोवमसदपुधत्तं। तेण परं विसेसहीणा। एवं विसेसहीणा २ याव सादस्स असादस्स य उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।

जीव ज्ञानावरण कर्मकी अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हैं। चतुःस्थानबन्धक जीव असाता वेदनीयकी ही उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हैं।

४२५. इनकी प्ररूपणा करनेपर ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा साताके चतुःस्थानबन्धक और त्रिस्थानबन्धक तथा असाताके द्विस्थानबन्धक और त्रिस्थानबन्धक जितने जीव हैं, उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी अपने-अपने योग्य जघन्य स्थितिमें स्थित अर्थात् अपने-अपने योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेष अधिक विशेष अधिक जीव हैं। तथा इससे आगे प्रत्येक स्थितिमें विशेषहीन जीव हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेषहीन विशेषहीन जीव हैं। तथा साताके द्विस्थानबन्धक और असाताके चतुःस्थानबन्धक जितने जीव हैं, उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी अपने-अपने योग्य जघन्य स्थितिमें स्थित जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इनसे तीसरी स्थितिमें स्थित जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेष अधिक विशेष अधिक जीव हैं। तथा इससे आगे प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेषहीन विशेषहीन जीव हैं। इस प्रकार साता और असाताकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेषहीन विशेषहीन जीव हैं।

विशेषार्थ—यहां जीवोंके आलम्बनसे स्थितिबन्धका विचार किया गया है। साता और असाता प्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं; इसलिए जो साताका बन्ध करते हैं, वे असाताका बन्ध नहीं करते और जो असाताका बन्ध करते हैं, वे साताका नहीं करते। इस हिसाबसे जीव दो प्रकारके होते हैं—सातबन्धक और असातबन्धक। साता प्रशस्त प्रकृति है और असाता अप्रशस्त। इसलिए साताके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध होनेपर स्थितिबन्ध जघन्य होता है और जघन्य अनुभागबन्ध होते समय स्थितिबन्ध उत्कृष्ट होता है। तथा असाताके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय स्थितिबन्ध उत्कृष्ट होता है और जघन्य अनुभागबन्धके समय स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध जघन्य होता है। यदि इन दोनों प्रकृतियोंके अनुभागका इस हिसाबसे विभाग किया जाता है, तो साताका चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक इस क्रमसे अनुभाग उपलब्ध होता है और असाताका द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक इस क्रमसे अनुभाग उपलब्ध होता है। साताके चतुःस्थानिक अनुभागमें गुड़, खाँड़, शर्करा और अमृत यह चार प्रकारका, त्रिस्थानिक अनुभागमें गुड़, खाँड़ और शर्करा यह तीन प्रकारका तथा द्विस्थानिक अनुभागमें गुड़ और खाँड़ यह दो प्रकारका अनुभाग होता है। असाताके चतुःस्थानिक अनुभागमें नीम, कांजी, विष और हलाहलरूप, त्रिस्थानिक अनुभागमें नीम, कांजी और विषरूप तथा द्विस्थानिक अनुभागमें नीम और कांजी रूप अनुभाग होता है। देखना यह है कि इनके साथ ज्ञानावरणका बन्ध होनेपर वह किस प्रकारका होता है। यह तो मानी हुई बात है कि ज्ञानावरण अप्रशस्त प्रकृति है, इसलिए साताके चतुःस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका, त्रिस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणकी अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते हैं और द्विस्थानबन्धक जीव सातावेदनीयका ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं। यहां द्विस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं, ऐसा न कहकर साताका ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं, ऐसा क्यों कहा? समाधान यह है कि यद्यपि साताके द्विस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं, पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ही करते हैं; ऐसा कोई नियम नहीं है; किन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे न्यून भी करते हैं, इसलिए उस प्रकारका विधान नहीं किया। इस प्रकार असाताके द्विस्थानबन्धक जीव ज्ञानावरणका जघन्य स्थितिबन्ध करते हैं। त्रिस्थानबन्धक जीव अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं और चतुःस्थानबन्धक जीव असाता वेदनीयका ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं। इस प्रकार कुल जीव छह प्रकारके होते हैं--साताके चतुःस्थान बन्धक जीव, त्रिस्थानबन्धक जीव और द्विस्थानबन्धक जीव। तथा असाताके द्विस्थानबन्धक जीव, त्रिस्थानबन्धक जीव और चतुःस्थानबन्धक जीव। इनमेंसे प्रत्येकमें अपने-अपने योग्य ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीव सबसे थोड़े हैं। दूसरी स्थितिका बन्ध करनेवाले विशेष अधिक हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष अधिक विशेष अधिक हैं और इससे आगे इतने ही स्थिति-विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष हीन विशेष हीन हैं। आशय यह है कि जो सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव हैं, उनमेंसे कुछ जीव ज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिका बन्ध करते हैं। इनसे कुछ अधिक जीव ज्ञानावरणकी इससे आगेकी स्थितिका बन्ध करते हैं। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्व प्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेष अधिक विशेष अधिक और आगे इतने ही स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होनेतक विशेषहीन विशेषहीन जीव ज्ञानावरणकी स्थितिका बन्ध करते हैं।

उदाहरणार्थ—सातावेदनीयके चतुःस्थानबन्धक जीव ५२ हैं और ये ज्ञानावरणकी ५, ६, ७, ८ और ९ समयवाली स्थितिका बन्ध करते हैं, तो पूर्वोक्त हिसाबसे ५ समयवाली स्थितिका बन्ध करनेवाले ८ जीव होते हैं, ६ समयवाली स्थितिका बन्ध करनेवाले १२ जीव होते हैं, ७ समयवाली स्थितिका बन्ध करनेवाले १६ जीव होते हैं, ८ समयवाली स्थितिका बन्ध करनेवाले १० जीव होते हैं और ९ समयवाली स्थितिका बन्ध करनेवाले ६ जीव होते हैं। इस उदाहरणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पहले विशेष अधिक विशेष अधिक और अनन्तर विशेष हीन विशेष हीन जीव स्थितिका बन्ध करते हैं। इससे यवमध्यकी रचना हो जाती है, क्योंकि मध्यमें जीव सर्वाधिक हैं और दोनों ओर विशेषहीन विशेषहीन हैं। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२६. परंपरोवणिधाए सादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा तिट्ठाणबंधगा जीवा असादस्स विट्ठाणबंधगा जीवा तिट्ठाणबंधगा जीवा णाणावरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणवड्ढिदा। एवं दुगुणवड्ढिदा दुगुणवड्ढिदा याव सागरोवमसदपुधत्तं। तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्ज-दिभागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा२ याव सागरोवमसदपुधत्तं। एयजीव-दुगुणवड्ढिहाणिट्ठाणंतराणि असंखेज्जाणि पलिदोवमस्स वग्गमूलाणि। णाणाजीव-दुगुणवड्ढिहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो। णाणाजीव-दुगुणवड्ढिहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एयजीवदुगुणवड्ढिहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं।

४२७. सादस्स विट्ठाणबंधगा जीवा असादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा णाणा-वरणीयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए जीवेहिंतो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण[1] दुगुणवड्ढिदा। [एवं दुगुणवड्ढिदा] दुगुणवड्ढिदा याव सागरोवमसदपुधत्तं। तेण परं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुण-हीणा याव सादस्स असादस्स य उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति। एयजीवदुगुणवड्ढिहाणि ट्ठाणंतरं असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि। णाणाजीवदुगुणवड्ढिहाणिट्ठाणंत-राणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो। णाणाजीवदुगुणवड्ढि-[हाणि-]ट्ठाणंत-

---

साताके त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक बन्धकी अपेक्षा तथा असाताके द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक बन्धकी अपेक्षा कथन करना चाहिए।

४२६. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा साता वेदनीयके जितने चतुःस्थान बन्धक और त्रिस्थानबन्धक जीव हैं। तथा असातावेदनीयके जितने द्विस्थानबन्धक और त्रिस्थानबन्धक जीव हैं,उनमेंसे ज्ञानावरण कर्मकी जघन्य स्थितिमें स्थित जितने जीव हैं,उनसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्त्वके प्राप्त होने तक वे दूने-दूने होते जाते हैं। इससे आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे आधे रह जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्त्वके प्राप्त होने तक वे उत्तरोत्तर आधे-आधे रहते जाते हैं। यहाँ एकजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके असं-ख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं और नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थाना-न्तर स्तोक हैं और इनसे एकजीव द्विगुणवृद्धिद्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है।

४२७. सातावेदनीयके जितने द्विस्थानबन्धक जीव हैं और असातावेदनीयके चतुःस्थान-बन्धक जीव हैं,उनमेंसे ज्ञानावरणकी अपने योग्य जघन्य स्थितिके बन्धक जितने जीव हैं, उनसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिस्थान जाकर वे दूने हो जाते हैं। इस प्रकार सौ सागर पृथक्त्वके प्राप्त होने तक वे दूने-दूने होते जाते हैं। इससे आगे पल्यके असंख्या-तवें भागप्रमाण स्थान जाकर वे आधे रह जाते हैं और इस प्रकार साता और असाताकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे आधे-आधे होते जाते हैं। यहाँ एकजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानि स्थानान्तर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं और नानाजीव द्विगुणवृद्धि-द्विगु-णहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इस प्रकार नाना-

---

१. मूलप्रतौ गंतूण दुगुणवड्ढिदा हाणि दुगुण—इति पाठः।

राणि थोवाणि । एयजीवदुगुणवड्डिहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जगुणं ।

४२८. सादस्स असादस्स य विट्ठाणियम्हि णियमा अणागारपाओग्गट्ठाणाणि । सागारपाओग्गट्ठाणाणि[1] सव्वत्थ ।

४२६. [2]सादस्स चदुट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि थोवाणि । उवरिं संखेज्जगुणाणि । सादस्स तिट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । उवरिं ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । सादस्स विट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । मिस्सगाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । सादस्स चेव विट्ठाणिययवमज्झस्स उवरिं मिस्सगाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । असादविट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । मिस्सगाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । असादस्स चेव विट्ठाणिययवमज्झस्स उवरि मिस्सगाणि ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि । एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि

जीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं और इनसे एकजीव द्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ साताके चतुःस्थानबन्धक आदि एक-एकके प्रति नानागुणवृद्धि या नाना गुणहानि कितनी होती हैं और एक-एकके प्रति निषेक कितने होते हैं, यह बतलाया गया है । यहाँ एकजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पदसे एक गुणवृद्धि व गुणहानिके भीतर जितने निषेक होते हैं, वे लिये गये हैं और नानाजीवद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पदसे कुल द्विगुणवृद्धि व द्विगुणहानियोंका प्रमाण लिया गया है । इनमेंसे किसका कितना प्रमाण है; यह मूलमें दिया ही है ।

४२८. साता और असाताके द्विस्थानिक बन्धमें अनाकार उपयोगके योग्य स्थान नियमसे हैं । तथा साकार उपयोगके योग्य स्थान सर्वत्र हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ इन छह स्थानोंमें अनाकार उपयोगके योग्य स्थान कौन हैं और साकार उपयोगके योग्य स्थान कौन हैं, यह बतलाया गया है । वैसे तो सब स्थान साकार उपयोगके योग्य हैं, पर अनाकार उपयोगके योग्य स्थान कुछ ही हैं और वे साता-असाता दोनोंके द्विस्थान गत कुछ ही हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

४२९. साताके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान स्तोक हैं । इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे साताके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे इसीके उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे साताके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके सर्वथा साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे साताके ही द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम मिश्र स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे असाताके द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके सर्वथा साकार उपयोगके योग्य स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे इसीके मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे असाताके ही द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम मिश्र स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे इसीके सर्वथा साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे असाताके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे असाताके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं । इनसे साताका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

१. मूलप्रतौ—ट्ठाणाणि सव्वद्धा । सादस्स इति पाठः । २. पञ्चसं० बन्धक० गा० १११ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणाणि। असादस्स तिट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। उवरिं संखेज्जगुणाणि। असादस्स चदुट्ठाणिययवमज्झस्स हेट्ठदो ट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। सादस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। असादस्स[1] जहण्णओ ट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। एत्तो उक्कस्सयं दाहं गच्छदि त्ति सा ट्ठिदी संखेज्जगुणा। अंतोकोडाकोडी संखेज्जगुणा। सादस्स विट्ठाणिययवमज्झस्स उवरिं एयंतसागारपाओग्गट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। सादस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। दाहट्ठिदी विसेसाधिया। असादस्स चदुट्ठाणिययवमज्झस्स उवरिं ट्ठाणाणि विसेसाधियाणि। असादस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाधियो। यट्ठिदिबंधो विसेसाधियो।

इससे असाताका जघन्य स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होता है, इसलिए वह स्थिति संख्यातगुणी है। इससे अन्तःकोटाकोटि संख्यातगुणी है। इससे साताके द्विस्थानिक यवमध्यके उपरिम सर्वथा साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे साताका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे दाहस्थिति विशेष अधिक है। इससे असाताके चतुःस्थानिक यवमध्यके उपरिम स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे असाताका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे यत्स्थिति बन्ध विशेष अधिक है।

विशेषार्थ—पहले साताके चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक अनुभागका तथा असाताके द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभागका उल्लेख करके उनके आश्रयसे साकारप्रायोग्य, अनाकारप्रायोग्य और मिश्र स्थानोंका उल्लेख कर आये हैं। यहाँ इनको ध्यानमें रखकर स्थितिस्थानोंके अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है। इसका विचार पञ्चसंग्रह बन्धकरणमें भी किया है। वहाँ वह इस प्रकार दिया है—परावर्तमान शुभ प्रकृतियोंके चतुःस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थितिस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे इन्हींके त्रिस्थानिक यवमध्यके नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे इन्हींके सर्वथा साकार प्रायोग्य द्विस्थानिक नीचेके स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे यहींके मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे उपरिम मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे यहींके साकार प्रायोग्य उपरिम स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे अशुभ द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके मिश्रस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे द्विस्थानिक यवमध्यके नीचेके साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके ऊपरके द्विस्थानिक साकार प्रायोग्य स्थान संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार यवमध्यके नीचे और ऊपरके त्रिस्थानिक स्थान संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार यवमध्यके नीचे और ऊपरके चतुःस्थानिक स्थितिस्थान संख्यातगुणे हैं। आचार्य मलयगिरिने इस अल्पबहुत्वमें परावर्तमान शुभ प्रकृतियों, परावर्तमान अशुभ प्रकृतियोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धका तथा डायस्थितिका अल्पबहुत्व भी सम्मिलित किया है। जिस स्थितिस्थानसे अपवर्तनाकरणके वशसे उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होता है, उतनी स्थितिका नाम डायस्थिति है। या जिस

---

१. मूलप्रतौ सादस्स जहणियाओ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३०. एदेण अट्ठपदेण सव्वत्थोवा सादस्स चदुट्ठाणबंधगा जीवा। सादस्स चेव तिट्ठाणबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। विट्ठाणबंध० संखेज्जगुणा। असादस्स विट्ठाणबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असादस्स चदुट्ठाणबंधगा० संखेज्जगुणा। असादस्स तिट्ठाणबंधगा जीवा विसेसाधिया। एवं जीवसमुदाहारे त्ति समत्तमणियोगद्दाराणि।

एवं मूलपगदिट्ठिदिबंधो समत्तो।

स्थितिस्थानसे मण्डूकप्लुति न्यायके अनुसार छलाँग मारकर स्थिति बँधती है, वह अधिक स्थिति डायस्थिति है। आचार्य मलयगिरिने डायस्थितिके ये दो अर्थ किये हैं। उन्होंने लिखा है कि उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके कम कर देनेपर जो स्थिति शेष रहती है, वह डायस्थिति है; क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका बन्ध करके ही उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है; अन्य प्रकारसे नहीं।

४३०. इस अर्थपदके अनुसार साताके चतुःस्थानिक बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे साताके ही त्रिस्थानिकबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे द्विस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असाताके द्विस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असाताके चतुःस्थानबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असाताके त्रिस्थानबन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार जीव समुदाहार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार मूल प्रकृतिस्थितिबन्ध समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरपयडिट्ठिदिबंधो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. उत्तरपगदिट्ठिदिबंधो

१. एत्तो उत्तरपगदिट्ठिदिबंधे पुव्वं गमणिज्जं। तत्थ इमाणि चत्तारि अणियोगद्दाराणि भवंति। तं यथा—ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा णिसेयपरूवणा आबाधाखंडयपरूवणा अप्पाबहुगे त्ति।

ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा

२. ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणदाए सव्वपगदीणं चदुआयु-वेउव्वियछक्क-आहार०-आहारअंगोवंग-तित्थयरवज्जाणं सव्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि। बादरस्स अपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि। सुहुमस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंध० संखेज्जगु०। बादर०[1]पज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगु०। एवं मूलपगदिबंधो याव पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगुणाणि त्ति।

उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध

१. इससे आगे उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धका सर्व प्रथम विचार करते हैं। उसमें ये चार अनुयोगद्वार होते हैं; यथा—स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधाकाण्डकप्ररूपणा और अल्पबहुत्व।

विशेषार्थ—मूल्य प्रकृतियाँ आठ हैं और उनमेंसे प्रत्येकके उत्तर भेद अनेक हैं। उन्हें ही यहाँ पर उत्तर प्रकृति शब्द द्वारा कहा गया है। पहले मूल प्रकृति स्थितिबन्धका विस्तार के साथ विवेचन कर आये हैं। अब आगे उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धका विवेचन करनेवाले हैं; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसके अधिकार और क्रम वही हैं जो मूलप्रकृति स्थितिबन्धका विवेचन करते समय कह आये हैं। मात्र यहाँ उन अधिकारों द्वारा उत्तर प्रकृतियोंके स्थितिबन्धका अवलम्बन लेकर विचार किया गया है।

स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा

२. अब स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणाका विचार करते हैं। उसकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तके चार आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे बादर अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे सूक्ष्म पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे बादर पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं; इस स्थानके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर मूल प्रकृति बन्धके समान अल्पबहुत्व है।

विशेषार्थ—कुल बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० हैं। इनमेंसे नरकायु, देवायु, वैक्रियिक-

---

१. मूलप्रतौ बादर० अपज्जत्त० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. णिरय-देवायूणं सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स असण्णिस्स पज्जत्तगस्स ट्ठिदिबं०। पंचिंदियस्स सण्णिस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। तिरिक्खमणुसायूणं तेरसण्णं जीवसमासाणं ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि तुल्लाणि थोवाणि। पंचिंदियस्स सण्णिस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबं० असं०गु०।

४. णिरयगदि-णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीणं सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स असण्णियस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबं०। पंचिंदियस्स सण्णिस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि संखेज्जगु०। देवगदि-वेउव्विय०-वेउव्विय०अंगोव०-देवाणुपुव्वि० सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स[1] असण्णिस्स पज्जत्तयस्स ट्ठिदिबं०। पंचिंदि० सण्णिस्स अपज्जत्तस्स ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०।

षट्क, आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग और तीर्थंकर इन प्रकृतियोंका सब जीव समासोंमें बन्ध नहीं होता तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके विषयमें विशेष वक्तव्य है, इसलिए इन तेरह प्रकृतियोंके सिवा शेष १०७ प्रकृतियोंके स्थितिबन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व जिस प्रकार मूल प्रकृतिस्थितिबन्धका कथन करते समय कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

३. पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक नरकायु और देवायुके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं। तेरह जीव समासोंके तिर्यञ्च आयु और मनुष्यायुके स्थितिबन्धस्थान तुल्य होकर स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—नरकायु और देवायुका स्थितिबन्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके वह तेतीस सागरतक होता है। इसीसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके इन दोनों आयुओंके स्थितिबन्धस्थानोंसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान असंख्यातगुणे कहे हैं। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धसे लेकर एक पूर्वकोटितक स्थितिबन्ध चौदहों जीवसमासोंमें सम्भव है। मात्र संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्यतक होता है। यही कारण है कि तेरह जीवसमासोंमें इन दोनों आयुओंके स्थितिबन्धस्थान तुल्य और सबसे स्तोक कहे हैं। तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके वे असंख्यातगुणे कहे हैं; क्योंकि पूर्वकोटिके प्रमाणसे तीन पल्यका प्रमाण असंख्यातगुणा होता है।

४. पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तकके नरकगति और नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तकके देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगति प्रायोग्यानुपूर्वीके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे इसीके पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके स्थितिविकल्पोंसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और पर्याप्तके स्थितिबन्धस्थान उत्तरोत्तर संख्यातगुणे होते हैं यह स्पष्ट ही है, क्योंकि असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका संख्यातवां भाग कम एक हजार

---

१. मूलप्रतौ पंचिंदियस्स सण्णिस्स इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. आहार०-आहारंगो० सव्वत्थोवा अपुव्वकरण० ट्ठिदिबंधट्ठाणाणि[1]। संजदस्स ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। तित्थयरणामस्स[2] सव्वत्थोवा [अपुव्वकरणट्ठिदिबंधट्ठाणाणि ।] संजदस्स ट्ठिदिबं० [संखेज्जगुणाणि ।] संजदासंजदस्स ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। असंजदस्स सम्मादिट्ठिअपज्जत्तयस्स ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । तस्सेव पज्जत्त० ट्ठिदिबंध० संखेज्जगु० ।

६. तासिं चेव पगदीणं पढमदंडओ सव्वत्थोवा सुहुमस्स अपज्जत्तयस्स संकिलिट्ठस्स ट्ठाणाणि । बादरअपज्ज० संकिलि०ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । एवं याव पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तयस्स संकिलिट्ठस्स ट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि त्ति । एवं पढमदंडओ ।

सागर प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूरा एक हजार सागर प्रमाण होता है। यहां कुल स्थितिबन्ध विकल्प पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होते हैं।

५. अपूर्वकरणके आहारक शरीर और आहारक आँङ्गोपाङ्गके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं । इनसे संयतके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं । अपूर्वकरणके तीर्थंकर नामकर्मके स्थितिबन्धस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे संयतके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे संयतासंयतके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं। इनसे असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तकके स्थितिबन्धस्थान संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—आहारकशरीर, आहारकशरीर आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटि सागरप्रमाण होता है, फिर भी जघन्य स्थितिबन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियोंके स्वामियोंके स्थितिबन्ध स्थानोंका अल्पबहुत्व उत्तरोत्तर संख्यातगुणा कहा है। मात्र आहारकद्विकका बन्ध संयतके ही होता है; इसलिये इनके स्थितिबन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व दो स्थानोंमें कहा है और तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध संयत, संयतासंयत तथा पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त सम्यग्दृष्टिके होता है, इसलिए इसके स्थितिबन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व इन स्थानोंमें कहा है।

६. उन्हीं प्रकृतियोंका जो प्रथम दण्डक है, उनकी अपेक्षा सूक्ष्म अपर्याप्तकके संक्लेशरूप स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे बादर अपर्याप्तकके संक्लेशरूप स्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकके संक्लेशस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस स्थानके प्राप्त होनेतक संक्लेश स्थानोंका कथन करना चाहिए। इस प्रकार प्रथम दण्डक समाप्त हुआ।

विशेषार्थ— पहले १४ जीव-समासोंमें १०७ प्रकृतियोंके स्थितिबन्धस्थानोंका अल्पबहुत्व बतला आये हैं। उन्हीं प्रकृतियोंके संक्लेशस्थानोंका यहाँ चौदह जीव-समासोंमें अल्पबहुत्व कहा गया है। मूलप्रकृति-स्थितिबन्ध स्थानोंका कथन करते समय संक्लेश विशुद्धिस्थानोंका चौदह जीवसमासोंमें जिस क्रमसे निर्देश किया है, उसी क्रमसे इस

---

१. मूलप्रतौ अपुव्वकरणट्ठिदिबंधट्ठाणाणि असंखे० गु० । संजदस्स इति पाठः ।

२. तित्थयरणामस्स ट्ठिदिबं० सव्वत्थोवा संजदस्स ट्ठिदिबं० । संजदा- इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. विदियदंडओ देव-णिरयायु० । तदियदंडओ तिरिक्ख-मणुसायु० । चउत्थ-दंडओ णिरयगदिदुगं । पंचमदंडओ देवगदि०४ । तदो आहारदुगं तित्थयरं । सव्व-संकिलिट्ठस्स ट्ठाणाणि यथाकमेण असंखेज्जगुणाणि । एवं विसोधिट्ठाणाणि वि णेदव्वाणि सव्वेसु वि दंडएसु ।

८. अप्पाबहुगं । पंचणाणा०-चदुदंसणा०-सादावेद०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-उच्चागो०-पंचंतराइगाणं सव्वत्थोवा संजदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो । बादरएइंदिय-पज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगु० । एवं याव पंचिंदिय० सण्णि० मिच्छादिट्ठि० पज्जत्तस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो त्ति ।

प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके चौदह जीवसमासोंमें संक्लेश-विशुद्धिस्थान जानने चाहिए; यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

७. दूसरा दण्डक देवायु और नरकायुका है । तीसरा दण्डक तिर्यञ्च आयु और मनुष्या-युका है । चौथा दण्डक नरकगतिद्विकका है । पाँचवाँ दण्डक देवगति चतुष्कका है । इसके बाद आहारक द्विक और तीर्थंकर प्रकृति है । इनकी अपेक्षा सर्व संक्लेश स्थान क्रमसे असं-ख्यातगुणे हैं । तथा सभी दण्डकोंमें इसी प्रकार विशुद्धि स्थान जानने चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें जो तेरह प्रकृतियाँ छोड़ दी गईं थीं, उनके स्थितिबन्ध-स्थानोंके ही यहाँ संक्लेश-विशुद्धिस्थानोंका क्रमसे निर्देश किया गया है । प्रथम दण्डकमें कही गई १०७ प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येकके जितने संक्लेशविशुद्धिस्थान होते हैं, उनसे दूसरे दण्ड-कमें कही गई देवायु और नरकायु इनमेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं । इनसे तीसरे दण्डकमें कही गई तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु इन दो प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं । इनसे चौथे दण्डकमें कही गई नरकगति और नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, इन दो प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं । इनसे पाँचवें दण्डकमें कही गई देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग इन चार प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं । इनसे आहारकद्विकमेंसे प्रत्येकके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं और इनसे तीर्थंकर प्रकृतिके संक्लेश-विशुद्धिस्थान असंख्यातगुणे होते हैं । यहां मूलमें संक्लेशस्थान किसके कितने गुणे होते हैं; यह कहा है और अन्तमें यह कहा है कि इसी प्रकार विशुद्धिस्थान भी जानने चाहिए । सो इस कथनका यह अभिप्राय है कि जिसके जितने संक्लेश-स्थान होते हैं, उसके उतने ही विशुद्धिस्थान भी होते हैं ।

८. अल्पबहुत्व; यथा—संयतके पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार सञ्ज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे बादर एकेन्द्रियपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इस प्रकार अन्तमें पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टिपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस स्थानके प्राप्त होनेतक अल्पबहुत्व जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जो बाईस प्रकृतियां गिनाई हैं, उनमेंसे साता वेदनीय और चार सञ्ज्वलन इनका जघन्य स्थितिबन्ध नवमें गुणस्थानमें होता है और शेषका दशवें गुण-स्थानके अन्तिम समयमें होता है । इसीसे संयतके इनका जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक कहा है । इसके आगे इनके स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व जिस प्रकार मूल प्रकृति स्थितिबन्धकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४-तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जोव-णीचागोद० सव्वत्थोवा बादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो। एवं याव मिच्छादिट्ठि त्ति णेदव्वं। णवरि सम्मादिट्ठि० बंधो णत्थि।

१०. णिद्दा-पचला-छण्णोकसाय-असाद-पंचिंदियजादि-तेजा०-कम्म०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरुग०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज०-अजस०-णिमिणणामाणं सव्वत्थोवा बादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ०। एवं पंचिंदिय० सण्णि० पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो त्ति।

११. अपच्चक्खाणावर०-मणुसगदि-ओरालिय०-ओरालिय०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० सव्वत्थोवा बादरएइंदियपज्जत्तयस्स जहण्णओ०। एवं याव पंचिंदिय० सण्णि० मिच्छादिट्ठि० ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो त्ति। णवरि[1] [संजदे संजदासंजदे णत्थि।

प्ररूपणाके समय कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

९. स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र इनका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टितक अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—मूल प्रकृति स्थितिबन्धका कथन करते समय बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकतक जिस प्रकार अल्पबहुत्व कह आये हैं उसी प्रकार यहां कहना चाहिए। इन प्रकृतियोंका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता यह स्पष्ट ही है।

१०. निद्रा, प्रचला, छह नोकषाय, असाता वेदनीय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माण इन प्रकृतियोंका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। इस प्रकार आगे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है, इस स्थानके प्राप्त होनेतक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँपर भी बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकसे लेकर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तकतक जिस प्रकार मूल प्रकृति स्थितिबन्धका कथन करते समय अल्पबहुत्व कह आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र इनका बन्ध सम्यग्दृष्टि और संयतके भी होता है इतना विशेष जानकर अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

११. अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी इन प्रकृतियोंका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। इस प्रकार आगे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टिके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है, इस स्थानके प्राप्त होनेतक अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका बन्ध संयत और संयतासंयतके नहीं होता।

१. णवरि········सव्वत्थोवा बादरएइंदिय— इति पाठः।

१२. पच्चक्खाणावर० ४] सव्वत्थोवा बादरएइंदियपज्ज० जह० । एवं याव पंचिंदिय-सण्णि-मिच्छादिट्ठिपज्जत्तग त्ति । णवरि संजदे णत्थि ।

१३. इत्थि०-णवुंस०-चदुजादि-पंचसंठाण०-पंचसंघड०-आदाव-अप्पसत्थवि०-थावर०४-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० सव्वत्थोवा बादरएइंदियपज्जत्त० जह० । एवं याव असण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाधियो । तदो पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । तस्सेव अपज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । [तस्सेव अपज्जत्तयस्स उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।] तस्सेव पज्जत्त० उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० ।

१४. णिरय-देवायूणं सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स सण्णिस्स असण्णिस्स पज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० । पंचिंदि० असण्णि० पज्जत्तयस्स उक्कस्स० ट्ठिदिबं० असंखेज्जगु० । पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स उक्क० ट्ठिदिबं० असंखेज्जगु० ।

विशेषार्थ—इनका अल्पबहुत्व पूर्वोक्त प्रकारसे ही घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनका बन्ध असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक ही होता है, इतना विशेष जानकर अल्पबहुत्व कहना चाहिए; क्योंकि इनकी बन्धव्युच्छित्ति चौथे गुणस्थानमें हो जाती है। आगे संयतासंयत और संयत जीवोंके इनका बन्ध नहीं होता।

१२. प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त इस स्थानके प्राप्त होनेतक अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका बन्ध संयतके नहीं होता है।

विशेषार्थ—देशसंयत गुणस्थानतक इन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इतनी विशेषताको ध्यानमें रखकर इनका अल्पबहुत्व पूर्वोक्त विधिसे कहना चाहिए।

१३. स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति आदि चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर चतुष्क, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय इनका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इस प्रकार क्रमसे आगे जाकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

विशेषार्थ—इन प्रकृतियोंका बन्ध सम्यग्दृष्टि और संयतके नहीं होता, इसलिए अल्पबहुत्वमेंसे इन स्थानोंके अल्पबहुत्वको कम करके उक्त प्रकारसे इनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

१४. नरकायु और देवायुका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और असंज्ञी पर्याप्तके उक्त दोनों आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध दस हजार वर्षप्रमाण होता है। पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. तिरिक्ख-मणुसायूणं चोद्दसजीवसमासाणं जह० ट्ठिदि० तुल्ला थोवा। तेरसण्णं जीवसमासाणं उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स उक्क० ट्ठिदिबं० असं०गु०।

१६. णिरयगदि-णिरयाणुपु० [सव्वत्थोवा] पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्त० जह० ट्ठिदि०बं०। तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० विसेसाधियो। पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०।

१७. देवगदि०४ सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स असण्णि० पज्जत्तयस्स जह० ट्ठिदिबं०। तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० विसे०। संजदस्स जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। तस्सेव उक्कस्स० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। एवं संजदासंजदा असंजदचत्तारि। पंचिंदिय० सण्णि० मिच्छादिट्ठि० पज्जत्त० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०। तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु०।

बन्ध तेतीस सागरप्रमाण होता है। यतः ये स्थितियाँ उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी हैं, इससे यहां उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा स्थितिबन्ध कहा है।

१५. तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकके जघन्य स्थितिबन्ध एक समान और सबसे स्तोक होता है। इससे तेरह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। इससे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है।

विशेषार्थ—चौदह जीवसमासोंमें उक्त दोनों आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण होता है। अन्तिम जीवसमासको छोड़कर शेष तेरहमें इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिवर्षप्रमाण होता है और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्यप्रमाण होता है। यतः यहां प्रथमसे दूसरा संख्यातगुणा और दूसरेसे तीसरा असंख्यातगुणा है, अतः इनका उक्त प्रकारसे अल्पबहुत्व कहा है।

१६. नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है। इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके स्थितिबन्धके कुल विकल्प पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण हैं और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तके अन्तःकोटाकोटि सागरसे लेकर अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तक हैं। यही कारण है कि उक्त प्रकृतियोंका पूर्वोक्त जीवसमासोंमें उक्त प्रकारसे अल्पबहुत्व घटित हो जाता है।

१७. देवगतिचतुष्कका पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है। इससे संयतके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इस प्रकार इससे आगे संयतासंयत और असंयतचतुष्कके अल्पबहुत्व कहना चाहिए। पुनः इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. [आहारदुगस्स सव्वत्थोवा अपुव्वकरणस्स] जह० ट्ठिदिबं० । [तस्सेव-उक्कस्स० ट्ठिदिबन्धो] । संखेज्जगु० । अपमत्तसंज० जह० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । तस्सेव उक्कस्स० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । तित्थयरस्स सव्वत्थोवा अपुव्वकरणस्स जह० ट्ठिदिबंधो । तस्सेव उक्क० ट्ठिदिबं० संखेज्जगु० । एवं याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति णेदव्वं । एवं ट्ठिदिबंधट्ठाणपरूवणा समत्ता ।

णिसेगपरूवणा

१९. णिसेगपरूवणदाए दुवे अणियोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा य । अणंतरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं मिच्छादिट्ठीणं सव्वपगदीणं आयुवज्जाणं अप्पप्पणो आबाधं मोत्तूण यं पढमसमए [पदेसग्गं णिसित्तं तं बहुगं । जं बिदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं विसेसहीणं । जं तदियसमए पदेसग्गं णिसित्तं तं] विसेसहीणं । एवं विसेसहीणं विसे० याव उक्कस्सिया अप्पप्पणो ट्ठिदि त्ति । एवं पंचिंदियसण्णिअपज्जत्त-असण्णिपंचिंदिय-चदुरिं०-[तेइंदिय-] बीइंदि०-एइंदि०-पज्जत्तापज्जत्त० सव्वपगदीणं सण्णिभंगो ।

विशेषार्थ—संयतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे संयतासंयतके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे इसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त के जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे असंयत सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । इससे इसीके पर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस प्रकार सम्बन्ध मिलाकर देवचतुष्कके स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व कहे । शेष कथन सुगम है ।

१८. आहारकद्विकका अपूर्वकरणके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे अप्रमत्तसंयतके जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । तीर्थंकर प्रकृतिका अपूर्वकरणके जघन्य स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । इससे उसीके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । इस प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि स्थानके प्राप्त होने तक अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए ।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका अप्रमत्तसंयत आदि दो और तीर्थंकर प्रकृतिका असंयतसम्यग्दृष्टि आदि पाँच गुणस्थानोंमें बन्ध होता है, इसलिए इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर इनके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व कहा है ।

इस प्रकार स्थितिबन्धस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई ।

निषेकप्ररूपणा

१९. अब निषेकप्ररूपणाका कथन करते हैं । उसके ये दो अनुयोगद्वार हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा । अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवोंके आयुकर्मके सिवा सब प्रकृतियोंके अपनी-अपनी आबाधाको छोड़कर जो प्रथम समयमें कर्म परमाणु निक्षिप्त होते हैं, वे बहुत हैं । जो दूसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं, वे विशेषहीन हैं । जो तीसरे समयमें निक्षिप्त होते हैं, वे विशेषहीन हैं । इस प्रकार अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेषहीन-विशेषहीन कर्मपरमाणु निक्षिप्त होते हैं । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अप-

२०. परंपरोवणिधाए पंचिंदियाणं सण्णीणं असण्णीणं पज्जत्तगाणं सव्वपगदीणं पढमसमयपदेसग्गादो तदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागं गंतूण दुगुणहीणा। एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सिया ट्ठिदि त्ति।

२१. एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरं असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो। णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतराणि थोवाणि। एयपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमसंखेज्जगुणं। एवं पंचिंदियसण्णि-असण्णिअपज्जत्त-चदुरिंदि०-तीइंदि०-बीइंदि०-एइंदि०पज्जत्तापज्जत्ताणं आयुगवज्जाणं सव्वपगदीणं। एवं णिसेगपरूवणा समत्ता।

आबाधाकंडयपरूवणा

२२. आबाधाखंडयपरूवणदाए पंचिंदियाणं सण्णीणं चदुरिंदि०-तीइंदि०-बीइंदि०-एइंदि० आयुगवज्जाणं सव्वपगदीणं अप्पप्पणो उक्कस्सियादो ट्ठिदीदो समए समए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं ओसकिदूण एयं आबाधाखंडयं करेदि। एस कमो याव जहण्णट्ठिदि त्ति।

र्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, एकेन्द्रिय पर्याप्त और एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी निषेकप्ररूपणा संज्ञियोंके समान है।

२०. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त जीवोंके सब प्रकृतियोंके प्रथम समयमें निक्षिप्त हुए परमाणुओंसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाने पर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन-द्विगुणहीन होते जाते हैं।

२१. एकप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है और नानाप्रदेशद्विगुणहानिस्थानान्तर पल्यके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, एकेन्द्रिय पर्याप्त और एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके आयुओंके सिवा शेष सब प्रकृतियोंकी परम्परोपनिधा जाननी चाहिए।

इस प्रकार निषेकप्ररूपणा समाप्त हुई।

आबाधाकाण्डकप्ररूपणा

२२. अब आबाधाकाण्डककी प्ररूपणा करते हैं। उसकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवोंमें आयुकर्मके सिवा सब प्रकृतियोंका अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे समय-समय उतरते हुए पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति उतरकर एक आबाधाकाण्डक करता है और यह क्रम अपनी-अपनी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक चालू रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाबहुगपरूवणा

२३. अप्पाबहुगं--पंचिंदियाणं सएणीणं पंचणाणा०-चदुदं०-सादावेदणी०-चदुसंज०-पुरिस०-जसगित्ति-उच्चागो०-पंचंतरा० सव्वत्थोवा जहरिणया आबाधा। जहएणओ द्विदिबंधो संखेज्जगुणो। आबाधाट्ठाणाणि आबाधाखंडयाणि च दो वि तुल्लाणि संखेज्जगुणाणि। उक्कस्सिया आबाधा विसेसाधिया। एवं याव उक्कस्सओ द्विदिबंधो त्ति।

२४. सेसाणं आयुगवज्जाणं सव्वपगदीणं सव्वत्थोवा जहरिणया आबाधा। आबाधट्ठाणाणि आबाधाखण्डयाणि य दो वि तुल्लाणि संखेज्जगुणाणि। उक्कस्सिया आबाधा विसेसाहिया। उवरि मूलपगदिबंधो। आयुगाणमपि मूलपगदिभंगो। एवं असरिणपंचिंदिय-चदुरिं०-तीइं०-बीइं०-एइंदियाणं मूलपगदिभंगो कादव्वो। एवं अप्पाबहुगं समत्तं।

चउवीसअणिओगद्दारपरूवणा

२५. एदेण अट्ठपदेण तत्थ इमाणि चदुवीसमणियोद्दाराणि—अद्धाच्छेदो

अल्पबहुत्वप्ररूपणा

२३. अब अल्पबहुत्वका विचार करते हैं। इसकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीवोंके पाँचों ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँचों अन्तराय प्रकृतियोंकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है। इससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। इससे आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक ये दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

२४. आयुके सिवा शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य आबाधा सबसे स्तोक है। इससे आबाधास्थान और आबाधाकाण्डक ये दोनों समान होकर संख्यातगुणे हैं। इससे उत्कृष्ट आबाधा विशेष अधिक है। इससे आगे मूलप्रकृति स्थितिबन्धमें कहे गये अल्पबहुत्वके समान जानना चाहिए। चारों आयुओंकी अपेक्षा भी अल्पबहुत्व मूलप्रकृति स्थितिबन्धमें कहे गये अल्पबहुत्वके समान जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, और एकेन्द्रिय जीवोंके मूल प्रकृतिस्थितिबन्धके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले मूलप्रकृति स्थितिबन्धका कथन करते समय चौदह जीवसमासोंमें मूल प्रकृतियोंका उनकी स्थितिका आश्रय लेकर अल्पबहुत्व कह आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहाँ पर भी प्रत्येक कर्मकी प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध आबाधा और आबाधाकाण्डकके आश्रयसे अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

चौबीस अनुयोगद्वारप्ररूपणा

२५. इस अर्थ पदके अनुसार यहाँ ये चौबीस अनुयोगद्वार होते हैं—अद्धाछेद, सर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वबंधो णोसव्वबंधो यात्र अप्पाबहुगे त्ति २४। भुजगारबंधो पदणिक्खेओ वड्ढिबंधो अज्झवसाणसमुदाहारो जीवसमुदाहारो त्ति।

अद्धाच्छेदपरूवणा

२६. अद्धाच्छेदो दुविधो—जहण्णओ उक्कस्सओ य। उक्कस्सए पगदं। दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणाणा०-णवदंसणा०-असादावे०-पंचंतरा० उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ[1]। तिण्णि वस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

२७. सादावेद०-इत्थिवे०-मणुसगदि-मणुसाणु० उक्क० ट्ठिदिबं० पण्णारस सागरोवमाणि कोडाकोडीओ[2]। पण्णारस वाससदाणि आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

२८. मिच्छत्तं उक्क० ट्ठिदिबं० सत्तरि सागरोवमाणि कोडाकोडीओ[3]। सत्त वस्ससहस्साणि आबाधा। अबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सोलसकसा० उक्क० ट्ठिदि० चत्तालीसं सागरोवमणि कोडाकोडीओ[4]। चत्तारि वस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। पुरिस०-हस्स-रदि-देवगदि०-समचदु०-

---

बन्ध और नोसर्वबन्धसे लेकर अल्पबहुत्व तक २४। भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, वृद्धिबन्ध, अध्यवसानसमुदाहार और जीवसमुदाहार।

विशेषार्थ—इन अधिकारोंके विषयमें हम मूलप्रकृतिस्थितिबन्धका विवेचन करते समय लिख आये हैं, इसलिए वहाँसे जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

अद्धाच्छेदप्ररूपणा

२६. अद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर है। तीन हजार वर्ष आबाधा है, और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

२७. साता वेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति और मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वीका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर है। पन्द्रह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निषेक है।

२८. मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, सात हजार वर्षप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निषेक है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है, चार हजार वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्म निषेक है। पुरुषवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान,

---

१. दुक्खतिघादीणोघं। गो० क० गा० १२८। २. सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु। गो० क० गा० १२८। ३. 'सत्तरि दंसणमोहे।'—गो० क० गा० १२८। ४. 'चारित्तमोहे य चत्तालं।'—गो० क० गा० १२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जरिसभ०-देवाणुपु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० दस सागरोवमकोडाकोडीओ[1]। दस वस्ससदाणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। णवुंसगवे०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ-णिरयगदि--तिरिक्खगदि-एइंदिय०-पंचिंदिय०--ओरालिय०--वेउव्विय--तेजा०--क०--हुंडसंठा[2]०--ओरालिय०--वेउव्विय० अंगो०--असंपत्तसेवट्टसंघड०--वण्ण०४-णिरय--तिरिक्खाणु०--अगुरु०४-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-[तस०-] थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागोदाणं उक्क० ट्ठिदिबंधो वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ[3]। बे वस्ससहस्साणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

२९. णिरय-देवायूणं उक्क० ट्ठिदि० तेत्तीसं सागरोवम०। पुव्वकोडितिभागं आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। तिरिक्ख-मणुसायूणं उक्कस्स० ट्ठिदि० तिण्णि पलिदोवम०[4]। पुव्वकोडितिभागं च आबाधा०। कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

३०. बीइंदि०--तेइंदि०--चदुरिंदि०--वामण०--खीलियसंघडण-सुहुम-अपज्जत्त--साधारणाणं उक्क० ट्ठिदि० अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ[5]। अट्ठारस वाससदाणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। णग्गोध०-वज्जणारा० उक्क०

वज्रर्षभनाराचसंहनन, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादिक छह और उच्च गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दश कोड़ाकोड़ी सागर है, एक हजार वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्म स्थितिप्रमाण कर्म निषेक है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिर आदिक छह, निर्माण और नीच गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। दो हजार वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्म निषेक है।

२९. नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्म निषेक है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यप्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति-प्रमाण कर्म निषेक है।

३०. द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, कीलक संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। अठारह सौ वर्ष आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

१. 'हस्सरदिउच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे। तस्सद्धं–गो० क०,गा० १३२। २. संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं।'—गो० क०,गा० १२९। ३. 'अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे। वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिचउक्के ॥१३०॥ इगिपंचिंदियथावरणिमिणा सग्गमणअथिरछक्काणं। वीसं कोडाकोडी सागरणामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥' गो० क०। ४. सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि गो० क०,गा० १३३। ५. 'दुहीणमादि त्ति।'—गो० क०,गा० १२९।

६. अट्ठारस कोडाकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च।'—गो० क०,गा० १२९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० बारस सागरोवमकोडाकोडीओ। बारस वस्ससदाणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सादिय०-णारायसं० उक्क० ट्ठिदि० चोद्दस सागरोवम-कोडाकोडीओ। चोद्दस वस्ससदाणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। खुज्जसं०-अद्धणा० उक्क० ट्ठिदि० सोलस सागरोवमकोडाकोडीओ। सोलस वस्ससदाणि आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आहार०-आहार०-अंगो०-तित्थय० उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडीओ[1]। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

३१. आदेसेण णेरइएसु णाणावर०-दंसणावरण-वेदणी०[2] मोहणी०छव्वीसं णामा-गोदे अंतराइ० मूलोघं। तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। छम्मासाणि आबा०। कम्म० कम्मणिसेगो। तित्थयरस्स उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमुहुत्तं आबा०। आबाधू० कम्मट्ठि० कम्माणि०। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए पुढवीए मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि०

न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान और वज्रनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बारह कोड़ाकोड़ी सागर है। बारह सौ वर्षप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। स्वातिसंस्थान और नाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चौदह कोड़ाकोड़ी सागर है। चौदह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। कुब्जक संस्थान और अर्द्धनाराचसंहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सोलह कोड़ाकोड़ी सागर है। सोलह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। अन्तर्मुहूर्त आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

विशेषार्थ—पहले मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है, यह बतला आये हैं। यहाँ उनकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है, यह बतलाया गया है। किसी एक या एकसे अधिक उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध जितना अधिक होता है, उसीको ध्यानमें रखकर पहले मूल प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा गया है। उदाहरणार्थ—मोहनीय कर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षासे कहा गया है।

३१. आदेशसे नारकियोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियाँ, नाम, गोत्र और अन्तरायकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। तिर्यञ्च आयु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटिप्रमाण है। छह माह प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और

१. 'अंतोकोडाकोडी आहारतित्थयरे।'—गो० क०, गा० १३२ ॥ २. मूलप्रतौ मोहणी० चउवीसं णामा— इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणिसे०। चदुसु हेट्ठिमासु तित्थयरं च णत्थि।

३२. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-दोवेदणी०-मोहणी०छव्वीसं णिरय-तिरिक्ख-मणुसायु० मूलोघं। देवायु० उक्क० ट्ठिदि० बात्तीसं सागरोवमाणि। पुव्व-कोडितिभागं आबाधा। कम्मट्ठि० कम्मणि०। तिरिक्खतिय-एइंदि०-बीइंदि०-तेइंदि०-चदुरिंदि०-ओरालिय०-वामण०-ओरालि०अंगो०-खीलिय०-असंपत्तसेवट्ट०-तिरिक्खाणुपुव्वि-आदाउज्जोव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त०-साधार० उक्क० ट्ठिदि० अट्ठारस साग०कोडाकोडीओ। अट्ठारस वाससदाणि आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसेगो। सेसाणं णामपगदीणं गोद-अंतराइगाणं च मूलोघं। एवं पंचिंदियति-रिक्खपंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-जोणिणीसु। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु सव्वपगदीणं उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमु० आबा०। आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-णिसे०। णवरि तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। अंतोमु० आबा०। कम्मट्ठि० कम्मणिसे०।

३३. मणुस०३ देवायु० आहारदुगं तित्थयरं च मूलोघं। सेसं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। मणुसअपज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा नीचेकी चार पृथिवियोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।

३२. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका कथन मूलोघके समान है। देवायुका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध बाईस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तिर्यञ्च त्रिक, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरि-न्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वामन संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। अठारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा नामकर्मकी शेष प्रकृतियाँ, गोत्र और अन्तराय कर्मकी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पूर्वकोटि प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

३३. मनुष्यत्रिकमें देवायु, आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। शेष भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणीय०-मोहणी०छव्वीसपगदीओ णामस्स एइंदि०-आदाव-थावर० गोदंतराइयं च मूलोघं। दो आयु० सेसणाम० तित्थयरस्स णिरयोघं। भवणवासि-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाण० पंचिंदिय-जादि-वामणसंठा०-ओरालि०अंगो०-खीलिय०-असंपत्त०-अप्पसत्थवि०-तस-दुस्सर० उक्क० द्विदि० अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ। अट्ठारस वस्ससदाणि आबाधा। आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणिसेगो। सेसाणं पगदीणं देवोघं। णवरि भवण०-वाण-वेंत०-जोदिसिय० तित्थकरं णत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो। आणद याव सव्वट्ठ त्ति सव्वपगदीणं उक्कस्स० द्विदि० अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमुहु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसेगो। मणुसायु० देवोघं।

३५. एइंदिय-बादरएइंदिय० तस्सेव पज्जत्ता० पंचणाणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ०-तिरिक्खगदि-एइंदिय०-ओरालिय-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वण्ण०४-तिरिक्खगदिपा०-अगुरु०-उपघा०-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-अथिर-असुभ-दूभग-अणादेज्ज-अजस०-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० द्विदि० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्म-

---

३४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, नामकर्मकी एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर तथा गोत्र और अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्धादि मूलोघके समान है। दो आयु, नामकर्मकी शेष प्रकृतियाँ और तीर्थंकरका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि सामान्य नारकियोंके समान हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान-कल्पके देवोंमें पञ्चेन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुस्वरका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। अठारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। सानत्कुमारसे लेकर सहस्रारकल्पतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

३५. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पांच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिसेगो। सेसाणं पगदीणं उक्कस्स० ट्ठिदि० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबाधा०। [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्मणि०। तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। सत्तवाससहस्साणि सादिरे० आबाधा। कम्मट्ठिदी कम्मणिसे०। बादरएइंदियअपज्जत्ता० सुहुम० पज्जत्तापज्जत्ता० सव्वपगदीणं उक्कस्स० ट्ठिदि० सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स अंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबा। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसेगो। तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्कस्स० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। अंतोमु० आबाधा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसेगो।

३६. बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय० तेसिं चेव पज्जत्ता० पंचणाणावर०-दंसणावर०-असादवे०-मिच्छत्त०-सोलसक० याव पंचंतरा० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमसदस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा [चत्तारि सत्तभागा] बे सत्तभागा। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसेगो। सेसाणं सादादीणं उच्चागोदाणं तं चेव। णवरि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतो० आबा०। [आबाधू०] कम्मट्ठिदी कम्मणि०। तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। चत्तारि वासाणि सोलस रादिंदियाणि सादि० बे मासं च आबाधा०। [कम्मट्ठिदी] कम्मणिसे०। तेसिं चेव अपज्जत्त०

एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि प्रमाण है, साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

३६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इनके पर्याप्त जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व और सोलह कषायसे लेकर पाँच अन्तरायतक की प्रकृतियोंका क्रमसे पच्चीस सागरका, पचास सागरका और सौ सागरका तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। सातासे लेकर उच्च गोत्रतक शेष प्रकृतियोंका वही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध है। इतनी विशेषता है कि वह पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। चार वर्ष, साधिक सोलह दिन रात और दो माह प्रमाण आबाधा है तथा कर्मस्थिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वपगदीणं सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमसदस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागेण ऊणिया। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰] कम्मणिसे॰। तिरिक्ख-मणुसायू॰ उक्क॰ ट्ठिदि॰ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

३७. पंचिंदिय-तस॰ तेसिं चेव पज्जत्ता॰ मूलोघं। पंचिंदिय-तसअपज्ज॰ मणुस-अपज्जत्तभंगो। पंचकायाणं एइंदियभंगो। णवरि तिरिक्ख-मणुसायुगस्स उक्क॰ ट्ठिदि॰ पुव्वकोडी। सत्त वस्ससहस्साणि सादिरेगाणि बे वस्ससहस्साणि सादिरे॰ [तिण्णि वस्ससहस्साणि सादिरेगाणि आबा॰] तेउ॰-वाउ॰ तिरिक्खायु॰ उक्क॰ ट्ठिदि॰ पुव्वकोडी। एयरादिंदिया॰ एयं वाससहस्सं च आबाधा॰। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसेगो।

३८. पंचमण॰-पंचवचि॰-कायजोगि॰ मूलोघं। ओरालियका॰ मणुसपज्जत्त-भंगो। ओरालियमिस्स॰ मणुसअपज्जत्तभंगो। णवरि देवगदि॰४ तित्थयरं उक्क॰ ट्ठिदि॰ अंतोकोडाकोडी। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्म-] णिसे॰। वेउव्वियका॰ देवोघं। वेउव्वियमिस्स॰ सव्वपगदीओ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-भंगो। णवरि विसेसो जाणिदव्वो। आहार॰-आहारमिस्स॰ सग-सग॰ उक्क॰

प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा इन्हींके अपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे पच्चीस सागरका, पचास सागरका और सौ सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

३७. पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। तथा पाँच स्थावरकायिक जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च आयु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। तथा पृथिवीकायिक जीवोंके साधिक सात हजार वर्ष प्रमाण, जलकायिक जीवोंके साधिक दो हजार वर्ष प्रमाण और वनस्पतिकायिक जीवोंके साधिक तीन हजार वर्षप्रमाण आबाधा है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। क्रमसे एक दिन रात और एक हजार वर्षप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

३८. पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है। औदारिक काययोगी जीवोंके मनुष्य पर्याप्तकोंके समान है। औदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवगति चतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंके सामान्य देवोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि विशेषका कथन जानकर कहना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० अंतोकोडाको० । अंतोमुहुत्तं आबाधा । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] णवरि देवायुगस्स तेत्तीसं सागरो० । पुव्वकोडितिभागं आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे० । कम्मइयका० सगपगदीणं ओरालियमिस्सकायजोगिभंगो ।

३९. इत्थिवेदगे बीइंदि०-तीइंदि-चदुरिंदि०-वामण०-ओरालि०अंगोवं०-खीलियसं०-असंपत्तसेवट्टसं०-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० उक्क० ट्ठिदि० अट्ठारस सागरोवमकोडाको० । अट्ठारस वाससदाणि आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे० । सेसाणं मूलोघं । पुरिसवेदगेसु मूलोघं । णवुंसग० आदाव०-थावर० उक्क० ट्ठिदि० अट्ठारस सागरो० कोडाकोडी० । अट्ठारस वाससदाणि आबाधा । (आबाधू० कम्मट्ठि०) कम्मणिसे० । सेसाणं मूलोघं । अवगदवे० पंचणाणा०-चदुदंसणा०-पंचंतराइ० उक्क० ट्ठिदि० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । अंतोमु० आबाधा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे० । सादावेद०-जसगि०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्मणिसे० । चदुसंज० उक्क० ट्ठिदि० संखेज्जाणि वासाणि । अंतोमु० आबाधा० । [आबाधू०] कम्म० कम्मणिसे० । कोधादि०४ मूलोघं ।

जीवोंके अपनी-अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। कार्मणकाययोगी जीवोंके अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है।

३९. स्त्रीवेदवाले जीवोंके द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, वामन संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, कीलक संस्थान, असम्प्राप्तासृपटिकासंहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अठारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। नपुंसक वेदवाले जीवोंके आतप और स्थावर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह कोड़ाकोड़ी सागर है। अठारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अपगतवेदवाले जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. मदि०-सुद०-विभंग० मूलोघं। णवरि देवायु० उक्क० ट्ठिदि० एक्कत्तीसा०। पुव्वकोडितिभा० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। आभि०-सुद०-ओधि० सव्वपगदीणं उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाको०। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। णवरि मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। छम्मासं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०। देवायु० ओघं। मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार० सगपगदीणं ओधिभंगो।

४१. सुहुमसं० पंचणाणा०-चदुदंस०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० मुहुत्तपुधत्तं। अंतोमु० आबाधा। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। सादवे०-जसगि०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० मासपुधत्तं। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसेगो। अथवा पंचणा०-चदुदंस०-पंचतरा० उक्क० ट्ठिदि० दिवसपुधत्तं। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। सादा०-जसगि०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० वासपुधत्तं। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म] णिसे०। संजदासंजदा० संजदभंगो। णवरि देवायु० उक्क० ट्ठिदि० वावीसं [सागरोवमाणि]। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०। असंजदा० मूलोघं। णवरि

४०. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इकतीस सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। छह माह प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा देवायुका भङ्ग ओघके समान है। मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है।

४१. सूक्ष्म साम्पराय संयत जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मुहूर्त पृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मासपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। अथवा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तरायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। संयतासंयतोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग संयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बाईस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। असंयतोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवायु० उक्क० ट्ठिदि० एक्कत्तीसं [सागरोवमाणि]। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म] णिसे०।

४२. चक्खुदं०-अचक्खुदं० मूलोघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

४३. लेस्साणुवादेण किण्णले० देवायु० उक्क० ट्ठिदि० सागरोवम० सादिरेग०। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०। सेसं णवुंसगभंगो। णील-काऊणं वेउव्वियछक्क-चत्तारिजादि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-तित्थकरं उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाको०। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्मणिसे०। णिरयायु० उक्क० ट्ठिदि० सत्तारस-सत्तसागरोव०। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी] कम्मणिसे०। देवायु० उक्क० ट्ठिदि० सागरोवम० सादि०। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०। सेसं ओघभंगो। तेउए पंचिंदिय-ओरालिय०अंगो०-असंपत्त०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० उक्क० ट्ठिदि० अट्ठारस साग०। अट्ठारस वाससदाणि आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्मणिसे०। सेसं मूलोघं। णवरि तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। छम्मासं च आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०। देवायु० उक्क० ट्ठिदि० बेसाग० सादिरे०। पुव्वकोडितिभागं आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्म-] णिसे०।

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इकतीस सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

४२. चक्षुदर्शनवाले और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अवधिदर्शनवाले जीवोंके सब प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है।

४३. लेश्या मार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यावाले जीवोंके देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध साधिक एक सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके वैक्रियिक छह, चार जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध क्रमसे सत्रह सागर और सात सागर है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध साधिक एक सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि ओघके समान है। पीत लेश्यावाले जीवोंके पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुस्वर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अठारह सागर प्रमाण है। अठारह सौ वर्ष प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण है। छह माह प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध साधिक दो सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। देव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगदि-वेउव्वि०-आहार०-वेउव्वि०-आहार०अंगोवं०-देवगदिपाओग्ग०-तित्थयरं उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडी। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि०] कम्मणि०। पम्माए सहस्सारभंगो। णवरि देवगदि०४ तित्थयरं च तेउभंगो। देवायुग० अट्ठारस साग० सादि०। पुव्वकोडितिभागं च आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। सुक्कलेस्साए आणदभंगो। णवरि देवायु०-देवगदि०४ आहारकायजोगिभंगो।

४४. भवसिद्धिया० मूलोघं। अब्भवसिद्धिया० मदिभंगो। सम्मादि०-खइगस०-वेदग०-उवसमसम्मा०-सम्मामि०सगपगदीओ ओधिभंगो। सासणे सगपगदीओ उक्क० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडी। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। णवरि तिण्णि आयु० मदिअण्णाणिभंगो। मिच्छादि० अब्भवसिद्धिभंगो।

४५. सण्णि० मूलोघं। असण्णीसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-णिरयगदि-पंचिंदि०-वेउव्विय-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-हुंडसं०-वण्ण०४-णिरयाणुपु०४-अगुरु०-अप्पसत्थवि०-तसादि०४-

---

गति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक आङ्गोपाङ्ग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पद्मलेश्यावाले जीवोंके अपनी सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि सहस्रार कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवगति चतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि पीत लेश्यावाले जीवोंके समान है। तथा देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध साधिक अठारह सागर प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। शुक्ल लेश्यावाले जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके देवायु और देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध आदि आहारककाययोगी जीवोंके समान है।

४४. भव्य जीवोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। अभव्य जीवोंके मत्यज्ञानियोंके समान है। सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अवधिज्ञानियोंके समान है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंके अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मत्यज्ञानियोंके समान है। मिथ्यादृष्टि जीवोंके अपनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अभव्योंके समान है।

४५. संज्ञी जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। असंज्ञी जीवोंके पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी चतुष्क, अगुरुलघु, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चतुष्क, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा [चत्तारि सत्तभागा] बे सत्तभागा। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म-] णिसे०। सेसाणं सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्त-भागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। णिरय-देवायुगस्स उक्क० ट्ठिदि० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। पुव्वकोडितिभागं च आबाधा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] तिरिक्ख-मणुसायुगाणं उक्क० ट्ठिदि० पुव्वकोडी। पुव्वकोडितिभागं च आबाधा। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। आहार० मूलोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं उक्कस्सियं समत्तं।

४६. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंसणा०-लोभसंज०-पंचतरा० जहण्णओ ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। अंतोमु० आबाधा। आबा-धूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। पंचदंसणा०-असादावे० जहण्ण० ट्ठिदि० साग-रोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबा०। आबाधू०। सादावेद० जह० ट्ठिदि० बारस मुहुत्तं। अंतोमु० आबा०। आबाधू०।

और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागरका तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक हजार सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक पूर्वकोटिप्रमाण है। पूर्वकोटिका त्रिभाग प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। आहारक जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। तथा अनाहारक जीवोंके सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कार्मणकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

४६. अब जघन्य स्थितिबन्ध अद्धाच्छेदका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभसंज्वलन और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। पाँच दर्शनावरण और असाता वेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. मिच्छत्तं जह० ट्ठिदि० सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया । अंतो० आबा० । आबाधू० । बारसक० जहण्ण० ट्ठिदिबं० सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणिया । अंतोमु० आबा० । आबाधू० । कोधसंज० जह० ट्ठिदि० वे मासं । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । माणसंज० जह० ट्ठिदिबं० मासं । अंतोमु० आबा० । आबाधू० । मायासंज० जह० ट्ठिदिबं० अद्धमासं । अंतोमु० आबा० । आबाधू० । पुरिसवे० जह० ट्ठिदिबं० [1]अट्ठ वस्साणि । अंतोमु० आबा० । आबाधू० ।

४८. णिरय-देवायुगस्स जह० ट्ठिदिबं० दस वस्ससहस्साणि । अंतोमु० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । तिरिक्ख-मणुस्सायुगस्स जह० ट्ठिदि० खुद्दाभवग्गहणं । अंतो० आबा०[2] । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] ।

४९. वेउव्वियछक्क० जह० ट्ठिदि० सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पलिदो० संखेज्जदिभागेण ऊणिया । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । आहार०-आहार०अंगो०-तित्थय० जह० ट्ठिदिबं० अंतोकोडाकोडी । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । जसगि०-उच्चागो० जह० ट्ठिदि०

४७. मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम सात बटे सात भाग प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । बारह कषायका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम चार बटे सात भाग प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । क्रोध संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । मान संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध एक महीना है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । माया संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध आधा महीना है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्षप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है ।

४८. नरकायु और देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दस हजार वर्ष है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है ।

४९. वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध एक हजार सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम दो बटे सात भाग प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । आहारकशरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध

१. मूलप्रतौ ट्ठिदिबं० अद्धवयं० अंतो–इति पाठः । २. मूलप्रतौ आबा० आबाधू० वेउ–इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमु० । अंतो० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । सेसाणं जह० ट्ठिदि० सागरोवमस्स बे सत्तभागा पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणिया । अंतोमु० आबा० [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्म०] ।

५०. आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीसु सव्वपगदीणं जह० ट्ठिदि० सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणिया । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । तिरिक्ख-मणुसायुगस्स जह० ट्ठिदिबं० अंतो० । अंतोमु० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । तित्थय० जह० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो । एवं पढमाए । विदियाए याव सत्तमा त्ति सव्वपगदीणं तित्थयरभंगो । णवरि आयु० णिरयभंगो ।

आठ मुहूर्त है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँभाग कम दो बटे सात भागप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अन्तमें शेष पद द्वारा जिन प्रकृतियोंका संकेत किया है, वे ये हैं—स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्च गति प्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र । इन प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध एकेन्द्रियोंके भी होता है । इसलिए इनका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँभाग कम दो बटे सात भागप्रमाण कहा है । यद्यपि इन प्रकृतियोंमें मोहनीय सम्बन्धी कुछ प्रकृतियाँ हैं, पर उनका भी बन्ध इसी अनुपातसे होता है । इसलिए उनका यहाँ नाम निर्देश किया है । इस सब कथनका विशेष व्याख्यान जीवस्थान चूलिकामें किया है । इसलिए वहाँसे जानना चाहिए ।

५०. आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक हजार सागरका पल्यका संख्यातवाँभाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार पहिली पृथ्वीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सब पृथिवीयोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध तीर्थंकर प्रकृतिके समान है । इतनी विशेषता है कि आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध सामान्य नारकियोंके समान है ।

विशेषार्थ—नरकमें अर्थात् प्रथम नरकमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न हो सकता है । और ऐसे जीवके उत्पन्न होनेके प्रथम और द्वितीय समयमें सब प्रकृतियोंका असंज्ञीके योग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. तिरिक्खेसु चदुराणं आयुगाणं वेउव्वियछक्कं च मूलोघं। सेसाणं सव्वपगदीणं जह० ट्ठिदि० सागरोवमस्स तिरिण [सत्तभागा] सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबा०। आबाधू०। पंचिंदियतिरिक्ख०३ सव्वपगदीणं णिरयभंगो। आयुगाणं मूलोघं। एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु।

५२. मणुस०३ खवगपगदीणं ओघं। सेसाणं सव्वपगदीणं जह० ट्ठिदि० सागरोवमसहस्सस्स तिरिण सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा बे सत्तभागा पलिदोवम० संखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतोमु० आबाधा। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। चदुरणं आयुगाणं मूलोघं। वेउव्वियछक्कं [आहार०] आहार०अंगो० तित्थयरं जह० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडीओ। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

५३. देवगदीए देवा-भवण०-वाणवें० णिरयोघं। जोदिसि याव सव्वट्ठ त्ति विदियपुढविभंगो। सोधम्मीसाणे आयु० जह० ट्ठिदि० अंतो०। अंतोमु० आबा०।

स्थितिबन्ध होता रहता है। इसी अभिप्रायको ध्यानमें रखकर यहाँ नरकगतिमें और प्रथम नरकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है,यह पहिलेही कह आये हैं। द्वितीयादि नरकोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध उक्त प्रमाण ही होता है। इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध तीर्थंकर प्रकृतिके समान कहा है।

५१. तिर्यञ्चोंमें चार आयु और वैक्रियिक षट्कका जघन्य स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरका पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है। और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध नारकियोंके समान है। आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए।

५२. मनुष्यत्रिकमें क्षपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध ओघके समान है। शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक हजार सागरका पल्यका संख्यातवाँ भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग, और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध मूलोघके समान है। वैक्रियिकषट्क, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

५३. देवगतिमें सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सामान्य नारकियोंके समान है। तथा ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध दूसरी पृथिवीके समान है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। सणक्कुमार-माहिंदे मुहुत्तपुधत्तं। बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठे दिवसपुधत्तं। सुक्क-महासुक्क-सदर-सहस्सारे पक्खपुधत्तं। आणद-पाणद-आरण-अच्चुद० मासपुधत्तं। उवरि सव्वाणं वासपुधत्तं। सव्वत्थ अंतोमु० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]।

५४. एइंदिएसु सगपगदीणं तिरिक्खोघं। सव्वविगलिंदिएसु सगपगदीणं [सागरोवमपणुवीसाए] सागरोवमपण्णारसाए सागरोवमसदस्स तिण्णि सत्तभागा सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्त भागा बे सत्तभागा पलिदो० संखेज्जदिभागेण ऊणिया। अंतो० आबा०। [आबा०कम्मट्ठि० कम्मणि०]। आयु० ओघं। पंचिंदिय०२ खवगपगदीणं मूलोघं। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। पंचिंदिय-अपज्जत्त० मणुसअपज्जत्तभंगो।

५५. कायाणुवादेण पंचकायाणं एइंदियभंगो। तस०२ खवगपगदीणं चदुण्णं आयुगाणं वेउव्वियछक्कस्स आहार०-आहार०अंगो० तित्थयरं च मूलोघं। सेसं बीइंदियभंगो। तसअपज्जत्त० बीइंदियभंगो।

५६. पंचमण०-तिण्णिवचि० खवगपगदीणं आयुगाणं च मूलोघं। सेसाणं

कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध मुहूर्त पृथक्त्वप्रमाण है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ कल्पमें दिवसपृथक्त्व प्रमाण है। शुक्र, महाशुक, शतार और सहस्रार कल्पमें पक्षपृथक्त्व प्रमाण है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पमें मासपृथक्त्व प्रमाण है। इसके ऊपर सब देवोंके आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है।

५४. एकेन्द्रियोंमें अपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। सब विकलेन्द्रियोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पच्चीस सागरका, पचास सागरका और सौ सागरका पल्यका संख्यातवां भाग कम तीन बटे सात भाग, सात बटे सात भाग, चार बटे सात भाग और दो बटे सात भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध आदि ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय द्विकमें क्षपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है।

५५. कायमार्गणाके अनुवादसे पाँच स्थावरकायिक जीवोंके अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि एकेन्द्रियोंके समान है। त्रस द्विकमें क्षपक प्रकृतियोंका चार आयुओंका, वैक्रियिकषट्क, आहारक शरीर, आहारकआङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि द्वीन्द्रियोंके समान है। तथा त्रस अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि द्वीन्द्रियोंके समान है।

५६. पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियों और चार आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० अंतोकोडाकोडी। अंतोमु० आबाधा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। दोण्णि वचि० खवगपगदीणं चदुण्णं आयुगाणं वेउव्वियछक्कं आहार०-आहार०अंगो० तित्थयरं च मूलोघं। सेसं बीइंदियपज्जत्तभंगो। कायजोगि-ओरालियकायजोगि० मूलोघं। ओरालियमिस्स० देवगदीच०४ तित्थयरं च उक्कस्स-भंगो। सेसाणं तिरिक्खोघं। वेउव्विय० सोधम्मभंगो। वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० उक्कस्सभंगो। देवायु० जह० ट्ठिदि० पलिदोवमपुधत्तं। अंतो० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। कम्मइग० सगपगदीणं तिरिक्खोघं। णवरि देवगदि०४ तित्थयरं च उक्कस्सभंगो।

५७. इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० संखेज्जाणि वास-सहस्साणि। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] सादावे०-जसगि०-उच्चागो० जह० ट्ठिदि० पलिदो० असंखे०। अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणिसेगो]। चदुसंज०-पुरिसवे० जह० ट्ठिदि० संखेज्जाणि वास-सहस्साणि अंतोमु० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। सेसाणं पंचिंदि-यभंगो। पुरिसवे० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० संखेज्जाणि वास-

अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधा से न्यून कर्म-स्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। दो वचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियों, चार आयु, वैक्रियिक-षट्क, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि मूलोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि द्वीन्द्रियोंके समान है। काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। औदा-रिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृति-योंका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध पल्य पृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

५७. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अन्तर्मु-हूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलन और पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्म निषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चे-न्द्रियोंके समान है। पुरुषवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदाणि। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। सादावेदणीय-जस॰-उच्चागोदं जह॰ ट्ठिदि॰ संखेज्जाणि वाससदाणि। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। चदुसंज॰ जह॰ ट्ठिदि॰ सोलस वस्साणि। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। पुरिसवेद॰ जह॰ ट्ठिदि॰ अट्ठ वस्साणि। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। सेसाणि पंचिंदियभंगो। णवुंसगवेद॰ पंचणा॰-चदुदंसणा॰-सादावे॰-चदुसंज॰-पुरिस॰-जसगि॰-उच्चागो॰-पंचंतरा॰ इत्थिवेदभंगो। सेसं मूलोघं। अवगदवे॰ मूलोघं।

५८. कोधे पंचणा॰-चदुदंसणा॰-पंचंतरा॰ जह॰ ट्ठिदि॰ संखेज्जाणि वासाणि। अंतो॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। सादावे॰-जसगि॰-उच्चागो॰ जह॰ ट्ठिदि॰ संखेज्जाणि वासस॰। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰] चदुसंज॰ जह॰ ट्ठिदि॰ बे मासं। अंतोमु॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। माणे पंचणा॰-चदुदंसणा॰-पंचंतरा॰ जह॰ ट्ठिदि॰ वासपुधत्तं। अंतो॰ आबा। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। सादावे॰-जसगि॰-उच्चागो॰ जह॰ ट्ठिदि॰ संखेज्जाणि वासाणि। अंतो॰ आबा॰। [आबाधू॰ कम्मट्ठि॰ कम्मणि॰]। तिण्णि संज॰ जह॰ ट्ठिदि॰ मासो। अंतोमु॰

अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है, और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। नपुंसक वेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

५८. क्रोध कषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातवर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। चार संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मान कषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यात सौ वर्ष है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] मायाए पंचणा०-चदुदंसण०-पंचंतरा० मासपुधत्तं । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] सादावे०-जसगि०-उच्चागो० जह० ट्ठिदिबं० वासपुधत्तं । अंतोमु० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि० ।] दो संज० जह० ट्ठिदि० पक्खो । अंतो० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । सेसाणं सव्वपगदीणं कोधादीणं तिण्णिकसायाणं मूलोघं । लोभे सव्वपगदीणं मूलोघं ।

५६. मदि०-सुद० तिरिक्खोघं । विभंगे सगपगदी० विदियपुढविभंगो । णवरि चदुआयु० ओघं । वेउव्वियछक्कं एइंदि०-बेइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-आदाव-थावर-सुहुम अपज्जत्त-साधारणाणं च जह० ट्ठिदिबं० अंतोकोडाकोडी । अंतो० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । आभिणि०-सुद०-ओधि० खवगपगदीणं मूलोघं । मणुसायु० जह० ट्ठिदि० वासपुधत्तं । अंतो० आबा । [कम्मट्ठि० कम्मणि०] । देवायु० जह० ट्ठिदि० पलिदोवमं सादिरे० । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणि०] । सेसाणं आहारसरीरभंगो । मणपज्जवे देवायु० जह० ट्ठिदिबं० पलिदोवमपुधत्तं । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । सेसाणं ओधिभंगो । एवं संजदा० ।

संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध एक महीना है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । माया कषायवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्व प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । दो संज्वलनोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक पक्षप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । तथा शेष सब प्रकृतियोंका और क्रोधादि तीन कषायोंका भङ्ग मूलोघके समान है । लोभ कषायवाले जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है ।

५९. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध आदि सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग दूसरी पृथिवीके समान है । इतनी विशेषता है कि चार आयुका भङ्ग ओघके समान है । वैक्रियिकषट्क, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है । मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक पल्य प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग आहारकशरीरके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध पल्य पृथक्त्वप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंसणा०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० मुहुत्त-पुधत्तं दिवसपुधत्तं वा। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। सादा०-जसगि०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० मासपुधत्तं। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहार-संजदासंजदा० आहारकाय-जोगिभंगो। सुहुमसं० छण्णं क० ओघं। असंजद० मदिभंगो। तित्थयर० उक्कस्सभंगो।

६१. चक्खु० खवगपगदीणं चदुण्णं आयुगाणं वेउव्वियछक्क०-आहार०-आहार०अंगो० तित्थयरं मूलोघं। सेसाणं पगदीणं चदुरिंदियभंगो। अचक्खु० ओघभंगो। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

६२. किण्ण०-णील०-काउ० असंजदभंगो। किण्ण-णील-काऊणं णिर-यायु० जह० ट्ठिदि० सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरे० दसवस्ससहस्साणि। अंतो० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। तेसिं चेव देवायु० जह० ट्ठिदि० दस वस्ससहस्साणि। अंतो० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। अथवा किण्ण-णील० देवायु० जह० ट्ठिदि० पलिदो० असं०। अंतो० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। काऊणं णिरय-देवायु० जह० ट्ठिदि० दसवस्स-

---

६०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण है अथवा दिवसपृथक्त्व-प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्म निषेक है। सातावेद-नीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्वप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्यय-ज्ञानियोंके समान है। परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंका भङ्ग आहारककाय-योगी जीवोंके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें छह कर्मोंका भङ्ग ओघके समान है। असंयत जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। तथा तीर्थंकर प्रकृति-का भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

६१. चक्षुदर्शनी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका, चार आयुओंका और वैक्रियिकषट्क, आहा-रक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग तथा तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग मूलोघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग चतुरिन्द्रिय जीवोंके समान है। अचक्षुदर्शनी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। तथा अवधिदर्शनी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग अवधि-ज्ञानियोंके समान है।

६२. कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें अपनी-अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग असंयत जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर और दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा इन्हीं लेश्यावालोंके देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। अथवा कृष्ण और नील लेश्यावालोंके देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति-प्रमाण कर्मनिषेक है। कापोत लेश्यावाले जीवोंके नरकायु और देवायुका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सह० । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणि०] । तेउ० तिरिक्खमणुसायु० देवोघं । देवायु० जह० ट्ठिदि० पलिदो० सादि० । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । अथवा दसवस्ससहस्साणि । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । सेसाणि अंतोकोडाकोडि० । अंतो० आबा० । [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०] । पम्माए तं चेव । देवायु० जह० ट्ठिदि० बे सागरो० सादि० । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० दिवसपुधत्तं । अंतो आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । एइंदिय० आदाव० थावरं च णत्थि । सुक्काए खवगपगदीणं ओघं । मणुसायु० जह० ट्ठिदि० मासपुधत्तं । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । देवायु० जह० ट्ठिदि० अट्ठारससागरो० सादिरे० । अंतो० आबा० । [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो] । सेसं णवगेवेज्जभंगो ।

६३. भवसिद्धिया० मूलोघं । अब्भवसिद्धिया० मदिअ०भंगो । सम्मादि०-खइग० ओधिभंगो । वेदगे आयु० ओधिभंगो । सेसं विभंगभंगो । उवसमसम्मा० पंचणा०-चदुदंसणा०-लोभसंज०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० अंतो० । अंतो० आबा० । [आबाधू० कम्मणि०] । सादावे० जह० ट्ठिदि० चदुवीसं मुहुत्तं । अंतो० आबा० ।

स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है । पीतलेश्यावाले जीवोंके तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक पल्य प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । अथवा देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्ष प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है । और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । पद्म लेश्यावाले जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक दो सागर प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वप्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । इनके एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध मासपृथक्त्व-प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध साधिक अठारह सागर प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नव ग्रैवेयकके समान है ।

६३. भव्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है । अभव्य जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है । सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आयुकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग विभङ्गज्ञानियोंके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन और पाँच अन्तरायका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है । सातावेदनीयका जघन्य स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्त है । अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। कोधसंज० जह० ट्ठिदि० चत्तारि मासं। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। माणसंजल० जह० ट्ठिदि० बे मासं। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। मायासं० जह० ट्ठिदि० मासं०। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। पुरिसवे० जह० ट्ठिदि० सोलसवस्साणि। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। जसगि०-उच्चागो० जह० ट्ठिदि० सोलसमुहुत्तं। अंतो० आबा०। [आबाधू० कम्मट्ठि० कम्मणि०]। सेसाणं ओधिभंगो। सासणे तिरिक्ख-मणुसायु० णिरयोघं। देवायु० जह० ट्ठिदि० दसवस्ससहस्साणि। अंतो० आबा०। [कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो]। सेसाणं संजदासंजदभंगो। एवं सम्मामि०। मिच्छादि० अब्भवसिद्धियभंगो। सण्णि० मणुसभंगो। असण्णि० तिरिक्खोघं। आहार० मूलोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं जहण्णट्ठिदि० समत्तं। एवं अद्धच्छेदो समत्तो।

सव्वबंध-णोसव्वबंधपरूवणा

६४. यो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम इमो दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पंचणाणावरणीयाणं किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वबंधो

क्रोध संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध चार महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। मान संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध दो महीना है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। माया संज्वलनका जघन्य स्थितिबन्ध एक महीना है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह वर्ष है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और अबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक है। यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा है और आबाधासे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध आदि सामान्य नारकियोंके समान है। देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध दश हजार वर्षप्रमाण है। अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा है और कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिषेक है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग संयतासंयतके समान है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टियोंके अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग अभव्योंके समान है। संज्ञी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान है। आहारक जीवोंमें मूलोघके समान है तथा अनाहारकोंमें कार्मण काययोगियोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य स्थितिबन्ध अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

इस प्रकार अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

सर्वबन्ध-नोसर्वबन्धप्ररूपणा

६४. जो सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध है, उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरणका क्या सर्वबन्ध होता है या नोसर्वबन्ध होता है? सर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा णोसव्वबंधो वा। सव्वाओ ट्ठिदीओ बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणं बंधमाणस्स णोसव्वबंधो। एवं पगदीणं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

उक्कस्सबंध-अणुक्कस्सबंधपरूवणा

६५. यो सो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो। तत्थ इमो दुवि० णिद्देसो—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं ट्ठिदिबंधो किं उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो? उक्कस्सबंधो वा अणुक्कस्सबंधो वा। सव्वुक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधमाणस्स उक्कस्सबंधो। तदूणं बंधमाणस्स अणुक्कस्सबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

जहण्ण—अजहण्णबंधपरूवणा

६६. यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो दुवि० णिद्देसो—ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं ट्ठिदिबंधो किं जहण्णबंधो अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। सव्वजहण्णियं ट्ठिदिं बंधमाणस्स जहण्णबंधो। तदो उवरि बंधमाणस्स अजहण्णबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

बन्ध होता है और नोसर्वबन्ध होता है। सब स्थितियोंका बन्ध करनेवाले जीवके सर्वबन्ध होता है और इनसे न्यून स्थितियोंका बन्ध करनेवाले जीवके नोसर्वबन्ध होता है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिए।

उत्कृष्टबन्ध—अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा

६५. जो उत्कृष्टबन्ध और अनुत्कृष्टबन्ध है, उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध क्या उत्कृष्टबन्ध होता है या अनुत्कृष्टबन्ध होता है? उत्कृष्टबन्ध भी होता है और अनुत्कृष्टबन्ध भी होता है। सबसे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्टबन्ध होता है और इससे न्यून स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके अनुत्कृष्टबन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्टबन्धमें ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका ग्रहण किया गया है और अनुत्कृष्टबन्धमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके सिवा शेष सब स्थितिबन्धोंका ग्रहण किया गया है। उदाहरणार्थ ओघसे मिथ्यात्व मोहनीयका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने पर वह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जाता है और इससे न्यून स्थितिबन्ध होने पर वह अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा जाता है। इसी प्रकार आदेशसे जिस मार्गणामें जो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो, वह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध है और शेष अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध है।

जघन्यबन्ध—अजघन्यबन्धप्ररूपणा

६६. जो जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध है, उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध है? जघन्यबन्ध भी है और अजघन्यबन्ध भी है। सबसे जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जघन्यबन्ध होता है और इससे अधिक स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके अजघन्यबन्ध होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समान यहाँ ओघ और आदेशसे जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका विचार कर लेना चाहिए। ओघसे सबसे जघन्य स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि-अणादि-धुव-अद्धुवबंधपरूवणा

६७. यो सो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो णाम तस्स इमो दुवि० णिद्देसो—ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंतरा० उक्कस्सट्ठिदिबंधो अणुक्कस्सट्ठिदिबंधो जहण्णट्ठिदिबंधो किं सादियबंधो किं अणादियबंधो किं धुवबंधो किं अद्धुवबंधो? सादिय० अद्धुवबंधो वा। अजहण्णट्ठिदिबंधो किं सादिय वा०४? सादिय० अणादिय० धुव० अद्धुव० । सेसाणं सव्वपगदीणं उक्कस्स० अणुक्कस्स० जह० अजह० किं सादि०४? सादिय-अद्धुवबंधो[1] । एवं ओघभंगो चक्खुदं०-भवसि० । णवरि भवसिद्धिए धुवबंधो णत्थि । सेसाणं णिरयादि याव अणाहारग त्ति किं सादि०४[1]? सादिय-अद्धुव बंधो ।

बन्ध पाँच ज्ञानावरणका अन्तर्मुहूर्त है और सब अजघन्य स्थितिबन्ध है। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा

६७. जो सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध और अध्रुवबन्ध है, उसका यह निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध और जघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है? सादि और अध्रुव है। अजघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। शेष सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध, जघन्य स्थितिबन्ध और अजघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है? सादि और अध्रुव है। इसी प्रकार ओघके समान चक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुव बन्ध नहीं होता। शेष नरकगतिसे लेकर अनाहारकतक सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, अनुत्कृष्ट, स्थितिबन्ध जघन्यस्थितिबन्ध और अजघन्य स्थितिबन्ध क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है? सादि और अध्रुव है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायकी बन्धव्युच्छित्ति और जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है। इसके पहले अनादिकालसे इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। यतः इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपने-अपने अन्तिम स्थितिबन्धके समय प्राप्त होता है, इसलिए इसके पहले अनादिकालसे होनेवाला इनका अजघन्यबन्ध ठहरता है। इसलिए तो यह अनादि है तथा जो जीव उपशम श्रेणिपर आरोहण कर और सूक्ष्म साम्परायके अन्तमें इनकी बन्धव्युच्छित्ति कर उपशान्तमोह हो उपशमश्रेणीसे उतरते हुए पुनः इनके बन्धका प्रारम्भ करता है, उसके यह अजघन्य स्थितिबन्ध सादि होता है। ध्रुव और अध्रुव स्पष्ट ही हैं। इस प्रकार उक्त १८ प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार का होता है। इन १८ प्रकृतियोंके शेष उत्कृष्टबन्ध आदि तीन तथा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्टबन्ध आदि चार सादि और अध्रुव दो ही प्रकारके हैं, क्योंकि उक्त १८ प्रकृतियोंके उत्कृष्टबन्ध आदि तीन और शेषके उत्कृष्टबन्ध आदि चारों कादाचित्क होनेसे अनादि और

---

1. गो० क०, गा० १५२ । पञ्चसं० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामित्तपरूवणा

६८. सामित्तं दुविधं---जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्कस्सए पगदं । दुवि०---ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवुंस०-अरदिसोग-भय-दुगुं०-पंचिंदियजादि-तेजा-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-अगुरु०४-अप्पसत्थवि० तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो कस्स होदि ? अण्णदरस्स चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागारजागार-सुदोवजोगजुत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उक्कस्सए ट्ठिदिसंकिलिस्से वट्टमाणस्स अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स[1] । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसाणु०-पसत्थविहाय०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? तस्सेव पंचिंदियस्स सागार-जागार०

ध्रुव नहीं हो सकते। पहले मूलप्रकृति स्थितिबन्ध प्रकरणमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय इन सात मूल प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धको सादि आदि चार प्रकार का बतलाया है और यहाँ केवल ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायके भेदोंमें ही यह घटित किया गया है सो इसका कारण यह है कि आयुके बिना शेष सात मूल प्रकृतियोंका अनादिसे निरन्तर बन्ध होता आया है, पर इन सबकी उत्तर प्रकृतियोंकी यह स्थिति नहीं है; इसलिए उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा जिन कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें यह व्यवस्था सम्भव हुई, उनमें ही उक्त प्रकारसे निर्देश किया है।

यह ओघप्ररूपणा अचक्षुदर्शन और भव्य इन दो मार्गणाओंमें ही अविकल घटित होती है, क्योंकि ये मार्गणाएँ कादाचित्क नहीं हैं और क्रमसे क्षीणमोह व अयोगिकेवली गुणस्थानतक रहती हैं। इसलिए इनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जाती है। केवल भव्यमार्गणामें ध्रुव विकल्प नहीं होता; शेष कथन सुगम है।

स्वामित्वप्ररूपणा

६८. स्वामित्व दो प्रकारका है---जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है---ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिरादि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो पञ्चेन्द्रिय है, संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकारजागृतश्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाममें अवस्थित है अथवा ईषत् मध्यम परिणामवाला है, ऐसा चार गतिका अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? जो पञ्चेन्द्रिय है, साकार जागृत तत्प्रायोग्यसंक्लेशपरिणामवाला है और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ तत्प्रायोग्य संक्लेशरूप परि-

1. सेसाणं । उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ।'---गो० क०, गा० १३८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप्पाओग्गसंकिलिट्टस्स उकस्सियाए ट्ठिदीए तप्पाओग्गसंकिलेसे वट्टमाणस्स ।

६६. णिरयायु० उक्क० ट्ठिदिबंधो कस्स ? अण्णदरस्स मणुसस्स वा तिरिक्खजोणिणीयस्स वा सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जागार-सुदोवजुत्तस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्टस्स उकस्सियाए आबाधाए उकस्सट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीयस्स वा सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स सागारजागार० तप्पाओग्गविसुद्ध० उकस्सियाए आबाधाए उक्क० ट्ठिदिबं० वट्ट० । देवायु०[1] उक्क० ट्ठिदिबं० कस्स ? अण्णदरस्स पमत्तसंजदस्स सागार-जागारसुदोवजोगजुत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स उकस्सियाए आबाधाए उक्क० ट्ठिदिबं० वट्ट० ।

७०. [2]णिरयग०-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगोवं०-णिरयगदिपाओग्गा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खस्स वा सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारसुदोवजोगजुत्तस्स सव्वसंकिलिट्टस्स उक्क० ट्ठिदि० वट्टमाणस्स अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा । [3]तिरिक्खगदि-ओरालिय०-ओरालिय०अंगोवं०-असंपत्तसेवट्टसंघ०-तिरिक्खाणुपु०-उज्जोव० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदरस्स णिरयस्स

णाममें अवस्थित है,ऐसा पूर्वोक्त चार गतिका संज्ञी जीव ही उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

६९. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकारजागृतश्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्यसंक्लेश परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्टस्थितिबन्ध कर रहा है,ऐसा अन्यतर मनुष्य या तिर्यञ्चयोनि जीव नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है,ऐसा अन्यतर मनुष्य या तिर्यञ्चयोनि जीव तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला है और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है,ऐसा अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

७०. नरकगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है, सबसे अधिक संक्लेश परिणामवाला है, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है अथवा ईषत् मध्यम परिणामवाला है,ऐसा अन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च उक्त चार प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला

१. 'देवाउगं पमत्तो'—गो० क०, गा० १३६ । २. णरतिरिया······वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।'—गो० क०, गा० १३७ । ३. सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ।'—गो० क०, गा० १३७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा देवस्स वा मिच्छादिट्ठि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिट्ठ० अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स । [2]देवगदि-तिण्णिजादि-देवाणुपु०-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स वा पंचिंदियतिरिक्खस्स वा सण्णि० मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागार० तप्पाओग्ग० उक्कट्ठिदि० तप्पाओग्गउक्कस्सए संकिलिट्ठे वट्टमाणस्स । [2]एइंदिय-आदाव-थावर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंतदेवेसु मिच्छादिट्ठि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स अथवा ईसिमज्झिम० । [3]आहार०-आहार०अंगो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदरस्स अप्पमत्तसंजदस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठ० पमत्ताभिमुहस्स । तित्थयरं[4] उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गस्स० मिच्छादिट्ठिमुहस्स ।

है अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला है, ऐसा अन्यतर देव या नारकी जीव उक्त छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति, तीन जाति, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य परिणामवाला है और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाममें अवस्थित है, ऐसा अन्यतर मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव उक्त आठ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला है, ऐसा सौधर्म और ऐशान कल्प तकके देवोंमेंसे अन्यतर देव उक्त तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारकशरीर और आहारक शरीर आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और प्रमत्तसंयत गुणस्थानके अभिमुख है, ऐसा अन्यतर अप्रमत्त संयत जीव उक्त दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, ऐसा अन्यतर मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—यहाँ १४८ उत्तर प्रकृतियोंमेंसे प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका विचार किया गया है । बन्धकी अपेक्षा पाँच बन्धन और पाँच संघातका पाँच शरीरमें अंतर्भाव हो जाता है तथा स्पर्शादिक २० के स्थानमें मूल चार लिये गये हैं तथा सम्यक् प्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो अबन्ध प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इन अट्ठाईस प्रकृतियोंके कम हो जाने पर कुल १२० प्रकृतियाँ शेष रहती हैं । अतएव यहाँ इन्हीं १२० प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका विचार किया गया है । यहाँ यह बात तो स्पष्ट ही है कि देवायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन चार प्रकृतियोंके सिवा शेष ११६ प्रकृतियोंका उत्कृष्टस्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है, क्योंकि इनके बन्धके योग्य उत्कृष्ट या अल्प, मध्यम

---

१. णरतिरिया······वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।'—गो० क०, गा० १२७ । २. देवा पुण एइंदियआदावं थावरं च । गो० क०, गा० १२८ । ३. 'आहारयमप्पमत्तविरदो दु ।'—गो० क०, गा० १३६ । ४. 'तित्थयरं च मणुस्सो ।'—गो०क०, गा० १३६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-पंचिंदिय०-ओरालिय०-तेजा०-क०-हुंडसं०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेव०-वण्ण०४-तिरिक्खाणुपु०-अगुरु०४-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क०

परिणाम मिथ्यादृष्टिके ही होते हैं। उसमें भी किन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन गतिका जीव है,यह अलग-अलग बतलाया ही है। फिर भी,यहाँ प्रत्येक गतिका आश्रय लेकर विचार करते हैं—

नरकगति—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय और २६ मोहनीयका तथा नरकगतिद्विक, वैक्रियिकद्विक, देवगतिद्विक, एकेन्द्रियादि चार जाति, आहारकद्विक, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और तीर्थङ्कर इन १८ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ४९ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र और ५ अन्तरायका इस प्रकार नरकगतिमें कुल ९८ का ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। तथा तिर्यञ्चायु,मनुष्यायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिका आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। कुल १०१ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

तिर्यञ्चगति—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय, २६ मोहनीय, देवायुके सिवा ३ आयुका तथा तिर्यञ्चगतिद्विक, औदारिकद्विक, आहारकद्विक, एकेन्द्रिय जाति, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, आतप, उद्योत, स्थावर और तीर्थङ्कर इन १२ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी शेष ५५ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र और ५ अन्तरायका इस प्रकार तिर्यञ्चगतिमें १०७ प्रकृतियोंका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। तथा औदारिकद्विक, तिर्यञ्चगतिद्विक, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत और स्थावर इन नौ प्रकृतियोंका आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। कुल ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

मनुष्यगति—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय, २६ मोहनीय, ४ आयुका तथा तिर्यञ्चगतिद्विक, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकद्विक, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप, उद्योत और स्थावर इन नौ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ५८ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र और ५ अन्तरायका इस प्रकार मनुष्यगतिमें १११ प्रकृतियोंका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। इतनी विशेषता है कि आहारकद्विकका प्रमत्तसंयत गुणस्थानके अभिमुख हुए संक्लेश परिणामवाले अप्रमत्तसंयतके और तीर्थंकरका मिथ्यात्वके अभिमुख हुए असंयतसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। तथा तिर्यञ्चगतिमें गिनाई गई आदेश उत्कृष्ट स्थितियन्धवाली ९ प्रकृतियोंका यहाँ भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। यहाँ सब प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

देवगति—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, २ वेदनीय, २६ मोहनीयका तथा नरकगतिद्विक, देवगतिद्विक, द्वीन्द्रिय आदि तीन जाति, वैक्रियिकद्विक, आहारकद्विक, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और तीर्थंकर इन १५ प्रकृतियोंके सिवा नामकर्मकी ५२ प्रकृतियोंका तथा २ गोत्र और ५ अन्तरायका इस प्रकार देवगतिमें कुल १०१ प्रकृतियोंका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। तथा तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और तीर्थंकर प्रकृतिका आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। कुल १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

७१. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुलरुघु चतुष्क, उद्योत, अप्रशस्तविहायो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स। सेसाणं उक्कस्स० ट्ठिदि० तस्सेव तप्पाओग्ग-संकिलि०। तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मिच्छादिट्ठि० तप्पाओ-ग्गविसुद्धस्स उक्कस्सियाए आबा० [उक्क०] ट्ठिदि० वट्टमाणस्स। मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छादि० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्क० आबा० उक्क० ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स। तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? असंजदसम्मादिट्ठिस्स तप्पाओग्गसंकिलि०।

७२. एवं सव्वासु पुढवीसु। णवरि चउत्थीआदीसु तित्थयरं णत्थि। सत्तमाए मणुसगइ-मणुसाणु०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठ० मिच्छत्ताभिमुह०।

७३. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसकसा०-णवुंस०-अरदि-सोग०-भय-दुगुं०-णिरयग०-पंचिंदिय०-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वेउ-

गति, त्रस चतुष्क, अस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके सात उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्यसंक्लेश परिणामवाला अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

७२. इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चौथीसे लेकर सब पृथिवियोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। तथा सातवीं पृथिवीमें मनुष्य गति, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी और उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर सम्यग्दृष्टि नारकी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—नरकगतिमें जितनी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उनका नाम-निर्देश पहिले कर आये हैं। यहाँ इतनी विशेष बात जाननी चाहिए कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरी पृथिवी तक होता है और सातवीं पृथिवीमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है।

७३. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, अप्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्वियअंगो०-वण्ण०४-णिरयाणु०-अगुरु०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० पंचिंदिय० सण्णि० मिच्छा० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिट्ठ० अथवा ईसिमज्झिमप०। सेसाणं तस्सेव पंचिंदिय० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जागार० तप्पाओग्ग-संकिलि०। देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठि० तप्पाओग्गविसु० उक्क० आबा०। सेसाणं आयूणं ओघं। पंचिंदियतिरिक्ख'०३ [तिरिक्खोघं]।

७४. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ते पंचणाणावरणी०-णवदंसणा०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-ओरालि०-तेजा-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणुपु०-अगुरु०-उप०-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-अथिरादिपंच०-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सण्णिस्स सागार-जागार० उक्क० संकिलि० वट्टमाणस्स। सेसाणं तस्स चेव सण्णि० तप्पाओग्गसंकिलिट्ठ० उक्क० ट्ठिदि० वट्टमाण०। दो आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० सण्णिस्स वा असण्णिस्स वा तप्पाओग्ग-विसुद्धस्स।

शस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र, और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प, मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिकमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिके बन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है।

७४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर संज्ञी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी संज्ञी, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला वही जीव है। दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला अन्यतर संज्ञी या असंज्ञी जीव दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्च सामान्यके आहारकद्विक और तीर्थङ्करके विना कुल बन्धयोग्य

१. मूलप्रतौ— तिरिक्खभंगो ३ पंचिंदिय— इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

७५. मणुस०३ आहार०-आहार०अंगो०-तित्थयर०-आयु०चत्तारि ओघं। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। मणुसअपज्जत्ता० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

७६. देवगदीए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०--अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा-क०-हुंडसं०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेवट्टसंघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणुपु०-अगुरु०४-आदाउज्जो०-अप्पसत्थविहा०-तस-थावर--बादर-पज्जत्त--पत्तेय०--अथिरादिछक्क--णीचागोद-पंचंतरा० उक्क०-ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मिच्छादिट्ठि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स। दोआयु० तित्थयरं च णिरयभंगो। सेसाणं तप्पाओग्ग-संकिलि० मिच्छादिट्ठि०।

प्रकृतियाँ ११७ हैं। इनमेंसे इसके १०७ प्रकृतियोंका ओघके समान उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और शेष रही देवायु तिर्यंचगतिद्विक, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक द्विक, असंप्राप्तासृपाटिका-संहनन, आतप, उद्योत और साधारण इन १० प्रकृतियों का आदेश स्थितिबन्ध होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें भी जान लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पूर्वोक्त ११७ प्रकृतियोंमेंसे देवायु, नरकायु और वैक्रियिक छह इन ८ प्रकृतियोंके कम कर देने पर कुल बन्धको प्राप्त होनेवाली १०६ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। सो इसके इन सब प्रकृतियोंका आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि इन सब मार्गणाओंमें किस अवस्थाके होने पर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है,इसका मूलमें निर्देश किया ही है। इसी प्रकार अन्य मार्गणा-ओंमें जहाँ जिस अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, उसका पृथक्-पृथक् निर्देश मूलमें किया है।

७५. मनुष्यत्रिकमें आहारकशरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, तीर्थंकर प्रकृति और चार आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान हैं।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें सब अर्थात् १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनमेंसे १११ का ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और तिर्यञ्चगतिद्विक, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकद्विक, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, आतप, उद्योत तथा स्थावर इन ९ प्रकृतियोंका आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। मनुष्य अपर्याप्तकोंका विचार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है; यह स्पष्ट ही है।

७६. देवगतिमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिरादिक छह नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प,मध्यम परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृ-तियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयु और तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी नारकियोंके समान है, तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मिथ्यादृष्टि देव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. भवण०-वाणवेंत०-जोदिसि०-सोधम्मीसा० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-ओरालि०-तेजा-क० हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-आदाउज्जो०-थावर-बादर-पज्जत-पत्तेयसरीर-थिरादिपंच-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदिबं० कस्स० ? अण्णद० मिच्छादिट्ठि० सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलिट्ठ० अथवा ईसिमज्झिमपरि० । सेसाणं तस्सेव सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्कस्सट्ठिदि० वट्टमा० । दोआयु० सोधम्मे तित्थयरं च देवोघं । एवं सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो ।

७८. आणदादि याव णवगेवज्जा त्ति पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय०-तेजा०-क०-हुंडसं०-ओरालिय०अंगो०-असंपत्तसेवट्ट०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मिच्छादि० उक्क०संकिलि० । सेसाणं तस्स चेव सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि० । मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादिट्ठिस्स सम्मादिट्ठिस्स वा तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।

७७. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला, अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला वही जीव है। तथा दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी और सौधर्मकल्पयुगलमें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य देवोंके समान है । इसी प्रकार सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है ।

७८. आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिरादिक छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला, अन्यतर मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि उक्त देव मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति पंचणा०-छदंसणा०-असादावे०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ-मणुसगदि-पंचिंदिय०-ओरालिय०-तेजा-क०-समचदु०-ओरालिय०अंगो०-वज्जरिसभसं०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-[1]असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज०-अजस०-णिमिण-तित्थयर०-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? सव्वसंकिलि० । सेसाणं तस्सेव सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि० । आयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तप्पाओग्गविसुद्ध० उक्क० आबा० ।

८०. एइंदिएसु पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । णवरि अण्णद० बादरस्स पज्जत्तस्स सागार-जागार० उक्कस्ससंकिलि० । एवं बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ता० । णवरि यं उद्दिस्सदि तं गहणं कादव्वं । एदेण विधिणा बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

७९. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? सबसे संक्लेश परिणामवाला उक्त देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वही जीव है । आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला उक्त देव आयुकर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—देवोंमें कुल १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । उसमें भी एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध ऐशान कल्प तक ही होता है । भवनत्रिकोंमें तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध नहीं होता । देवोंमें पहले जिन १०१ प्रकृतियोंका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहा है, वह सहस्रार कल्प तक ही होता है । आगे अपने-अपने योग्य आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है । तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चद्विक और नीचगोत्रका बन्ध भी बारहवें कल्प तक ही होता है । आगे इनका बन्ध नहीं होता । इसलिए इतनी विशेषताओंको ध्यानमें रखकर देवोंमें और उनके अवान्तर भेदोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व घटित करना चाहिए । मात्र नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानोंमें सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इसलिए वहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व सम्यग्दृष्टि देवोंके ही कहना चाहिए । यहाँ किस प्रकृतिका किस अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, यह सब विशेषता मूलमें कही ही है ।

८०. एकेन्द्रियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि साकारजागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इनके पर्याप्त, अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँ जिसका उद्देश्य हो वहाँ उसका ग्रहण करना चाहिए । इसी विधिसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है ।

१. मूलप्रतौ—असुभदूभगदुस्सरआदेज्ज— इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तेसु सव्वपगदीणं मूलोघं । णवरि पंचिंदियगहणं कादव्वं । पंचिंदियअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

८२. पुढविका० णाणावरणादि अंतराइग त्ति उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादरस्स पज्जत्तस्स सागार-जागार० उक्क० संकिलि० । सेसाणं सागार-जागार० तप्पाओग्ग-संकिलि० । दोआयु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० सागार-जागार० तप्पाओग्गविसुद्ध० । एवं पंचकायाणं एइंदियभावेण णेदव्वं । णवरि तेउ-वाउकायाणं मणुसायु०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चागोदं णत्थि ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके नरकायु, देवायु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर इन ११ प्रकृतियोंके सिवा १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । सो एकेन्द्रियोंमें इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव होता है; यह स्पष्ट ही है । यहाँ पर अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं,उनमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका विचार कर उनके स्वामित्वका कथन करना चाहिए । इन सब मार्गणाओंमें उक्त १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । मात्र पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करते समय जिस प्रकार ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी योग्यताका निर्देश किया है,उसी प्रकार यहाँ भी उसका विचार कर लेना चाहिए ।

८१. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियका ग्रहण करना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है ।

विशेषार्थ—मूलोघ प्ररूपणामें जो उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश करते समय गतियोंकी मुख्यतासे कहा है,वहाँ नरकगतिका या तिर्यञ्चगतिका जीव ऐसा न कहकर पञ्चेन्द्रिय ऐसा सामान्य निर्देश करना चाहिए । शेष कथन सब मूलोघके समान है,यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

८२. पृथिवी कायिक जीवोंमें ज्ञानावरणसे लेकर अन्तराय तक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला उक्त जीव है । दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार पाँच स्थावर कायिक जीवोंका एकेन्द्रिय जीवोंके समान कथन करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्च गोत्रका बन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—पहले एकेन्द्रियोंमें बन्ध योग्य १०९ प्रकृतियोंका निर्देश कर आये हैं । यतः पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रियोंके अवान्तर भेद हैं, अतः इनमें भी उन्हीं १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । मात्र अग्निकायिक और वायुकायिक जीव इस नियमके अपवाद हैं । कारण कि उनमें मनुष्यायु, मनुष्यद्विक और उच्च गोत्रका बन्ध नहीं होता, इसलिए इन दो कायिक जीवोंमें १०५ प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है । पहले लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी योग्यताका निर्देश कर आये हैं । उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए । अर्थात् ज्ञानावरणकी ५ आदि ६६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. तस-तसपज्जत्त० पंचिंदियभंगो। तसअपज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

८४. पंचमण०-तिण्णिवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंसग०-अरदि-सोग-भय-दुगुंच्छ-पंचिंदिय०-तेजा०-कम्मइय०-हुंडसंठाण-वण्ण०४-अगुरु०४-अप्पसत्थवि०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० चदुगदियस्स मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागार० उक्क०संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स। सादावे०-इत्थिवे०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्णदर० चदुगदियस्स मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि०।

८५. णिरयगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्णद० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि०। तिरिक्खगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेव०-तिरिक्खाणुपु०-उज्जोव० उक्क० ट्ठिदि० कस्स०? अण्णद० देवस्स वा णेरइगस्स वा मिच्छादि० सागार-जा०

संक्लेश परिणामोंसे होता है। साता वेदनीय आदि ४१ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य संक्लेश परिणामोंसे होता है और मनुष्यायु व तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे होता है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

८३. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। तथा त्रस अपर्याप्तक जीवोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

८४. पाँचो मनोयोगी और तीन वचन योगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर आदिक छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प,मध्यम परिणामवाला चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। साता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्य नुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादिक छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर चार गतिका जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

८५. नरकगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्च गति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० संकि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणा० । चदुण्णं आयुगाणं ओघं । एइंदिय०-आदाव-थावर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० ईसाणंतदेव० मिच्छादिट्ठि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणा० । देवगदि-तिण्णिजादि-देवाणुपु०-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदर० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा मिच्छादिट्ठि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । आहार०-आहार० अंगो०-तित्थयरं ओघं । वचिजो० असच्चमो० सो चेव भंगो । णवरि उक्कस्स-संकिलिट्ठाणं तप्पाओग्गसंकिलिट्ठाणं च अण्णद० सण्णिस्स त्ति भाणिदव्वं ।

८६. कायजोगि० मूलोघं । ओरालियका० मणुसपज्जत्तभंगो । णवरि मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा पंचिंदिय० सण्णि० त्ति भाणिदव्वं । ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्ख-गदि-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०-उप०-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-अथिरादिपंच०-णीचागो०-णिमिण-पंचतरा० उक्क०

संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प, मध्यम परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । चार आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प, मध्यम परिणामवाला अन्यतर ऐशान कल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति, तीन जाति, देवगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तथा आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंके इसी प्रकारका भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि यहाँपर उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर संज्ञी जीव ऐसा कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोग और सत्य, असत्य, तथा उभय वचनयोग संज्ञी पञ्चेन्द्रियके होते हैं । तथा सामान्य और अनुभय वचनयोग द्वीन्द्रिय जीवोंसे लेकर होते हैं, पर यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका विचार चल रहा है, इसलिए इन दोनों वचनयोगोंकी अपेक्षा संज्ञी जीवके ही उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिए । यहाँ सब योगोंमें बन्ध १२० प्रकृतियों का ही होता है । शेष विशेषता मूलमें कही ही है ।

८६. काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । औदारिककाययोगी जीवोंका भङ्ग मनुष्य पर्याप्तकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहाँपर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मनुष्य और तिर्यञ्च जीव स्वामी हैं, ऐसा कहना चाहिए । औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर आदिक पाँच, नीच गोत्र, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदर० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा सागार-जा० उक्क० संकिलि० । देवगदि०४-तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० सम्मा० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्क० संकिलि० वट्ट० । सेसाणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० तिरिक्ख० पंचिंदिय० सण्णि० सागार-जा० तप्पाओग्ग-संकिलि० । दो आयु० मणुसअपज्जत्तभंगो ।

८७. वेउव्वियि पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-ओरालि०-तेजा-क०-हुंडसंठा०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-उज्जोव०-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-अथिरादिपंच०-णिमिण-णीचागो०-पंचंतराइगाणं उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० देवस्स वा सहस्सारंतस्स णेरइगस्स वा मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरि० ।

णामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संज्ञी औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा दो आयुओंका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—काययोग चारों गतियोंमें संभव है, इसलिए काययोगमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व ओघके समान बन जाता है। औदारिककाययोग तिर्यञ्च और मनुष्योंके ही होता है, इसलिए इसमें ओघके समान सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व नहीं प्राप्त होता। अतः जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व ओघसे मनुष्य और तिर्यञ्चोंके या मनुष्योंके कहा है, वह तो उसी प्रकार कहना चाहिए और जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व चार गतिके जीवोंके कहा है वह देव और नारकीके न कहकर केवल मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही कहना चाहिए। तथा जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी देव या देव और नारकी जीव कहा है, उनका स्वामी मनुष्य और तिर्यञ्चको कहना चाहिए। मात्र उनका इस योगमें आदेश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है; इतना विशेष जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाययोग भी मनुष्य और तिर्यञ्चके ही होता है। इसमें नरकायु, देवायु, नरकद्विक और आहारकद्विकके सिवा ११४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है। यहाँ जो खास बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि औदारिक-मिश्रकाययोगमें देवचतुष्कका बन्ध मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थानमें नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व सम्यग्दृष्टि जीवके घटित करके बतलाया है।

८७. वैक्रियिककाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प,मध्यम परिणामवाला अन्यतर सहस्रार कल्प तकका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादावे०-इत्थिवे०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क०-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० णाणावरण-भंगो। णवरि तप्पाओग्गसंकिलि०।

८८. तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स वा णेरइगस्स वा मिच्छादि० तप्पाओग्गविसुद्ध०। मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० देवस्स वा णेरइगस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादि० तप्पाओग्गविसुद्ध०। तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० देवस्स वा णेरइगस्स वा सम्मादिट्ठिस्स उक्क०संकिलि०। एइंदि०-आदाव-थावर० देवोघं। पंचिंदिय०-ओरालिय०-अंगो०-असंपत्तसेव०-अप्पसत्थवि०-तस-दुस्सर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदर० देवस्स सणक्कुमार याव सहस्सारंतस्स णेरइयस्स वा मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि०। एवं चेव वेउव्वियमिस्स०। णवरि आयु० णत्थि।

देव अथवा नारकी मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादिक छह और उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर ज्ञानावरणका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाला नारकी और देव जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला वैक्रियिक काययोगी जीव इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी है।

८८. तिर्यञ्च आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी सम्यग्दृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय आतप और स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य देवोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुःस्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकका देव और नारकी मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्म का बन्ध नहीं होता।

विशेषार्थ—वैक्रियिक काययोग देव और नारकियोंके होता है। इसमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १०४ हैं। इनमेंसे एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नरकगतिमें नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी देव ही होता है। शेष सब प्रकृतियोंका बन्ध नारकी और देव दोनोंके होता है। इसलिए उनके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी देव और नारकी दोनों प्रकारके जीव कहे हैं। वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. आहार०-आहारमि० पंचणा०-छदंसणा०-असादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदिय०-वेउव्विय०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्विय-अंगो०-वएण०४-[देवगइपाओग्गाणुपुव्वि]-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमिण-तित्थय०-उच्चागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अएण० सागार-जा० उक्क० संकिलि० । सादावे०-हस्स-रदि०-थिर-सुभ-जस० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अएण० सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि०[1] । देवाउ० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० । अएणद० पमत्तसंज० सागार-जा० तप्पाओग्ग-विसुद्ध० ।

६०. कम्मइग० पंचणा०-णवदंसण०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वएण०४-तिरि-

आयुबन्ध नहीं होता, इसलिए पूर्वोक्त १०४ प्रकृतियोंमेंसे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु इन दो आयुओंको कम कर देने पर बन्ध योग्य कुल प्रकृतियाँ १०२ शेष रहती हैं। इनका वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें बन्ध होता है। शेष सब विशेषता मूलमें कही ही है।

८९. आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—प्रमत्तसंयत जीवके ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोग छठे गुणस्थानमें ही होते हैं, इसलिए इनमें भी इन्हीं ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उसमें भी इन दोनों योगोंमें किन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है; यह सब विशेषता मूलमें कही ही है। आहारक मिश्रकाययोगमें आयुबन्ध नहीं होता, यह बात गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा ११८में कही है, पर यह बात वहाँ किस आधारसे कही गई है; यह स्पष्ट नहीं होता। 'महाबन्ध' मूल ग्रन्थ है। इसमें तो सर्वत्र आहारकमिश्रकाययोगमें आयुबन्धका निर्देश किया है। यही कारण है कि यहाँ भी देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व दोनों योगवाले जीवोंके कहा है।

९०. कार्मणकाययोगमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात,

1. संकिलि० देवगदि० ४ उक्क० इति पाठः।

वरणाणु०-अगु०-उप०-अथिरादिपंच-णिमिण-णीचागोद-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०--पंचसंघ०--मणुसगदिपाओग्ग०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओ० संकिलि० ।

९१. देवगदिचदु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० दुगदियस्स सम्मादिट्ठिस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० । तित्थय० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० तिगदियस्स सम्मादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० । एइंदिय०-आदाव-थावर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स सागार-जागार० उक्क० संकिलि० । णवरि एइंदि०-थावर० तिगदियस्स त्ति भाणिदव्वं । बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सागार-जा० तप्पाओ०संकिलि० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेव०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स वा सहस्सारगस्स णेरइगस्स वा

अस्थिर आदिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर चारगतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादिक छह और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

९१. देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर दो गतिका सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीव तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकारजागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर ऐशान कल्पतकका देव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय और स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तीन गतिका जीव है;यहाँ कहना चाहिए । द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आंगोपांग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुस्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर सहस्रार कल्पका देव और नारकी मिथ्यादृष्टि कार्मण काययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादि० सागार०-जा० सव्वुक्कस्ससंकिलि० । पर०-उस्सा०-उज्जोव-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरी० उक्क० हिदि० कस्स० ? अण्णद० देवस्स वा णेरइयस्स वा सागार-जा० उक्क० संकिलि० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० उक्क० द्विदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० ।

६२. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंस०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंसग०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-अगुरु०४-बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-अथिरादिपंच-णिमिण-णीचागो-पंचंत० उक्क० हिदि० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणामस्स । सादावे०-इत्थि-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क-उच्चा० उक्क० हिदि० कस्स० ? अण्ण० तिगदियस्स सण्णिस्स सागार-जा० तप्पाओ० उक्क०संकिलि० ।

६३. णिरयायु० उक्क० हिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स वा तिरिक्ख-जोणिणियस्स वा सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० उक्कस्सि-

---

परघात, उच्छ्वास, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर देव और नारकी कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और मिथ्यादृष्टि कार्मणकाययोगी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें चारों आयु, नरकद्विक और आहारकद्विक इन ८ प्रकृतियोंके सिवा ११२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है।

९२. स्त्रीवेदमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिरादिक पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प,मध्यम परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका संज्ञी मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदिक छह और उच्च गोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर तीन गतिका संज्ञी स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

९३. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें विद्यमान अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्चयोनि संज्ञी मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी जानना चाहिए। इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याए आबाधाए उक्कस्सट्ठिदि० वट्ट० । एवं तिरिक्ख-मणुसायूणं । णवरि तप्पाओग्ग-विसुद्धस्स त्ति भाणिदव्वं । देवायुग० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० पमत्त-संजद० तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्कस्सियाए आबाधाए उक्क० ट्ठिदि० वट्ट० ।

६४. णिरयगदि-पंचिंदियजादि--वेउव्वि०--वेउव्वि०अंगो०--णिरयाणु०--अप्प-सत्थविहा०-तस-दुस्सर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा सण्णिस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरि० । तिरिक्ख-गदि-एइंदि०-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-थावर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदरीए सोधम्मीसाणंताए देवीए मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणा० । देवगदिदुग--तिण्णिजादि०--सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदरीए मणुसिणीए वा तिरिक्खिणीए वा सण्णीए मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकिलि० । आहार०-आहार०अंगो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंजदस्स सागार-जा० उक्कस्ससंकिलि० पमत्ताभिमुहस्स । तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसीए असंजदसम्मादिट्ठीए सागार-जा० उक्कस्स-संकिलि० । [एवं चेव पुरिसवेदे । णवरि सगविसेसो जाणिय भाणिदव्वो ।

विशेषता है कि तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला स्त्रीवेदी जीव इन दोनों आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है; ऐसा यहाँ कहना चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला और उत्कृष्ट आबाधाके साथ उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें विद्यमान अन्यतर प्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

६४. नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुस्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प मध्यम परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च संज्ञी स्त्रीवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत और स्थावर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परि-णामवाली अथवा अल्प,मध्यम परिणामवाली अन्यतर सौधर्म और ऐशान कल्पकी देवी उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगतिद्विक, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाली अन्यतर मनुष्यिनी और तिर्यञ्चिनी संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला और प्रमत्त संयत गुणस्थानके अभिमुख हुआ अन्यतर अप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदी जीव उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्यिनी असंयत सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी विशेषता जानकर कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदमें ओघके समान १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। मात्र नारकियोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. णवुंसगवेदे पंचणाणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंसगवे०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-तेजा०-कम्म०-हुंड०-वण्ण०४-अगुरु०४-बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-अथिरादिपंच-णिमिण-णीचागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० मणुस्सस्स वा तिरिक्खस्स वा] णेरइयस्स वा पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० । सादादीणं एवं चेव । णिरयगदिचदुक्कस्स उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स वा तिरिक्खस्स वा पंचिंदि० सण्णिस्स मिच्छादि० सागार-जा० सउक्कस्ससंकिलि० । तिरिक्खगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेवट्ट०-तिरिक्खाणु०-उज्जोव० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० णेरइय० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० अथवा इसिमज्झिम-परिणा० । देवगदि-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय०-देवाणुपु०-आदाव-थावर-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० तिरिक्ख० पंचिंदि० सण्णि० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । सेसाणं पगदीणं मूलोघं ।

नपुंसकवेदका उदय नहीं होता,इसलिए इनके सिवा शेष तीन गतिके जीव जहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है, यथायोग्य स्त्रीवेदमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी कहे गये हैं। पुरुषवेदका उदय भी नारकियोंके नहीं होता, इसलिए इनमें भी स्त्रीवेदी जीवोंके समान शेष तीन गतिके जीव सब प्रकृतियोंके यथायोग्य उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी हैं। अन्तर इतना है कि स्त्रीवेदके स्थानमें इनमें पुरुषवेद कहना चाहिए। तथा अन्य विशेषताएँ भी विचारकर उत्कृष्ट स्वामित्वका कथन करना चाहिए।

९५. नपुंसक वेदमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? कोई एक मनुष्य, तिर्यञ्च या नारकी जो पञ्चेन्द्रिय है, संज्ञी है, मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है,वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। साता आदिका इसी प्रकार है। नरकगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और अपने योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि नपुंसक वेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, और उद्योत प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला अथवा अल्प, मध्यम परिणामवाला अन्यतर नारकी मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि नपुंसकवेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. अवगदवे० पंचणा०-चदुदंस०-सादावे०-चदुसंज०-जसगित्ति०-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० उवसमादो परिवदमाणस्स अणियट्टिबादर-सांपराइयस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति णवुंसगवेदाणुवट्टिस्स।

९७. [1]कोधादि४ मूलोघं। मदि-सुद० मूलोघं। णवरि देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुसस्स वा मणुसिणीए वा सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्धस्स। विभंगे मूलोघं। देवायु० मदि०भंगो।

९८. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमिण-उच्चागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० चदुगदियस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिमुहस्स चरिमे वट्टमाणयस्स। सादावे०-हस्स-रदि-थिर-

विशेषार्थ— नपुंसक वेद तीन गतियोंमें होता है,मात्र देव नपुंसक नहीं होते। इसलिए यहाँ तीन गतियोंकी अपेक्षा नपुंसकवेदमें जहाँ जिन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है,उसका निर्देश किया है। नपुंसकवेदमें भी १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है,यह स्पष्ट ही है।

९६. अपगतवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर नपुंसक वेदसे उपशम श्रेणी पर चढ़कर गिरनेवाला अनिवृत्ति बादर साम्परायिक जीव जो तदनन्तर समयमें सवेदी होगा,वह अपगत वेदी जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें उक्त २१ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। फिर भी वह नपुंसकवेदसे उपशम श्रेणीपर चढ़कर गिरनेवाले अनिवृत्ति जीवके सवेदी होनेके पूर्व समयमें होता है, क्योंकि नपुंसकवेदका उपशम सर्वप्रथम और उदय अन्य वेदोंकी अपेक्षा बाद में होता है, इसलिए इस वेदसे अवेदी हुए जीवके सवेदी होनेके एक समय पूर्व अन्य वेदोंसे अवेदी हुए जीवकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है।

९७. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका भङ्ग मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला अन्यतर मनुष्य और मनुष्यिनी, मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। विभङ्गज्ञानमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। देवायुका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

९८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति,त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? साकार जागृत, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला मिथ्यात्वके अभिमुख अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर चार

१. मूलप्रतौ कोधाकोधी मूलोघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभग-जसगि० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० चदुगदियस्स असंजदसम्मादि० सागार-जागार० तप्पाओग्गसंकिलि० सत्थाणे वट्टमाणयस्स ।

९९. देवायु० आहार०-आहार०अंगो० तित्थयरं च ओघं । मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स वा णेरइयस्स वा त्ति भाणिदव्वं । मणुसगदि-ओरालिय०-ओरालिय०अंगो०-वज्जरिस०-मणुसाणु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णदर० देवस्स वा णेरइगस्स वा सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिमुहस्स चरिमे उक्कस्सए ट्ठिदि० वट्टमाणयस्स । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० क[स्स]० ? अण्ण० असंजदसम्मादि० तिरिक्खस्स वा मणुसस्स वा सागार-जा० [उ]क्क०संकिलि० मिच्छत्ताभिमुहस्स ।

गतिका असंयत सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, सुभग और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो चार गतिका असंयत सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और स्वस्थानमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

९९. देवायु, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है; ऐसा यहाँ कहना चाहिए। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, मिथ्यात्वके अभिमुख है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि, तिर्यञ्च और मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—तीन अज्ञानोंमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इनके सिवा ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, पर देवायुके सिवा इन सबका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है, इसलिए इनमें देवायुके सिवा शेष ११६ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान कहा है। देवायुका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अधिकसे अधिक स्थितिबन्ध ३१ सागर होता है, सो भी वह किसी भी मिथ्यादृष्टिके नहीं होता; किन्तु परम विशुद्ध परिणामवाले द्रव्यलिङ्गी साधुके होता है, इसलिए देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके सम्बन्धमें इतनी विशेषता जाननी चाहिए। आभिनिबोधिक ज्ञान आदि तीन सम्यग्ज्ञानोंमें आहारकद्विकको मिलाकर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें बन्धको प्राप्त होनेवाली ७७ प्रकृतियोंके साथ कुल ७९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सो इनमेंसे आहारकद्विकके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जानना चाहिए। मात्र आहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व प्रमादके सम्मुख हुए अप्रमत्त संयत जीवके उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके होने पर होता है। शेष विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. मणपज्जवणाणीसु पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पुरिसवे०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्विय०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०-अंगो०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमिण-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंजदस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० उक्कस्सए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स असंजमाभिमुहस्स चरिमे उकस्सए ट्ठिदिबं० । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जसगित्ति० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंज० सत्थाणे सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० ।

१०१. देवायु०-आहार०-आहार०अंगो०-तित्थयरं उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? पमत्तसंजदस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० असंजमाभिमुहस्स चरिमे उकस्सए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणयस्स । एवं संजमाणुवादेण संजद०-सामाइ०-छेदो० । णवरि पढमदंडओ मिच्छात्ताभिमुहस्स । परिहारस्स वि तं चेव । णवरि सव्वाओ पगदीओ उक्कस्स संकिलि० सामाइय-छेदोव०अभिमुहस्स भाणिदव्वं ।

---

१००. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है, असंयमके अभिमुख है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । साता वेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो स्वस्थानमें अवस्थित है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

१०१. देवायु, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो प्रमत्तसंयत जीव साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, असंयमके अभिमुख है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार संयम मार्गणाके अनुवादसे संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डककी कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी यह जीव मिथ्यात्वके अभिमुख होने पर होता है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके भी इसी प्रकार कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जो परिहारविशुद्धिसंयत जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला हो और सामायिक छेदोपस्थापनाके अभिमुख हो, वह सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है; ऐसा यहाँ कहना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०२. सुहुमसंपरा० पंचणा०-चदुदं०-सादावे०-जसगि०-उच्चागो०-पंचंतरा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० उवसामगस्स परिवदमाणस्स से काले अणियट्टी होहिदि त्ति ।

१०३. संजदासंजद० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-अट्ठक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदिय०-वेउव्विय०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमिण-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागार-जा० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुहस्स । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जसगि० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सत्थाणे तप्पाओग्गसंकिलि० । देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओग्गविसुद्ध० । तित्थय०

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें बन्धको प्राप्त होनेवाली ६३ प्रकृतियाँ और आहारकद्विक इन ६५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी संबंधी विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है । संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थपनासंयत जीवोंके कथनमें मनःपर्ययज्ञानीके कथनसे कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि ये भी छठे गुणस्थानमें होते हैं । मात्र मनःपर्ययज्ञानमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका कथन करते समय असंयमके सम्मुख होने पर ऐसा कहे और उक्त संयमोंमें मिथ्यात्वके सम्मुख होने पर ऐसा कहे । कारण स्पष्ट है । परिहारविशुद्धिसे च्युत होकर जीव सामायिक या छेदोपस्थापनाको प्राप्त होता है, इसलिए इसमें प्रथम दण्डकके स्वामीका कथन करते समय इन दोनों संयमोंके सम्मुख हुए जीवके उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिए ।

१०२. सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशामक जीव जो उपशम श्रेणिसे गिर रहा है और तदनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानको प्राप्त होगा, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

१०३. संयतासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ण चतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह जीव उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयतासंयत जीव जो स्वस्थानमें अवस्थित है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्टस्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्टस्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो साकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० असंजमाभिमुहस्स । असंजद० मूलोघं । णवरि देवायु० मदि०भंगो ।

१०४. चक्खु०-अचक्खु० मूलोघं । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

१०५. किण्णाए णवुंसगभंगो । णवरि देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । णील-काऊणं पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक० एवं तिरिक्खगदिसंजुत्ताओ सव्वाओ उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० णेरइय० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० ट्ठिदि० संकिलि० । सादादीणं पि तं चेव भंगो । णवरि तप्पाओग्गसंकिलि० । आयूणि ओघं । णवरि

जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और असंयमके अभिमुख है, वह तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। असंयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवायुका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म साम्परायसंयत जीवोंमें जो उपशम श्रेणिसे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय संयत होते हैं और उसमें भी जो अनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होते हैं, उनके ही यहाँ बँधनेवाली प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव होनेसे ऐसे जीव ही उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी कहे हैं। यहाँ कुल १७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, जिनका नाम निर्देश मूलमें किया ही है। संयतासंयत मनुष्य और तिर्यंच दो गतिके जीव होते हैं। यहाँ कुल ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए इनमेंसे तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ कर ६६ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी उक्त दोनों गतियोंका जीव कहा है। मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तिर्यञ्चगतिमें नहीं होता, इसलिए उसके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मनुष्यगतिका जीव कहा है। उत्कृष्ट स्वामित्वसम्बन्धी शेष विशेषताएँ मूलमें कही ही हैं।

१०४. चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानियोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक होते हैं, इसलिए इनमें ओघके समान सब अर्थात् १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। अवधिदर्शन चौथे गुणस्थानसे बारहवें गुणस्थानतक होता है, इसलिए इसमें असंयत सम्यग्दृष्टिके बन्धको प्राप्त होनेवाली ७७ और आहारकद्विक इन ७९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१०५. कृष्णलेश्यामें नपुंसकवेदियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। नीललेश्या कापोत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व और सोलह कषाय तथा इसी प्रकार तिर्यञ्चगति संयुक्त सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर रहा है और संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। साताआदिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी यही जीव है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला उक्त जीव सातादिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मकी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सम्मादि० सागार०-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । णिरयगदि-वेउव्विय०अंगो०-णिरयाणुपु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० । देवगदि [एइंदि०—बीइंदि० तेइंदि०—चदुरिंदिय]-जादि-देवाणुपु०—आदाव—थावर—सुहुम—अपज्ज०-साधार० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । [1]णीलाए तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । काऊए णिरयोघं ।

१०६. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि० याव अंतराइग त्ति तिरिक्खग-

उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । नरकगति वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और उत्कृष्ट संक्लेश-परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रियजाति, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । नीललेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । कापोत लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी नारकियोंके समान है ।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कापोत लेश्या चतुर्थ गुणस्थान तक होती हैं, इसलिए इनमें आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता । शेष ११८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । कृष्ण लेश्यामें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी नपुंसकवेदके समान बतलाया है सो इसका कारण यह है कि नपुंसकवेदमें भी देवगतिके सिवा तीन गतिके जीव यथायोग्य उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करते हैं और वही बात यहाँ भी है । मात्र देवायु इसका अपवाद है । कारण कि नपुंसकवेद नौवें गुणस्थान तक होता है, इसलिए उसमें देवायुका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बन जाता है, पर कृष्ण लेश्यामें देवायुका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है । कारण कि यह लेश्या चौथे गुणस्थानतक होती है । उसमें भी अविरत सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा द्रव्यलिङ्गी साधु मिथ्यादृष्टिके देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अधिक होता है, इसलिए कृष्ण लेश्यामें विशुद्ध परिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कहा है । नील और कापोत लेश्यामें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश मूलमें किया ही है । एक बात यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य है और वह यह कि नरकगतिमें कृष्ण लेश्याके समान नील लेश्यामें भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । इसलिए इस लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी सम्यग्दृष्टि मनुष्य कहा है ।

१०६. तेजो लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति और एकेन्द्रिय जातिसे

1. मूलप्रतौ णीला च तित्थ— इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिसंजुत्ताओ उक्क०-ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सोधम्मीसाणंतदेवस्स मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० अथवा ईसिमज्झिमपरिणा० । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचिंदिय०-पंचसंठाण-ओरालि०अंगो०-छस्संघड०-मणुस०-दोविहा०-तस०-थिरादिछक्क-दोसर-उच्चागोदा० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादिट्ठि० तप्पाओग्गसंकिलि० । तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादिट्ठि० तप्पाओग्गविसुद्धस्स । मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० मिच्छादि० सम्मादिट्ठिस्स वा तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंजदस्स तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस०[1] मिच्छादि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० । आहार०-आहार०अंगोवंग० ओघं । तित्थक० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स असंज० सागार-जा० उक्क०संकिलि० सात्थाणे वट्टमा० । पम्माए एवं चेव । णवरि याओ देवस्स ताओ सहस्सारभंगो ।

लेकर अन्तराय तक तिर्यञ्चगतिसे संयुक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर सौधर्म और ऐशान कल्प तकका देव जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है अथवा अल्प, मध्यम परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । साता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रसकाय, स्थिर आदिक छह, दो स्वर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्च आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है अथवा सम्यग्दृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, वह देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारकशरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कौन है ? अन्यतर देव जो असंयत सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और स्वस्थानवर्ती है, वह तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । पद्मलेश्यामें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी देव है, उनका सहस्रार कल्पके समान भङ्ग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें नरकायु, नरकगतिद्विक, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन नौ प्रकृतियोंके सिवा शेष १११ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । इस लेश्यामें जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी जो जीव है, उसका अलग-अलग निर्देश किया ही है । मात्र तिर्यञ्चगति संयुक्त कहकर जिन प्रकृतियोंका नाम निर्देश

1. मूलप्रतौ मणुस० तिरिक्ख० मिच्छादि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७. सुक्काए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०--अरदि-सोग-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदियजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंडसं०-ओरालि०अंगो०-असंपत्तसेवट्ट०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४--अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० आणददेवस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पा०उक्क०संकिलि० । सादावे०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि कस्स० ? अण्ण० तस्सेव आणददेवस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादि० सम्मामि० तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवायु० ओघं । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० सागार-जा० उक्क० संकिलि० । आहार०-आहार०अंगो० ओघं । तित्थयरं तेउभंगो ।

नहीं किया है, वे ये हैं—तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडसंस्थान, छह संहनन, वर्णादि चार, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र। यहाँ मूलमें दोनों स्वरोंका अलगसे निर्देश किया है, इसलिए स्थिर आदि छहमें निर्माण प्रकृतिकी परिगणना कर लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि पीतलेश्यामें कुल १११ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए दूसरे आदि दण्डकोंमें जिन प्रकृतियों का नामोल्लेख किया है, उनके सिवा शेष सब प्रकृतियाँ प्रथम दण्डकमें ले लेनी चाहिए। पद्मलेश्यामें पूर्वोक्त १११ प्रकृतियोंमें से एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंके कम कर देने पर कुल १०८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है।

१०७. शुक्ल लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिरादिक छह निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर आनतकल्पका देव जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदिक छह और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर वही आनत कल्पका देव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर तिर्यञ्च या मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, वह देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पीतलेश्याके समान है।

विशेषार्थ—शुक्ल लेश्यामें नरकायु, तिर्यञ्चायु, नरकगतिद्विक, तिर्यञ्चगतिद्विक, एके-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८. भवसिद्धिया० मूलोघं । अब्भवसिद्धि० मदिय०भंगो ।

१०९. सम्मादि०-खइग० ओधिभंगो । णवरि खइगे याओ मिच्छत्ताभिमुहाओ पगदीओ असंज० सत्थाणे सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । एवं तप्पाओग्ग-संकिलि० वेदगे ओधिभंगो । एवं उवसम० ।

११०. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०-सोलसक०-इत्थिवे०-अरदि-सोग-भय-दुगु०-तिरिक्खगदि-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-मणुसग०-ओरालि०-अंगो०-खीलियसंघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-उज्जोव-अप्पसत्थ०-तस०४-

---

न्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नीचगोत्र इन सोलह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। कुल १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष विशेषता मूलमें कही ही है।

१०८. भव्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। तथा अभव्य जीवोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ—भव्यजीवोंमें ओघप्ररूपणा और अभव्यजीवोंमें मत्यज्ञानियोंकी प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी क्रमसे ओघ और मत्यज्ञानियोंके समान कहा है।

१०९. सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि जो अवधिज्ञानी जिन प्रकृतियोंके मिथ्यात्वके अभिमुख होनेपर उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है, क्षायिकसम्यक्त्वमें उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी साकारजागृत और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला स्वस्थानवर्ती असंयत सम्यग्दृष्टि जीव होता है। इसी प्रकार वेदकसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानियोंके समान तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला जीव अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका स्वामी होता है। तथा इसी प्रकार उपशम सम्यक्त्वमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले अवधिज्ञानी जीवोंके ७९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, यह बतला आये हैं। उन्हींका बन्ध सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके होता है। तथा और सब विशेषताएँ भी एक समान हैं, इसलिए इन दोनों मार्गणाओंमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। मात्र क्षायिक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता, इसलिए अवधिज्ञानमें जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व मिथ्यात्वके सन्मुख हुए जीवको प्राप्त होता है, उनका स्वामित्व क्षायिकसम्यक्त्वमें स्वस्थानवर्ती जीवके कहा है। वेदकसम्यग्दृष्टि और अवधिज्ञानीके कथनमें भी कोई अन्तर नहीं है, इसलिए वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंमें भी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंका और सब कथन तो इसी प्रकार है। मात्र इसके मनुष्यायु और देवायुका बन्ध नहीं होता, इसलिए इसके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ७९ के स्थान-में ७७ कहनी चाहिए।

११०. सासादन सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, मनुष्यगति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, कीलितसंहनन, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर आदिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथिरादिछक्क-णिमिण-णीचागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स सागार-जा० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुहस्स । सादावे०-पुरिस०-हस्स-रदि-मणुसगदि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-थिरादिछक्क-उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । तिरिक्ख-मणुसायुग० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुसस्स० तप्पाओग्ग-विसुद्ध० । देवायु० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? मणुसस्स तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० तिरिक्ख० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० ।

१११. सम्मामिच्छादि० पंचणा०-छदंसणा०-असादावे०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगु०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०-४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज०-अजस०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स सागार-जा० उक्कस्ससंकिलि० मिच्छात्ताभिमुहस्स । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जसगि० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० चदु-

---

छह, निर्माण, नीच गोत्र और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चारगतिका जीव जो साकारजागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, चार संस्थान, चार संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर आदिक छह और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य और तिर्यञ्च जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—सासादनगुणस्थानमें जिन १६ प्रकृतियोंकी मिथ्यात्वमें बन्धव्युच्छित्ति होती है, उनका तथा तीर्थंकर और आहारकद्विकका कुल १९ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता । शेष १०१ प्रकृतियोंका बन्ध होता है । इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी सम्बन्धी विशेषता मूलमें कही ही है ।

१११. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है । सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदिय० सत्थाणे वट्टमाणयस्स सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागार-जा० उक्क०संकिलि० मिच्छात्ताभिमुह० । मणुसगदिपंच० उक्क० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स वा णेरइगस्स वा सागार-जा० उक्क० संकिलि० मिच्छत्ताभिमुह० । मिच्छादिट्ठी० मदिय०भंगो । सण्णि० मणजोगिभंगो ।

११२. असण्णीसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-णिरयगदि-पंचिंदि०-वेउव्विय०-तेजा०-क०-हुंड-संठा०-वेउव्विय०अंगो०-वण्ण०४-णिरयाणु०-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछक्क-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० पंचिंदि० सागार-जा० उक्क०संकिलि० । सेसाणं तप्पाओग्गसंकिलि० । णवरि तिण्णि आयु० तप्पा०

यशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो स्वस्थानमें अवस्थित है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो साकार जागृत है, उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख है, वह मनुष्यगति आदि पाँचके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वमें १६ और सासादनमें २५ की बन्धव्युच्छित्ति होती है। ये ४१ प्रकृतियाँ होती हैं। इनमें मनुष्यायु, देवायु, आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिके मिलानेपर कुल ४६ प्रकृतियां होती हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें इनका बन्ध नहीं होता। शेष ७४ प्रकृतियोंका होता है। इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में किस विशेषताके होनेपर होता है, यह मूलमें कहा ही है। देवगति चतुष्कका बन्ध देव और नारकी नहीं करते, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तिर्यञ्च और मनुष्य कहा है। तथा मनुष्यगति पञ्चकका बन्ध मिश्रमें तिर्यञ्च और मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी नारकी और देव कहा है। शेष प्रकृतियोंका बन्ध सब गतियोंमें होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके स्वामी चारों गतिके जीव कहे हैं।

११२. असंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंड संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, अस्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय जीव जो साकार जागृत है और उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला असंज्ञी जीव है। इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव है। आहारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसुद्धस्स। आहार० मूलोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं उक्कस्ससामित्तं समत्तं।

११३. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-जसगि०-उच्चागो०-पंचंत० जहण्णओ ट्ठिदिबंधो कस्स होदि? अण्णदरस्स खवगस्स सुहुमसांपराइगस्स चरिमे जहण्णए ट्ठिदिबंधे वट्टमाणयस्स। पंचदंसणा०-मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० बादरएइंदियस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० सुदोवजोगजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्ण०ट्ठिदिबं० वट्ट०। असादा०-इत्थिवे०-णवुंस०-अरदि-सोग-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-आदाव-अप्पसत्थवि०-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार०-अथिरादिछक्क० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण०

जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है और अनाहारक जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कार्मण काययोगियोंके समान है।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीवोंके आहारिक द्विक और तीर्थङ्करके बिना ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक मार्गणामें सब अर्थात् १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है और अनाहारक मार्गणामें कार्मणकाययोगके समान ११२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है। यहां असंज्ञियोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा पंचेन्द्रियोंकी मुख्यता होनेसे उन्हें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कहा है। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी विशुद्ध परिणामवाला जीव कहा है। यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का एक पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके भी होता है, इसलिए असंज्ञियोंमें इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कहते समय पञ्चेन्द्रिय यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

११३. जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर क्षपक जो सूक्ष्मसाम्परायसंयत है और अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत श्रुतोपयोगसे उपयुक्त है और सर्व विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादरएइंदिय० सव्वाहि पज्जत्तीहि सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । चदुसंज०-पुरिस० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० खवगस्स अणियट्टि-बादरसंप० अप्पप्पणो चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्ट० । णिरयायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदिय० सण्णि० असण्णि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० जहण्णियाए आबाधाए जहण्ण० ट्ठिदि० वट्टमा० । तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० एइंदि० बीइंदि० तीइंदि० चदुरिंदि० पंचिंदि० सण्णि० असण्णि० बादर० सुहुम० पज्जत्तापज्जत्त० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० जह० आबाधाए जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । एवं मणुसायु० । देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पंचिंदि० सण्णि० असण्णि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० जह० आबा० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० ।

११४. णिरयग०-णिरयाणु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० असण्णिस्स सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादर० तेउ० वाउ० पज्जत्तस्स सागार-जा० सव्वविसु० । मणुसग०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादरपुढवि० आउ० बादर-

---

अस्थिर आदि छह प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । चार संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अनिवृत्ति क्षपक जो अपने-अपने अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और असंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय संज्ञी या असंज्ञी, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त या अपर्याप्त जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार उक्त जीव मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी या असंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

११४. नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर असंज्ञी जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त दो प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीच गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणप्फदि० पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । देवगदि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० असण्णि० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । आहार०-आहार०अंगो०-तित्थय० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० अपुव्वकरणखवगस्स परभवियणामाणं चरिमे जह०ट्ठिदिबंधे वट्टमाणयस्स ।

स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह मनुष्यद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्क के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर असंज्ञी जो साकार जागृत है, सर्व-विशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्ध-का स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—यहाँ ओघसे किन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है यह बतलाया गया है । बन्ध योग्य कुल प्रकृतियां १२० हैं । उनमेंसे पांच ज्ञानावरण आदि १७ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका बन्ध क्षपक सूक्ष्मसाम्परायतक होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अन्तिम स्थितिबन्धमें अवस्थित उक्त जीवको कहा है । चार संज्वलन और पुरुषवेदका स्थितिबन्ध क्षपक अनिवृत्तिकरणके अपने अपने विवक्षित भाग तक होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उक्त जीवको कहा है । आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिका स्थितिबन्ध क्षपक अपूर्वकरणके अमुक भागतक होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उक्त जीवको कहा है । इस प्रकार ये सब मिलाकर २५ प्रकृतियाँ हुई । अब शेष रहीं चार आयुके बिना ९१ प्रकृतियाँ सो इनमेंसे देवगति और नरकगति सम्बन्धी जो प्रकृतियाँ हैं उनका बन्ध एकेन्द्रिय और विकलत्रयके नहीं होता इसलिए उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी असंज्ञी जीवको कहा है । ऐसी प्रकृतियाँ कुल ६ हैं । वे ये हैं—नरकद्विक, देवद्विक और वैक्रियिकद्विक । अब शेष रहीं ८५ प्रकृतियां सो यद्यपि इनका जघन्य स्थितिबन्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है पर एकेन्द्रियके अनेक भेद होनेसे एकेन्द्रियोंमें भी कौन-सा बादर पर्याप्त जीव किन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध करता है इसका स्वतन्त्र रूपसे विचार किया है । उदाहरणार्थ— अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मरकर नियमसे तिर्यञ्च ही होते हैं, इसलिए तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और आतपका जघन्य स्थितिबन्ध बादर अग्निका यिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव ही करते हैं । तथा मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके न होनेके कारण इनका जघन्य स्थितिबन्ध बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वन-स्पतिकायिक पर्याप्त जीव करते हैं । यही कारण है कि इन तिर्यञ्चगति आदि चार और मनुष्यगति आदि दो प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पृथक्-पृथक् उक्त जीवोंको कहा है । यद्यपि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उच्चगोत्रका भी बन्ध नहीं करते पर उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके न होकर क्षपक श्रेणिमें होता है इसलिए उसे यहाँ नहीं गिनकर जिन प्रकृतियोंका क्षपक सूक्ष्म साम्परायमें जघन्य स्थितिबन्ध होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११५. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिसवे०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमि०-णीचागो०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स[1] पढम-विदियसमये णेरइगस्स सागार-जा० सव्वविसुद्ध० जह० ट्ठिदि० वट्ट०। दोआयु० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकिलि० जह० आबा० जह० ट्ठिदि० वट्ट०। तित्थय० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० असंजदसम्मादि० सागार-जा० सव्वविसु०। सेसाणं असण्णिपच्छागदस्स पढम-विदियसमए णेरइगस्स सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। एवं पढमाए।

यहाँ गिन आये हैं। अब रहीं शेष ७९ प्रकृतियाँ सो इनका बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त किसी भी जीवके उनके जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होनेपर जघन्य स्थितिबन्ध हो सकता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवको कहा है। चार आयुओंमें मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध सब प्रकारके तिर्यञ्च और मनुष्योंके हो सकता है। यही कारण है कि इन दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उक्त दो गतिका अन्यतर जीव कहा गया है। मात्र देवायु और नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध पञ्चेन्द्रियसे नीचे किसी भी जीवके नहीं होता। इसलिए इन दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी संज्ञी या असंज्ञी अन्यतर जीव कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मूलमें जो योग्यताएँ कहीं हैं,उनके साथ ही ये सब जीव उक्त सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामी होते हैं।

११५. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्ण चतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंज्ञी पर्यायसे आया हुआ नारकी जो प्रथम और द्वितीय समयमें स्थित है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिका बन्ध कर रहा है,वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि नारकी जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है,वह दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी जो साकार जागृत है और सबसे विशुद्ध परिणामवाला है,वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी असंज्ञीचर, प्रथम और द्वितीय समयमें स्थित, साकार जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला नारकी जीव है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम नरकमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और इसके उत्पन्न

---

१. मूलप्रतौ-पच्चागदस्स इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११६. विदियाए पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगु०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक०-णिमि०-उच्चागो०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० असंजद०सम्मा० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० जह० ट्ठिदि० वट्ट०। एवं तित्थयरस्स वि। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमु० चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्ट०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० असंजदसम्मादिट्ठि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। इत्थि०-णवुंस-तिरिक्खग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० जह० ट्ठिदि० वट्टमा०। दोआयु० णिरयोघं। एवं छसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि४-तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स०?

होनेके प्रथम और द्वितीय समयमें असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है। इसीसे यहाँ तीर्थङ्कर और दो आयुओंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी परिणामोंकी अपनी-अपनी विशेषताके साथ उक्त जीवको कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

११६. दूसरी पृथिवीमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी जो साकार जागृत है और सबसे विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी जानना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, सम्यक्त्वके अभिमुख है और अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंयत-सम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य नारकियोंके समान है। इसी प्रकार छहों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धिचतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० सम्मत्ताभिमुह० चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्टमा० ।

११७. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-असादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदिय०-ओरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादरएइंदि० सागार-जा० सव्वविसुद्धस्स जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । सेसं मूलोघं । णवरि उच्चा० मणुसगदिभंगो ।

जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है, सम्यक्त्वके अभिमुख है और अन्तिम स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ–दूसरी आदि पृथिवियोंमें असंज्ञी जीव तो मरकर उत्पन्न होता नहीं, इसलिए यहां असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध सम्भव नहीं; फिर भी मिथ्यात्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वके सद्भावमें स्थितिबन्ध न्यून होता है, इसलिए यहां जिन प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध होता है, उनका तद्योग्य अवस्थाके होने पर जघन्य स्थितिबन्ध कहा है और जिन प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टिको कहा है । एक बात अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि दो प्रकारके होते हैं–एक स्वस्थान स्थित और दूसरे सम्यक्त्वके अभिमुख । यहां सम्यक्त्वसे तात्पर्य उपशम सम्यक्त्वसे है । आगममें उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके ३४ बन्धापसरण बतलाये हैं । उनके देखनेसे विदित होता है कि सम्यक्त्वके अभिमुख हुए नारकीके स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पांच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी स्वस्थान स्थित मिथ्यादृष्टि कहा गया है और स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी चतुष्कका बन्ध सम्यक्त्वके अभिमुख हुए नारकीके भी होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ नारकी जीव कहा गया है । मात्र सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका ही बन्ध होता है, इसलिए इसके सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर भी इनका बन्ध होता रहता है । यही कारण है कि सातवीं पृथिवीमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवको मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

११७. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि छह, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो साकार जाग्रत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनुष्यगतिके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११८. पंचिंदियतिरिक्ख०३ पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्विय०अंगो०-वएण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि० तस०-थिरादिछक्क-णिमिण-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अएण० असरिणण० सागार-जा० सव्वविसु० जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । णिरय-देवायु० ओघं । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अएण० सरिणण० असरिणण० पज्जत्तापज्जत्त० तप्पाओग्गसंकिलि० जह०[1] [आबा०] । सेसाणं सो चेव सामीओ सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० जह० ट्ठिदि० वट्ट० ।

११९. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु पंचणा०-णवदंस०-सादावे०-मिच्छत्त-सोल-

---

विशेषार्थ—पहले ओघसे सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश कर आये हैं। वहां जिन प्रकृतियोंका क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें, क्षपक अनिवृत्तिकरणमें और क्षपक अपूर्वकरणमें जघन्य स्वामित्व कहा है, उनका यहां बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। मात्र उच्चगोत्रका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके न कह कर मनुष्यगतिके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वके समान इसका स्वामी बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव होता है; इतना विशेष कहना चाहिए। तिर्यञ्चगतिमें आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, यह स्पष्ट ही है।

११८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसकाय, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंज्ञी जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर संज्ञी या असंज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह उक्त दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका साकार जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित वही जीव स्वामी है।

विशेषार्थ—यहां चार आयुओंके सिवा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंकी मुख्यतासे कहा है। कारण कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इन्हींके सबसे जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है। किन्तु चार आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धके लिए यह नियम नहीं है। इतना अवश्य है कि नरकायु और देवायुका बन्ध पर्याप्तके ही होता है और शेष दो आयुओंका बन्ध सबके होता है।

११९. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सक०-पुरिसवे०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-मणुसगदि-पंचिदिय०-ओरालिय०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० असण्णि० सागार-जा० सव्वविसु० जह० ट्ठिदि० वट्ट०। असादा०-इत्थिवे०-णवुंस०-अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदा-उज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादिछक्क-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स०? [अण्ण०]असण्णिस्स सागार-जा०तप्पाओग्गविसु०जह० ट्ठिदि० वट्ट०। दोआयु०जह० ट्ठिदि० कस्स? अण्ण० सण्णि० असण्णि० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० जह० आबा० जह० ट्ठिदि० वट्ट०।

१२०. मणुसेसु खवगपगदीणं मूलोघं। पंचदंस०-मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०--मणुसग०--पंचिंदि०--ओरालिय०--तेजा०-क०--समचदु०--ओरालि०

वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंज्ञी जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, अरति, शोक, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि ४, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर संज्ञी या असंज्ञी जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट है और जघन्य आबाधाके साथ जघन्य स्थितिबन्ध कर रहा है, वह दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त दो प्रकारके होते हैं—संज्ञी और असंज्ञी। संज्ञियोंसे असंज्ञियोंके संख्यातगुणा हीन बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इन्हींकी मुख्यतासे बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व कहा गया है। मात्र मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध उक्त दोनोंमेंसे किसीके भी हो सकता है, इसलिए इन दोनों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उक्त दोनोंमेंसे कोई भी जीव कहा गया है।

१२०. मनुष्योंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०-णिमि० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमसमय-विदियसमयमणुसस्स सागार-जा० सव्वविसुद्ध० । असादा०-इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-चदुजादि० [पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जोव-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-अथिरादि०६-णीचा० जह० ट्ठिदिबं० कस्स ? अण्ण० असण्णिपच्छागदस्स पढमसमय-विदियसमयमणुसस्स सागार-जागार०] तप्पाओग्गविसुद्ध० । [णिरयाउ० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णदर० तप्पाओग्गविसुद्धधस्स ।] तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० पज्जत्तापज्जत्ता० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तप्पाओग्ग०संकिलि० । णिरयगदि-णिरयाणुपु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवगदि-वेउव्वि०-आहार०-[वेउव्विय०अंगो०-आहार०]-अंगो०-देवाणुपु०-तित्थयर० जह० ट्ठिदि० कस्स० ?[1] अण्ण० अपुव्व० खवग० परभविय-णामाणं बंधचरिमे वट्टमा० । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि मणुसिणीसु

औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो असंज्ञी मरकर मनुष्यगतिमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा प्रथम और द्वितीय समयवर्ती मनुष्य जो साकार जागृत है और सर्व विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यञ्चगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? जो असंज्ञी मरकर मनुष्य हुआ है, ऐसा प्रथम और द्वितीय समयवर्ती मनुष्य जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मनुष्य नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला मनुष्य देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो परभव सम्बन्धी नामकर्मकी बँधनेवाली प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य

१. मूलप्रतौ जह० अप्पा० सेसाणं इति पाठः ।

तित्थयर० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्व० उवसम० परभवियणामाणं बंधचरिमे वट्ट० । मणुसअपज्जत्तगे पढमपुढविभंगो ।

१२१. देवगदीए देवेसु णिरयोघं । णवरि एइंदिय-आदाव-थावर० असाद भंगो । एवं भवण०-वाणवेंत० । णवरि तित्थयरं णत्थि । जोदिसिय-सोधम्मीसाण० विदियपुढविभंगो । णवरि एइंदिय-आदाव-थावर० इत्थिवेदभंगो । जोदिसिय० तित्थयरं णत्थि । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो । आणद० णवगेवज्जा त्ति तं चेव । णवरि तिरिक्खायु० तिरिक्खगदितियं च णत्थि । अणुदिस याव सव्वट्ठा ति पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-मणुसगदी० एवं चेव पसत्थादिणामपगदीओ उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण०

स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण उपशामक जो परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है, वह स्वामी है। मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पहिली पृथिवीके समान है ।

विशेषार्थ—जिन २२ प्रकृतियोंका नौवें और दसवें गुणस्थानमें बन्ध होता है,वे यहाँ क्षपक प्रकृतियाँ कही गई हैं। वे ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय। यतः क्षपक श्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यगतिमें ही होती है, अतः मनुष्योंमें इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व ओघके समान कहा है।शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका निर्देश अलग-अलग किया ही है। यहाँ मनुष्यिनियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उपशामक अपूर्वकरण जीव कहा है। इसका कारण यह है कि जो तीर्थंङ्कर होता है,उसके जन्मसे पुरुषवेदका ही उदय होता है,ऐसा नियम है। अतएव जो तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर रहा है और स्त्रीवेदका उदय है,उसका उपशम श्रेणि पर आरोहण करना बन जाता है और इसी अपेक्षासे मनुष्यिनी अपूर्णकरण उपशामकको तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहा है।

१२१. देवगतिमें देवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रिय आतप और स्थावर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी असाता प्रकृतिके बन्धके स्वामीके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तीर्थङ्कर प्रकृति नहीं है। ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके बन्धका स्वामी स्त्रीवेदके बन्धके स्वामीके समान है। तथा ज्योतिषीदेवोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति बन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक वही जीव स्वामी है। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्च आयु और तिर्यञ्चगतित्रिकका बन्ध नहीं होता। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति और इसी प्रकार नामकर्मकी प्रशस्त आदि प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतरदेव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है,वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० हिदि० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । मणुसायु० जह० हिदि० कस्स० ? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० ।

१२२. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिसवे०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमिण-पंचंत० जह० हिदि० कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सागार-

---

अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है, वह मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—देवोंमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और इसके प्रथम व द्वितीय समयमें असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थितिबन्ध होता है । यही विशेषता नरकमें भी होती है, इसलिए देवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी नारकियोंके समान कहा है । मात्र तीर्थंकर और दो आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध पर्याप्त अवस्थामें जिस प्रकार नारकियोंके कहा है,उसी प्रकार यहां कहना चाहिए । किन्तु नरकमें एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और देवोंके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी जिस प्रकार असाताप्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहा है,उसी प्रकार यहां कहना चाहिए । असंज्ञी जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता हुआ भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें ही मरकर उत्पन्न होता है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य देवोंके समान कहा है । मात्र इनके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । आगे सहस्रार कल्पतक दूसरी पृथिवीसे जघन्य स्वामित्वमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए यहां सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान कहा है । विशेषता इतनी है कि ज्योतिषी देवोंके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होता और ऐशान कल्पतक एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध होता है । सो इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी जिस प्रकार दूसरी पृथिवीमें स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी घटित करके बतलाया है,उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए; क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आनतादिकमें तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका बन्ध नहीं होता । शेष पूर्वोक्त प्रकृतियोंका होता है । सो इनमें भी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व दूसरी पृथिवीके समान घटित हो जाता है, अतः यहां भी जघन्य स्वामी दूसरी पृथिवीके समान कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१२२. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है और जघन्य स्थितिबन्धमें अव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा० सव्वविसु० जह० ट्ठिदि० वट्ट० । असादा०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-अरदि-सोग-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-आदाव-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-अथिरादिछ० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तगदस्स सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । दोआयु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादर० सुहुम० पज्जत्तापज्ज० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपु०-उज्जो०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादरतेउ०-वाउ०जीवस्स सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० । मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादरपुढ० बादरआउ० बादरवणप्फदि० सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० । सव्वविगलिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त० पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । पंचिंदि०२ खवगपगदीणं ओघं । सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो । अपज्जत्ते तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

स्थित है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि छह प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार-जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जो साकारजागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश-परिणामवाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकारजागृत है और सर्व विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर पृथिवीकायिक, बादरजलकायिक और बादर वनस्पतिकायिक जीव जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है और सर्व विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। सब विकलत्रय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इनके अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंके होता है। मात्र तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका जघन्य स्थितिबन्ध सब एकेन्द्रियोंके सम्भव है। विशेषता इतनी है कि तिर्यञ्चगति आदि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक बादर पर्याप्त जीवोंके होता है, क्योंकि ये दोनों कायवाले जीव तिर्यञ्चगति सम्बन्धी प्रकृतियोंका ही सतत बन्ध करते हैं इसलिए इनमें स्वभावतः जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. पुढवि०-आउ०-वणप्फदिपत्तेय०-वणप्फदिका०-णियोदेसु पंचणा०-णवदंस०-सादावे०-मिच्छत्त-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-मणुसगदि एवं धुवणामाए याव उच्चागो०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बादर० सव्वाहिं[1] पज्जत्तीहि पज्जत्त० सागार-जा० सव्वविसु० । सेसाणं वि एसेव । णवरि तप्पाओग्गविसुद्ध० । दोआयु० ओघं । बादरादीणं एइंदिय०-आदावेण णेदव्वं । एवं चेव तेउ-वाउका० । णवरि तिरिक्खगदि०[2] धुवं कादव्वं ।

१२४. तस-तसपज्जत्तेसु खवगपगदीणं ओघं। णिरय० देवायु० वेउव्वियछक्कं च ओघं । दोआयु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० बेइंदि तीइंदि० चदुरिंदि० पंचिंदि० सण्णि० असण्णि० पज्जत्तापज्जत्त० तप्पाओग्गसंकिलि० । सेसाओ पगदीओ मणुसगदिसंजुत्ताओ बीइंदियो करेदि सागार-जा० सव्वविसुद्धो । असा-

स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होते रहते हैं और मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव करते हैं, क्योंकि इनका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं होता। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१२३. पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा और मनुष्यगतिसे लेकर जितनी नामकर्मकी ध्रुव प्रकृतियाँ हैं वे सब तथा उच्चगोत्र और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर बादर जो सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त है, साकार जागृत है और सर्व विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके भी जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी वही जीव है। इतनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। इनके बादरादिकमें एकेन्द्रिय जाति और आतप प्रकृतियोंके साथ कथन करना चाहिए। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्चगति चतुष्कको ध्रुव कहना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका खुलासा कर आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहां जघन्य स्वामित्व जान लेना चाहिए।

१२४. त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। नरकायु, देवायु और वैक्रियिक छह इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी तथा इन सबका पर्याप्त तथा अपर्याप्त जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष मनुष्यगति सहित प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी साकार जागृत और सर्वविशुद्ध द्वीन्द्रिय जीव है। तथा असातादिक प्रकृतियोंके भी जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला वही द्वीन्द्रिय जीव है, तथा

१. मूलप्रतौ सव्वाहि अपज्जत्तीहि इति पाठः । २. मूलप्रतौ—गदि० दुवं कादव्वं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दादीणं पि सो चेव बीइंदि० तप्पाओग्गविसुद्ध० । अपज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो । णवरि बेइंदियो त्ति भाणिदव्वं ।

१२५. पंचमण०-तिण्णिवचि० खवगपगदीणं मूलोघं । णिद्दा-पचला० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्वकरणखवग० णिद्दापचलाणं बंधचरिमे वट्टमाणस्स। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० मिच्छा० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुहस्स जह०ट्ठिदिबं० । असादा०-अरदि०-[सोग]-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंजदस्स सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० जह० ट्ठिदि० वट्ट० । अपच्चक्खाणा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजदसम्मादिट्ठि० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुहस्स जह० ट्ठिदि० वट्ट० । पच्चक्खाणा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुसस्स संजदासंजद० सागार-जा० तप्पाओग्गसव्वविसु० संजमाभिमुह० जह०

इनके अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहांपर भी द्वीन्द्रिय अपर्याप्तको जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कहना चाहिए ।

विशेषार्थ--त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें पांच ज्ञानावरण आदि २५ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है । वैक्रियिक छहका जघन्य स्थितिबन्ध पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तके होता है । नरकायु और देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध संज्ञी या असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके होता है । इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । त्रस अपर्याप्तकोंमें द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके सब जघन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए त्रस अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक जीव कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१२५. पांचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । निद्रा और प्रचला प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्ध का स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो निद्रा और प्रचलाके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । स्त्यानगृद्धि-त्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य मिथ्यादृष्टि जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, संयमके अभिमुख है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो असंयत सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है, संयमके अभिमुख है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो सयंतासंयत है, साकारजागृत है, तत्प्रायोग्य सर्व विशुद्ध है, संयमके अभिमुख है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विदि० वट्ट० । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० द्विदि० कस्स ? अण्ण० चदुगदियस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । हस्स-रदि-भय-दुगुं० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्वकरणखवग० चरिमे जह० द्विदि० वट्ट० । णिरयायु० जह० द्विदि कस्स० ? अण्णद० दुगदिय० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओग्ग-संकिलि० । देवायु० तं चेव । णिरयगदि-तिण्णिजादि-णिरयाणुपु०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० तप्पाओग्गविसु० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपु०-उज्जो०-णीचागो० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवि० णेरइ० मिच्छादि० सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० जह० द्विदि० वट्ट० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० द्विदि कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइयस्स सम्मादि० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० । देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिपंच-णिमि०-तित्थय० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण०

स्वामी है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पांच संस्थान, पांच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेयके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका मिथ्यादृष्टि जीव जो साकारजागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । हास्य, रति, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर दो गतिका जीव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह नरकायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी वही है । नरकगति, तीन जाति, नरक गत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकारजागृत है, सर्वविशुद्ध है, सम्यक्त्वके अभिमुख है और जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसंहनन और मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो सम्यग्दृष्टि है, साकार-जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक और आहारक दो आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपुव्वकरणखवग० परिभवियणामाणं बंधचरिमे जह० ट्ठिदि० वट्ट०। एइंदि०-आदाव-थावर० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण०-तिगदियस्स मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसुद्ध०। वचिजोगी० असच्चमोस० तसपज्जत्तभंगो।

१२६. कायजोगि-ओरालियकायजोगि० मूलोघं। ओरालियमि० देवगदि०४-तित्थय० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० असंज० सागार-जा० सव्वविसु०। सेसाओ जाओ अत्थि ताओ तिरिक्खोघं।

तियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो परभव सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तमें जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर तीन गतिका मिथ्यादृष्टि जीव जो साकार-जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी त्रसपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ पाँच मनोयोग और पाँच वचनयोगमें कौन जीव किन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है इसका विचार किया गया है। उसमें भी वचनयोग और असत्यमृषावचनयोग द्वीन्द्रियोंसे लेकर होता है इसलिए इनमें त्रसपर्याप्तकोंके समान सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व घटित हो जाता है, इसलिए उनका कथन त्रस-पर्याप्तकोंके समान कहा है तथा शेषका स्वतन्त्र कथन किया है। यह तो स्पष्ट बात है कि पाँच मनोयोग और सत्य, असत्य और उभय वचनयोग एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक नहीं होते। केवल संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके होते हैं, इसलिए इनमें एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तकके जीवोंके होनेवाला स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। अतः संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें कहाँ किन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है इस दृष्टिसे इनमें सब प्रकृतियों के जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका विचार किया गया है। यहाँ साधारणतः पहले और दूसरे गुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व अधिकारी भेदसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें उपलब्ध होता है। इसी प्रकार आगे गुणस्थानोंमें जहाँ जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति कही है उस गुणस्थानमें उन प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामित्व उपलब्ध होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मात्र चार आयुकर्म इसके अपवाद हैं। चारों आयुओंका जघन्य स्थितिबन्ध अपने अपने जघन्य स्थितिबन्धके योग्य सामग्रीके मिलने पर मिथ्यात्व गुणस्थानमें मनुष्य और तिर्यञ्चोंके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च कहा गया है। सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धकी योग्यताका निर्देश मूलमें किया ही है।

१२६. काययोगी और औदारिक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी मूलोघके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष जितनी प्रकृतियाँ हैं उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२७. वेउव्वियका० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थकर-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव०[1] णेरइय० सम्मादि० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० । थीणगिद्धि३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० देव०[2] णेरइ० मिच्छादि० सागार-जा० सम्मत्ताभिमुह० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० देव० णेरइय० सम्मादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइय० मिच्छादि० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । दोआयु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० देव० णेरइय० मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकिलि० । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्णद० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० । एइंदि०-आदाव-थावर०

१२७. वैक्रियिक काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो सम्यग्दृष्टि है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध है और वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट है वह उक्त दो आयु प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-बन्धका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका

१. मूलप्रतौ देवगदि णेरइय० इति पाठः । २. मूलप्रतौ देवगदि णेरइय० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० ईसाणंतदेवस्स मिच्छादि० तप्पाओग्गविसु० । एवं चेव वेउव्वियमि० । णवरि आयु० णत्थि ।

स्वामी कौन है ? अन्यतर ऐशान कल्प तकका देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके आयुकर्मकी दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—काययोग और औदारिककाययोग एकेन्द्रियसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व मूलोघके समान बन जाता है । औदारिकमिश्रकाययोगके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, अविरतसम्यग्दृष्टि और सयोगकेवली ये चार गुणस्थान हैं । यहाँ सयोगकेवली गुणस्थानसे तो प्रयोजन ही नहीं । शेष तीन गुणस्थान तिर्यञ्च और मनुष्य दोनोंकी अपर्याप्त अवस्थामें होते हैं पर मनुष्य अपर्याप्तकोंकी अपेक्षा तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन सम्भव है, क्योंकि तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी भी परिगणना होती है, इसलिए यहाँ औदारिकमिश्रकाययोगमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है । मात्र एकेन्द्रियोंके देवगति-चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । तथा औदारिकमिश्रकाययोगमें इनका बन्ध अविरत सम्यग्दृष्टिके ही होता है इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व अलगसे कहा है । औदारिकमिश्रकाययोगमें नरकायु, देवायु, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गका बन्ध नहीं होता, इस लिए इनके स्वामित्वका यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता । वैक्रियिक काययोग देव और नारकियोंके होता है, इसलिए इस बातको ध्यानमें रखकर इस योगमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व यथायोग्य जान लेना चाहिए । समझनेकी बात इतनी है कि जिन प्रकृतियोंकी मिथ्यादृष्टि और सासदनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होती है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व मिथ्यादृष्टि वैक्रियिककाययोगी देव और नारकी को मूलमें कही गई विशेषताको ध्यान रखकर देना चाहिए और जिन प्रकृतियोंका आगे भी बन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व अविरतसम्यग्दृष्टि वैक्रियिककाययोगी देव और नारकीको देना चाहिए । मात्र तिर्यञ्चगति द्विक, उद्योत और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सातवीं पृथिवीके सम्यक्त्वके सम्मुख हुए सर्वविशुद्ध नारकीको ही कहना चाहिए, क्योंकि सातवीं पृथिवीमें मिथ्यादृष्टि नारकीके मनुष्यगति द्विक और उच्चगोत्रका बन्ध नहीं होता, इसलिए उसके सम्यक्त्वके अभिमुख होनेपर भी उक्त चार प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है । अतएव सातवीं पृथिवीमें ही इनका जघन्य स्थितिबन्ध उपलब्ध होता है । इसी तरह वैक्रियिक काययोगमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका उसके योग्य जघन्य स्थितिबन्ध मिथ्यात्वमें ही उपलब्ध होता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम मिथ्यादृष्टिके ही होते हैं । यही कारण है कि यहाँ वैक्रियिक काययोगमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व उक्त प्रकारसे कहा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वके प्रति वैक्रियिककाययोगसे अन्य कोई विशेषता नहीं है । मात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए जिन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व वैक्रियिककाययोगमें सम्यक्त्वके अभिमुख हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२८. आहार०-आहारमि० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थय०-उच्चागो०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० पमत्तसंजद० सागार-जा० सव्वविसु०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० पमत्त० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स०? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि०। कम्मइग० ओरालियमिस्सभंगो। णवरि आयु० णत्थि। तित्थय० दुगदियस्स[1]।

जीवके कहा है यहाँ उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व जो पर्याप्त होने पर सम्यक्त्वको प्राप्त होगा ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें आयुका बन्ध नहीं होता यह स्पष्ट ही है।

१२८. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्मण तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है और सर्व-विशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके आयुका बन्ध नहीं होता। तथा इनके तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी दो गतिका जीव है।

विशेषार्थ—आहारक काययोग और आहारकमिश्रकाययोग प्रमत्तसंयत जीवके होता है, इसलिए प्रमत्तसंयत जीवके बँधनेवाली प्रकृतियोंकी अपेक्षा यहाँ जघन्य स्वामित्व कहा है। विशेषता मूलमें कही ही है। औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगके गुणस्थान एक समान ही हैं तथा औदारिकमिश्रकाययोगके समान यह योग भी एकेन्द्रियोंके होता है इसलिए इसमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व औदारिकमिश्र-काययोगके समान कहा है। मात्र यहाँ इतनी विशेषता है कि एक तो कार्मण काययोगमें आयुकर्मका बन्ध नहीं होता और दूसरे यद्यपि कार्मणकाययोगमें नरकगति, मनुष्यगति और देवगतिके जीवके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है पर इसके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी देवगति और मनुष्यगतिका जीव ही है, क्योंकि इसके योग्य सर्वविशुद्ध परिणाम इन दो गतिके कार्मणकाययोगी जीवके ही हो सकते हैं।

1. मूलप्रतौ दुगदियस्स तित्थय० इत्थि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२६. इत्थि०-पुरिस० पंचणा०-चदुदंसणा०-सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-जसगि०-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अणियट्टि० खवग० जह० ट्ठिदि० वट्ट० । आहार०-आहार०अंगो०-तित्थय० मूलोघं । णवरि इत्थिवेद० तित्थय० अपुव्वकरणउवसामयस्स । सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवुंस० खवगपगदीणं इत्थिभंगो । सेसं मूलोघं । अवगदवेदे ओघं ।

१३०. कोध०-माण०-माया० णवुंसगभंगो । णवरि तित्थयरं ओघं । लोभे मूलोघं ।

१२९. स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता-वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अनिवृत्तिक्षपक जो जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अपूर्वकरण उपशामक जीव है । इनके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान है । नपुंसकवेदी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । अपगतवेदमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद अपने अपने सवेद भागतक होते हैं इसलिए इनमें दसवें गुणस्थान और नौवें गुणस्थानमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी क्षपक अनिवृत्तिकरण जीवको कहा है, तथा इन दोनों वेदोंका उदय असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके भी होता है, इसलिए शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान कहा है । मात्र आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध अपूर्वकरण क्षपकके होता है इसीलिए इन तीनों प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अपूर्वकरण क्षपक जीवको कहा है । यहाँ यह बात सबसे अधिक ध्यान देने योग्य है कि जिसके तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता होती है वह पुरुषवेदके साथ ही क्षपक श्रेणीपर आरोहण करता है, क्योंकि जो जीव तीर्थंकर होता है उसके जन्मसे एकमात्र पुरुषवेदका उदय होता इसलिए स्त्रीवेदमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उपशामक अपूर्वकरण है । जीवको कहा है । नपुंसकवेदमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी स्त्रीवेदके समान है यह तो स्पष्ट ही है । मात्र नपुंसक वेदका उदय एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर होता है इसलिए इसमें शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान कहा है । अपगतवेदमें नौवें और दशवें गुणस्थानमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, क्योंकि यह संज्ञा नौवें गुणस्थानके अवेदभागसे प्रारम्भ होती है, इसलिए इसमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान कहा है ।

१३०. क्रोध कषायवाले, मान कषायवाले और माया कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी नपुंसकवेदी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है । तथा लोभ कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३१. मदि०-सुद० तिरिक्खोघं। विभंगे पंचणा०-णवदंसणा० सादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सत्थाणे सागार-जा०। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० तप्पाओग्गविसुद्ध०। आयुगाणं मणजोगिभंगो। तिरिक्खग० तिरिक्खाणुपु०-उज्जोव०-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह०। णिरयगदि-तिण्णिजादि-णिरयाणु०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओग्गविसु०। मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिस०-मणुसाणु०

विशेषार्थ—किसी भी कषायके उदयसे जीव क्षपक श्रेणीपर आरोहण करता है और उसके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए चारों कषायोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१३१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण-उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर चार गतिका जीव जो स्वस्थानमें अवस्थित है और साकार जागृत है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर चार गतिका जीव जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। आयुकर्मकी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो मिथ्यादृष्टि है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। नरकगति, तीन जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइयस्स सागार-जा० सव्वविसुद्ध० सम्मत्ताभिमुह० । एइंदि०-आदाव-थावर० मणजोगिभंगो ।

१३२. आभि०-सुद०-ओधि० खवगपगदीणं मूलोघं । णिद्दा-पचलाणं जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्वकरणखवग० चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्टमा० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंज० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु० । हस्स-रदि-भय-दुगुं० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्व०खवग० चरिमे जह० ट्ठिदि० वट्ट० । मणुसायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागार-जा० तप्पाओग्गसंकिलि० । देवायु०

नुपूर्वी इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्ध का स्वामी मनोयोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान तिर्यञ्चोंके भी होता है और इन दोनों मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिबन्ध तिर्यञ्चोंकी अपेक्षा ही सम्भव है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी तिर्यञ्चोंके समान कहा है । विभङ्ग ज्ञान चारों गतियोंमें सम्भव है पर इसके रहते हुए संयमके अभिमुख परिणाम मनुष्यगतिमें ही हो सकते हैं और ऐसे जीवके ही जघन्य स्थितिबन्ध होगा, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही हुई प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी संयमके अभिमुख विभङ्गज्ञानी मनुष्य कहा है । दूसरे और तीसरे दण्डकमें जो प्रकृतियाँ गिनाईं हैं उनका जघन्य स्थितिबन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी चारों गतियोंका विभङ्गज्ञानी जीव कहा है । सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्चगति आदिका ही बन्ध होता है, इसलिए सम्यक्त्वके अभिमुख होने पर भी इसके इन प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है । जब कि अन्यत्र ऐसी अवस्थाके प्राप्त होने पर इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं हो सकता है । यदि विचार कर देखा जाय तो विभङ्गज्ञानमें ऐसे जीवके ही उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव है । यही कारण है कि तिर्यञ्चगति आदि चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी सातवीं पृथिवीका विभङ्गज्ञानी जीव कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१३२. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । निद्रा और प्रचला प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त दोनों प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । हास्य, रति, भय और जुगुप्सा प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो अन्तिम जघन्य स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह मनुष्यायुके जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओग्गसंकिलि० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि० अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० । देवगदि एवं पसत्थत्तीसं जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अपुव्व०खवग० परभवि० बंधचरिमे वट्ट० । अप्पच्चक्खा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंज० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० । पच्चक्खाणा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्णद० मणुस० संजदासंजद० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० । मणपज्जव० ओधिभंगो । णवरि देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंज० तप्पाओ०संकिलि० ।

१३३. संजदा० मणपज्जवभंगो । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-सादा०-

स्थितिबन्धका स्वामी है । देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगतिसे लेकर प्रशस्त तीस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जो परभव सम्बन्धी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टि जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । प्रत्याख्यानावरण चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य संयतासंयत जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनःपर्ययज्ञानमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानीके समान है । इतनी विशेषता है कि देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थिति बन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक आदि तीन ज्ञान चौथेसे लेकर बारहवें गुणस्थानतक होते हैं । इनमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति भी सम्भव है, इसलिए ३६ प्रकृतियोंका क्षपकश्रेणिके आठवें गुणस्थानमें, ५ का नौवेंमें और १७ का दसवेंमें जघन्य स्वामित्व कहा है । शेष प्रकृतियोंके विषयमें जहां जिनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है और जिनके उनका बन्ध होता है इन दो बातोंको ध्यानमें रखकर उनके जघन्य स्वामित्वका विचार किया है । शेष विशेषताएँ मूलमें कही ही हैं । मनःपर्ययज्ञान ६ छठवें गुणस्थानसे होता है । अतः जितनी प्रकृतियोंका बन्ध इसके होता है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व अवधिज्ञानी जीवके भी छठवें आदि गुणस्थानोंमें ही प्राप्त होता है, इसलिए मनःपर्ययज्ञानमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानी जीवोंके समान कहा है । मात्र देवायु इसका अपवाद है । कारण कि देवायु का जघन्य स्थितिबन्ध अवधिज्ञानीके चतुर्थ गुणस्थानमें होता है और मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयतके होता है, इसलिए इतनी विशेषता अलगसे कही है ।

१३३. संयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनःपर्यय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोभसंज०-जस०-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अणियट्टिखवगस्स चरिमे ट्ठिदि० वट्ट० । सेसं संजदभंगो । परिहार० आहारकायजोगिभंगो । णवरि सामित्तदो सट्ठाणेसु याओ सव्वविसुद्धाओ ताओ दंसणमोहणीयखवगस्स से काले कदकरणिज्जो होहिदि त्ति अथवा सत्थाणे अप्पमत्तसव्वसुद्ध० । सेसाणं आहारकायजोगिभंगो । सुहुमसंपरा० ओघं ।

१३४. संजदासंजदा० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-अट्ठकसा०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थट्ठावीस-तित्थयर-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि०

ज्ञानी जीवोंके समान है। सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, संज्वलन लोभ, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अनिवृत्तिक्षपक जो अन्तिम स्थितिबन्धमें अवस्थित है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी संयत जीवोंके समान है। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी आहारककाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्वस्थानमें जो सर्वविशुद्ध परिणामोंसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ हैं उनको जो तदनन्तर समयमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होगा ऐसा दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है, अथवा स्थानमें जो अप्रमतसंयत है, सर्व विशुद्ध परिणामवाला है वह उन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी आहारककाययोगी जीवोंके समान है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है।

विशेषार्थ—बन्धकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवोंकी स्थिति एक समान है, इसलिए संयतोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनःपर्ययज्ञानके समान कहा है। सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत मात्र नौवें गुणस्थानतक होते हैं इसलिए इनमें दसवें गुणस्थानमें बन्धव्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व क्षपक अनिवृत्तिकरणको दिया है। शेष स्थिति संयत जीवोंके समान है, इसलिए इन दोनों संयतोंके शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी संयत जीवोंके समान कहा है। परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वको दो भागोंमें विभक्त कर दिया है–जो वहाँ सर्वविशुद्ध परिणामोंसे प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अलगसे कहा है और शेष असाता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व आहारककायजोगी जीवोंके समान कहा है। आशय यह है कि पाँच ज्ञानावरण आदि जिन प्रकृतियोंका सातवें गुणस्थानमें बन्ध होता है उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी या तो जो अनन्तर समयमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगा ऐसा कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव कहना चाहिए या स्वस्थानमें ही सर्वविशुद्ध परिणामवाला अप्रमत्तसंयत जीव कहना चाहिए और असाता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी आहारककाययोगी जीवोंके समान तत्प्रायोग्यविशुद्ध परिणामवाला प्रमत्तसंयत जीव कहना चाहिए।

१३४. संयतासंयत जीवोंमें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति आदि प्रशस्त अट्ठाईस प्रकृतियाँ, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्स० ? अण्ण० मणुस० सागार-जा० सव्वविसुद्ध० संजमाभिमुह० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सत्थाणे तप्पाओग्गविसुद्ध० । देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओग्गसंकिलि० । असंजदा० मदि०भंगो । णवरि तित्थयरं जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० सम्मादि० मणुस० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह० ।

१३५. चक्खुदं० खवगपगदीओ वेउव्वियछक्कं मूलोघं । सेसाणं चदुरिंदियपज्जत्तभंगो । अचक्खु० मूलोघं । ओधिदं० ओधिणाणिभंगो ।

है । अन्यतर मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्व विशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर स्वस्थानवर्ती तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । असंयत जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि मनुष्य जो साकारजागृत है, सर्व विशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंका एक ही गुणस्थान है । यहां संयमके सन्मुख हुए जीवके पाँच ज्ञानावरणादिका सबसे जघन्य स्थितिबन्ध होता है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ऐसा मनुष्य कहा है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध स्वस्थानमें ही होता है अतः उनके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी स्वस्थानवर्ती तिर्यञ्च और मनुष्य कहा है । असंयतोंमें जघन्य स्थितिबन्धकी अपेक्षा एकेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी मुख्यता है । मत्यज्ञानियोंमें भी जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका विचार एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा किया है, इसलिए असंयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान कहा है । मात्र जिन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियोंके बन्ध नहीं होता उन प्रकृतियोंका विचार जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके विचारके समय कर आये हैं उस प्रकारसे करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंके या मत्यज्ञानियोंके तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता इसलिए यहाँ इसके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अलगसे कहा है ।

१३५. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें क्षपक प्रकृतियाँ और वैक्रियिक छहके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है । अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मूलोघके समान है । अवधिदर्शनवाले जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है ।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय जीवोंसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक होता है और अचक्षुदर्शन एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक होता है । इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व मूलमें कही गई विधिके अनुसार बन जाता है । अवधिदर्शनीमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है यह स्पष्ट ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६. [किण्ण०-णील०-काउ० अप्पप्पणो पगदीणं असंजदभंगो। णवरि] किण्ण०-णील० तित्थय० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजदस० सव्वविसु०। काउ० णेरइ० सव्वविसु०।

१३७. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थएक्कत्तीस-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंज० सव्वविसु०। थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० सव्वविसु० संजमाभिमुह०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० पमत्तसंज० तप्पाओग्ग-विसुद्ध०। अपच्चक्खाणा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० असंजद० सागार-जा० सव्वविसु० संजमाभिमुह०। पच्चक्खाणा०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० मणुस० संजदासंजद० सागारजा० सव्वविसु० संजमाभिमुह०। इत्थि०-

---

१३६. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें अपनी अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग असंयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण लेश्या और नील लेश्यावाले जीवोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो असंयत सम्यग्दृष्टि है और सर्वविशुद्ध है वह तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। कापोत लेश्यामें जो नारकी सर्वविशुद्ध है वह तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कापोत लेश्या असंयतोंके होती है और असंयतोंमें जघन्य स्थितिबन्धकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंकी नरकायु व देवायुकी अपेक्षा पञ्चेन्द्रियोंकी और नरकगति छहकी अपेक्षा असंज्ञियोंकी मुख्यता है, इसलिए इन लेश्याओंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी असंयतोंके समान कहा है। मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध इन जीवोंके नहीं होता, इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धके स्वामीका कथन अलगसे किया है। इतना अवश्य है कि नरकगतिमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीवके कृष्ण और नील लेश्या नहीं होती, इसलिए इन लेश्याओंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य कहा है और कापोत लेश्यामें नारकी जीव कहा है।

१३७. पीतलेश्यामें पांच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति आदि प्रशस्त इकतीस प्रकृतियाँ, उच्च गोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अप्रमत्त संयत जीव जो सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव जो तत्प्रायोग्य-विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो असंयत सम्यग्दृष्टि है साकारजागृत है, सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर मनुष्य जो संयतासंयत है, साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और संयमके अभिमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवुंस०-एइंदियजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छा० तप्पाओग्गविसुद्ध० । दोआयु० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स तप्पाओग्गसंकिलि० । देवायु० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० मिच्छादि० तप्पाओग्गसंकिलि० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स सम्मादि० सव्वविसु० । एवं पम्माए । णवरि एइंदिय-आदाव-थावरं णत्थि ।

१३८. सुक्काए मणजोगिभंगो । णवरि इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० द्विदि० कस्स० ? अण्ण० देवस्स मिच्छादि० तप्पाओग्गविसुद्ध० ।

१३९. भवसिद्धि० ओघं । अब्भवसिद्धि० मदिय०भंगो ।

१४०. सम्मादि०-खइग० ओधि०भंगो । वेदगे पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-

है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य संक्लेशपरिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो सम्यग्दृष्टि है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इस लेश्यावाले जीवोंके एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता।

१३८. शुक्ललेश्यामें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनोयोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव जो मिथ्यादृष्टि है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है।

१३९. भव्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी ओघके समान है। अभव्य जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान है।

१४०. सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-देवगदि-पसत्थएक्कत्तीस-उच्चागो०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० अप्पमत्तसंजद० सव्वविसु० अथवा दंसणमोह-खवगस्स कदकरणिज्जो होहिदि त्ति। सेसं ओधिभंगो। उवसम० ओधिभंगो। णवरि खवगपगदीणं उवसमगे कादव्वं।

१४१. सासणे पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे-०सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय०-दुगुं०-पंचिंदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमिण-उच्चागो०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदि० सागार-जा० सव्वविसु०। असादा०-इत्थि०-अरदि-सोग-चदुसंठा०-चदुसंघ०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछक्क० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० ? चदुगदिय० सागार-जा० तप्पाओग्गविसु०। तिरिक्खायु०-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइ० तप्पाओग्गसंकिलि० अथवा चदुगदियस्स तप्पाओग्गसंकिलि०। देवायु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० तप्पाओ०संकिलि०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपु०-उज्जोव-णीचा० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण०

दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति आदि इकतीस प्रकृतियाँ, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव जो सर्वविशुद्ध है वह अथवा जो अनन्तर समयमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होगा ऐसा दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी अवधिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी उपशामकको कहना चाहिए।

१४१. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, सोलह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है और सर्वविशुद्ध है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, अरति, शोक, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छह प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाला है वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह अथवा चार गतिका जीव जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह उक्त दोनों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामवाला है वह देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमाए पुढवीए णेरइ० सव्वविसु० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्ज-रिसभ०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० देव० णेरइय० सव्वविसु० । देवगदि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सव्वविसु० ।

१४२. सम्मामिच्छा० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमिण-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० । असादावे०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० चदुगदियस्स सत्थाणे तप्पाओग्गविसु० । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० कस्स ? अण्ण० देव० णेरइ० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० । देवगदि०४ जह० ट्ठिदि० कस्स० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० सागार-जा० सव्वविसु० सम्मत्ताभिमुह० । मिच्छादिट्ठी० मदिय०भंगो । सण्णि० मणुसभंगो । असण्णि० तिरिक्खोघं । आहार० मूलोघं । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं जहण्णगो समत्तो । एवं सामित्तं समत्तं ।

कौन है ? अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जो सर्वविशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्य गत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ? अन्यतर देव और नारकी जो सर्वविशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्तर तिर्यञ्च और मनुष्य जो सर्व-विशुद्ध है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है ।

१४२. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका जीव जो स्वस्थानस्थित तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम-वाला है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मनुष्य गति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर देव और नारकी जो सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य जो साकार जागृत है, सर्वविशुद्ध है और सम्यक्त्वके अभिमुख है, वह उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी है । मिथ्या-दृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मत्यज्ञानियोंके समान है । संज्ञी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी मनुष्योंके समान है । असंज्ञी जीवोंमें तिर्यञ्चोंके समान है । आहारक जीवोंमें मूलोघके समान है और अनाहारक जीवोंमें कार्मण काययोगी जीवोंके समान है । इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधकालपरूवणा

१४३. कालं दुविधं—जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालिय०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उव०-णिमि०-पंचंतराइगाणं उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणुक्कस्सट्ठिदिबं० केवचिरं? जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं असंखेज्जपोग्गलपरियट्टं। णवरि ओरालि० जह० एगस०। सादासादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-णिरयगदि-एइंदि०-बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-आहारदुग-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे छावट्ठि० सादि०। चदुण्णं आयु० उक्क० ट्ठिदि० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो०। एवं याव अणाहारग त्ति सरिसो कालो। णवरि जोग-कसाएसु अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क०

बंधकाल प्ररूपणा

१४३. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तमुँहूर्त है। अनुकृष्ट स्थितिबन्धका कितना काल है? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि औदारिक शरीरके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है। सातावेदनीय, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आहारक द्विक, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुष वेदके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर प्रमाण है। चार आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक चार आयुओंका समानकाल है। इतनी विशेषता है कि योगोंमें और कषायोंमें उनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । मणुसग०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । पंचिंदि०-पर०-उस्सास-तस-बादर पज्जत्त-पत्तेय० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । ओरालि०अंगो० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । सत्तमादो णिग्गमंतस्स सादिरेयं । तित्थयरं उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं० सादि० ।

उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तेंतीस सागर है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रसकाय, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकसौ पचासी सागर है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है। औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेंतीस सागर है जो सातवीं पृथ्वीसे निकलनेवाले जीवके साधिक होता है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल साधिक तीन सागर है।

विशेषार्थ—यहाँ एक जीवकी अपेक्षा कालका विचार किया जा रहा है। साधारणतः सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक होते हैं, इसलिए सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र तीर्थंकर प्रकृति इस नियमका अपवाद है; क्योंकि उसकी कोई प्रतिपक्ष प्रकृति न होनेसे उसके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है। यहां पर मुख्यरूपसे विचार अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके सम्बन्धमें करना है। यह हम पहले ही बतला आये हैं कि कुल बन्धयोग्य १२० प्रकृतियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-

हैं और उनमें ज्ञानावरण पाँच आदि सैंतालीस ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। इनमें औदारिक शरीरके मिलाने पर कुल ४८ प्रकृतियाँ होती हैं। इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल बतलाया है। सो इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके बाद इनका कमसे कम अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कालतक नियमसे होता है,तभी पुनः उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होते हैं। पर यदि कोई जीव त्रस पर्यायके बिना निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहे तो उसे उत्कृष्ट रूपसे अनन्तकाल लगता है। तब जाकर वह त्रस होता है और त्रस होनेपर भी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होनेपर ही इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है; अन्यथा नहीं। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल कहा है। औदारिकशरीर ध्रुवबन्धिनी प्रकृति नहीं है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। पर एकेन्द्रिय पर्यायमें वैक्रियिक शरीरके बन्धकी योग्यता न होनेसे निरन्तर औदारिकशरीरका ही बन्ध होता रहता है, इसलिए ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंके समान इसका भी उत्कृष्टकाल अनन्तकाल कहा है। इसके बाद साता आदि ४१ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जो जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सो इसका कारण यह है कि आहारकद्विकके बिना ये सब प्रतिपक्ष प्रकृतियां हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा गुणस्थानोंके परिवर्तनके निमित्तसे आहारकद्विकका भी जघन्य काल एक समय बन जाता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है। कोई जीव बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर साधिक दो छ्यासठ अर्थात् १३२ सागरतक सम्यक्त्वके साथ रह सकता है। इसीसे यहां पुरुषवेदके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर कहा है, क्योंकि इस जीवके न तो पुरुष वेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और न स्त्री वेद तथा नपुंसक वेदका ही बन्ध होता है। आयुओंका उत्कृष्ट त्रिभागके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, बाकी अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध ही होता है। इसीसे चारों आयुओंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र योग और कषायके परिवर्तनके कारण इन मार्गणाओंमें इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय भी बन जाता है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इनके इतने कालतक तिर्यञ्चद्विक और नीचगोत्रका ही बन्ध होता है। इसीसे इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। देवसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसके इतने कालतक मनुष्यद्विक और वज्रर्षभनाराच संहननका नियमसे बन्ध होता है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा है। जो मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव भोगभूमिमें जन्म लेता है, उसका दोनों पर्यायोंका काल साधिक तीन पल्य होता है। इसके देवगति चतुष्कका नियमसे बन्ध होता है। इसीसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य कहा है। इसी प्रकार शेष रही प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालका विचार कर लेना चाहिए।

१४४. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० । पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू० । तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क०, तिण्णिसागरो० सादि० । सेसाणं उक्क० अणुक्क० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० जहण्णुक्क० अंतो० । अणु० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू० । तित्थयरं च वज्ज० । पढमादि छट्ठि त्ति तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु-णीचा० सादभंगो । सेसं णिरयोघं । णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदि कादव्वं । तित्थयर० उक्क० ट्ठिदि० णिरयोघं । अणु ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० सागरो० देसू० तिण्णि साग० देसू० तिण्णि साग० सादि० ।

शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभ-नाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँपर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। परन्तु यहाँपर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। पहिली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवीतक तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच-गोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल साता प्रकृतिके कालके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका उक्त काल सामान्य नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल सामान्य नारकियोंके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल प्रथमादि तीन पृथिवियोंमें क्रमसे कुछ कम एक सागर, कुछ कम तीन सागर और साधिक तीन सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ—सातवें नरकमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डकमें कहीं गई ५९ प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टि नारकीके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई पुरुषवेद आदि १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरु०४-उप०--णिमि०--पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अणंतकाल०। पुरिस०-देवगदि-वेउव्विय०-समचदु०-वेउव्वि० अंगो०-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो०। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणुपु०-णीचा० उक्क० अणु० ट्ठिदि० ओघं। पंचिंदिय-परघादुस्सा०-तस०४ उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि-पलिदो० सादिरे०। सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

प्रकृतियोंका सातवें नरकके सम्यग्दृष्टि नारकीके निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीसरे नरक तक ही बन्ध होता है। उसमें ऐसे जीवको साधिक तीन सागरसे अधिक आयु नहीं प्राप्त होती, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। नरकमें बँधनेवाली शेष सब प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र इनमें उद्योत प्रकृति प्रतिपक्ष नहीं है। तथापि इसका निरन्तर बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भी उक्त काल कहा है। यह काल सातवीं पृथिवीकी मुख्यतासे कहा गया है इसलिए सातवीं पृथिवीमें यह काल इसी प्रकार घटित होता है। मात्र सातवीं पृथिवीमें मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि नारकीके केवल मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध होनेके कारण इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही उपलब्ध होता है। शेष कथन सुगम है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध तीसरे नरकतक ही होता है।

१४५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जो उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है सो इसका स्पष्टीकरण जिस प्रकार ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जो बद्ध तिर्यञ्चायु कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है, उसके तिर्यञ्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४६. पंचिंदियतिरिक्ख०३ धुविगाणं उक्क० द्विदि० ओघं । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । पुरिस०-देवगदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो-देवाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर--आदे०-उच्चा० उक्क० द्विदि० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० । जोणिणीसु देसूणं । [पंचिंदिय-]पर०-उस्सा०-तस०४ तिरिक्खोघं । सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१४७. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि पुरिस०-देवगदि०४-पंचिंदिय०-

पर्यायमें तीन पल्य कालतक निरन्तर पुरुषवेद आदि ग्यारह प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध नियमसे होता रहता है । इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है । तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघ प्ररूपणामें जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं,उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिए यहाँ उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान कहा है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि सात प्रकृतियोंका उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाला तिर्यञ्च साधिक तीन पल्यतक निरन्तर बन्ध करता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१४६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें ध्रुवबन्ध प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रसचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। इनके इतने कालतक ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेद आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके कर आये हैं,उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए। मात्र सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर योनिनी तिर्यञ्चोंमें नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है।

१४७. मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समचदु०-परघादुस्सा०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादि०। णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेद० देवगदि०४-समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा०उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णिपलिदो० देसू०। तित्थय० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। आहार०-आहार०अंगो० ओघं। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

१४८. देवगदीए देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं०। थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० जह० एग०,

पुरुषवेद, देवगति चतुष्क, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुषवेद, देवगति चतुष्क, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। तथा आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य होते हैं, वे मरकर तीन पल्यकी आयुवाले मनुष्योंमें भी उत्पन्न होते हैं। इससे इनमें पुरुषवेद आदि ११ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तिर्यञ्चोंके समान तीन पल्य न कहकर साधिक तीन पल्य कहा है। पर ऐसा जीव मरकर मनुष्यनियोंमें नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इनमें इन पुरुषवेद आदि ११ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। यद्यपि ओघसे तीर्थंकर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, पर नरकगतिमें और यहां यह काल एक समय कहनेका कारण अन्य है। शेष कथन सुगम है।

१४८. देवगतिमें देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके उत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० एक्कत्तीसं० । सेसाणं उक्क० ट्ठिदि० अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी णादव्वा ।

१४६. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु धुविगाणं उक्क० ओघं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० अणु० ओघं । सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । बादरे धुविगाणं उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०णीचा० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग० उक्क० कम्मट्ठिदी । बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सेसाणं एइंदियोघं ।

बन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है । तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब देवोंके अपनी-अपनी स्थितिको ध्यानमें रखकर काल जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि ५९ प्रकृतियोंका देवोंके मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनों अवस्थाओंमें सतत बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल सामान्य देवोंकी अपेक्षा तेतीस सागर कहा है। तथा दूसरे दण्डकमें कही गई स्त्यानगृद्धि आदि ८ प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता और देवोंके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर कहा है । नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी देवोंके दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध ही नहीं होता । हां, प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध अवश्य होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल जिसकी जितनी स्थिति है,उतना जानना चाहिए । पर भवनवासी देवोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके शेष देवोंके प्रथम और द्वितीय दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल जहाँ जो उत्कृष्ट स्थिति हो, उतना जानना चाहिए । अब रह गया तीसरा दण्डक सो इसमें कही गई प्रकृतियोंमेंसे जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है,उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका सर्वत्र जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है; क्योंकि ये सब प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं ।

१४९. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । बादर एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्ध वाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चत्रिक प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५० बादरअपज्जत्त० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। सुहुमे धुविगाणं उक्क० ओघं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। एवं तिरिक्खगदितिगं। णवरि अणु० जह० एग०। सुहुमपज्जत्ते सव्वाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सुहुमअपज्जत्तेसु धुविगाणं उक्क० ओघं। अणु० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१५१. बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि० धुविगाणं उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क०

विशेषार्थ—यद्यपि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है, तथापि एकेन्द्रियोंके दो भेद हैं—बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय। इनमेंसे बादरोंमें पर्याप्त होने पर एकेन्द्रियोंके योग्य उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है; सूक्ष्म जीवोंमें नहीं। किन्तु यहाँ एकेन्द्रिय सामान्यकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है, इसीसे एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इनमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है और इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। ओघसे इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इतना ही कहा है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थिति प्रमाण होनेसे बादर एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण कहा है; क्योंकि इन प्रकृतियोंका इतने काल तक निरंतर बन्ध इन्हीं जीवोंके होता है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली और तिर्यञ्चगतित्रिकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१५०. एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकका काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है। सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

१५१. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो० । एवं पज्जत्तगे त्ति । अपज्जत्ता० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

१५२. पंचिंदिय०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुध० । पज्जत्ते सागरोवमसदपुधत्तं । तिरिक्खगदि-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । सेसाणं मूलोघं । पंचिंदियअपज्जत्ते तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो ।

१५३. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ० धुविगाणं उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादर० कम्मट्ठिदी० । बादर० पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सेसाणं पगदीणं उक्क० अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार इनके पर्याप्त जीवोंमें भी जानना चाहिए। इनके अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षप्रमाण है, इसीलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१५२. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और पर्याप्तकोंमें सौ सागर पृथक्त्व है। तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी कायस्थितिको ध्यानमें रखकर कहा है। सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके तिर्यञ्चगति आदि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है और वहाँसे निकलने पर संक्लेश परिणामवश अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध होना सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१५३. काय मार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें ध्रुवबन्ध-वाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके बादर जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। तथा इन सब जीवोंमें शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तेसु एइंदियअपज्जत्तभंगो। सुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो। णवरि अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिक्खगदितिगं सादभंगो। एवं तेउ० वाउ०। णवरि तिरिक्खगदितिगं धुवं कादव्वं। वणप्फदि-णियोदेसु एइंदियभंगो। णवरि तिरिक्खगदितियं सादभंगो। बादरवणप्फदि० बादरपुढवि०भंगो।

१५४. तस०२ पंचिंदियभंगो। णवरि कायट्ठिदी कादव्वा। अपज्जत्ते पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

१५५. पंचमण०-पंचवचि० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१५६. कायजोगीसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरा-

बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इनके अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। इनके सूक्ष्म जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल एक समय है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल साता प्रकृतिके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके तिर्यञ्चगतित्रिकका ध्रुवबन्ध होता है। वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल एकेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग साता प्रकृतिके समान है। बादर वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट कालका खुलासा कर आये हैं,उसे ध्यानमें रखकर यहाँ कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

१५४. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ इनकी कायस्थिति कहनी चाहिए। इनके अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—पहले पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल कह आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। मात्र यहाँ पाँच ज्ञानावरण आदि ४७ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और दो हजार सागर प्रमाण कहना चाहिए; क्योंकि इन जीवोंकी इतनी ही कायस्थिति है।

१५५. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन योगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे इनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१५६. काययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिय०-तेजा०-क०-वएण०४-अगु०-उप०-णिमि० पंचंत० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खगदितिगं उक्क० अणु० ओघं। सेसाणं मण-जोगिभंगो। ओरालियका० धुविगाणं उक्क० ओघं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि देसू०। तिरिक्खगदितिगं उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि वस्ससहस्साणि देसू०। सेसाणं कायजोगिभंगो।

१५७. ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-तेजा०-क०-वएण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंतरा० उक्क० अणु०

भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है। तिर्यञ्चगतित्रिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है। औदारिक काययोगवाले जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—काययोगका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे उपलब्ध होता है। यही कारण है कि काययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके निरन्तर तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका नियमसे बन्ध होता है और इनकी कायस्थिति असंख्यातलोक प्रमाण है। इन जीवोंके एक मात्र काययोग होता है, यह तो स्पष्ट ही है और ओघसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इसी अपेक्षासे असंख्यात लोक प्रमाण कह आये हैं। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। इसीसे इस योगवाले जीवोंके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु औदारिक काययोगका यह काल पृथिवीकायिक जीवोंके ही उपलब्ध होता है; अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं। उसमें भी अग्निकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु तीन दिवसमात्र है, इसलिए उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है। हाँ, वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति अवश्य तीन हजार वर्षप्रमाण है। किन्तु इसमें औदारिक काययोगका काल किञ्चित् न्यून है। तिर्यञ्चत्रिकका इतने काल तक बन्ध औदारिक काययोगमें यहीं पर होता है, इसीसे औदारिक काययोगमें तिर्यञ्चत्रिक प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्षप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५७. औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं देवगदि०४ । अथवा से काले पज्जत्ती गाहिदि त्ति कीरदि तदो उक्क० जहण्णु० एग० । अणु० जह० उक्क० अंतो० । सेसाणं परियत्तमाणियाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अथवा उक्क० जहण्णु० एग० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो ।

१५८. वेउव्वियका० मणजोगिभंगो । वेउव्वियमिस्स० धुविगाणं तित्थयरस्स च अथवा पवत्त० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति कीरदि तदो उक्क० जह० एग०, अणु० जह० अंतो० । सेसाणं ओरालियमिस्सभंगो ।

स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल जानना चाहिए । अथवा तदनन्तर समयमें पर्याप्तिको पूर्ण करेगा ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष परिवर्तनशील प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अथवा इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कौन है ? इस प्रश्नका उत्तर दो प्रकारसे दिया गया है । मूलप्रकृति स्थितिबन्ध प्ररूपणामें स्वामित्वका विचार करते समय यह बतला आये हैं कि जिसके अगले समयमें शरीर पर्याप्ति पूर्ण होगी, ऐसा जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी है और इस उत्तरप्रकृति स्थितिबन्ध प्ररूपणामें स्वामित्वका विचार करते समय जो कुछ बतलाया है, उसका भाव यह है कि जो उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला या तद्योग्य संक्लेश परिणामवाला औदारिकमिश्रकाययोगी जीव है, वह अपने-अपने उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण भूत परिणामोंके होनेपर उस प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है । इन्हीं दो विचारोंके आधारपर यहाँ उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल दो प्रकारसे कहा गया है । प्रथम विचारके अनुसार प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल केवल एक समय उपलब्ध होता है और दूसरे विचारके अनुसार वह कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१५८. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अथवा प्रवर्तमान प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अथवा तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल औदारिकमिश्रकाययोगवाले जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५९. आहार० मणजोगिभंगो। आहारमिस्से धुविगाणं उक्कस्सं अणुक्कस्सं जहण्णुक्कस्सं० अंतो०। सेसाणं च उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अथवा वेउव्वियमिस्सभंगो।

१६०. कम्मइग० पंचणा०-णवदंसणा०-सादा०-मिच्छत्त-सोलसक०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-आदाउज्जो०-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस०-णिमिण-णीचा०-पंचंत० उक्क० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अणु० जह० एग०,

---

प्रकारका क्यों कहा है, इसके कारणका निर्देश औदारिकमिश्रकाय योगमें कालका निर्देश करते समय किया ही है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। आशय यह है कि जब यह माना जाता है कि वैक्रियिक मिश्रकाययोगके सद्भावमें कभी भी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होनेपर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, तब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है और जब यह माना जाता है कि शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके अनन्तर पूर्व समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, तब इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

१५९. आहारक काययोगवाले जीवोंमें सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है। आहारकमिश्रकाययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अथवा यहाँ भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें बन्धको प्राप्त होनेवाली सब प्रकृतियोंका मनोयोगियोंके समान जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसलिए यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही उपलब्ध होता है। किन्तु जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ नहीं हैं, उनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है।

१६०. कार्मणकाययोगवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन समय है। तथा शेष प्रकृतियोंके त्रसकाय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० तिरिण सम० । सेसाणं तस०-पज्जत्ताणं देवगदिपंचगस्स च उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० बेसम० ।

१६१. इत्थिवेदेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०--भय--दुगुंछ--तेजा०-क० वण्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं । सादासा०-इत्थि०-णवुंस-हस्स-रदि-अरदि-सोग-णिरयगदि-तिरिक्खगदि-जादि४-आहार०-पंचसंठा०-अहार०अंगो०-पंचसंघ०-णिरय-तिरिक्खाणुपु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४--थिराथिर--सुभासुभ--दूभग--दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस०-णीचा० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस०-मणुसगदि-पंचिंदि०--समचदु०--ओरालि०अंगो०--वज्जरिसभ०--मणुसाणु०-पसत्थवि०-तस-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चागो० उक्क० ओघं । अणुक्क० जह० एग०,

पर्याप्त, तथा देवगति पञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है ।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय जीव ब्रह्मलोकके कोणसे मरकर अधोलोकके कोणमें विदिशामें उत्पन्न होता है, उसके तीन समयवाली विग्रहगति होती है और उसके इन तीन समयोंमें कार्मणकाययोग होता है। ऐसा जीव एकेन्द्रिय होनेसे इसके किसी भी प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता। इसीसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है, क्योंकि यह यथासम्भव संज्ञी तिर्यञ्च और मनुष्यके तथा देव और नारकीके होता है और इनके अधिकसे अधिक दो मोड़ेवाली ही विग्रहगति होती है। अब रहा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालका विचार सो यहाँ मूलमें जिन प्रकृतियोंका नामोल्लेख किया है, उनका बन्ध ऐसे जीवके भी होता रहता है, इसलिए इन पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। तथा शेष रहीं स्त्रीवेद, पुरुषवेद आदि कार्मण काययोगमें बँधनेवालीं ३३ प्रकृतियाँ सो इनका तीन मोड़ा लेकर उत्पन्न होनेवाले कार्मणकाययोगी जीवके बन्ध नहीं होता, अतएव उनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। यहाँ सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है, क्योंकि कार्मणकाययोगका ही जघन्य काल एक समय है। अतएव कार्मणकाययोगमें इनका जघन्य काल एक समय बन ही जाता है।

१६१. स्त्रीवेदवाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगति, तिर्यञ्चगति, चार जाति, आहारक शरीर, पाँच संस्थान, आहारक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रसकाय, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू० । देवगदि०४ उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । ओरालिय०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्तेय उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादि० । तित्थय० उक्क० जहण्णुक्क० अंतो० । अणु जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० ।

१६२. पुरिसेसु मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-उक्क० ओघं । अणु० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं सा० । सादादीणं इत्थिभंगो । धुविगाणं उक्क० ओघो । अणु० जह० एग०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । सेसं

बन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगतिचतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है।

विशेषार्थ– स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि छयालीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है; क्योंकि ये ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका इतने काल तक बन्ध होता रहता है। दूसरे दण्डकमें कही गई साता वेदनीय आदि पैंतालीस प्रकृतियाँ परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं। इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीसरे दण्डकमें कही गई पुरुषवेद आदि तेरह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टिके भी बन्ध होता है और स्त्रीवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है। चौथे दण्डकमें कही गई देवगतिचतुष्कका उत्तम भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टि अवस्थाके रहते हुए कुछ कम तीन पल्य तक सतत बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य प्रमाण कहा है। पाँचवें दण्डकमें कही गई औदारिक शरीर आदि छह प्रकृतियोंका देवी अवस्थाके मिलने पर निरन्तर बन्ध होता रहता है और देवीकी उत्कृष्ट भवस्थिति पचपन पल्य है। इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य कहा है। यहाँ साधिक कहनेका कारण यह है कि जो पूर्व पर्यायमें अन्तर्मुहूर्त काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध करता है और तदनन्तर ऐशानकल्पमें जाकर देवी होता है, उसके यह काल साधिक पचपन पल्य पाया जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१६२. पुरुषवेदवाले जीवोंमें मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। साता आदिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलोघं। णवरि पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं।

१६३. णवुंसगे धुविगाणं ओरालिय० तिरिक्खगदितियं मूलोघं। सादादीणं इत्थिभंगो। पुरिसवेद०-मणुसभ०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग०-सुस्सर-आदे० उच्चागो० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणुक्कस्स० ट्ठिदि० जहण्णेण

पृथक्त्व है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, और त्रसचतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल एक सौ त्रेसठ सागर है।

विशेषार्थ—देव पर्यायमें तेतीस सागर कालतक मनुष्यगति आदि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा है। साता आदि पैंतालीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके काल का स्पष्टीकरण जिस प्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके कर आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त होता है, इसलिए इनका काल स्त्रीवेदी जीवोंके समान कहा है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्व है। इतने कालतक पुरुषवेदमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण कहा है। यहाँ शेष प्रकृतियाँ २३ रहती हैं, जिनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान जाननेके लिए कहा है सो ओघ प्ररूपणामें इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं,उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय जाति आदि ७ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है। ओघसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल १८५ सागर बतला आये हैं,किन्तु पुरुषवेदमें वह १६३ सागर उपलब्ध होता है। यथा—कोई एक मनुष्य द्रव्यलिङ्गी जीव ३१ सागरकी आयुके साथ अन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ है। वहाँ भवके अन्तमें उसने उपशम सम्यक्त्वके साथ वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया। पुनः वह वेदक सम्यक्त्वके साथ ६६ सागर कालतक रहकर सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। अनन्तर पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि होकर उसके साथ ६६ सागर कालतक रहा। और अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गया। इस प्रकार इस जीवके १६३ सागर कालतक पञ्चेन्द्रिय जाति आदि सात प्रकृतियोंका निरन्तर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल १६३ सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६३. नपुंसकवेदमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ औदारिक शरीर और तिर्यञ्चगतित्रिक अर्थात् तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। साता आदिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल स्त्रीवेदवाले जीवोंके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगसमयं, उक्कस्सेण तेत्तीसं साग० देसू० । देवगदि०४ उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० ओघो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । तित्थय० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि साग० सादि० ।

१६४.अवगदवेदे० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१६५. कसायाणुवादेण कोधादि०४ मणजोगिभंगो ।

है । देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण है । पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, और उत्कृष्टकाल साधिक तीन सागर है ।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है । इसीसे यहाँ पुरुषवेद आदि दस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है; क्योंकि इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध इतने कालतक सम्यग्दृष्टिके ही हो सकता है । नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल मनुष्य और तिर्यञ्चके कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है; इसीलिए यहाँ देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा है; क्योंकि जो नपुंसकवेदी मनुष्य या तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि होता है, उसके देवगति चतुष्कके नियमसे बन्ध होता है । पञ्चेन्द्रिय जाति आदि आठ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहनेका कारण यह है कि जिसने पूर्वभवमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर इन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ किया है और जो मरकर तेतीस सागर आयुके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ है, उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होता है । तीर्थंकर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ जान लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

१६४. अपगतवेदवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अपगत वेदका जघन्य काल एक समय है, या जिस जीवने अपगतवेदमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका एक समयतक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया और दूसरे समयमें वह मरकर देव हो गया, तो अपगतवेदमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध हो जाता है । इसीसे वह एक समय कहा है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि यहाँ एक-एक स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१६५. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधादि चार कषायोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मनोयोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—चारों कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ मनोयोगी जीवोंके समान सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. मदि०-सुद० धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स च ओरालि० मूलोघं। सादासा०-सत्तणोक०-णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-छस्संघ०--णिरयाणु०--आदा--उज्जो०-अप्पसत्थवि०--थावर--सुहुम--अपज्जत्त--साधार०--थिराथिर--सुभासुभ[1]--दूभग--दुस्सर०-अणादे०-जस०-अजस० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मणुसग०-मणुसाणु० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० एकत्तीसं सा० सादिरे०। देवगदि-वेउव्वियस०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०--देवाणु०--पसत्थवि०--सुभग--सुस्सर--आदे०-उच्चा० उक्क० ओघो। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू०। पंचिंदि०-ओरालि०अंगो०-पर०-उस्सा०-तस०४ उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

१६६. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ, तिर्यञ्चगति त्रिक और औदारिक शरीर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, सात नोकषाय, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, छह संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रिय-जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास और त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—ओघसे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कह आये हैं। यह काल एकेन्द्रियोंकी कायस्थितिकी मुख्यतासे कहा गया है। मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानका भी यही काल है। यही कारण है कि इन दोनों अज्ञानोंमें उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उक्त काल कहा है। एकेन्द्रियोंके औदारिक शरीरका नियमसे बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भी यही उत्कृष्ट काल कहा है। जिस मिथ्यादृष्टि मनुष्यने मरणके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक मनुष्यगति और मनुष्य-गत्यानुपूर्वीका बन्ध किया है और मरकर जो अन्तिम ग्रैवेयकमें इकतीस सागरकी आयु-वाला मिथ्यादृष्टि देव होकर इनका बन्ध करता रहता है, उसके इन दोनों प्रकृतियोंके अनु-त्कृष्ट स्थितिबन्धका साधिक इकतीस सागर काल उपलब्ध होता है। इसीसे इन दोनों अज्ञानोंमें उक्त दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है। तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्च या मनुष्यके पर्याप्त अवस्थामें देवगति आदि दस प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च मरणके पूर्व

१. मूलप्रतौ-सुभासुभसुभगदूभग- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. विभंगे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० अंगो०-वएण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-तस०४-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणु जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग०-मणुसाणु० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं सा० देसू० । सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

१६८. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वएण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जहण्णु० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादि० । पच्चक्खाणा०४ उक्क० जह० उक्क० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० बादालसागरो० सादि० । सादावे०-हस्स-रदि-आहार०-

---

अन्तर्मुहूर्त काल तक पञ्चेन्द्रिय जाति आदि आठ प्रकृतियोंका बन्ध कर रहा है और मरकर तेतीस सागरकी आयुके साथ नरकमें उत्पन्न होनेपर वहाँ भी आयुके अन्तिम समय तक इनका निरन्तर बन्ध करता रहता है, उसकी अपेक्षा उक्त दोनों अज्ञानोंमें इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६७. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इतने काल तक इस ज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण आदि ५९ प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल नौवें ग्रैवेयकमें विभङ्गज्ञानके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१६८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है। प्रत्याख्यानावरण चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारअंगो०-थिर-सुभ-जस० उक्क० अणु० जहण्णु० ओघो। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० उक्क० असादभंगो। अणु० जह० उक्क० अंतो० तेत्तीसं सा०। देवगदि०४ उक्क० असादभंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। अपच्चक्खाणा०४तित्थय० उक्क० अंतो०, अणु० जह० अंतो०। उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

सागर है। साता वेदनीय, हास्य, रति, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियों के उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल असाता प्रकृतिके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल असाता प्रकृतिके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञान आदि तीन ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छ्यासठ सागर होनेसे इन तीन ज्ञानोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि पैंतालीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। सम्यग्दृष्टि जीव संयमके बिना असंयम और संयमासंयमके साथ साधिक ब्यालीस सागर तक रहता है और इस कालमें इसके प्रत्याख्यानावरण चारका निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसीसे यहाँ प्रत्याख्यानावरण चारके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक ब्यालीस कहा है। यह काल साधिक दो पूर्वकोटि अधिक ब्यालीस सागर होता है। इसके बाद यह जीव नियमसे संयम को प्राप्त करता है। देवोंकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है और इस कालके भीतर मनुष्यगति आदि पाँच प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर तीन पल्य की आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होता है,उसके अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य काल तक देवचतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियों-के अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। जो सम्यग्दृष्टि जीव संयमके साथ मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होता है और वहांसे आकर मनुष्य होता है,उसके कुछ कम दो पूर्वकोटि काल अधिक तेतीस सागर काल तक तीर्थंकर प्रकृतिका निरन्तर बन्ध होता रहता है। तथा इसी जीवके देव पर्यायमें और वहाँसे च्युत होनेके बाद संयमको प्राप्त होनेके पूर्व समय तक अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका निरन्तर बन्ध होता रहता है। यतः ये दोनों काल साधिक तेतीस सागर होते हैं, इसीसे यहां अप्रत्याख्यानावरण चार और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। यहां शेष कथनका विचार कर काल जान लेना चाहिए। सुगम होनेसे उसका हमने निर्देश नहीं किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६८. मणपज्जव० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदिय०-वेउव्विय०-तेजा०-क०-समचदु०-[वेउव्वि०] अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। सादावे०-हस्स-रदि-आहार०-आहार०अंगो०-थिर-सुभ-जस० उक्क० अणु० ओघं। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० उक्क० जह० उक्क० अंतो०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं संजद०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। णवरि परिहारे अणु० जह० अंतो०। सुहुमसंपरा० अवगदवेदभंगो।

१६९. मनःपर्ययज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, हास्य, रति, आहारकशरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिसंयतमें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल अपगतवेदी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जो मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला है, असंयमके अभिमुख है, उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर रहा है और अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित है, उसके पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। यतः उत्कृष्ट स्थितिबन्धका यह काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो मनःपर्ययज्ञानी जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय अपने-अपने स्थानमें एक समय तक पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है, उस मनःपर्ययज्ञानी जीवके उक्त प्रकृतियोंके स्थितिबन्धका एक समय काल प्राप्त होता है। इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा मनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि होनेके कारण इसमें उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण कहा है। असाता वेदनीय आदि तीसरे दण्डकमें कही गई छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी पाँच ज्ञानावरण आदिके समान है, इसलिए इसके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा जिस मनःपर्ययज्ञानीने इनकी बन्धव्युच्छित्ति कर दी और पुनः प्रमत्तसंयत होकर इनका एक समय तक बन्ध किया और दूसरे समयमें मर कर देव हो गया, उसके इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७०. संजदासंजदे धुविगाणं तित्थयरस्स च उक्क० जहण्णु० अंतोमु० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । सादादिबारस० ओधिभंगो ।

१७१. असंजदे धुविगाणं तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदि-ओरालिय०-वेउव्विय०-दोअंगो०-तिण्णिआणु०-तित्थय०-णीचागो०-सादादिपरियत्तमाणियाओ मूलोघं । पुरिसवे०-पंचिंदि०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-

---

का जघन्य काल एक समय प्राप्त होनेसे वह एक समय कहा है। तथा छठे गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयम प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके ही होता है और इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें और सब काल तो पूर्वोक्त प्रकार बन जाता है। मात्र जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है वह नहीं बनता, अतः वह अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

१७०. संयतासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। साता आदि बारह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयत गुणस्थानमें ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और ५ अन्तराय ये ५३ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं। और जिसके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है, उसके साथ इन ५४ प्रकृतियोंका सतत बन्ध होता है। इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंके होने पर अन्तिम उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें अवस्थित होने पर होता है और यह अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा संयमासंयमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण होनेसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि कहा है। साता आदि शेष १२ प्रकृतियाँ ये हैं—साता वेदनीय, असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति, सो अवधिज्ञानी जीवोंके इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जिस प्रकारसे काल घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकारसे यहां पर भी घटित कर लेना चाहिए।

१७१. असंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ तथा तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तीन आनुपूर्वी, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र और साता आदि परावर्तमान प्रकृतियाँ इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। तथा पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदे०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०।

१७२. चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० मूलोघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

१७३. किण्णाए धुविगाणं उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। सादासादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-णिरयगदि-[देवगदि]-चदुजादि-वेउव्वि०-पंचसंठा०-वेउव्वि०अंगो०-पंचसंघ०-णिरयगदि-देवाणुपु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिरिक्खग०-पंचिंदि०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-तस०४-[णीचा०] उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। तित्थय० उक्क० अणु० जहण्णु० अंतो०। एवं णील-काऊणं। णवरि तिरिक्खगदितिगं सादभंगो।

प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

१७२. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मूलोघके समान है और अवधिदर्शनवाले जीवोंमें अवधिज्ञानियोंके समान है।

१७३. कृष्णलेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगति, देवगति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, पाँच संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रसचतुष्क और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार नील लेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंके जानना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थय० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० उक्क० अंतो० । णवरि काऊए अणु० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि सा० सादि० ।

१७४. तेऊए धुविगाणं पुरिस०-मणुस०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क०

चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल साता प्रकृतिके समान है । तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है ।

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर होनेसे इसमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । सातावेदनीय आदि ४४ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । पुरुषवेद आदि १० प्रकृतियोंका सातवें नरकमें सम्यग्दृष्टिके नियमसे बन्ध होता है और यहाँ सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । तिर्यञ्चगति आदि १२ प्रकृतियोंका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टि नारकीके नियमसे बन्ध होता है और यहाँ मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है । तथा जो जीव सातवें नरकमें जानेके सम्मुख होता है, उस जीवके नरकमें जानेके पूर्व व निकलनेके पश्चात् एक एक अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्ण लेश्या ही होती है । इसलिए उक्त प्रकृतियोंका इस कालमें भी बन्ध होता रहता है । यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर कहा है । कृष्ण लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध मनुष्यके ही सम्भव है और मनुष्यके इसका काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे इस प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । नील लेश्या और कापोत लेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिए । इस कथनका यह आशय है कि नील लेश्या और कापोत लेश्यामें सब प्रकृतियोंका काल अपने-अपने कालको ध्यानमें रखकर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इन लेश्यावाले नरकोंमें मिथ्यादृष्टिके मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भी बन्ध होता है, इसलिए इन लेश्याओंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल जिस प्रकार साता प्रकृतिका कहा है, उसी प्रकार जानना चाहिए। क्योंकि इन लेश्या वाले नरकोंमें इनकी प्रतिपक्षभूत मनुष्यगतित्रिकका भी मिथ्यादृष्टिके बन्ध होता है, इसलिए इनका साता प्रकृतिके समान ही काल उपलब्ध होता है । नील लेश्यामें भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध मनुष्यगतिमें ही सम्भव है, इसलिए नील लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । किन्तु कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध नरकगतिमें भी होता है, इसलिए इस लेश्यामें इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१७४. पीत लेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ, पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेसाग० सादि० । तित्थय० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० वेसाग० सादि० । सादादिछ०-तिरिक्खगदि-देवगदि-एइंदि०-वेउव्वि०-आहार०-पंचसंठा०-दोअंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस०-णीचा० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं पम्माए वि । णवरि अट्ठारस सागरोवमाणि सादि० । एइंदि० आदाव थावरं वज्ज० ।

१७५. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ-[वण्ण]४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०३-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । णवरि मणुसगदिपंचगस्स अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं

और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक दो सागर है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक दो सागर है । साता आदि छह, तिर्यञ्चगति, देवगति, एकेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, पाँच संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पद्मलेश्यामें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्टकाल साधिक अठारह सागर है । तथा इस लेश्यावाले जीवोंके एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—पीत और पद्मलेश्यामें अपने-अपने कालको ध्यानमें रखकर प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके व तीर्थङ्कर प्रकृतिके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहा है । मात्र यह काल सम्यग्दृष्टि जीवके ही प्राप्त होगा । क्योंकि सम्यग्दृष्टिके ही इन प्रकृतियोंका इतने कालतक निरन्तर बन्ध सम्भव है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१७५. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीनशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक, आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति पञ्चकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साग० सादि० । सेसाणं उक्क० अणु० सादभंगो ।

१७६. भवसिद्धि० ओघं । अब्भवसिद्धि० मदि०भंगो । सम्मादिट्ठी० ओधिभंगो । खइगसम्मादि० धुविगाणं उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । मणुसगदिपंचगस्स उक्क० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदिचदुण्णं सेसाणं च ओघं ।

१७७. वेदगस० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चागो०-पंचंत०-उक्क० जहण्णु० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क०

साधिक इकतीस सागर है । तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल साता प्रकृतिके समान है ।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । इतने काल तक इस लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण आदि उनसठ प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध होता रहता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । किंतु मनुष्यगतिपञ्चक अर्थात् मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध संयत मनुष्यके नहीं होता, इसलिए उक्त कालमें से संयत सम्बन्धी शुक्ल लेश्याके अन्तर्मुहूर्त काल कम कर देनेपर देवगति सम्बन्धी शुक्ल लेश्याका तेतीस सागर कालशेष रहता है । यही कारण है कि इन पाँच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल केवल तेतीस सागर कहा है । मिथ्यादृष्टि शुक्ल लेश्यावाले जीवका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर होनेसे स्त्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१७६. भव्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । अभव्य जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान है । सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकाकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एकसमय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । देवगतिचतुष्क और शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—देवायुका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ क्षायिक सम्यक्त्वमें मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१७७. वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

छावट्ठिसाग० । सेसं ओधिभंगो । णवरि देवगदिचदुक्कं उक्क० जह० उक्क० अंतो० । [अणुक्क० जह० अंतो, उक्क०] तिण्णि पलिदो० देसू० ।

१७८. उवसमस० ओधिभंगो । णवरि तित्थय० उक्क० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० उक्क० अंतो० । सेसं धुविगाणं उक्क० अणु० जह० [उक्क०] अंतो० ।

१७६. सासणे पंचणा०-णवदंस०-सोलसक०-भय-दुगु०-तिण्णिगदि-पंचिंदिय०-चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-वण्ण०४-तिण्णिआणुपु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-णीचुच्चागो०-पंचंत० उक्क० ओधिभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ । तिरिक्खगदितियं सत्तमाए उक्क० उक्कस्सं कालं होहिदि त्ति । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो-मणुसाणु०-अणादे० देवस्स उक्कस्सभंगं भवदि । देवगदि-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-

छ्यासठ सागर है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है ।

विशेषार्थ—उत्तम भोगभूमिमें वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ देवगति चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१७८. उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंके तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है; इस कथनका यह अभिप्राय है कि अवधिज्ञानमें परावर्तमान प्रकृतियोंका काल जिस प्रकार कहा है, उस प्रकार उनका काल यहाँ भी कहना चाहिए । शेष यहाँ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और तीर्थङ्कर प्रकृतिके विषयमें जो विशेषता है, वह यहाँ अलगसे कही ही है ।

१७९. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल अवधिज्ञानी जीवोंके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि प्रमाण है । तिर्यञ्चगति त्रिकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल सातवीं पृथिवीमें होगा, ऐसा यहाँ समझना चाहिए । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और अनादेय प्रकृतियोंका उत्कृष्ट भंग देवके होता है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० उक्क० असंखेज्जवस्सायुगाणं तिरिक्ख-मणुसाणुगाणं उक्कस्सभंगं भवदि। सादासादा०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-चदुसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-जस०-अजस० उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१८०. सम्मामि० पंचणा०-छदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-दोगदि-पंचिंदि०-चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-दोआणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चागो०-णिमि०-पंचंत० उक्क० अणु० जहण्णु० अंतो०। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० उक्क० अणु० ओघं। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस०उक्क० जहण्णु० अंतो०। अणु० ओघं। मिच्छादि० मदिभंगो।

विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट भङ्ग असंख्यातवर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्योंके होता है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, चार संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अवधिज्ञानी जीवोंके पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी उन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल जानना चाहिए। यहाँ एक आवलिसे ऊपर कालकी अन्तर्मुहूर्त संज्ञा है। तथा इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है। सो इसका कारण यह है कि सासादन गुण-स्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह आवलि है। यद्यपि इन प्रकृतियोंमें कुछ परावर्तमान प्रकृतियाँ भी हैं, पर उनकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक अलग-अलग गतिके जीव होनेसे यहाँ उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। इनके सिवा शेष सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१८०. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहा-योगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। साता वेद-नीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका काल ओघके समान है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशः-कीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८१. सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो। असण्णि० धुविगाणं ओरालि० तिरिक्खगदितिगं च चत्तारि आयु० ओघो। सेसाणं उक्क० अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१८२. आहार० धुविगाणं तिरिक्खगदि-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-णीचा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असं०। सेसाणं पगदीणं मूलोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो। एवं उक्कस्सकालं समत्तं।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है। कारण कि जो मिथ्यात्वके अभिमुख उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाला जीव होता है, उसके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और अन्यके अनुत्कृष्ट, इसलिए ये दोनों अन्तर्मुहूर्तसे न्यून नहीं होते। यद्यपि इन प्रकृतियोंमें कुछ परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, पर उनकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक अलग-अलग गतिके जीव होनेसे उनका भी वही काल बन जाता है। साता वेदनीय आदि छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध स्वस्थानमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है; क्योंकि एक तो इनका स्वस्थानमें बन्ध होता है और दूसरे ये परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इस कालके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती। शेष असाता वेदनीय आदि छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए उत्कृष्ट संक्लेशवाले जीवके होता है। यतः यह बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। पर ये प्रकृतियाँ भी परावर्तमान हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहा है।

१८१. संज्ञी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान है। असंज्ञी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ औदारिक शरीर, तिर्यञ्चगति त्रिक और चार आयुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जो काल घटित करके बतला आये हैं, उससे संज्ञी जीवोंके कालमें कोई विशेषता नहीं है; इसलिए संज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१८२. आहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल मूलोघके समान है। अनाहारक जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका काल कार्मण काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—आहारकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८३. जहण्णए पगदं। दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे०—पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० जह० ट्ठिदिबंधो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णु० अंतो०, अजह० चदुसंज०-ट्ठिदि० केवचिरं०? तिभंग०। सादि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं। पंचदंस०-बारसक०-भय-दुगु० तेजा०-क० वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० जह० ट्ठिदि० केवचिरं०? जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सादा०-[आहारसरीर]-आहार०अंगो०-जस० जह० ट्ठिदि० जहण्णु० अंतो० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-णिरयग०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस० जह० [1]अजह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पुरिस० जह० जहण्णु० अंतो०। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठिसाग० सादि०।

बातको ध्यानमें रखकर यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ।

जघन्य बन्धकाल

१८३. जघन्य कालका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका कितना काल है? अजघन्य स्थितिबन्धके तीन भङ्ग हैं—अनादि अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त। उनमेंसे सादि सान्त अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। साता वेदनीय, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेदके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है।

---

१. मूलप्रतौ अज्जह० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८४. चदुण्णं आयुगाणं जह० ट्ठिदि० जहण्णु० एग० । अज० जहण्णु० अंतो । एवं सव्वत्थ योग-कसायमग्गणाओ वज्ज० । तिरिक्खग०-ओरालि०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । मणुसग०-वज्जरि०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०[1] । अज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अजह० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । ओरालि०अंगो० जह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । तित्थय० जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो० । अज० जह० अंतो०, उक्क[2]० तिण्णि सा० सादि० । उच्चा० जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो० । अज०

१८४. आयुकर्मकी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । योग और कषाय मार्गणाओंको छोड़कर आयुकर्मके विषयमें इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए । तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । मनुष्यगति, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उछ्वास और त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकसौ पचासी सागर है । समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्योपम है । औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर है । उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१. मूलप्रतौ अंतो० अज्ज० जह० एग० उक्क अंतो० अज्ज० इति पाठः । २. मूलप्रतौ उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० ।

अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है ।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि १८ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें अन्तिम स्थितिबन्धके समय होता है, इसलिए उनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त तीन प्रकारका होता है। जो अन्य ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं,उनका भी इसी प्रकारसे तीन प्रकारका बन्ध होता है। उनमेंसे यहाँ सादि-सान्त अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल कहा गया है। जब यह अजघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर पुनः श्रेणि पर आरोहण करनेसे छूट जाता है,तब इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है और यदि कुछ कम अर्धपुद्गल काल तक यह जीव श्रेणि पर नहीं चढ़ता है, तो इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। पाँच दर्शनावरण आदि २८ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है। यहाँ जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि एक बार जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होनेके बाद वे पुनः कमसे कम अन्तर्मुहूर्त बाद होते हैं और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है; क्योंकि बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपने-अपने अन्तिम स्थितिबन्धके अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय आहारकद्विकका एक समयके लिए बन्ध करता है और दूसरे समयमें मरकर वह देव हो जाता है, उसके आहारकद्विकके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय उपलब्ध होता है। तथा इनके अजघन्य स्थिति बन्धका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त ही है; क्योंकि एक तो ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और दूसरे सातवें और आठवें गुणस्थानका उत्कृष्ट काल ही अन्तर्मुहूर्त है। इसलिए तो इन दोनों प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है और साता व यशःकीर्ति ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। क्योंकि साता वेदनीय और यशःकीर्तिका एक समयके लिए अजघन्य स्थितिबन्ध हुआ और दूसरे समयमें इनके स्थानमें असातावेदनीय व अयशःकीर्तिका स्थितिबन्ध होने लगा,तो इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है और यदि इनका निरन्तर स्थितिबन्ध होता रहा, तो वह अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होगा। इसके बाद इनके स्थितिबन्धका काल समाप्त हो जानेके कारण नियमसे इनका स्थान इनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियाँ ले लेंगी। इसलिए सातावेदनीय और यशःकीर्तिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। असातावेदनीय आदि ३८ प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८५. आदेसेण णेरइगा० धुविगाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अजह० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि तिसमयूणाणि, उक्क० ट्ठिदि० तेत्तीसं

स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त इसलिए कहा है; क्योंकि सामान्यतः इनके बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद क्षपक प्रकृति है और क्षपक श्रेणिमें एक-एक स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है, इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय इसके प्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे है और नपुंसकवेद व स्त्रीवेदकी प्रथम व द्वितीय गुणस्थानमें बन्ध व्युच्छित्ति हो जानेके बाद जीव साधिक दो छ्यासठ सागर काल तक आगेके गुणस्थानोंमें बना रहनेसे इतने काल तक सतत इसका नियमसे बन्ध करता रहता है; इसलिए इसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर कहा है। आयुकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध एक समय तक और अजघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त तक होता है; ऐसा नियम है। इसलिए चारों आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है; किन्तु योग और कषाय मार्गणामें इनके जघन्य स्थितिबन्धकी तरह अजघन्य स्थितिबन्धका भी जघन्य काल एक समय बन जाता है, क्योंकि किसी भी जीवके किसी एक कषाय और योगमें एक समय तक आयुका अजघन्य स्थितिबन्ध होकर दूसरे समयमें उसके उस योग और कषायका बदल जाना सम्भव है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए तिर्यञ्चगति आदि चार प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेका कारण इन प्रकृतियोंका सप्रतिपक्ष होना है। आगे भी यथासम्भव यह काल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिके देव अपनी आयुके प्रथम समयसे लेकर अन्त तक मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते रहते हैं, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। जो मनुष्य सम्यग्दृष्टि देवगतिचतुष्कका नियमसे बन्ध कर रहा है, उसके तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होने पर भी उनका बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदि सात प्रकृतियोंके स्थितिबन्धका स्वभावसे जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त व अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। देवगति और नरकगतिमें इनका नियमसे बन्ध होता है, तिर्यञ्चगतिमें दूसरे गुणस्थानसे लेकर पाँचवें गुणस्थान तक नियमसे बन्ध होता है और मनुष्यगतिमें दूसरे गुणस्थानसे लेकर अपनी-अपनी बन्ध-व्युच्छित्ति होने तक इनका नियमसे बन्ध होता है। अब यदि इन गतियों और इन प्रकृतियोंके बन्धके योग्य अवस्थाका विचार कर इनके बन्धके उत्कृष्ट कालका योग किया जाय, तो वह एक सौ पचासी सागरसे अधिक नहीं होता; इसीसे यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल एक सौ पचासी सागर कहा है।

१८५. आदेशसे नारकियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा० । थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि४--तिरिक्खग०--तिरिक्खाणु०--णीचा० जह० [जह०] एग०, उक्क० बे सम० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, मिच्छत्त० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० । पुरिस०-मणुसग०-समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे सम० । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । तित्थय० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि साग० सादि० । सेसाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे समयं । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं पढमाए । णवरि तिरिक्खगदितिगं सादभंगो । पुरिस०-[मणुसग० समचदु०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा०]-तित्थय० सागरोवमं देसूणं । धुविगाणं सागरोवम० ।

समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है; किन्तु मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल सबका तेतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल साधिक तीन सागर है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल साता प्रकृतिके समान है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्र और तीर्थंकर प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर है तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल एक सागर है।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होता है और ऐसे जीवके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें या प्रथम व द्वितीय समयमें जघन्य स्थिति हो सकती है। इसीसे यहाँ सामान्यकी अपेक्षा व प्रथम नरकमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। तथा इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्टकाल अपनी-अपनी बन्धकी योग्यतानुसार अलग-अलग है यथा—ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका सतत बन्ध होता रहता है और नरककी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल दो समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल दो समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८६. बिदियादि याव छट्ठि त्ति थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० जहण्णु० अंतो० । अज० जह० एग०, मिच्छ० अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो ट्ठिदी० । सेसाणं जह० अज० उक्क०भंगो । सत्तमाए थीणगिद्धि०३ मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-तिरिक्खगदितिगं जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो० ।

कम करके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल कहा गया है। जो स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंका एक समयतक बन्ध करता है और दूसरे समयमें मरकर अन्यगतिमें चला जाता है, उसके इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। नरकमें मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए मिथ्यात्व प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है; यह स्पष्ट ही है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेद आदि १० प्रकृतियाँ सप्रतिपक्ष हैं और इनका कमसे कम एक समयतक बन्ध होता है; ऐसा नियम है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा सम्यग्दृष्टि नारकी इनका नियमसे बन्ध करता है और नरकमें सम्यक्त्वका काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। जिस नारकीने तीर्थङ्कर प्रकृतिका एक समयतक जघन्य स्थितिबन्ध किया और दूसरे समयमें वह जघन्य स्थितिबन्ध करने लगा, उसके इसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है और नरकमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका निरन्तर बन्धकाल साधिक तीन सागर है; यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहाँ इस प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन सागर कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनके निरन्तर बन्धका यहाँ जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यह काल उक्त प्रमाण कहा है। प्रथम नरकमें सब काल इसी प्रकार बन जाता है, किन्तु कुछ विशेषता है। यथा—प्रथम नरकमें तिर्यञ्चगति त्रिकके बन्धके समय इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका भी बन्ध सम्भव है, इसलिए साता प्रकृतिके समान इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे यह काल साता प्रकृतिके समान कहा है। प्रथम नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है, किन्तु यहाँ वेदक सम्यक्त्वका काल कुछ कम एक सागर है; इसलिए यहाँ पुरुषवेद आदि १० और तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर कहा है। किन्तु ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्व गुणस्थानमें निरन्तर बन्ध होता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल एक सागर कहा है।

१८६. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान है। सातवीं पृथिवीमें स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा०। मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। सेसं उक्क०भंगो। णवरि धुविगाणं अज० जह० अंतो०।

१८७. तिरिक्खेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-तिरिक्खग०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०-उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सेसाणं जह० अज० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख०३ सव्वपगदीणं जह० अज० उक्कस्सभंगो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता० सव्वपगदीणं जह० अज० उक्कस्सभंगो।

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वके अभिमुख हुए द्वितीयादि पृथिवीके नारकीके अन्तिम स्थितिबन्धमें अवस्थित होने पर स्त्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातवीं पृथिवीमें इन प्रकृतियोंके व तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सातवीं पृथिवीमें जो असंयत सम्यग्दृष्टि स्वस्थानमें मनुष्यगति आदि तीनका कमसे कम एक समयतक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जघन्य स्थितिबन्ध करता है, उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंका यह काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक यहाँ तीसरे व चौथे गुणस्थानका काल मिलाकर अधिकसे अधिक जितना होता है, उतने काल तक होता है; इसलिए अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

१८७. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोक प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

१८८. मणुस०३ खवगपगदीणं धुविगाणं जह० ट्ठिदि० ओघं। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० पुव्वकोडिपुधत्तं। पंचदंस०-बारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वएण०४-अगुरु०-उप०-णिमि० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० उक्कस्सभंगो। सादावे०-आहार०-आहार०अंगो०-जस० जह० अज० ओघं। असादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-तिरिक्खग०-मणुसग०-चदुजादि-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस०-णीचागो० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसमयं। अज० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। मिच्छ० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० ट्ठिदि० ज[1]ह० खुद्दाभ० बिसमयूणं अंतो०, उक्क० उक्कस्सभंगो। समचदु०-पसत्थ०-सुभग०-सुस्सर-आदे० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे समयं। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। मणुसिणीसु देसू०।

विशेषार्थ—यह हम अनेक बार बतला आये हैं कि तिर्यञ्चोंमें सूक्ष्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। इसके बाद जीव नियमसे बादर और पर्याप्त होकर जघन्य स्थितिबन्ध करता है। इसीसे यहां पाँच ज्ञानावरण आदिकी अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

१८८. मनुष्यत्रिकमें क्षपक ध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पाँच दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट कालका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। सातावेदनीय, आहारकशरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें दो समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण और शेष दो में अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट कालका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। पर मनुष्यिनियोंमें उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। पुरुषवेद, देवगति चतुष्क और उच्च-

१. मूलप्रतौ जह० एग० खुद्दाभ० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिस०-देवगदि४-उच्चा० जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । मणुसिणीसु देसू० । णिरयगदि-णिरयाणुपु० जह० अज० उक्कस्सभंगो । पंचिंदि०-पर०-उस्सा०-तस०४ जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसम० । अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । तित्थय० जह० ट्ठिदि० ओघं । मणुसिणीसु तित्थय० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० ।

१८६. मणुसअपज्ज० धुविगाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे सम० । अज० जह० खुद्दाभव० बिसमयूणं, उक्क० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क० बे समयं । अज० जह० एग, उक्क० अंतो० ।

गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है, पर मनुष्यिनियोंमें कुछ कम तीन पल्य है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास और त्रस चतुष्क प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। पर मनुष्यिनियोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।

१८६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल दो समय कम क्षुल्लकभव ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—**यहाँ** क्षपक प्रकृतियोंसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, और पाँच अन्तराय इन १८ प्रकृतियोंका ग्रहण किया है। मनुष्यत्रिकके उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति प्रमाण काल तक इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है। समचतुरस्रसंस्थान आदि पाँच और पुरुषवेद आदि छह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि मनुष्यके निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसीसे यहां मनुष्यसामान्य और पर्याप्त मनुष्यके इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य और मनुष्यिनीके कुछ कम तीन पल्य कहा है। पञ्चेन्द्रिय जाति आदि सात प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि मनुष्यके तो निरन्तर बन्ध होता ही है पर जो मनुष्य भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं उनके अन्तर्मुहूर्त काल पूर्वसे भी इनका बन्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती। इसीसे इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा है। यह काल सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमें कुछ कम एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य प्रमाण जानना चाहिए और मनुष्यिनियोंमें अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य जानना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला मनुष्य मर कर मनुष्योंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० जह० जह० एग०, उक्क० बे सम०। अज० ट्ठिदि० जह० दस वस्ससहस्साणि बिसमयूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सा०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे सम०, अज० जह० एग०, मिच्छ० अंतो०, उक्क० एक्कत्तीसं सा०। पुरिस०-मणुसग०-पंचिंदि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-तस-सुभग-सुस्सर-आदे०-उच्चा० जह० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा०। तित्थय० जह० अज० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। सेसाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बेसम०। अज० उक्कस्सभंगो।

१६१. एवं भवण०-वाणवें०। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। जोदिसि याव णवगेवज्जा त्ति जह० अज० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, मिच्छ० अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो ट्ठिदि त्ति। एवं णेदव्वं सव्वट्ठ त्ति।

नहीं उत्पन्न होता। इसीसे यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कहा है। शेष काल विचार कर जान लेना चाहिए।

१९०. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सबका इकतीस सागर है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

१९१. इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अपनी स्थिति कहनी चाहिए। ज्योतिषियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि तक जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९२. एइंदिएसु धुविगाणं तिरिक्खगदितिगं च तिरिक्खोघं। सेसाणं तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। बादर धुविगाणं अंगुलस्स असंखे०। तिरिक्खगदितिगं जह॰ ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० कम्मट्ठिदी०। बादरपज्ज० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। एवं तिरिक्खगदितिगं पि। सेसाणं जह० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। बादरअपज्ज० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। सुहुमे धुविगाणं जह० ट्ठिदि० तिरिक्खोघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। एवं तिरिक्खगदितिगं। सेसाणं जह० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। पज्जत्तापज्जत्तेसु सव्वपगदीणं तिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि ४५ प्रकृतियोंका देवोंके निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल दो समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। मिथ्यात्वके साथ देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर कहा है। देव सम्यग्दृष्टिके पुरुषवेद आदि तेरह प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसीसे यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। असंज्ञी जीव भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें ही मरकर उत्पन्न होता है, इसलिए देव सामान्यकी अपेक्षा यहाँ जो काल कहा है, वह उनमें भी घटित हो जाता है। मात्र अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कहते समय वह उनकी भवस्थितिप्रमाण ही कहना चाहिए, क्योंकि देव सामान्यमें यह काल देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिको ध्यानमें रखकर कहा है। शेष कालका स्पष्टीकरण जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके कथनके समय किया है, उसी प्रकार यहाँ पर भी कर लेना चाहिए।

१९२. एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ और तिर्यञ्चगति त्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। बादर एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है। बादर पर्याप्तकोंमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकका काल भी जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। बादर अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतित्रिकका काल जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

---

१. मूलप्रतौ जह० जह० ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९३. बेइं०-तेइं०-चदुरिं० तस्सेव पज्जत्तापज्ज० उक्कस्सभंगो। पंचिंदिय०२ खवगपगदीणं ओघं। सेसाणं उक्कस्सभंगो। णवरि धुविगाणं अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। पंचिंदियअपज्जत्ता उक्कस्सभंगो।

१९४. पंचकायाणं सव्वपगदीणं उक्कस्सभंगो। णवरि यम्हि अंतो० तम्हि जह० एग० कादव्वं।

१९५. तस०२ खवगपगदीणं जह० ओघं। अज० अणु० भंगो। णवरि जह० अंतो०। सेसाणं धुविगाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज०

विशेषार्थ—तिर्यञ्च सामान्यके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और तिर्यञ्चगतित्रिकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं। यह काल यहाँ एकेन्द्रियोंमें इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए यह कथन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसलिए इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। यह तो स्पष्ट ही है, पर इनमें तिर्यञ्चगतित्रिकके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण कहनेका कारण यह है कि इन तीन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है और बादर अग्निकायिक व बादर वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है। इससे यहाँ यह काल इतना ही उपलब्ध होता है। इसी प्रकार शेष कालका भी विचार कर उसका कथन कर लेना चाहिए।

१९३. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कायस्थिति प्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—विकलत्रय और उनके पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जो काल कहा है, वही यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल जानना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९४. पाँच स्थावर कायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि जहाँपर जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, वहाँपर जघन्य काल एक समय कहना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जो काल कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। मात्र जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तके स्थानमें एक समय कहना चाहिए, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

१९५. त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका काल ज्ञाना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणावरणभंगो। सेसाणं उक्कस्सभंगो। तसअपज्ज० उक्कस्सभंगो।

१९६. पंचमण०-पंचवचि० सव्वपगदीणं जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। चदुआयु० जह० ट्ठिदि० जहण्णु० एग०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

१९७. कायजोगि० खवगपगदीणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। णवरि सादा०-पुरिस०-जस०-उच्चा० अंतो०। सेसाणं धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स य जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सेसाणं मणजोगिभंगो।

वरणके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। त्रस अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

१९६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चार आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोग और पाँचों वचनयोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। चारों आयुओंके अजघन्य स्थितिबन्धका साधारणतः जघन्य और उत्कृष्ट काल यद्यपि अन्तर्मुहूर्त है, पर उक्त योगोंका जघन्य काल एक समय होनेसे यहाँ आयुओंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९७. काययोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, पुरुषवेद, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और तिर्यञ्चगति त्रिकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—एक तो क्षपक प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है और दूसरे काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। मात्र साता वेदनीय आदि चार क्षपक प्रकृतियोंका काययोगमें निरन्तर बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है, क्योंकि जिन गुणस्थानोंमें इनका निरन्तर बन्ध होता है, उनमें काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही उपलब्ध होता है। इसलिए इन चार प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९८. ओरालिए धुविगाणं जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि देसू० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-णीचागो० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तिण्णि वाससहस्साणि देसू० । सेसाणं कायजोगिभंगो ।

१९९. ओरालियमिस्से पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालिय-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत०-देवगदि०४-तित्थय० जह० अज० जह० उक्क० अंतो० । से काले सरीरपज्जत्तीहि जाहिदि त्ति यदि अधाप-

शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहनेका कारण यह है कि इनका काययोगकी अपेक्षा निरन्तर अजघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें होता रहता है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। इसके बाद ये बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त होकर इनका जघन्य स्थितिबन्ध करते हैं। यही कारण है कि यहाँ शेष ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-प्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चगतित्रिकका निरन्तर बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है और उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए इन तीन प्रकृतियोंके भी अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९८. औदारिक काययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चग-त्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग काययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष है। इनके अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिक काययोग होता है। इसीसे औदारिक काययोगमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है तथा बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति तीन हजार वर्ष है। इनके अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्षतक औदारिक काययोग होता है। इसीसे औदारिक काययोगमें तिर्यञ्चगति त्रिकके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है; क्योंकि इन तीन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध औदारिक काययोगके रहते हुए यहीं पर सम्भव है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१९९. औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पाँच अन्तराय, देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको पूर्ण करेगा, इसलिए यदि अधःप्रवृत्तका यह काल लेते हैं तो जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्जस्स जह० अजह० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं जह० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२००. वेउव्वियका०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० उक्कस्सभंगो । कम्मइगका० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय०-दुगुंच्छ-तिरिक्ख०-एइंदिय०-तेजा०-कम्म०-हुंडसं०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-आदाउज्जो०-थावर-बादर-सुहुम०-पज्जत्तापज्ज०-पत्तेग-साधारण०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-जस०-अजस०-णिमिण-णीचा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० बे सम० । [अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम० । सेसाणं जह० अजह० जह० एग०, उक्क० तिण्णि सम० ।]

२०१. इत्थि० खवगपगदीणं जह० जहण्णु० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं । पंचदंसणा०-मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं । सादा०-आहार०-आहार०अंगो०-जस० जह० अज० ओघो । असादा०-इत्थि०-णवुंस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-दोगदि-चदु-

शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

२००. वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान हैं । कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल तीन समय है ।

२०१. स्त्रीवेदमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्त्व है । पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सौ पल्य पृथक्त्व है । साता वेदनीय, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है । असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जादि-पंचसंठाण-पंचसंघडण-दोआणुपुव्वि-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर०४-थिरा-थिर-सुभासुभ-[दूभग-दुस्सर-अणादेय]-अज०-णीचागो० जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो। पुरिस०-उच्चागो० ओघं। णवरि अज० अणुक्कस्सभंगो। आयु० ओघं। मणुसग०-पंचिंदि०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्ज०-मणुसाणु०-पसत्थवि०-तस-सुभग-सुस्सर-आदे'० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। देवगदि०४ उक्कस्सभंगो। ओरालि०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्जत्त-पत्ते० जह० ट्ठिदि० जह० एग० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलि० सादि०। तित्थ० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० अणुक्कस्सभंगो।

स्थावर चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है। आयुकर्मकी चारों प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है। देवगति चतुष्कका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है, इसलिए इसमें १८ क्षपक प्रकृतियों और पाँच दर्शनावरण आदि २९ प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व प्रमाण कहा है। स्त्रीवेदमें पुरुषवेद और उच्चगोत्रके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कह आये हैं। वही अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल है, इसलिए यहाँ यह काल अनुत्कृष्टके समान कहा है। स्त्रीवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य है, इसलिए यहाँ मनुष्यगति आदि ११ प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल कुछ कम पचपन पल्य कहा है, क्योंकि देवी सम्यग्दृष्टिके इन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। स्त्रीवेदी देवीके औदारिकशरीर आदि छह प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। तथा देवी पर्याय छूटनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

१. मूलप्रतौ आदे० जस० जह० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०२. पुरिसेसु खवगपगदीणं जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। पुणो धुविगाणं जह० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदि०। सेसाणं उक्कस्सभंगो।

२०३. णवुंसगे खवगपगदीणं जह० ट्ठिदि० जहण्णुक्कस्सेण अंतो०। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। पुणो धुविगाणं तिरिक्खगदितिगस्स ओरालि० तिरिक्खोघं। सेसाणं उक्कस्सभंगो। णवरि तित्थकरं इत्थिवेदभंगो।

२०४. अवगदवे० सगपगदीणं जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। कोधादि०४ उक्कस्सभंगो। णवरि खवगपगदीणं जह० ओघो।

२०५. मदि०-सुद० धुविगाणं तिरिक्खोघं। णवरि अज० जह० अंतो०। सेसाणं उक्कस्सभंगो। विभंगे उक्कस्सभंगो। णवरि पंचणाणादि सम्मत्ता० संजमाभि-

२०२. पुरुषवेदवाले जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व है। पुनः ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी कायस्थिति प्रमाण है। तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल उत्कृष्टके समान है।

२०३. नपुंसकवेदवाले जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। पुनः ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ तिर्यञ्चगतित्रिक और औदारिक शरीर प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

२०४. अपगतवेदवाले जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्रोधादिक चार कषायवाले जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणीमें अन्तर्मुहूर्त काल तक उपलब्ध होता है। ओघसे भी यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान कहा है। अपगतवेदमें उपशामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहां अपनी सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। चार कषायोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके कालका स्पष्टीकरण अपगतवेदके समान ही है। शेष कथन सुगम है।

२०५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंमें से सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके और संयमके अभिमुख हुए जीवके उद्योतके

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मुहुत्तं याओ पगदीओ उज्जोवव्वज्जाओ ताओ पग० जह० ट्ठिदि० उक्क० अंतो० ।

२०६. आभि०-सुद०-ओधि० सादादिछण्णं ओघसादभंगो । असादादिछक्कं ओघं । मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० । सेसाणं उक्कस्सभंगो । मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो० उक्कस्सभंगो । णवरि सादादि-असादादि० आभिणि०भंगो ।

२०७. परिहार० धुविगाणं अधापवत्त० जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । सेसाणं जह० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अथवा दंसणमोहक्खवगस्स कदकरणिज्जस्स दिज्जदि तदो जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणं । सादा०-हस्स-रदि-आहारदुग-थिर-सुभ-जस० जह० [जह०] उक्क० अंतो० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सुहुमसं० सव्वपगदीणं जह० ट्ठिदि० ओघं । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

सिवा जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

२०६. आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें साता आदिक छह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघमें कहे गये साताप्रकृतिके समान है। असाता आदि छह प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि साता आदि और असाता आदि प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है।

२०७. परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अथवा मोहनीयकी क्षपणा करनेवाले कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीवके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व प्राप्त होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। साता वेदनीय, हास्य, रति, आहारकद्विक, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०८. संजदासंजदे उक्कस्सभंगो। णवरि सादादि-असादादि० आभिणि०-भंगो। असंजदे धुविगाणं तिक्खिगदितिगं च मदिभंगो। सेसं उक्कस्सभंगो।

२०९. चक्खुदंसणी० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

२१०. किण्ण०-णील०-काउ० उक्कस्सभंगो।। णवरि तित्थयरं णीलभंगो।

२११. तेउले० परिहारभंगो। णवरि अप्पप्पणो पगदीओ जाणिदव्वा। धुविबंधियाणं अज० उक्क० सोधम्मभंगो। एवं पम्माए। णवरि सगट्ठिदी।

२१२. सुक्काए खवगपगदीणं जह० जह० उक्क० अंतो०। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो०। अज० जह० एग०, मिच्छत्तं अंतो०, उक्क० एक्कत्तीसं साग० सादिरे०। पुरिस० जह० ट्ठिदि०[1] ओघं। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। एवं अट्ठकसायाणं परियत्तमाणियाणं। मणुसग०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० ओधिभंगो। सादा०-

२०८. संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि साता आदि और असाता आदिकका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानके समान है। असंयत जीवोंमें ध्रुव प्रकृतियाँ और तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है।

२०९. चक्षुदर्शनी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग त्रस पर्याप्तकोंके समान है, अचक्षुदर्शनी जीवोंमें ओघके समान है। अवधिदर्शनी जीवोंमें अवधिज्ञानियोंके समान है।

२१०. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग नील लेश्याके समान है।

२११. पीत लेश्यामें परिहारविशुद्धिसंयतके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

२१२. शुक्लेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है। पुरुषवेदके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार परिवर्तमान आठ कषायोंका काल जानना चाहिए। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्य गत्यानुपूर्वीका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके

1. मूलप्रतौ ट्ठिदि० जह० ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्स-रदि-आहार०-आहार०अंगो०-थिर-सुभ-जस० ओधिभंगो। तप्पडिवक्खाणं इत्थिवेदादि य परियत्तमाणियाणि ओघं।

२१३. भवसिद्धिया० मूलोघं। अब्भवसिद्धिया० मदिभंगो।

२१४. सम्मादिट्ठि० आभिणिभंगो। खइगसम्मादिट्ठी० ओधिभंगो। णवरि सगट्ठिदिं कादव्वं। एवं वेदगे०। उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-

समान है। साता वेदनीय, हास्य, रति, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है। तथा इनके प्रतिपक्षभूत स्त्रीवेद आदि परिवर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिमें एक स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है, इसलिए शुक्ललेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा शुक्ल लेश्यामें इनका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है, उसके स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है और वहाँ एक स्थितिबन्धका काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है; यह स्पष्ट ही है। मात्र मिथ्यात्व सप्रतिपक्ष प्रकृति न होनेसे उसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद भी क्षपक प्रकृति है, इसलिए उसके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान कहा है। तथा एक तो यह सप्रतिपक्ष प्रकृति है और दूसरे सम्यग्दृष्टिके एक मात्र तीन वेदोंमेंसे इसीका बन्ध होता है, इसलिए इसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। तथा इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र एक तो अप्रत्याख्यानावरण चारका अविरतसम्यग्दृष्टिके और प्रत्याख्यानावरण चारका संयतासंयतके जघन्य स्थितिबन्ध कहना चाहिए और दूसरे अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहते समय उसे देवोंकी तेतीस सागर आयुके प्रथम समयसे प्रारम्भ कर साधिक तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२१३. भव्यजीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अभव्य जीवोंमें अपनी प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

२१४. सम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए। इसी प्रकार वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणु०-अगु०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-पंचंतरा० जह० ट्ठिदि० जह० एग, उक्क० अंतो० । अज० ट्ठिदि० जहण्णु० अंतो० । णवरि देवगदि०४ अज० ट्ठिदि० जह० एग० । सेसाणं जह० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि अट्ठकसा०-मणुसगदिपंचगस्स जह० अज० जहण्णु० अंतो० । णवरि मणुसगदिपंचगस्स जह० सादभंगो ।

२१५. सासणे सम्मामिच्छे उक्कस्सभंगो । मिच्छादिट्ठी० मदिभंगो । सण्णीसु सव्वपगदीणं जह० मणुसोघं । अज० अणुक्क०भंगो । णवरि केसिं वज्ज० अंतो० । असण्णीसु उक्कस्सभंगो । णवरि धुविगाणं असंखेज्जा लोगा ।

चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंके और मनुष्य गतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका काल साताके समान है ।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर, क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर और वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति छयासठ सागर है । इसे ध्यानमें रखकर इन सम्यक्त्वोंमें अपनी अपनी प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जहां जो सम्भव हो काल कहना चाहिए । शेष विशेषताका निर्देश मूलमें किया ही है । यहां उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण आदिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय कहा है सो इसका कारण यह है कि जो उपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणिमें इनका एक समय तक जघन्य स्थितिबन्ध करता है और दूसरे समयमें मर कर वह देव होकर अजघन्य स्थितिबन्ध करने लगता है उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है । इसीसे वह एक समय कहा है । इसी प्रकार देवगति चतुष्कके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिए । कारण कि उपशम श्रेणिसे उतरते समय जो एक समयके लिए देवगतिचतुष्कका अजघन्य स्थितिबन्ध करता है और दूसरे समयमें मर कर उसके देव हो जाने पर वह इन प्रकृतियोंका अबन्धक हो जाता है, इसलिए यह काल भी एक समय उपलब्ध होता है । शेष कथन सुगम ही है ।

२१५. सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है । संज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल सामान्य मनुष्योंके समान है । अजघन्य स्थितिबन्धका काल अनुत्कृष्टके समान है । इतनी विशेषता है कि किन्हीं प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त काल नहीं है । असंज्ञी जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१६. आहारे धुविगाणं थीणगिद्धितियाणं च जह० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। णवरि खवगपगदीणं जह० ट्ठिदि० ओघं। सेसाणं पगदीणं ओघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं कालं समत्तं।

अंतरकालपरूवणा

२१७. अंतरं दुविधं--जहण्णयं उक्कस्सयं च। उक्कस्सए पगदं। दुवि०---ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरं केवचिरं कालादो होंति? जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे० उक्क०ट्ठिदि० केवचिरं०? जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसं०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसा० देसू०। इत्थिवे० सादि०। अट्ठक० उक्क० ट्ठिदि०

---

२१६. आहारक जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली और स्त्यानगृद्धित्रिक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका काल ओघके समान है। अनाहारक जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

इस प्रकार जघन्य काल समाप्त हुआ।

इस प्रकार काल प्ररूपणा समाप्त हुई।

अन्तर काल प्ररूपणा

२१७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल कितना है? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल कितना है? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। उसमें भी स्त्रीवेदके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक दो छ्यासठ सागर है। आठ कषायके उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालमसंखे०। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडि देसू०। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि पलिदो० देसूणा०।

२१८. णिरयायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० पुव्वकोडि-दसवस्ससहस्साणि समयूणाणि, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खायु० उक्क० जह० पुव्वकोडी समयूणं, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० पुव्वकोडि[1] समयू०, उक्क० अणंतकालं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। देवायु० उक्क० जह० पुव्वकोडि-दसवस्ससहस्सं समयूणं, उक्क० अद्धपोग्गलं०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०।

२१९. वेउव्वियछक्कं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकाल०। अणु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु[2]०-[उज्जोव०] उक्क० जह०

स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है।

२१८. नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक पूर्वकोटि और एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि और दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है।

२१९. वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल

१. मूलप्रतौ कोडि देसू० समयू० इति पाठः। २. मूलप्रतौ तिरिक्खाणु० उज्जो० उक्क० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं । मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जलोग० । एइं०-बेइं०-तेइं०-चदुरिंदि०-आदाव-थावर०४ उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं । आहार०-आहार०अंगो० उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० सादि० । तित्थयरं [उक्क०] णत्थि । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

परिवर्तन प्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टअन्तर अनन्त काल है जो असंख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—एक बार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम होनेके बाद पुनः वे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होते हैं। यही कारण है कि यहाँ चार आयु और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिका ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नरकगतिके अभिमुख हुए संक्लेश परिणामवाले मनुष्यके होता है। यतः यह अवस्था दो बार नहीं उपलब्ध होती, अतः तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। चार आयुओंके सम्बन्धमें आगे विचार करनेवाले हैं ही। तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त अवस्थाका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। इसीसे यहाँ देवायु, आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है, क्योंकि सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ही होता है; अन्यके नहीं। देवायु और आहारकद्विकका बन्ध संयतके होता है और इसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इसीसे इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल न कहकर कुछ कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल क्यों नहीं होता; यह कथन पहले कर ही आये हैं। अब रहा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका विचार सो सब प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कमसे कम एक समयके अन्तरसे होता है, इसलिए उक्त सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय कहा है। मात्र चार आयु आहारकद्विकमें कुछ विशेषता है, जिसका खुलासा आगे यथास्थान करेंगे ही। अब रहा सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट अन्तर कालका विचार सो वह अलग-अलग कहा ही है। खुलासा इस प्रकार है—

पाँच ज्ञानावरण आदि जिन ५६ प्रकृतियोंका प्रथम दण्डकमें उल्लेख किया है, उनमेंसे कुछ ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं और कुछ सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। उनमें भी जो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, उनकी बन्धव्युच्छित्ति इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके पहले होती है और कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदि नौ प्रकृतियोंका बन्ध सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें नहीं होता और मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम दो छयासठ सागर है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम दो छयासठ सागर कहा है। परन्तु स्त्रीवेद सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे उसका यह अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर उपलब्ध होता है। कारण कि जो जीव मिथ्यात्वमें आकर भी स्त्रीवेदका बन्ध न कर नपुंसकवेद और पुरुषवेदका बन्ध करता है, उसके यह अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। संयम और संयमासंयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए आठ कषायके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। कारण कि संयत जीवके प्रत्याख्यानावरण चतुष्कका और संयतासंयत जीवके अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कका बन्ध नहीं होता। इसके बाद इस जीवके असंयमको प्राप्त होनेपर उनका नियमसे बन्ध होने लगता है। नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियोंका बन्ध सासादन गुणस्थानतक होता है। यतः मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो छयासठ सागर है, साथ ही ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और इनका बन्ध भोगभूमिमें नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य कहा है। आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। एकेन्द्रियका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है और इनके वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता या पञ्चेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है। इसीसे यहाँ वैक्रियिकषट्कके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल कहा है। तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध सम्यग्दृष्टिके नहीं होता और सहस्रार कल्पसे आगे नहीं होता। यदि निरन्तररूपसे इस कालका विचार करते हैं, तो वह एक सौ त्रेसठ सागर होता है। इसीसे यहाँ इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। इसीसे यहाँ इन तीन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। संयमका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इसीसे आहारकद्विकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२०. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि० अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । दो आयु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू० । एवं सव्वणेरइयाणं आयु० । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं साग० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं देसू० । तित्थय० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि साग० सादिरे० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२२१. एवं छसु पुढवीसु । णवरि मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० सादभंगो ।

२२०. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। इसी प्रकार सब नारकियोंके आयुकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

२२१. इसी प्रकार छह पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग साता प्रकृतिके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं अप्पप्पणो ट्ठिदी देसूणा। सत्तमाए णिरयोघं। णवरि मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०।

२२२. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-अट्ठकसा०-सत्तणोक०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० अणु० ओघं। थीणगिद्धि०३-

शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सातवीं पृथिवीमें सामान्य नारकियोंके समान अन्तरकाल है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—जो नारकी उत्पन्न होनेके बाद पर्याप्त होनेपर प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है और अनन्तर मरणके पूर्व उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करता है, उसके उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर उपलब्ध होता है, इसलिए यह अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। नरकमें सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है और सम्यग्दृष्टिके स्त्यानगृद्धि तीन आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। तथा मिथ्यादृष्टि रहनेपर भी जन्मके प्रारम्भमें और अन्तमें पर्याप्त अवस्थामें यदि उक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है तो इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भी वही कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। इससे यह भी उक्त प्रमाण कहा है। और सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नरकमें मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यादृष्टि नारकीके छठे नरकतक ही होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम बाईस सागर कहा है। पर सातवें नरकमें इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर बन जाता है। कारण कि सातवें नरकमें जो भवके प्रारम्भमें और अन्तमें सम्यग्दृष्टि होकर इनका बन्ध करता है और मध्यमें कुछ कम तेतीस सागर कालतक मिथ्यादृष्टि रहकर इनका बन्ध नहीं करता उसके इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीसरे नरकतक साधिक तीन सागरकी आयुवाले नारकी होनेतक ही बन्ध होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन सागर कहा है। यह नरकमें सामान्यसे अन्तरकाल कहा है। प्रत्येक नरकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको जानकर अन्तरकाल ले आना चाहिए। मात्र छठे नरकतक मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल साताप्रकृतिके समान कहनेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२२. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, आठ कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पांच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४-इत्थि० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। अपच्चक्खाणा०४-णवुंस०-तिरिक्खगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०--ओरालि०अंगो०--छस्संघ०--तिरिक्खाणुपु०--आदाउज्जो०--अप्पसत्थवि०--थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। णिरय-मणुस-देवायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसूणं। तिरिक्खायु० उक्क० ओघं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादिरे०। वेउव्वियछक्क-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० ओघं।

२२३. पंचिंदियतिरिक्ख०३[1] पढमदंडगेण सह देवगदि०४-उच्चा० कादव्वं।

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितियन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभागप्रमाण है। तिर्यञ्च आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें उसी पर्यायमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ भवके आदि और अन्तमें इन प्रकृतियोंका बन्ध कराकर यह अन्तर काल ले आना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण चार आदि प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि कहनेका कारण यह है कि संयतासंयत तिर्यञ्चके अप्रत्याख्यानावरण चारका बन्ध नहीं होता और असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चके शेषका बन्ध नहीं होता। इसलिए प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध करावे और मध्यमें कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक संयमासंयम और सम्यक्त्व गुणके साथ रख कर उक्त अन्तर काल ले आवे। यद्यपि तिर्यञ्चकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी भी होती है, पर वहां संयमासंयम गुणके न प्राप्त होनेसे अप्रत्याख्यानावरण चारका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता और भोगभूमिमें नपुंसकवेद आदिका बन्ध नहीं होता, इसलिए वहाँ तिर्यञ्चोंमें अन्तरका प्रश्न ही नहीं उठता, अतः इन सबके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। शेष कथन सुगम है।

२२३. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तीनमें प्रथम दण्डकके साथ देवगति चतुष्क और उच्चगोत्रका कथन करना चाहिए। इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट

1. मूलप्रतौ पंचिंदिय तिरिक्खोधो पढम—इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणु० जह० एगस०, उक्क० अंतो० । सेसाणं सव्वपगदीणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणु० ट्ठिदि० पगदिअंतरं । णवरि तिण्णिआयु० तिरिक्खोघं । तिरिक्खायु० उक्क० जह० पुव्वकोडी समयूणं, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वपगदीणं उक्क० जह० [उक्क०] अंतो० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि तिरिक्खायु० उक्क० अणु० जहण्णु० अंतो० । मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जहण्णु० अंतो० ।

२२४. मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि पच्चक्खाणा०४ अपच्चक्खाणावरणभंगो । मणुसायु० उक्क० जह० पुव्वकोडी समयू०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि० । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । तित्थय० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जहण्णु० अंतो० । मणुसअपज्ज० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । णवरि तिरिक्खायु० उक्क० णत्थि

अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । इतनी विशेषता है कि तीन आयुओंका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । तिर्यञ्च आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । तथापि उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कर्मभूमिमें ही उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्व कोटि पृथक्त्व कहा है । यहाँ पूर्वकोटिपृथक्त्वके प्रारम्भ और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर अन्तरकाल ले आवे । चार आयुओंके सिवा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसी प्रकार ले आवे । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

२२४. मनुष्य चतुष्कमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि प्रत्याख्यानावरण चारका भङ्ग अप्रत्याख्यानावरण चारके समान है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है । तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है, इतनी विशेषता है कि तिर्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं । अणु० जह० उक्क० अंतो० । मणुसायु० उक्क० जह० अंतो० समयू०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० उक्क० अंतो० ।

२२५. देवेसु पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-बारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं साग० देसू० । दोआयु० णिरयभंगो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठा-

---

आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है; यह स्पष्ट ही है। मात्र प्रत्याख्यानावरण चारके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल मनुष्य त्रिकमें कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण उपलब्ध होता है और अप्रत्याख्यानावरण चारके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भी इतना ही उपलब्ध होता है। इसीसे यहां प्रत्याख्यानावरण चारका भङ्ग अप्रत्याख्यानावरण चारके समान है, ऐसा कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२२५. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त-विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो आयुओंका भङ्ग नारकियोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि० । एइंदिय-आदाव-थावर० उक्क० अणु० जह० अंतो० एग०, [उक्क०] बे साग० सादि० । एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो अंतरं णादूण णेदव्वं ।

२२६. एइंदिएसु तिरिक्खायु० उक्क० जह० बावीसं० वस्ससहस्साणि समयू०, उक्क० अणंतकालं० । अणुक्क० पगदिअंतरं । मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० पगदिअंतरं । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० अणु० जह० अंतो० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सेसाणं [उक्क०] जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना अन्तर जानकर कथन करना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें ओघ उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सहस्रार कल्प तक होता है और सहस्रार कल्पमें उत्कृष्ट आयु साधिक अठारह सागर है, इसलिए यहाँ प्रथम व द्वितीय दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा है । यहाँ भवके प्रारम्भ व अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करानेसे यह अन्तरकाल उपलब्ध होता है । मिथ्यादृष्टि जीव नौ ग्रैवेयक तक उत्पन्न होता है और अन्तिम ग्रैवेयकके देवकी उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है । इसीसे यहाँ दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा है । यहाँ प्रारम्भ और अन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर इन प्रकृतियोंका बन्ध करावे और मध्यमें कुछ कम इकतीस सागर तक सम्यग्दृष्टि रखकर इन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आवे । तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध सहस्रार कल्प तक होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा है । मात्र अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल लाते समय मध्यमें जीवको साधिक अठारह सागर कालतक सम्यग्दृष्टि रखे । एकेन्द्रिय जाति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध ऐशान कल्पतक होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

२२६. एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२७. बादरे तिरिक्ख-मणुसायु०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा०वज्जाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुल० असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । तिरिक्खायु० उक्क० जह० बावीसं वाससहस्साणि समयू०, उक्क० सगट्ठिदी० । अणु० पगदिअंतरं । मणुसायु० एइंदियोघं । मणुसग०-मणुसाणुपु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुल० असंखे० । अणु० जह० एग०, उक्क० कम्मट्ठिदी० ।

२२८. बादरपज्जत्तेसु सव्वाणं उक्क० [जह०] अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवरि तिरिक्खायु० उक्क० जह०, बावीसं वाससहस्साणि समयू०, उक्क० सगट्ठिदी० । अणु० पगदिअंतरं । मणुसायु० एइंदि०ओघं । मणुसग०-मणुसाणुपु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो[1]० । अणु० जह० एग०, उक्क० दो वि संखेज्जाणि वाससहस्साणि । बादरअपज्ज० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

२२९. सुहुमेइंदिएसु तिरिक्खायु० उक्क० जह० अंतो० समयू०, उक्क० कायट्ठिदी० । अणु० पगदिअंतरं । मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० पगदिअंतरं ।

२२७. बादर एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण है।

२२८. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है तथा इन दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष है। बादरअपर्याप्तकोंका भङ्ग तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

२२९. सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यगति,

1. मूलप्रतौ अंतो उक्क० अणु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो० । अणु० जह० एग०, दोण्णं पि असंखेज्जा लोगा। सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सुहुमाए पज्जत्तापज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

२३०. बेइं०-तेइं०-चदुरिं० तेसिं पज्जत्ता[1]० तिरिक्खायु० उक्क० जह० बारसवरिसाणि एगुणवण्णरादिंदियाणि छम्मासाणि समयू०, उक्क० तिण्णं पि संखेज्जाणि वाससहस्साणि। अणु० पगदिअंतरं। मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० पगदिअंतरं। सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वाससह

मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यातलोक प्रमाण है। शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। इसीसे एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष कहा है। तथा एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल प्रमाण है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। एकेन्द्रिय जीव मनुष्यायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, फिर तिर्यञ्च नहीं रहता, इसलिए यहां मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एकेन्द्रियोंमें मनुष्यायु प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है; यह स्पष्ट ही है। जो एकेन्द्रिय असंख्यात लोक प्रमाण काल तक अग्निकायिक और वायुकायिक होकर परिभ्रमण करता रहता है, उसके इतने काल तक मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इस लिए इनमें इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। मात्र इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल लाते समय वह पृथिवीकायिक आदिकी कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करा कर ले आवे। एकेन्द्रियोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति भी असंख्यात लोकप्रमाण है और इनमें एकेन्द्रियोंको दृष्टिसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता, इसलिए एकेन्द्रियोंमें शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इस प्रकार यह सामान्य एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार किया। इसी प्रकार बादर आदि एकेन्द्रियोंकी कायस्थिति आदि जान कर अन्तरकालका निर्णय करना चाहिए।

२३०. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उनके पर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनचास दिन रात और एक समय कम छह महीना है और उत्कृष्ट अन्तर तीनोंका संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर

१. मूलप्रतौ पज्जत्तापज्जत्ता तिरि—इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्साणि। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अपज्जत्त० पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

२३१. पंचिंदिय०२ णाणादि० ओघं। पढमदंडओ ओघं। णवरि उक्क० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेण०। पज्जत्ते सागरोवमसदपुध०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि० उक्क० ट्ठिदि० पंचणाणा०भंगो। अणु० ओघं। अट्ठकसा० [उक्क०] णाणावरणभंगो। अणु० ओघं। णिरय-देवायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि पुव्वकोडी समयू०। उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। तिरिक्खायु० उक्क० जह० पुव्वकोडी समयू०, उक्क० णाणावरणभंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। मणुसायु० उक्क० तिरिक्खायुभंगो। अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। णिरयगदि-एइं०-बेइं०-तेइं०-चदुरिं०-णिरयाणुपु०-आदाव-थावरादि०४-

---

संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इनके अपर्याप्तकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंकी भवस्थिति और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर अन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए। जो द्वीन्द्रिय मरकर द्वीन्द्रिय होता है, त्रीन्द्रिय मरकर त्रीन्द्रिय होता है और चतुरिन्द्रिय मरकर चतुरिन्द्रिय होता है उसीके तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे एक समय कम बारह वर्ष, एक समय कम उनचास दिन रात और एक समय कम छह महीना उपलब्ध होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जहाँ एक मार्गणामें अपनी आयुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अपनी उत्कृष्ट आयुप्रमाण कहा है वहाँ इसी प्रकार स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

२३१. पञ्चेन्द्रियद्विकमें ज्ञानावरणादिकका भङ्ग ओघके समान है। प्रथम दण्डक ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सौ सागर पृथक्त्व है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग पाँच ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका भङ्ग ओघके समान है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है। उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रिय-जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० णाणावरणभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपु०-उच्चा० उक्क० णाणावरणभंगो । अणु ओघं । मणुसग०-देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-मणुस०-देवाणुपु० णाणावरणभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० उक्क० णाणावरणभंगो । अणु० ओघं । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० । तित्थय० ओघं । अपज्जत्ता० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो । णवरि दो आयु० उक्क० जह० अंतो० समयू०, उक्क० अंतो० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० अंतो० ।

समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वीका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग ओघके समान है। आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथकत्व अधिक एक हजार सागर और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्व है इसलिए इनमें ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करा कर यह अन्तरकाल ले आवे। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके जघन्य अन्तरका स्पष्टीकरण मूल प्रकृति स्थितिबन्धके समय जिस प्रकार किया है उसी प्रकार यहाँ कर लेना चाहिए। तथा इन दोनों आयुओंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व कहनेका कारण यह है कि कोई भी पञ्चेन्द्रिय इतने कालके बाद नरकायु और देवायुका नियमसे बन्ध करता है। तिर्यञ्चायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके उत्कृष्ट अन्तरकालका स्पष्टीकरण भी इसी प्रकार करना चाहिए। मात्र मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कायस्थिति प्रमाण कहा है सो इसका अभिप्राय यह है कि पञ्चेन्द्रिय रहते हुए अधिकसे अधिक इतने कालतक मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है। बीचमें बन्ध हो या न हो नियम नहीं है। पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव अधिकसे अधिक एक सौ पचासी सागर कालतक नरकगति आदि ग्यारह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करते, इसलिए इनमें इन प्रकृतियोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३२. पुढविका० तिरिक्खायु० उक्क० [जह०] बावीसं वाससहस्सा० समयू०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणु० पगदिअंतरं। मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० पगदिअंतरं। सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। बादरपुढवि० तं चेव। णवरि उक्क० जह० अंतो०, उक्क० कम्मट्ठिदी०। बादरपज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि। अपज्जत्ते तिरिक्खअपज्जत्त-भंगो। एवं आउ०-तेउ०-वाउ०। णवरि तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० सत्त-वस्ससहस्साणि तिण्णि रादिंदियाणि तिण्णि वस्ससहस्साणि समयू०, उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० अप्पप्पणो पगदिअंतरं।

अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर कहा है। इसी प्रकार शेष अन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए।

२३२. पृथिवीकायिक जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें यही अन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थिति प्रमाण है। बादर पर्याप्तक जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। अपर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम सात हजार वर्ष एक समय कम तीन दिन रात और एक समय कम तीन हजार वर्ष है तथा उत्कृष्ट अन्तर काल कायस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अपने अपने प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिककी भवस्थिति बाईस हजार वर्षप्रमाण और कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण होनेसे यहाँ तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनमें शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहनेका यही कारण है। बादर पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति कर्मस्थितिप्रमाण है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके बिना शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण कहा है। बादर पर्याप्तकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष कहा है। जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके कथनमें पृथिवीकायिक जीवोंके कथनसे कोई अन्तर नहीं है, इसलिए इनका कथन पृथिवीकायिक जीवोंके समान जाननेको कहा है। मात्र इनकी भवस्थितिमें अन्तर है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर कहते समय वह एक समय कम अपनी अपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३३. वणप्फदि० एइंदियभंगो। णवरि तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि समयू०, उक्क० अणंतकालं अंगुल० असं० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अणु० पगदिअंतरं। मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० पगदि अंतरं। णवरि मणुसगदितिगस्स अणु० पगदिअंतरं। बादरवणप्फदिपत्ते० बादरपुढविभंगो। णवरि तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि समयू०। णिगोदे० वणप्फदिभंगो। णवरि बादरणियोदेसु सव्वेसु उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० कम्मट्ठिदी०। अणु० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। णवरि तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो० समयू०, उक्क० पलिदो० असं०। अणु० पगदिअंतरं। णिगोदेसु पलिदो० असंखे०, बादरणिगोदपज्जत्ते संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सव्वसुहुमाणं सुहुमएइंदियभंगो। णवरि अप्पप्पणो कायट्ठिदी भाणिदव्वा।

---

२३३. वनस्पतिकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान अन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल, अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण तथा संख्यात हजार वर्ष है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तर कालके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतित्रिकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तर कालके समान है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष है। निगोद जीवोंमें वनस्पतिकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सब बादर निगोद जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कर्मस्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। निगोद जीवोंमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और बादर निगोद पर्याप्त जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष है। सब सूक्ष्म जीवोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी कायस्थिति कहनी चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति बाईस हजार वर्ष है और वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति दस हजार वर्ष है। तथा वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकालप्रमाण, बादर वनस्पतिकायिकोंकी अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण और बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिकोंकी संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। इसीसे यहाँ इनमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकायिकोंमें अनन्तकाल, इनके बादरोंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण और इनके बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण कहा है। बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति भी दस हजार वर्ष है। इसीसे इनमें भी तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम दस हजार वर्ष कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३४. तस०२ पंचिंदियभंगो। णवरि उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो कायट्ठिदी०। तिण्णि आयु० उक्क० ट्ठिदि० जह० पंचिंदियभंगो। उक्क० कायट्ठिदी०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। मणुसायु० उक्क० अणु० ओघं। णवरि कायट्ठिदी०। अपज्जत्ता० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

२३५. पंचमण०-पंचवचि० चदुआयु०-आहार०२-तित्थय० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। सेसाणं उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतोमु०।

२३६. कायजोगीसु णिरय-देवायु०-आहार०२ उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। तिरिक्खायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० पगदिअंतरं। मणुसायु० उक्क०

२३४. त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। तीन आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर पञ्चेन्द्रिय जीवोंके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है। त्रस अपर्याप्त जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंकी कायस्थितिका उल्लेख अनेक बार कर आये हैं। उसे ध्यानमें रखकर यहां जो अन्तर कायस्थिति प्रमाण कहा है वह जान लेना चाहिए। नरकायु, तिर्यञ्चायु और देवायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण कहा है सो इसका स्पष्टीकरण यह है कि त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीव सौ सागर पृथक्त्वके बाद अवश्य ही नारकी, तिर्यञ्च और देव होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३५. पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें चार आयु, आहारक द्विक और तीर्थंकर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोगों और पांचों वचनयोगोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इनमें मध्यमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है। इसीसे इनमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। पर इस प्रकार एक योगमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए उसके अन्तरकालका निषेध किया है। अब रहीं प्रथम दण्डकमें कही गई चार आयु आदि सात प्रकृतियाँ सो इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। कारणका विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए।

२३६. काययोगी जीवोंमें नरकायु, देवायु और आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं असं०। सेसाणं उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

२३७. ओरालियका० णिरय-देवायु०-आहार०२-तित्थय० उक्क० अणु० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० पगदि-अंतरं। सेसाणं मणजोगिभंगो।

२३८. ओरालियमिस्स० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुं०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-उप०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवगदि०४-तित्थय० धुविगाण भंगो।

स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यके एकमात्र काययोग होता है। इसीसे काययोगमें मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध हो जाता है। जो मनुष्यायुका अजघन्य स्थितिबन्ध करके और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य होकर पुनः मनुष्यायुका अजघन्य स्थितिबन्ध करता है उसके मनुष्यायुके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल उपलब्ध होता है और जो प्रारम्भमें मनुष्यायुका बन्ध करके अनन्तकालतक काययोगके साथ रहकर अन्तमें मनुष्यायुका बन्ध करता है उसके मनुष्यायुके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल उपलब्ध होता है। इसीसे मनुष्यायुके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३७. औदारिक काययोगी जीवोंमें नरकायु, देवायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके प्रकृतिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष कह आये हैं वही यहाँ इन दोनों आयुओंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२३८. औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगतिचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। शेष प्रकृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसाणं उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं अधापवत्तस्स। अथवा से काले पज्जत्ती जाहिदि त्ति सामित्तं दिज्जदि तदो धुविगाणं देवगदिपंचगस्स उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। सेसाणं परियत्तमाणियाणं उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दो आयु० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

२३९. वेउव्विय०-आहार० मणजोगिभंगो। वेउव्विय-आहारमि० ओरालियमिस्सभंगो। कम्मइग० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० णत्थि अंतरं।

२४०. इत्थिवे० ओघं। पढमदंडओ सो चेव इत्थं वि। णवरि पलिदोवमसदपुधत्तं। थीणगिद्धि० ३-मिच्छ०--अणंताणुबंधि०४--इत्थि०-णवुंस०--तिरिक्खगदि--एइंदि०-पंचसंठा०--पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०--आदउज्जो०--अप्पसत्थ०--थावर--दूभग--दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणावरणभंगो। अणु० जह० एग०, उक्क०

तियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तके जानना चाहिए। अथवा तदनन्तर समयमें पर्याप्तिको ग्रहण करेगा ऐसे समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामित्व प्राप्त होता है इसलिए ध्रुवबन्धवाली और देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष परिवर्तनशील प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंका अन्तरकाल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है।

विशेषार्थ—मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध प्रकरणमें जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह सात कर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी कह आये हैं और यहाँ उत्तर प्रकृति स्थितिबन्ध प्रकरणमें तद्योग्य संक्लेश परिणामोंके होने पर अथवा उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके होने पर उत्कृष्ट स्थितिबन्धका स्वामी होता है यह कहा है। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहाँ अन्तर कालका निरूपण दो प्रकारसे किया है। फिर भी हर हालतमें किसी भी कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं प्राप्त होता इतना स्पष्ट है। कारण कि औदारिकमिश्रकाययोगका काल इतना अल्प होता है जिसमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम नहीं प्राप्त होते।

२३९. वैक्रियिककाययोगी और आहारक काययोगी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें औदारिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है।

२४०. स्त्रीवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। प्रथमदण्डक भी उसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि यहाँ सौ पल्य पृथक्त्व कहना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणवरणं पलिदोव० देसू० । तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० जह० पुव्वकोडि समयू०, उक्क० णाणावरणीयभंगो । अणु० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० सदपुधत्तं । णिरयायु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० ट्ठिदि० जह० अंतो, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू० । देवायु० उक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि पुव्वकोडी समयू०, उक्क० कायट्ठिदी० । अणु० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठावरणं पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । वेउव्वियछक्क-बीइं०-तीइं०-चदुरिं०-सुहुम-अपज्ज०-साधार० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० णाणाव०भंगो । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पणवरणं पलिदो० सादि० । मणुस०-ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-मणुसाणु० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० णाणाव०भगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तिरिण पलिदो० देसू० । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० । तित्थय० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं ।

पल्य है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है । नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिके त्रिभाग प्रमाण है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य है । वैक्रियिक छह, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पल्य है । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है । इसीसे यहां प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण कहा है । कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर यह अन्तर ले आना चाहिए । सम्यक्त्वके कालमें स्त्यानगृद्धि तीन आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम पचवन पल्य कहा है । चारों आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालके विषयमें पहले अनेक बार निर्देश कर आये हैं । उसे ध्यानमें रखकर यहां अन्तरकाल जान लेना चाहिए । मात्र देवायुके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर जो पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक अट्ठावन पल्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४१. पुरिसेसु पढमदंडओ ओघं । णवरि उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि० उक्क० णाणाव०भंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० ओघं । णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्कस्सं णाणावर०भंगो । अणु० ओघं । णिरयायु० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० इत्थि०भंगो । तिरिक्ख-मणुसायु० इत्थिभंगो । णवरि सगट्ठिदी० । देवायु० उक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि पुव्वकोडी समयू०, उक्क० णाणावर०भंगो । अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादि० । णिरयग०-बेइं०-तेइं०-चदुरिं०-णिरयाणु०-आदाव-थावरादि०४ उक्क० णाणाव०भंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० णाणाव०भंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।

कहा है सो उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि किसी स्त्रीवेदीने देवायुका पचवन पल्य-प्रमाण स्थितिबन्ध किया,पश्चात वह स्त्रीवेदके साथ पूर्वकोटि पृथक्त्व काल तक परिभ्रमण कर तीन पल्यकी आयुवाला स्त्रीवेदी हुआ और वहाँ छह महीना शेष रहने पर उसने पुनः देवायुका बन्ध किया,तो देवायुका यह अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। देवी पर्यायमें वैक्रियिक छह आदि बारह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और वहाँसे च्युत होनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका बन्ध न होना सम्भव है, क्योंकि ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक पचवन पल्य कहा है। सम्यग्दृष्टि मनुष्यनीके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। इसीसे स्त्रीवेदमें मनुष्यगति आदि पाँच प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है, क्योंकि मनुष्य सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२४१. पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। नरकायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल स्त्रीवेदके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है और उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, नरक गत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर आदिचारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। देवगति चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसगदिपंचगस्स उक्क० ट्ठिदि० णाणाव०भंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी०। तित्थय० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० ओघं।

२४२. णवुंस० पढमदंडओ मूलोघं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिण्णि आयु०-वेउव्वियछक्क-मणुसग०-मणु-

उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ सागर पृथक्त्वप्रमाण है। इसीसे इसमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा है। पुरुषवेदमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। ओघसे स्त्यानगृद्धि तीन आदि नौ प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान कहा है। मात्र स्त्रीवेद सप्रतिपक्ष प्रकृति होनेसे यहाँ ओघके समान इसके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर कहना चाहिए। नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके तो बन्ध होता ही नहीं। साथ ही इनका अकर्मभूमिज जीवके भी बन्ध नहीं होता। इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर ओघसे साधिक दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य कहा है। पुरुषवेदमें यह अन्तर इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिए यहाँ यह ओघके समान कहा है। जो जीव दो छ्यासठ सागर तक सम्यग्दृष्टि और मध्यमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहा और अन्तमें नौ ग्रैवेयकमें उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ,उसके एक सौ त्रेसठ सागर काल तक पुरुषवेदमें नरकगति आदि दस प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहां इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर काल प्रमाण कहा है। उपशम श्रेणिपर चढ़ा हुआ जो जीव उतरते समय देवगतिचतुष्कका बन्ध करनेके अनन्तर पूर्व समयमें मरकर तेतीस सागर की आयुवाला देव होता है उसके साधिक तेतीस सागर काल तक देवगति चतुष्कका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। सम्यग्दृष्टि मनुष्यके मनुष्यगतिपञ्चकका बन्ध नहीं होता और मनुष्यके सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। इसीसे यहाँ इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२४२. नपुंसकवेदमें प्रथम दण्डक मूलोघके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त, विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीन आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साणु०-उच्चा०-आहार०२ उक्क० अणु० ओघं। देवायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० ट्ठिदि० पगदिअंतरं। एइंदि०-बीइंदि०-तीइंदि०-चदुरिंदि०-आदाव-थावर०४ उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। तित्थय० मणुसभंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० उक्क० णाणाव०भंगो०। अणु० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। एवं अट्ठकसा०।

२४३. अवगदवेदे सव्वपगदीणं उक्क० णत्थि अं०। अणु० जह० उक्क० अंतो०।

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और आहारक द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति चतुरिन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्योंके समान है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि है। इसी प्रकार आठ कषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। नरकमें एकेन्द्रिय जाति आदि नौ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे अन्तर्मुहूर्त कालतक और इनका बन्ध सम्भव नहीं है। इसीसे इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। नपुंसकवेदी सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्चके कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक औदारिक शरीर आदि तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण कहा है। यहाँ तिर्यञ्च पर्यायकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होगा। मात्र प्रारम्भमें और अन्तमें इनका बन्ध कराके यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

२४३. अपगतवेदमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—नपुंसक वेदसे उपशम श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके उतरते समय सवेदी होनेके एक समय पहिले अपनी सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। इसलिए अपगत वेदमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है तथा उपशान्त मोहका काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। चार संज्वलनकी बन्ध-व्युच्छित्ति होनेके बाद उनका पुनः बन्ध अपगत वेदमें अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होता है इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४४. कोधादि०४ मणजोगिभंगो ।

२४५. मदि०-सुद० पंचणा०-णवदंस०-सादासा०-मिच्छत्त-सोलसक०-अट्ठ-णोक०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवुंस०-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० ट्ठिदि० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । चदुण्णआयु०-वेउव्वियछ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० मूलोघं । णवरि देवायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि पुव्वकोडी समयू०, उक्क० अणंतकालम-संखे० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपु०-उज्जो० उक्क० ओघं । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं सा० सादि० । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ उक्क० ट्ठिदि० ओघं । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० ।

---

२४४. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनोयोगका काल और चारों कषायोंका काल एक समान है, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्धका अन्तरकाल मनोयोगी जीवोंके समान कहा है ।

२४५. मत्यज्ञानी, और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता और असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पांच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका अन्तर काल मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध का जघन्य अन्तर दस हजार वर्ष और एक समय कम एक पूर्वकोटि है । तथा उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४६. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-सादासा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खगदि-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संठाण-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगुरु०४-उज्जो०-दोविहा०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिरय-देवायु० उक्क० अणु० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू०। वेउव्वियछ०-तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मणुसगदिदुगं उच्चा० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं सा० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एइंदि०-आदाव-थावर० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२४६. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नवकषाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, वर्णचतुष्क तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर, अन्तर्मुहूर्त है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति द्विक और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—नरकमें विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इसीसे यहाँ पाँच ज्ञानावरण आदि ८७ प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ प्रारम्भ और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर यह अन्तर काल ले आवे। वैक्रियिक छह आदि बारह प्रकृतियोंका बन्ध देव और नारकियोंके नहीं होता; मनुष्य और तिर्यञ्चोंके होता है। फिर भी, इनके विभङ्गज्ञानके कालमें इन प्रकृतियोंके दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य परिणाम नहीं होते, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। नरकमें मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रका विभङ्गज्ञानमें बन्ध छठे नरकतक ही होता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर कहा है। एकेन्द्रिय जाति आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४७. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अज०-णिमि०-तित्थय०-उच्चागो०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि साग० सादि०। अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मणुस-देवायु० उक्क० ट्ठिदि० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०। देवायु० छावट्ठिसाग० देसू०। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सा० सादि०। अट्ठक० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु०[1] ओघं। मणुसगदिपंचगस्स उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० वासपुधत्तं०, उक्क० पुव्वकोडी०। देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसा० सादि० तेत्तीसं सा० सादि०। अथवा उव्वेल्लिज्जदि तदो उक्क० अणु० छावट्ठिसा० सादि० दोहि पुव्वकोडीहि सादिरे०।

तीन प्रकृतियोंका बन्ध ऐशान कल्पतक होता है। इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। यहाँ भी प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर यह अन्तर काल ले आवे। शेष कथन सुगम है।

२४७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। साता वेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक पल्य प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है; किन्तु देवायुका कुछ कम छयासठ सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल ओघके समान है। मनुष्यगति पाँचके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर और साधिक तेतीस सागर है। अथवा इनकी उद्वेलना करता है इसलिए उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल दो पूर्वकोटि अधिक साधिक छयासठ सागर है।

1. मूलप्रतौ अणु० जह० ओघं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४८. मणपज्ज० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० जह० उक्क० अंतो०। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-

विशेषार्थ--उक्त तीन ज्ञानोंमें पाँच ज्ञानावरण आदि ५२ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा जो सातवें आदि गुणस्थानोंमें कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके लिए इनका अबन्धक होकर पुनः मरणकर या उतरकर इनका बन्ध करता है, उसके इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। सातावेदनीय आदि छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध यहाँ स्वस्थानवर्ती जीवके होता है और आभिनिबोधिक आदि तीनों ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक छ्यासठ सागर कहा है। इन तीन ज्ञानोंका उत्कृष्ट काल चार पूर्वकोटि अधिक छ्यासठ सागर बतलाया है। उसे देखते हुए मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक छ्यासठ सागर बन जाता है, पर देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम छ्यासठ सागर ही उपलब्ध होता है; इसलिए यहाँ मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक छ्यासठ सागर और देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम छ्यासठ सागर कहा है। इनके आठ कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध भी मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। सम्यग्दृष्टि देवके मनुष्यगति पञ्चकका नियमसे बन्ध होता है। यह मनुष्योंमें कमसे कम वर्षपृथक्त्वप्रमाण और अधिकसे अधिक पूर्वकोटि प्रमाण आयुके साथ उत्पन्न हुआ और मरकर पुनः देव हो गया। तो इसके मनुष्यगतिपञ्चकके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिप्रमाण उपलब्ध होता है। इसीसे यहाँ यह अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कका देव और नारकीके बन्ध नहीं होता। तथा नरकमें जानेके पहले और वहाँसे निकलने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका और भी बन्ध सम्भव नहीं है, क्योंकि ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम अन्तर काल उद्वेलनाकी विवक्षा न करके कहा गया है और दूसरा अन्तर काल उद्वेलनाकी विवक्षासे कहा गया है। शेष कथन सुगम है।

२४८. मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । अणुक्क० ओघं । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० ओघं । देवायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० पगदिअंतरं । आहार०२ उक्क० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । अणु० जह० उक्क० अंतो० । एवं संजदा० । सामाइ०-छेदो० धुविगाणं उक्क० अणु० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । सेसाणं मणपज्जवभंगो । एवं परिहारे । सुहुमसंप० सव्वपगदीणं उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । संजदासंजद० परिहारभंगो ।

२४६. असंजदेसु पढमदंडओ ओघं । णवरि अट्ठक० धुविगाणं सह भाणिदव्वं । थीणगिद्धि३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-उज्जो०-तिरिक्खाणु'०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० ट्ठिदि० ओघं । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० ।

और यशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है । देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए । सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके जानना चाहिए । सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग परिहार विशुद्धिसंयत जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानीके प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असंयमके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । इसी दृष्टिसे असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । यहाँ जिन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है, उसे प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर ले आना चाहिए । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

२४९. असंयत जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंका कथन ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ करना चाहिए । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । चार आयु, वैक्रियिक छह और मनुष्यगतिका

1. मूलप्रतौ –क्खाणु० उज्जो० अप्प– इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुआयु०-वेउव्वियछक्क-मणुसगदि०[1] मदि०भंगो। चदुगदि-आदाव-थावर०४ उक्क० ट्ठिदि० ओघं। अणु० णवुंसगभंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० उक्क० अणु० ओघं। तित्थय० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० उक्क० अंतो०। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० मूलोघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

२५०. किण्णले० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक० अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरु०४-तस०४-अथिर-असुभ-अजस०-णिमि०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-णवुंस०-हुंडसं०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। सादा०-पुरिस०-हस्स-रदि-ओरालि०-समचदु०-

भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। चार गति, आतप और स्थावर चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग त्रसपर्याप्तकोंके समान है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग मूलोघके समान है। अवधिदर्शनवाले जीवोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—असंयत जीवोंके आठ कषायोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ इनका निर्देश करनेकी सूचना की है। असंयत अवस्थामें स्त्यानगृद्धि तीन आदि २८ प्रकृतियोंका कुछ कम तेतीस सागर काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यह अन्तर सातवें नरककी अपेक्षासे कहा गया है; क्योंकि देवोंमें जो तेतीस सागरकी आयुके साथ उत्पन्न होता है,वह मनुष्य पर्यायमें आकर नियमसे संयमको प्राप्त करता है, इसलिए ऐसे जीवके इनका बन्ध ही नहीं होता। अतएव इस अपेक्षासे असंयमका काल लेने पर इन प्रकृतियोंके बन्धका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२५०. कृष्ण लेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसक वेद, हुण्डकसंस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। साता वेदनीय, पुरुष वेद, हास्य, रति, औदारिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच

१. मूलप्रतौ गदि० विभंगमदि०भंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-पसत्थ०-थिरादिछ० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । इत्थिवे०-तिरिक्खगदि-चदुसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० उक्क० सोदभंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । णिरय-देवायु० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । तिरिक्ख-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू० । णिरयगदि-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि०४ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं सा० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । वेउव्विय०-वेउव्विय०अंगो० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० बावीसं सा० । तित्थय० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं ।

२५१. णील-काऊ० पंचणा०-णवदंस०-सादासादा०-बारसक०-पुरिस०-छण्णोक०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०--समचदु०--ओरालि०अंगो०--वज्जरिसभ०-वण्ण०४--मणुसाणु०--अगु०४--पसत्थ०--तस०४--थिराथिर--सुभासुभ--सुभग--सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क०

संहनन, प्रशस्त विहायोगति और स्थिर आदिक छह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर छह कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, तिर्यञ्चगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका भङ्ग साता प्रकृतिके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप, स्थावर आदि चारके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है।

२५१. नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, छह नोकषाय, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तारस-सत्तसाग० देसू० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणाव०भंगो । अणु० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसाग० देसू० । णिरय-देवायु० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । तिरिक्ख-मणुसायु० किण्ण०भंगो । णिरयगदि-देवगदि-चदुजादि-दोआणु०-आदाव-थावरादि०४ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क०सत्तारस-सत्तसाग० । तित्थय० उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क अंतो० । णीलाए उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२५२. तेउए पंचणा०-छदंसणा०-सादासादा०-बारसक०-पुरिस०-छण्णोक०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालिय-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-

---

अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर व कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम सत्रह सागर व कुछ कम सात सागर है। नरकायु और देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल कृष्ण लेश्याके समान है। नरकगति, देवगति, चार जाति, दो आनुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सत्रह सागर व सात सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु नील लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

२५२. पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेददनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, छह नोकषाय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० बे साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खग०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदा०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणाव०भंगो । अणु० जह० एग०, उक्क० बे साग० सादि० । तिरिक्ख०-मणुसायु० उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणं । देवायु०-आहारस०२ उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । देवगदि०४ उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० बेसाग० सादि० । पम्माए सो चेव भंगो । णवरि सगट्ठिदी कादव्वा । एइंदिय०-आदाव-थावरं च वज्ज० ।

२५३. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-बारसक०-सत्तणोक०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ०-वण्ण०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अट्ठारस साग० सादि० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-

---

तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। देवायु और आहारक शरीर द्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। देवगति चतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। पद्मलेश्यामें यही भंग है। इतनी विशेषता है कि इनके अपनी स्थिति कहनी चाहिए। और इनके एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता।

२५३. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०--णवुंस०--पंचसंठा०--पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर-अणादे०-णीचा० उक्क० णाणाव०भंगो। अणु० जह० एग०, उक्क० एक्कत्तीसं सा० देसू०। मणुसायु० देवभंगो। देवायु० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। आहार०२ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अणु० ट्ठिदि० जह० उक्क० अंतो०। देवगदि०४ उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०।

२५४. भवसिद्धिया ओघं। अब्भवसिद्धिया० मदिभंगो। सम्मादिट्ठी० ओधिभंगो। खइगसम्मा० पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-सत्तणोक०- पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग--सुस्सर--आदे०--जस०--अजस०--णिमि०--तित्थय०--उच्चा०--पंचंत० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। अणु० ओघं। अट्ठक० उक्क० णाणाव०-भंगो। अणु० ओघं। मणुस-देवायु० उक्क० णत्थि अंतरं। अणु० पगदिअंतरं। मणुसगदिपंचगस्स उक्क० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० देसू०। अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवगदि०४ उक्क० जह० अंतो०। अणु०

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर देवोंके समान है। देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

२५४. भव्य जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। अभव्य जीवोंमें मत्यज्ञानियोंके समान है। सम्यग्दृष्टियोंमें अवधिज्ञानियों के समान है। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यायु और देवायुके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। मनुष्यगति-पञ्चकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एग०, उक्क० दो वि तेत्तीसं साग० सादि० । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क तेत्तीसं साग० सादि० ।

२५५. वेदगे० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४--सुभग--सुस्सर--आदे०--णिमि०--तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० उक्क० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि० देसू० । अणु० ओघं । असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० ओधिभंगो । दो आयु० उक्क० ट्ठिदि० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० छावट्ठि साग० देसू० । अणु० ओधिभंगो । मणुसगदि-पंचगस्स ओधिभंगो । देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० तेत्तीसं साग० । आहार०२ उक्क० अणु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।

२५६. उवसम० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-[पंचिंदिय०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण४-अगुरु०४--पसत्थवि०--तस०४--

---

अन्तर्मुहूर्त है । देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है । तथा दोनों ही उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

२५५. वेदक सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । साता वेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अवधिज्ञानके समान है । दो आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अवधिज्ञानके समान है । मनुष्यगति पञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अवधिज्ञानके समान है । देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर तेतीस सागर है । आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

२५६. उपशम सम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेय--अजस०--णिमिण--उच्चा०--पंचंत०] ओधिभंगो । सादावे०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० तित्थय० उक्क० जह० उक्क० अंतो० । अणु० ओघं । अट्ठक०-देवगदि०४ उक्क० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अणु० जहण्णु० अंतो० । मणुसगदिपंचग० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । आहार०२ उक्क० अणु०[1] जह० उक्क० अंतो० ।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर अवधिज्ञानके समान है। साता वेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति और तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषाय और देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरण पाँच आदि प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है। तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि जो जीव इनका कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके लिए अबन्धक होकर पुनः इनका बन्ध करता है,उसके जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। अवधिज्ञानमें इन प्रकृतियोंका यह अन्तरकाल इसी प्रकार उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ यह अन्तरकाल अवधिज्ञानके समान कहा है। साता वेदनीय आदि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध स्वस्थानमें होता है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान कहा है। आठ कषाय और देवगतिचतुष्कका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे वह नहीं कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि जिस जीवने इनकी उपशमसम्यक्त्वमें बन्धव्युच्छित्ति की,वह पुनः इनका बन्ध अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही करता है। मनुष्यगतिपञ्चकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए तो यहाँ इनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्यके इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए उपशमसम्यक्त्वमें इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। यद्यपि उपशमसम्यग्दृष्टि देव और नारकियोंके इनका बन्ध होता है,पर वहाँ मिथ्यात्वके अभिमुख होनेके पूर्वतक इनका अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध ही होता रहता है, इसलिए वहाँ भी इनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि जो प्रमत्तसंयमके अभिमुख जीव होता है,उसके इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। पुनः उसके अप्रमत्त होनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। इस प्रकार इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है।

१. मूलप्रतौ अणु० जहण्णु० जह० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५७. सासणे तिण्णि आयु० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । सेसाणं उक्क० णत्थि अंतरं । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२५८. सम्मामि० सादासादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस० अजस० उवसमसम्मादिट्ठिभंगो । धुविगाणं उक्क० अणु० णत्थि अंतरं ।

२५९. मिच्छादिट्ठी० मदिभंगो । सण्णि० पंचिंदियपज्जत्तभंगो । असण्णी० चदु-आयु० तिरिक्खोघं । वेउव्वियछक्क-मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चा० उक्क० [अणुक्क०] ओघं । सेसाणं उक्क० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० । अणु० जह० एग०, उक्क० अंतो० । आहार० मूलोघं । णवरि यम्हि अणंतकालं तम्हि अंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो । अणाहार० कम्मइगभंगो । एवं उक्कस्सयं अंतरं समत्तं ।

२५७. सासादनमें तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है । इसमें आयुकर्मके बन्धके दो अपकर्ष काल सम्भव नहीं हैं । इसलिए तो यहाँ तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुओंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और एक पर्यायमें आयुकर्मका दो बार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता नहीं, इसलिए यहाँ उक्त तीनों आयुओंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है ।

२५८. सम्यग्मिथ्यात्वमें सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध-का अन्तर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान है । तथा ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई सातावेदनीय आदि सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं और सम्यग्मिथ्यात्वका काल उपशमसम्यक्त्वके समान अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपशमसम्यक्त्वके समान घटित हो जानेके कारण वह उपशमसम्यक्त्वके समान कहा है । इनके सिवा यहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है,उनका सतत बन्ध होता रहता है । उसमें भी इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मिथ्यात्वके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे उसका निषेध किया है ।

२५९. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है । संज्ञी जीवोंमें पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है । असंज्ञी जीवोंमें चार आयुओंका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परि-वर्तनप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आहारक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि ओघमें जहाँ अनन्त काल कहा है, वहाँ अङ्गुलका असंख्यातवाँ भाग कहना चाहिए । अनाहारकोंमें अपनी सब प्रकृतियोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६०. जहण्णए पगदं। दुविधं—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-चदुदंस० सादावे०-चदुसंज०-पुरिस०-जस०-तित्थय०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिद्दा-पचला-असादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४-इत्थि० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० बे छावट्ठिसाग० देसू०। इत्थिवे० सादिरे०। एवं अट्ठक०। णवरि अज० उक्क० पुव्वकोडी देसू०। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० बे छावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू०।

२६१. णिरयायु०-देवायु० जह० ट्ठिदि० [जह०] दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खायु०

२६०. अब जघन्य अन्तर कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। निद्रा, प्रचला, असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेद प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। किन्तु स्त्रीवेदके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर है। इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है।

२६१. नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० बेसागरोवमसहस्साणि सादि०। अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। मणुसायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। वेउव्वियछ० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं०। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं। मणुसग०-मणुसाणु० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, अज० जह० एग०, उक्क० दो वि असंखेज्जा लोगा। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। आहार०२ जह० ट्ठिदि० जह० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गलपरि०। उच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ज० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिक छहके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनोंका ही उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण आदि बाईस प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे कहा है। तात्पर्य यह है कि जो जीव उपशमश्रेणिमें इन प्रकृतियोंका कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके लिए अबन्धक होकर पुनः इनका बन्ध करता है उसके इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। निद्रा आदि बत्तीस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका बन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद होता है, क्योंकि अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है और बादर पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। तथा इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए स्त्यानगृद्धि तीन आदि नौ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है और बादर पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छ्यासठ सागर है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर प्रमाण कहा है। मात्र स्त्रीवेद सप्रतिपक्ष प्रकृति है, इसलिए इसका यह अन्तर काल साधिक दो छ्यासठ सागर बन जानेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। अप्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चार इन आठ कषायोंका यह अन्तर काल अपनी विशेषताको ध्यानमें रखकर इसी प्रकार प्राप्त होता है। मात्र संयमासंयम और संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्व कोटि प्रमाण होनेसे इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। नपुंसक वेद आदि सोलह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतक और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण कालतक नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। इसका स्पष्टीकरण पहले किया ही है। तथा इनका अजघन्य स्थितिबन्ध कमसे कम एक समय तक नहीं होता, और अधिकसे अधिक दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य काल तक नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो छ्यासठ सागर तथा कुछ कम तीन पल्य कहा है। देवायु और नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष कहा है और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है। और इसमेंसे एक समय जघन्य स्थितिबन्धमें लगता है इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण प्रमाण कहा है। तथा त्रस पर्याप्तकी उत्कृष्ट कायस्थिति दो हजार सागर है और एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है इतने कालके भीतर तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध नियमसे नहीं होता। यहां एक ऐसा जीव लो जिसने तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबध किया है। इसके बाद वह क्रमसे त्रस पर्याप्त हो गया और अपनी कायस्थितिके भीतर उसने तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध नहीं किया। पुनः वह पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्षतक परिभ्रमण करता रहा। इसके बाद वह अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध करता है, इसलिए यहां तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागर कहा है। एक बार आयुबन्धके बाद पुनः दूसरी बार आयुबन्धमें कमसे कम अन्तमुहूर्त काल लगता है, इसलिए तिर्यञ्चायुके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा एक जीवके निरन्तर यदि तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता है तो सौ सागर पृथक्त्व कालतक नहीं होता, इसके बाद वह नियमसे तिर्यञ्चायुका बन्ध करता है, इसलिए इसके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए यहां मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। शेष खुलासा तिर्यञ्चायुके समान है। वैक्रियिक छहके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और जघन्य स्थितिबन्धका जघन्यकाल एक समय है। तथा एकेन्द्रियों और विकलत्रयमें अनन्त कालतक परिभ्रमण करते हुए इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। तिर्यञ्चगति आदि तीनका जघन्य स्थितिबन्ध अनन्त काल तक नहीं होता और अजघन्य स्थितिबन्ध एक सौ त्रेसठ सागर कालतक नहीं होता। इसीसे इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर कहा है। शेष खुलासा वैक्रियिक षट्कके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगतिद्विकका बन्ध नहीं होता और इनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, इसीसे इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष स्पष्टीकरण वैक्रियिकषट्कके समान है। सूक्ष्म जीवोंकी कायस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके चार जाति आदि नौ प्रकृतियोंका ओघ जघन्य स्थितिबन्ध नहीं होता और इनका अजघन्य स्थितिबन्ध एक सौ पचासी सागर कालतक नहीं होता। इसीसे इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर कहा है। एक जीव जो छठवें नरकमें बाईस सागर प्रमाण आयुके अन्तमें वेदक सम्यग्दृष्टि हुआ। पुनः कुछ कम छ्यासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया। पुनः कुछ कम छ्यासठ सागर प्रमाण काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें इकतीस सागरप्रमाण आयुके साथ नौ ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। उसके एक सौ पचासी सागर काल तक चार जाति आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। तथा इसमेंसे प्रारम्भके बाईस सागर कम कर देने पर तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल उपलब्ध होता है। शेष अन्तर कालका स्पष्टीकरण वैक्रियिकषट्कके समान है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके औदारिक शरीर आदि तीन प्रकृतियोंका ओघ जघन्य स्थितिबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६२. आदेसेण णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-ओरालिय०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-वण्ण०४-अगुरु०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० जह० अज० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचुच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। सादासा०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-समचदु०-वज्जरिस०-पसत्थ०-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०[-जस०-अजस०] जह०[1] ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दो आयु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसू०। तित्थय० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि सागरो० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं पढ-

अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है और मनुष्य सम्यग्दृष्टिके इनका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य कहा है। शेष अन्तर कालका स्पष्टीकरण वैक्रियिकषट्कके समान है। संयमका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अर्ध-पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, इसलिए आहारकद्विकके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा उच्चगोत्रका अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके बन्धका नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६२. आदेशसे नारकियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र और उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-

1. जह० अज० जह० ट्ठिदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माए । णवरि सगट्ठिदी याणिदव्वा । मणुसगदितिगं सादभंगो । विदियादि याव छट्ठि त्ति उक्कस्सभंगो । णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ जह० अज०जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीसं साग० देसू० । सत्तमाए एवं चेव णादव्वं । णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० अज० थीणगिद्धितियभंगो । मणुसगदितिगं इत्थिभंगो ।

२६३. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंस०-सादासा०-अट्ठक०-सत्तणोक०-पंचिंदि०-

---

मुहूर्त है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए । तथा मनुष्यगति त्रिकका भङ्ग साता प्रकृतिके समान कहना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे कुछ कम तीन सागर, कुछ कम सात सागर, कुछ कम दस सागर, कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम बाईस सागर है । सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर स्त्यानगृद्धित्रिकके समान है । तथा मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और ऐसे नारकी जीवके उत्पन्न होनेके प्रथम व द्वितीय समयमें जघन्य स्थितिबन्ध होता है । इसीसे यहाँ दो आयु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । इनके इसके सिवा पाँच ज्ञानावरण आदि ४८ प्रकृतियोंका निरन्तर अजघन्य स्थितिबन्ध होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका भी निषेध किया है । नरकमें सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है और सम्यग्दृष्टिके स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसीसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । इसी दृष्टिको ध्यानमें रखकर यहाँ स्त्रीवेद आदि बाईस प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है । उच्चगोत्रका सातवें नरकमें मिथ्यादृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे इसके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है। तथा ये सब सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है । प्रथम नरकमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंका कथन सामान्य नारकियोंके समान कहा है । मात्र जहाँ कुछ कम तेतीस सागर कहा है वहाँ प्रथम नरककी स्थितिको ध्यानमें रखकर अन्तर कहना चाहिए । तथा यहाँ मनुष्यगतित्रिकका बन्ध मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल साता प्रकृतिके समान कहा है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक उत्कृष्टके समान अन्तरकाल होनेका कारण यह है कि इन पृथिवियोंमें असंज्ञी जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता । जिन प्रकृतियोंके सम्बन्धमें विशेषता है वह अलगसे कही ही है सो विचार कर जान लेना चाहिए ।

२६३. तिर्यञ्चोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, आठ कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर–आदे०–जस०-अजस०-णिमि०--पंचंत० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं जह० ट्ठिदि० णाणाव०भंगो। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। एवं इत्थिवे०। अपच्चक्खाण०४-णवुंस–चदुजादि०-ओरालि०-पंचसंठा०–ओरालि०अंगो०–छस्संघ०-आदाव०-अप्पसत्थ०–थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे० जह० ट्ठिदि० णाणाव०भंगो। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। तिण्णि आउ० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दा० समयू०, उक्क० पलिदो० असं०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि०। वेउव्वियछ०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। उच्चा० मणुसाणु०भंगो। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचागो०-उज्जो० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०।

संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण चार, नपुंसकवेद, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तीन आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका कुछ कम तीसरा भाग है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है। वैक्रियिक छह, मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर मनुष्यानुपूर्वीके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र और उद्योतके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६४. पंचिंदियतिरिक्ख०३ जह० ट्ठिदि० उक्क०भंगो। अज० अणुक्क०भंगो। णवरि तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभ० समयू०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। पज्जत्त-जोणिणीसु जह० ट्ठिदि० जह० णत्थि अंतरं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वपगदीणं जह० अज० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। णवरि तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभ० समयू०, उक्क० अंतो०। अज० जह० उक्क० अंतो०। मणुसायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चोंमें वेदक सम्यक्त्वका काल कुछ कम तीन पल्य है इसलिए इनमें स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य कहा है। यहाँ स्त्रीवेदकी स्थिति स्त्यानगृद्धिके समान है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर स्त्यानगृद्धि तीनके समान कहा है। संयमासंयमका काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है और मनुष्योंमें वहीं उत्पन्न हुए सम्यक्त्वका काल भी इतना ही है इसलिए अप्रत्याख्यानावरण चार आदि इकतीसके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण कहा है। तीन आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तिर्यञ्चोंमें जो निरन्तर एकेन्द्रियोंमें परिभ्रमण करते रहते हैं उनमें तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध कमसे कम एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणके बाद और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके बाद नियमसे होता है, इसलिए इनमें तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तीनमें जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। परन्तु पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। परन्तु तीन पल्यकी आयु प्राप्त होनेके बाद जीव नियमसे देव होता है। इसीसे यहाँ तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर सामान्यसे पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है। इसमें पूर्वकोटि पृथक्त्व कालके प्रारम्भमें और अन्तमें तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध कराके यह अन्तर काल ले आना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६५. मणुस०३ पंचणा०–छदंसणा०–चदुसंज०–भय–दुगुं०–तेजा०–क०–वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि०[1] णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। एवं इत्थि०। णवरि अज० एग०। अट्ठक० जह० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। सादासा०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-देवगदि-पंचिंदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, [उक्क०] अंतो०। णवुंस०-तिरिक्ख-मणुसगदि-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। तिण्णिआयु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। मणुसायु० जह०

२६५. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। साता वेदनीय, असाता वेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तीन आयुओंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभाग प्रमाण है। मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर

१. मूलप्रतौ ट्ठिदि० जह० णत्थि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि० । पज्जत्त-जोणिणीसु मणुसायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी सादि० । णिरयगदि-णिरयाणु० जह० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० । आहार०२ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं ।

२६६. मणुसअपज्जत्ते धुविगाणं जह० अज० णत्थि अंतरं । तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० उक्क० अंतो० । मणुसायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभ० समयू०, उक्क० अंतो० । अज० जह० उक्क० अंतो० । सेसाणं जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है । किन्तु पर्याप्त और योनिनी मनुष्योंमें मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें कुछ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और जिनका क्षपकश्रेणिमें नहीं होता, उनमेंसे चार आयुओंको छोड़कर शेषका असंज्ञीचर मनुष्यके भवके प्रथम और द्वितीय समयमें होता है, इसलिए यहाँ जघन्य स्थितिबन्धमें अन्तर कालका निषेध किया है । शेष अन्तर कालका विचार सुगम है ।

२६६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है, उसके उत्पन्न होनेके प्रथम और द्वितीय समयमें दो आयुके बिना शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरका निषेध किया है । तथा जो ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका इसके बाद निरन्तर अजघन्य स्थितिबन्ध होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । परन्तु इसके सिवा जो सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं, उनका अदल-बदलके बन्ध होना सम्भव है, इसलिए उनके अजघन्य स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६७. देवेसु तित्थय० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं णिरयोघं । णवरि सग-ट्ठिदी० । भवण०-वाणवेंत० पढमपुढविभंगो । णवरि सागरो० सादि० पलिदो० सादि० । जोदिसिय याव सव्वट्ठ त्ति उक्कस्सभंगो । णवरि थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० अज०[1] ट्ठिदि० जह०अंतो०, उक्क० अप्पप्पणो ट्ठिदी० ।

२६८. एइंदिए तिरिक्ख०४ [जह०] जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं० अंगुलस्स असं० संखेज्जाणि वाससहस्साणि असंखेज्जा लोगा अंतोमु० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० यथासंखाए एइंदि०-बादर-बादरपज्जत-सुहुम-सुहुमपज्जत्ताणं । तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे० । अज० अणुक्क०-

अन्तर काल कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध हो जाता है, इसलिए शेष प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन सुगम है ।

२६७. देवोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि साधिक एक सागर और साधिक एक पल्य कहना चाहिए । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—देवोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध अन्यतरके सर्वविशुद्ध परिणामोंसे होता है, इसलिए यहाँ जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है; यह स्पष्ट ही है । मूलमें शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर नारकियोंके समान कहकर अपनी स्थिति कहनेकी सूचना की है सो इसका यह अभिप्राय है कि जिन प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टि और सासादनदृष्टिके ही बन्ध होता है, उनका नौग्रैवेयक तक, तिर्यञ्चगति आदिका सहस्रार कल्प तक और एकेन्द्रिय जाति आदि तीनका ऐशान कल्प तक बन्धका विधान करके इनका अन्तर काल इस हिसाबसे प्राप्त करे । शेष कथन सुगम है ।

२६८. एकेन्द्रियोंमें एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे अनन्त काल, अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण, संख्यात हजार वर्ष, असंख्यात लोकप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग

१. मूलप्रतौ अज० जह० ट्ठिदि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो। सेसाणं उक्कस्सभंगो। बादरे तिरिक्खायुग० एइंदियभंगो। सुहुम-बादरपज्जत्ते तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० णत्थि अंतरं। सेसं उक्कस्सभंगो। अपज्जत्ता० तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। सुहुमे तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० पलिदो० असंखे०। अज० अणुक्क०भंगो। सेसाणं उक्कस्सभंगो। सव्वाणं मणुसायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० पगदिअंतरं।

२६९. बीइं०-तीइं०-चदुरिं० पज्जत्तापज्जत्ता० उक्कस्सभंगो। णवरि तिरिक्खायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० ट्ठिदि०। पज्जत्ते० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० अणुक्क०भंगो।

२७०. पंचिंदिय०२ खवगपगदीणं तित्थयरस्स जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। णिद्दापचला-असादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-देवगदि-

उत्कृष्टके समान है। बादरोंमें तिर्यञ्चायुका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। सूक्ष्म जीवोंमें और बादर पर्याप्त जीवोंमें तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर काल नहीं है। तथा शेष भङ्ग उत्कृष्टके समान है। अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इन सबके मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है और इनका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल कहा है। तथा बादर एकेन्द्रियोंमें अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण, बादर पर्याप्त एकेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्षप्रमाण, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण और सूक्ष्म पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। इन सबके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२६९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है। इनके पर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है।

२७०. पञ्चेन्द्रियद्विकमें क्षपक प्रकृतियोंके और तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदि०-वेउव्विय-तेजा०-क०-समचदु०-वेउव्वि०अंगो०-वएण०४-देवाणु०-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० जह० ट्ठि० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि देवगदि०४ अज० उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। णेरइय-देवायु० जह० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० कायट्ठिदी०। तिरिक्ख०-मणुसायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० कायट्ठिदी०। अज० सव्वाणं उक्क०भंगो। पज्जत्तगे तिरिक्ख-मणुसायु० जह० णत्थि अंतरं। अज० पगदिअंतरं। आहार०२ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०। सेसाणं उक्कस्सभंगो। पंचिंदियअपज्जत्त० तिरिक्ख-मणुसायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० अंतो०। अज० जह० उक्क० अंतो०। सेसं उक्कस्सभंगो।

शरीर, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। तथा सबके अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। पर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। आहारकद्विकके जघन्यस्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्यस्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्ट के समान है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें क्षपक प्रकृतियों और तीर्थङ्कर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। यहाँ निद्रा आदि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे असंज्ञी जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थिति प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें असंज्ञियोंमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। देवगतिचतुष्कका देवोंके और नारकियोंके बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर कहा है। मात्र इनके सिवा निद्रादि शेष प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिके बन्धमें अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तका अन्तर पड़ता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७१. पुढविका० तिरिक्खायु० एइंदियभंगो। सेसं उक्कस्सभंगो। एवं पंचकायाणं। तस०२ पंचिंदियभंगो। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। तसअपज्जत्त० पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

२७२. पंचमण०-पंचवचि० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-चदुआयु०-तिण्णिसरीर०-आहार०अंगो०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० जह० अज० णत्थि अंतरं। णवरि वचिजोगि०-असच्चमोस० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगुरुलहु०-उपघा०-णिमि० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२७३. कायजोगीसु खवगपगदीणं वेउव्वियछक्क-तित्थय० जह० णत्थि अंतरं। अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिरय-देवायु० जह० अज० णत्थि

२७१. पृथिवीकायिक जीवोंमें तिर्यञ्चायुका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पाँच कायवाले जीवोंके जानना चाहिए। त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए। त्रस अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

२७२. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, चार आयु, तीन शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंमेंसे कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है और कुछ ऐसी प्रकृतियाँ हैं जिनका जघन्य स्थितिबन्ध संयमके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि या संयतासंयतके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। मात्र वचनयोगी और अनुभयवचनयोगी जीवोंमें पाँच दर्शनावरण आदि प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध द्वीन्द्रिय पर्याप्तके होता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए यह उक्त प्रकारसे कहा है। यहाँ चार आयुओंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है, यह स्पष्ट ही है।

२७३. काययोगी जीवोंमें क्षपकप्रकृतियाँ वैक्रियिक छह और तीर्थङ्कर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नरकायु और देवायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं। तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० तिरिक्खोघं। अज० अणुक्कस्सभंगो। मणुसा० मूलोघं। तिरिक्खगदि०४ एइंदियभंगो। मणुसग०-मणुसाणु० जह० जह०. अंतो०, अज० जह० एग०, उक्क० दोण्णं पि असंखेज्जा लोगा। एवं उच्चा०। णवरि जह० णत्थि अंतरं। सेसाणं जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२७४. ओरालियका० खवगपगदीणं णेरइय-देवायु०-आहारदुग-तित्थय० जह० अज० णत्थि अंतरं। सादासादा०-पुरिस०-वेउव्वियछक्क-जसगि० जह० णत्थि अंतरं। अज० [जह०] एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज[1]० पगदिअंतरं। तिरिक्खगदि०४ जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि वाससहस्साणि देसू०। अज० जह० एग०, उक्क अंतो०। सेसाणं जह० जह०

का अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल मूलोघके समान है। तिर्यञ्चगति चारके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका ही असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार उच्चगोत्रका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ--काययोगी जीवोंके प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। परन्तु जो जीव काययोगमें उपशमश्रेणिमें इनका कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके लिए अबन्धक होकर और मरकर देव होनेपर काययोगके सद्भावमें ही पुनः इनका बन्ध करने लगता है,उसके इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२७४. औदारिककाययोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियाँ,नरकायु, देवायु,आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, पुरुषवेद, वैक्रियिक छह और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। तिर्यञ्चगति चारके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है

1. अज० जह० पगदि-- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो०, उक्क० बावीसं वाससहस्साणि देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२७५. ओरालियमि० उक्कस्सभंगो । केण कारणेण उक्कस्सभंगो ? येण बादर-एइंदिए वि अधापवत्तो वा से काले सरीरपज्जत्ती जाहिदि त्ति वा सामित्तं दिण्णं तेण कारणेण उक्कस्सभंगो । णवरि दो आयु० तसअपज्जत्तभंगो ।

और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—औदारिककाययोगमें क्षपक प्रकृतियाँ, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है । तथा इसके सिवा अन्यत्र इस योगमें अजघन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । इस योगमें नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है,यह स्पष्ट ही है । सातावेदनीय, पुरुषवेद और यशःकीर्तिका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है । वैक्रियिक छहका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध असंज्ञीके होता है, पर इसके योगपरिवर्तन होता रहता है, इसलिए यहाँ इनके भी जघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है । तथा ये सब प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं,इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है । तिर्यञ्चगतिचतुष्कका जघन्य स्थितिबन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके होता है और वायुकायिक जीवोंमें औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन हजार वर्ष है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन हजार वर्ष कहा है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त जीवोंके भी होता है और वहाँ औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। इसलिए यहाँ शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है । शेष कथन सुगम है ।

२७५. औदारिक मिश्रकाययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है । यहाँ उत्कृष्टके समान भङ्ग किस कारणसे है ? यतः बादर एकेन्द्रिय जीवमें भी अधःप्रवृत्त होता है अथवा तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगा,उसे जघन्य स्थितिबन्धका स्वामित्व प्राप्त होता है, इस कारणसे उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि दो आयुओंका भङ्ग त्रसअपर्याप्तकोंके समान है ।

विशेषार्थ—औदारिक मिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरकालका विचार दो प्रकारसे किया है । बादर एकेन्द्रिय जीवके भी वह प्रकार सम्भव है, इसलिए यहाँ भी सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल उत्कृष्टके समान जानना चाहिए; यह उक्त कथनका तात्पर्य है । मात्र यहाँ बन्धको प्राप्त होनेवाली तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके सम्बन्धमें कुछ विशेषता है , जिसका निर्देश मूलमें अलगसे किया ही है । बात यह है कि अपर्याप्त अवस्थाके बाद भवान्तरमें भी औदारिक मिश्रकाययोगका सातत्य बना रहता है, इसलिए त्रस अपर्याप्तकोंमें उक्त दोनों आयुओंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल कह आये हैं,उसी प्रकार वह यहाँ भी बन जाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७६. वेउव्विय०-वेउव्वियमि० उक्कस्सभंगो। आहार०-आहारमिस्स० मण-जोगिभंगो। कम्मइगका० उक्कस्सभंगो।

२७७. इत्थिवेदे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-तित्थय०-पंचंत० जह० अज० णत्थि अंतरं। णिद्दा-पचला-असादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंच्छ-पंचिंदियजा-दि-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-[सुभग]-सुस्सर[1]०-आदे०-[अजस०]-णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवम-सदपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु-बंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० अज० उक्कस्स-भंगो। अट्ठक० जह० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० सदपुधत्तं। अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। सादावे०-पुरिस०-जस०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिरयायु० उक्कस्सभंगो। तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० जह० णत्थि अंतरं। अज० अणु०भंगो। देवायु० जह० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। अज०

२७६. वैक्रियिक काययोग और वैक्रियिक मिश्र काययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है तथा कार्मणकाययोगमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

२७७. स्त्रीवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, तीर्थंकर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। निद्रा, प्रचला, असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति, और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल उत्कृष्टके समान है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। साता वेदनीय, पुरुषवेद, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नरकायुका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल अनुत्कृष्टके समान है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पल्य पृथक्त्व है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका

1. मूलप्रतौ सुस्सर० आदा० णिमि० आदे० जह० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु०भंगो। वेउव्वियछक्क०-तिण्णिजा०-सुहुम०-अपज्ज०-साधार० जह० अज० उक्क०भंगो। मणुसगदिपंचगस्स जह० अज० उक्क०भंगो। आहार०२ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी०।

२७८. पुरिस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० जह० अज० णत्थि अंतरं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० अज० उक्कस्सभंगो। णिद्दा-पचला-असादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-अणादे०-अजस०-णिमि० जह० ट्ठिदि० उक्कस्सभंगो। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। [अट्ठक०

अन्तर काल अनुत्कृष्टके समान है। वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणीमें होता है और इसके सिवा अन्यत्र अजघन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य स्थितिबन्ध उपशम श्रेणीमें प्राप्त होता है,पर यहाँ इसके भी जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ इसका भी निषेध किया है। स्त्रीवेद की उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण है। जिस असंज्ञी स्त्रीवेदी जीवने इसके प्रारम्भ में और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध किया और मध्यमें अजघन्य स्थितिबन्ध किया, उसके दूसरे दण्डकमें कही गई निद्रा आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ पल्यपृथक्त्व उपलब्ध होता है,इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार ले आना चाहिये। तथा संयमासंयम और संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि होनेसे यहाँ आठ कषायोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। क्योंकि संयमासंयममें अप्रत्याख्यानावरण चारका और संयममें प्रत्याख्यानावरण चारका बन्ध नहीं होता। सातावेदनीय आदि चार प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अन्तरकालका निषेध किया है। फिर भी ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ है इसीलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालके उपलब्ध होनेमें कोई बाधा नहीं आती। सामान्यतः प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्तप्रकारसे कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२७८. पुरुषवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, नपुंसकवेद, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपु० । अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू० ।] सादावे०-पुरिस०-जस०-तित्थय०-उच्चा० जह० णत्थि अंतरं । अज० ट्ठिदि० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णिरयायु० उक्क०भंगो । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्क०भंगो । देवायु० जह० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० कायट्ठिदी० । अज० ट्ठिदि० पगदिअंतरं । णिरयगदि-चदुजा०-णिरयाणु०-आदाव-थावरादि०४ उक्कस्सभंगो । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० अज० उक्कस्सभंगो । मणुसगदि-पंचगस्स जह० अज० उक्कस्सभंगो । देवगदि०४ जह० अज० उक्कस्सभंगो । आहार०२ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० कायट्ठिदी० ।

पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । नरकायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर आदि चार प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। देवगतिचतुष्कके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर उत्कृष्टके समान है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदमें पाँच ज्ञानावरण आदि प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें अपने-अपने बन्धके अन्तमें होता है। अन्यत्र अजघन्य स्थितिबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। सातावेदनीय आदि पाँच प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धका तो निषेध किया है, पर तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा इनके सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेके कारण इनके अजघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिये उसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७९. णवुंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०पंचंत० जह० अज० णत्थि अंतरं। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थवि०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० द्विदि० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। णिद्दा-पचला-असादा०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सादा०-पुरिस०-जस० जह० अज० ओघं। दो आयु०-वेउव्वियछक्क०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। तिरिक्खायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अज० ओघं। देवायु० तिरिक्खोघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० द्विदि० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालं०।

तथा उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तात्पर्य यह है कि जो उपशमश्रेणिमें एक समयके लिए अबन्धक होकर मरता है और देव होकर पुनः बन्ध करने लगता है, उसके एक समय अन्तरकाल उपलब्ध होता है और जो अन्तर्मुहूर्त अबन्धक होकर मरता है और देव होकर पुनः बन्ध करने लगता है, उसके अन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है। आहारकद्विकका भी जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें उपलब्ध होता है। इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष कथन स्पष्ट ही है।

२७९. नपुंसकवेदमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर अनादेय और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्ध का अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माण प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, पुरुषवेद और यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। दो आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। देवायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज० अणु०भंगो। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० ओघं। अज० अणु०भंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० [जह०] ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। अट्ठक० जह० अज० ओघं। आहार०२ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। तित्थय० उक्कस्सभंगो।

२८०. अवगदवे० सगपगदीणं जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

२८१. कोधादि०४ खवगपगदीणं चदुआयु०-आहार०२ जह० अज० णत्थि

समान है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदमें प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालके न होनेका स्पष्टीकरण जिस प्रकार पुरुषवेदमें कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये। नपुंसकवेदमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है और सम्यक्त्वके सद्भावमें स्त्रीवेद आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यहाँ निद्रा आदि तीसरे दण्डकमें कही गईं प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है, इसलिए यहाँ तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल कहा है। कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्चके उसी पर्यायमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, और इसके औदारिक शरीर आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८०. अपगतवेदमें अपनी प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अपगतवेदमें अपनी सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें उपलब्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है तथा उपशम श्रेणिमें अपगतवेदीके अपनी प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

२८१. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंमें क्षपक प्रकृतियाँ, चार आयु और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि मान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरं । णवरि माणस्स कोधसंज० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । एवं मायाए दो संजल०, लोभ० [चत्तारि] संजल० । सेसाणं जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

२८२. मदि-सुद० पंचणा०-णवदंसणा०-सादासा०-मिच्छ०-सोलसक०-अट्ठणोक०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० जह० ट्ठि० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णवुंस-ओरालि०-

---

कषायमें क्रोध संज्वलनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार माया कषायमें दो संज्वलनोंका और लोभकषायमें चार संज्वलनोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। तथा चारों कषायोंमें शेष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—चारों कषायोंमें चारों आयुओंका अजघन्य स्थितिबन्ध अन्तरके साथ दो बार सम्भव नहीं है और जघन्य स्थितिबन्ध एक बार ही होता है, इसलिए तो इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया। और क्षपक प्रकृतियों और आहारकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है। साथ ही उपशम श्रेणिमें कषायोंके रहते हुए क्षपक प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती। यद्यपि आहारकद्विककी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है,पर उपशमश्रेणि पर चढ़ते और उतरते हुए कषायमें परिवर्तन होता है और उपशान्तमोहमें कषायका अभाव हो जाता है, इसलिए इन चारों कषायोंमें न तो क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध होता है और न आहारकद्विकके ही जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल उपलब्ध होता है; इसलिए यहाँ इसका निषेध किया है। यहाँ शेष प्रकृतियोंका एक कषायमें दो बार जघन्य स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है, इसलिए सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। पर जिसके एक कषायमें कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके लिए सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध होता है,उसके अन्य सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ मानकषायमें क्रोधसंज्वलनके, मायाकषायमें क्रोध और मान संज्वलनके और लोभकषाय क्रोध, मान माया और लोभ संज्वलनके अजघन्य स्थितिबन्धका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है,वह उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षासे जानना चाहिए। कारण स्पष्ट है।

२८२. मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे० ज० ट्ठि० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। चदुआयु-वेउव्वियछक्क-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० ट्ठिदि० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क एक्कत्तीसं साग० सादि०। चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० अज० णवुंसगभंगो। णीचागो० ज० ट्ठि० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू०। उच्चा० जह० अज० जह० अंतो० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

२८३. विभंगे पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुं०-णिरय-

आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योत प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चार प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नपुंसकवेदके समान है। नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—इन दोनों अज्ञानोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके होता है और इनकी कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण कहा है। यहाँ कायस्थितिके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध करा कर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए। नपुंसकवेद आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका भोगभूमिमें बन्ध नहीं होता, इसलिए यहाँ उनके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका कुछ कम तीन पल्य अन्तरकाल कहा है। यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका यह अन्तरकाल इसी प्रकार कहा है। यह तीन पल्यमें कुछ कम कहा यह विचारणीय है। नीचगोत्रके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए। तिर्यञ्चगति आदि तीन प्रकृतियोंका बारहवें कल्पके ऊपर बन्ध नहीं होता और वहाँ दोनों अज्ञानोंका उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है। इसीसे यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक सागर कहा है। ये सप्रतिपक्ष प्रकृतियाँ होनेसे यह साधिक काल बन जाता है। जिस बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवने कायस्थितिके आदिमें और अन्तमें उच्चगोत्रका जघन्य स्थितिबन्ध किया उसके तो इसके जघन्य स्थितिबन्धका असंख्यात लोक प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके इसका बन्ध नहीं होनेसे अजघन्य स्थितिबन्धका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८३. विभङ्गज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवायु०-तेजा०-क०-वरण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० जह० अज० णत्थि अंतरं। सादा०-पुरिस०-हस्स-रदि-वेउव्वियछ०-चदुजादि-समचदु०-वज्जरिसभ०-पर०-उस्सा० उज्जो०-पसत्थ०-तस०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय०-साधारण-थिरादिछक्क-णीचुच्चा० ज० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-इत्थि०-णवुंस०-अरदि-सोग-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्ख-मणुसायु० णिरयोघं। एइंदि०-आदाव-थावर०जह० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। दोगदि-ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-दोआणु० ज० ट्ठि० णत्थि अंतरं। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०।

जुगुप्सा, नरकायु, देवायु, तैजसशरीर, कार्मणशरीर वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, वैक्रियिक छह, चार जाति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण, स्थिर आदि छह, नीच गोत्र और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर सामान्य नारकियोंके समान है। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। दो गति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानमें नरकायु और देवायुके सिवा प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए यहाँ इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है, यह तो स्पष्ट ही है। इसी प्रकार इनके अजघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका यथायोग्य अभाव जान लेना चाहिए। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल स्पष्ट ही है। जो नारकी भवके प्रारम्भमें पर्याप्त होने पर असातादि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध करके पुनः भवके अन्तमें बन्ध करता है, उसके इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८४. आभि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछक्क-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० ज० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला अज० ज० उक्क० अंतो०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० [जह०] अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०! अट्ठक० ज० ट्ठि० ज० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०। अज० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। दो आयु० उक्कस्सभंगो। मणुसगदिपंचगस्स ज० ट्ठि० ज० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० सादि०। अज० ज० एग०, उक्क० पुव्वकोडी० सादि०। देवगदि०४-आहार०२ ज० ट्ठि० णत्थि अंतरं। अज० ज० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०।

२८४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु४, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि निद्रा और प्रचलाके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक पूर्वकोटि है। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—इन तीन ज्ञानोंमें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। तथा इनमेंसे कुछ तो सान्तर प्रकृतियाँ है, सब नहीं हैं, फिर भी उपशम श्रेणिमें मरणकी अपेक्षा इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि आठवें गुणस्थानके जिस भागमें निद्रा और प्रचलाकी व्युच्छित्ति होती है, वह मरणसे रहित है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस जीवने सम्यक्त्वको प्राप्त कर प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें असाता आदिका जघन्य स्थितिबन्ध किया, पुनः वह साधिक छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तमें पुनः प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें जघन्य स्थितिबन्ध किया, उसके असाता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८५. मणपज्ज० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दुगुं०-देवगदि-पंचिंदि०-तिण्णिसरीर-समदु०-वेउव्वि०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० उक्क० अंतो०। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० ज० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० ज० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। देवायु० उक्कस्सभंगो। आहार०२ ज० ट्ठि० णत्थि अंतरं। अज० ज० उक्क० अंतो०। एवं संजदाणं।

उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागर उपलब्ध होनेके कारण वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक छ्यासठ सागर ले आना चाहिए। मात्र इनका जघन्य स्थितिबन्ध अविरत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवके करा कर यह अन्तरकाल लाना चाहिए। यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। सो यह अन्तर इतने कालतक संयतासंयत और संयत रख कर लाना चाहिए। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी साधिक छ्यासठ सागर तक सम्यग्दृष्टि रखकर प्राप्त करना चाहिए। मात्र इस कालके प्रारम्भमें और अन्तमें देव और नारकीके जघन्य स्थितिबन्ध कराकर इसे लाना चाहिए। आहारकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होता है। इसलिए यहाँ इनके अन्तरकालका निषेध किया है। जो संयत जीव इनका अजघन्य स्थितिबन्ध करके और मर कर तेतीस सागरकी आयुके साथ देव होता है और वहाँसे आकर अप्रमत्त संयत होकर पुनः आहारकद्विकका बन्ध करता है उसके इनके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेके कारण वह उक्त प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

२८५. मनःपर्ययज्ञानमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवायुका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानमें प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। मनःपर्ययज्ञानमें इन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर पुनः अन्तर्मुहूर्तके बाद इनका बन्ध होता है, इसलिए यहाँ इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८६. सामाइ०-छेदो० धुविगाणं ज० अज० ट्ठि० णत्थि अंतरं। तित्थयरं धुविगाणं भंगो। सेसाणं मणपज्जवभंगो। परिहार० सव्वपगदीणं जह० ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सुहुमसांपराइ० सव्वपगदीणं जह० अज० णत्थि अंतरं। संजदासंजदा० धुविगाणं ज० अज० णत्थि अंतरं। परियत्तमाणियाणं संजदभंगो। आयु० परिहारभंगो।

२८७. असंज० पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-बारसक०-[सत्तणोक०-]पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगुरु०४-पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-पंचंत० ज० अज० मदि०भंगो। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-

---

और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ सातावेदनीय आदिका भी जघन्य स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणिमें होता है, इसलिए इनके भी जघन्य स्थितिबन्धके अन्तर कालका निषेध किया है। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है। असाता वेदनीय आदिका जघन्य स्थितिबन्ध प्रमत्तसंयतके होता है। जो मनःपर्ययज्ञानके प्राप्त होनेके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका जघन्य स्थितिबन्ध करता है, उसके इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्व कोटि प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। संयम मार्गणाके कथनमें मनःपर्ययज्ञानके कथनसे कोई अन्तर नहीं है, इसलिए इसमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२८६. सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ध्रुवबन्ध प्रकृतियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग मनःपर्ययज्ञानके समान है। परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। परावर्तमान प्रकृतियोंका भङ्ग संयतोंके समान है और दोनों आयुओंका भङ्ग परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—इन सब संयमोंमें सब प्रकृतियोंका जो अन्तरकाल कहा है, उसे स्वामीका विचार कर ले आना चाहिये। विशेष बात न होनेसे यहाँ हमने अलग-अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

२८७. असंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल मत्यज्ञानियोंके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुस्सर-अणादे० ज० ओघं। अज० णवुंसगभंगो। चदुआयु०-वेउव्वियछ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० मदि०भंगो। तिरिक्खगदि०४ ज० जह० ओघं। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू०। चदुजा० आदाव-थावरादि०४ णवुंसगभंगो। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि० ओघं। तित्थय० ज० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०।

२८८. चक्खु० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० मूलोघं। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

२८९. तिण्णिलेस्साणं पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-बारसक०-सत्तणोक०-णिरयगदि-देवगदि-पंचजादि-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्ज-रिसभ०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४-[आदाव-]पसत्थ०-तस०४- [थावर०४] थिरा-थिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० ज० ट्ठि० णत्थि अंतरं। अज० ज० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु-बंधि०४-इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ख-मणुसग०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोआणुपु०-उज्जो०-

का अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर नपुंसकवेदके समान है। चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है। तिर्यञ्चगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर ओघके समान है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारका भङ्ग नपुंसक वेदी जीवोंके समान है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहनन का भङ्ग ओघके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सातवें नरकमें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर होनेसे यहाँ अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध संयमके अभिमुख हुए जीवके होता है, इसलिए इसके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

२८८. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मूलोघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनवाले जीवोंमें अवधिज्ञानियोंके समान भङ्ग है।

२८९. तीन लेश्याओंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, सात नोकषाय, नरकगति, देवगति, पाँच जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, आतप, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थावर चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, मनुष्य-गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग,

१. मूलप्रतौ अगु०४ अपसत्थ० तस ४ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचुच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज[1]० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरो० देसू०। णिरय-देवायु० जह० अज० णत्थि अंतरं। तिरिक्ख-मणुसायु० णिरयभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० बावीसं सत्तारस सत्त साग०। णवरि णील-काऊए मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० पढमदंडगे भाणिदव्वं। काऊए तित्थय० जह० जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि साग० सादि०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र और उच्च गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर और कुछ कम सात सागर है। नरकायु और देवायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नारकियोंके समान है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बाईस सागर, सत्रह सागर और सात सागर है। इतनी विशेषता है कि नील और कापोत लेश्यामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रको प्रथम दण्डकमें कहना चाहिए। कापोत लेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—कृष्ण लेश्यामें सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर, नील लेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर और कापोत लेश्यामें कुछ कम सात सागर है। इसीसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन आदिके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इन लेश्याओंमें उक्त प्रमाण कहा है। इतनी विशेषता है कि कृष्ण लेश्यामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल मध्यमें कुछ कम तेतीस सागरतक मिथ्यादृष्टि रखकर ले आना चाहिये। कारण कि सातवें नरकमें इन तीन प्रकृतियोंका मिथ्यादृष्टिके बन्ध नहीं होता। तथा नील और कापोत लेश्यामें इनका बन्ध मिथ्यादृष्टिके भी होता है। यही कारण है कि मूलमें इन दोनों लेश्याओंमें इन प्रकृतियोंका प्रथम दण्डकके साथ कथन करनेकी सूचना की है। यहाँ तीनों लेश्याओंमें जो जीव नरकगतिमें जाता है और वहाँसे आता है, उसके इन लेश्याओंके सद्भावमें नरकगति, देवगति, नरकानुपूर्वी और देवानुपूर्वीका बन्ध नहीं होता। इसीसे यहाँ इन तीन लेश्याओंमें इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा इसी प्रकार सातवें नरकमें जानेवाले जीवके कृष्णलेश्यामें वैक्रियिकद्विकका बन्ध नहीं होता। इन तीन लेश्याओंमें छठवें नरकतक जानेवाले जीवके नरक जानेके पूर्व और वहाँसे आनेके बाद इन लेश्याओंमें अवश्य ही इन दोनों प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध सम्भव है। इसीसे इन तीन लेश्याओंमें इन दोनों प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर क्रमसे बाईस सागर, सत्रह सागर और सात सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

1. मूलप्रतौ जह० जह० एग० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८०. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दुगुं०-तेजा०-क०-वएण०४-अगुरु०४--बादर--पज्जत्त--पत्तेय--णिमिण--तित्थय०-पंचंत० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० उक्क० अंतो० । अथवा जह० एग०, उक्क० अंतो० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०--अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । सादासा०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-पंचिंदि०-समचदु०-पसत्थवि०-तस०-[थावर०-] थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-उच्चा० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अट्ठक०-देवायु०-आहार०२ जह० अज० णत्थि अंतरं । इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्खगदि-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०--तिरिक्खाणु०--आदाउज्जो०--अप्पसत्थ०--दूभग--दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । अज० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि० । तिरिक्ख-मणुसा० देवोघं । मणुसगदिपंचग० जह० जह०[1] अंतो०, उक्क० बेसाग० सादि० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० बेसाग० सादि० । एवं पम्माए । णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा । पंचिंदिय-तस० पढमदंडगे पविट्ठं ।

२९०. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अथवा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । सातावेदनीय, असातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और उच्चगोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है, अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषाय, देवायु और आहारकद्विकके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्र प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । देवगतिचतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है । इसी प्रकार पद्म लेश्यामें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिए । तथा पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रसकाय ये दो प्रकृतियाँ प्रथम दण्डकमें सम्मिलित कर लेनी चाहिए ।

१. मूलप्रतौ जह० अज्ज० अंतो० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९१. सुक्काए पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचिंदिय-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-[आदाव-] पसत्थ०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० एक्कत्तीसं० देसू०। अट्ठक०-देवायु० जह० अज० णत्थि अंतरं। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०[1] जह० अज० जह० अंतो० एग०,

विशेषार्थ—पीतलेश्यामें प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध अप्रमत्तसंयतके होता है और इस लेश्याके कालके भीतर दूसरी बार जघन्य स्थितिबन्धके योग्य परिणाम उपलब्ध नहीं होते, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका काल दो प्रकारसे बतलाया है, सो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जो अप्रमत्तसंयत जीव क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय स्थितिबन्धापसरण करते हुए इन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध करता है, उसके अजघन्य स्थिथिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है और जो स्वस्थानमें इनका जघन्य स्थितिबन्ध करता है, उसके इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है। इससे यह दो प्रकारका कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन आदि आठ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध यहाँ संयमके अभिमुख जीवके होता है, इसलिए इनके जघन्य स्थितिबन्धके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा इस लेश्यामें सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो सागर होनेसे यहाँ इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर कहा है। साता आदि प्रकृतियोंमेंसे कुछका यहाँ अप्रमत्तसंयत जीवके और कुछका प्रमत्तसंयत जीवके जघन्य स्थितिबन्ध होता है। यहाँ भी लेश्याके कालके भीतर दो बार जघन्य स्थितिबन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका निषेध किया है। इसी प्रकार आगे भी स्वामित्वका विचारकर शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल जान लेना चाहिए।

२९१. शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। आठ कषाय और देवायुके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, और अनादेयके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और एक

१. मूलप्रतौ अणादेय णीचागो० जह० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० एक्कत्तीसं सा० देसू० । मणुसायु० देवभंगो । मणुसगदिपंचगस्स जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । देवगदि०४ जह०[1] णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । आहार०२ [जह०] णत्थि अंतरं । अज० जह० [उक्क०] अंतो० ।

२९२. भवसिद्धिया० ओघं । अब्भवसिद्धिया मदि०भंगो । सम्मादिट्ठी० ओधिभंगो । खइगस० पढमदंडओ ओधिभंगो । [असादा० अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीससाग० सादिरे० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।] अट्ठक० जह० जह० अंतो, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । अज० ओधिभंगो । [दो] आयु० उक्कस्सभंगो । मणुसगदिपंचगस्स देवगदि०४ सुक्कभंगो । आहार०२ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० ।

समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका कुछ कम इकतीस सागर है । मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है । मनुष्यगति पञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । देवगति चतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियोंका केवल मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके बन्ध होता है, उनमेंसे यहाँ स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर और स्त्रीवेद आदिके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा है, सो यह नौवें ग्रैवेयकमें प्रारम्भमें और अन्तमें मिथ्यादृष्टि रखकर ले आना चाहिए । तथा मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर देवोंमें प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध कराके ले आना चाहिए । देवगतिचतुष्कका देवोंके बन्ध नहीं होनेसे उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।

२९२. भव्य जीवोंका भङ्ग ओघके समान है । अभव्य जीवोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है । सम्यग्दृष्टियोंका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्तिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य स्थितिबन्ध जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग अवधिज्ञानियोंके समान है । दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है । मनुष्यगतिपञ्चक और देवगति चतुष्कका भङ्ग शुक्ललेश्याके समान है । आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है ।

1. मूलप्रतौ जह० अज० णत्थि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९३. वेदगे धुविगाणं जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। असादा०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजस० जह० [जह०] अंतो०, उक्क० छावट्ठि साग० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि०देसू०। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। दोआयु० उक्कस्सभंगो। मणुसगदिपंचगस्स जह० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसाग० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क०[1] पुव्वकोडी। देवगदि०४ जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० पलिदो० सादि०, उक्क० तेत्तीसं सा०। अथवा जह० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि-साग० देसू०। अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि०। आहारदुगं जह० ट्ठि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा०। तित्थय०

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चारका जघन्य स्थितिबन्ध मनुष्यके होता है। जीव इनका जघन्य स्थितिबन्ध करके और मर कर तेतीस सागरकी आयुवाला देव होता है। पुनः वहाँसे आकर और मनुष्य होकर पुनः इनका जघन्य स्थिति-बन्ध करता है,उसके इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर उप-लब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आहारकद्विकके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल ले आना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

२९३. वेदक सम्यक्त्वमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सातावेदनीय, हास्य,रति, स्थिर,शुभ, और यशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। असातावेदनीय अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। दो आयुओंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। मनुष्यगतिपञ्चकके जघन्य स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि है। देवगतिचतुष्कके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक एक पल्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अथवा जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अज-घन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर

१. मूलप्रतौ उक्क० अंतो० पुव्वकोडी देसू० सादि० देवगदि० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुविगाहि सह कादव्वा । धुविगाणं अथवा जह० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि० देसू० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । सेसाणं आयु०-तित्थयरवज्जाणं सव्व-पगदीणं जह० ट्ठिदि० [जह०] अंतो०, उक्क० छावट्ठि० देसू० । अज० ओधिभंगो । तित्थय० जह०[1] जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अज० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

है । तीर्थङ्कर प्रकृतिकी ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके साथ गणना करनी चाहिये । अथवा ध्रुव-बन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । आयु और तीर्थंकर प्रकृतिके सिवा शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर अवधिज्ञानके समान है । तीर्थंकर प्रकृतिके जघन्य स्थिति-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ- वेदकसम्यक्त्वमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल दो प्रकारसे बतलाया है । सर्वप्रथम कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि विवक्षित प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका स्वामी होता है; इस दृष्टिको ध्यानमें रखकर अन्तरकाल कहा है । इस अपेक्षासे ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों और दूसरे दण्डकमें कही गई साता आदि प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति बन्धका अन्तर उपलब्ध नहीं होता है । वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर होनेसे यहाँ असाता आदिके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छयासठ सागर कहा है । प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध करानेसे यह अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिए । संयमासंयम और संयमका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि होनेसे यहाँ आठ कषायों-के अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है । मनुष्यगतिपञ्चकका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध देव और नारकीके होता है, इसलिए यहाँ इसके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि ये परिणाम अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः हो सकते हैं और यदि ये परिणाम वेदक सम्यक्त्वके कालके प्रारम्भमें और अन्तमें होते हैं तो इनके जघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छयासठ सागर उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । तथा इनके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय है, इसलिए अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और जो वेदक सम्यग्दृष्टि देव मर कर मनुष्य होता है और एक पूर्वकोटिप्रमाण आयुको बिताकर पुनः देव होता है, उसके इन पाँच प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटि देखा जाता है, इस-लिए वह उक्त प्रमाण कहा है । देवगति चतुष्कका जघन्य स्थितिबन्ध जब कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिके होता है, तब इसके अन्तरकाल उपलब्ध नहीं होनेसे उसका निषेध किया है । और देवोंमें इन चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतएव यहाँ अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य

---

१. जह० एग० अंतो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९४. उवसम० पढमदंडओ ओधिभंगो। असादा०-अरदि-सोग-मणुसगदि-पंचगस्स० अथिर-असुभ-अजस० जह० जह० उक्क० अंतो०। अज जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह[१]० [अजह०] जह० उक्क० अंतो०। देवगदि०४-आहार०२-तित्थय० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० उक्क० अंतो०। णवरि तित्थय० अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

अन्तर साधिक एक पल्यप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर उपलब्ध होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। अथवा अप्रमत्तके इनका जघन्य स्थितिबन्ध मानने पर जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागर उपलब्ध होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ जघन्य अन्तर प्रमत्त गुणस्थानसे अन्तरित करके ले आना चाहिए और उत्कृष्ट अन्तर लानेके लिए कुछ कम छ्यासठ सागर कालके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य स्थितिबन्ध करा कर ले आना चाहिए। इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय तक जघन्य स्थितिबन्ध करानेसे उपलब्ध होता है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर जाते समय उपशम श्रेणी पर आरोहण करा कर और उतार कर देवगति चतुष्कके बन्ध होने के एक समय पूर्व मरण करा कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न करानेसे प्राप्त होता है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार आगे भी अन्तरकालका विचार कर लेना चाहिये।

२९४. उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानके समान है। असातावेदनीय, अरति, शोक, मनुष्यगतिपञ्चक, तथा अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहाँ देवगतिचतुष्क आदि सात प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध उपशम श्रेणीमें होता है, इसलिए उसके अन्तरकालका निषेध किया है और उपशमश्रेणीपर आरोहण कर उतरनेमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि अपूर्वकरणके विवक्षित भागमें इनकी बन्ध-व्युच्छित्ति होनेपर उपशम श्रेणीसे उतरकर पुनः उसी भागको प्राप्त होनेतक इन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता। आहारकद्विकका अन्तरकाल प्रमत्तगुणस्थानमें लाकर और पुनः अप्रमत्त गुणस्थामें ले जानेसे भी प्राप्त किया जा सकता है। मात्र जो जीव अपूर्वकरणमें एक समयके लिए तीर्थङ्कर प्रकृतिका अबन्धक होकर और दूसरे समयमें मरकर देव होकर पुनः उसका बन्ध करने लगता है, उसके तीर्थङ्कर प्रकृतिके अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय उपलब्ध होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

---

१. मूलप्रतौ जह० अंतो० जह० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९५. सासणे तिण्णि आयु० जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं सव्वपग० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२९६. सम्मामि० धुविगाणं जह० अज० णत्थि अंतरं। सादा०-हस्स-रदि-थिर-सुभ-जस० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तप्पडिपक्खाणं जह० ट्ठिदि० जहण्णु० अंतो०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो।

२९७. सण्णीसु पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-सत्तणोक०-पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-अजस०-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणुबंधि०४ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० बेछावट्ठि साग० देसू०। एवं इत्थिवे० जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं। अज० ओघं। अट्ठकसा० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडी देसू०। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-

२९५. सासादनसम्यक्त्वमें तीन आयुओंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। शेष सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

२९६. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ स्वामित्वका विचारकर अन्तरकाल ले आना चाहिए।

२९७. संज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार संज्वलन, सात नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । णिरय-देवायु० जह० [जह०] दस वस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० अणु०भंगो । तिरिक्ख-मणुसायु० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । णिरयग०-णिरयाणु० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोवमसदं० । तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० णत्थि अंतरं । अज० ओघं । मणुसगदि-देवगदि-वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-दोआणु०-उच्चा० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । चदुजा०-आदाव-थावर०४ जह० णत्थि अंतरं । अज० ओघं । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० जह० णत्थि अंतरं । अज० ओघं । आहार०२ जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० ।

विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छ्यासठ सागर और कुछ कम तीन पल्य है । नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका भङ्ग अनुत्कृष्टके समान है । तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक सौ पचासी सागर है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है । मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी और उच्चगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । चार जाति, आतप और स्थावर चारके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराचसंहननके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ अलग-अलग प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका जो अन्तरकाल कहा है, उसका अन्य मार्गणाओंमें अनेक बार स्पष्टीकरण कर आये हैं, उसे देखकर यहाँ अन्तरकालका विचार कर लेना चाहिए ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६८. असण्णीसु पंचणा०-णवदंसणा०-सादासादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचजादि-तिण्णिसरीर-छस्संठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-वण्ण०४-अगु०४-आदाव-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुगल-णिमि०-पंचंत० जह० जह० अंतो०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। चदु आयु०-वेउव्वियछ०-मणुसग०-मणुसाणु०-उच्चा० तिरिक्खोघं। तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० जह० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२६९. आहारगे खवगपगदीणं जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छत्त-अणंताणुबधि०४-इत्थि० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी०। अज० ओघं। णिद्दा-पचला-असादा०-छण्णोक०-पंचिंदि०-तेजा०-क० समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-[अजस०-]णिमि० जह० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। अज० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी०। अज० ओघं। णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा०

---

२९८. असंज्ञी जीवोंमें, पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संहनन, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, दो विहायोगति, त्रस और स्थावर आदि दस युगल, निर्माण और पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

२९९. आहारक जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार और स्त्रीवेदके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, छह नोकषाय, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० ओघं । णिरय-देवायु० जह० ट्ठिदि० जह० दसवस्ससहस्साणि सादि०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० । तिरिक्खायु० जह० ट्ठिदि० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० बेसाग० सहस्साणि सादिरे० । अज० जह० अंतो०, उक्क० सागरोवमसद-पुधत्तं । मणुस० जह० जह० खुद्दाभव० समयू०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असं० । वेउव्वियछक्क-मणुसग०-मणुसाणु जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । [अजह० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडी] तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-उज्जो० जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० ओघं । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० ट्ठिदि० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० ओघं । ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जरिसभ० जह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० ओघं । आहार०२ जह० ट्ठिदि० णत्थि अंतरं । अज० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० । अणाहार० कम्मइगभंगो । अंतरं समत्तं ।

दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर ओघके समान है । नरकायु और देवायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तिर्यञ्चायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागर है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है । मनुष्यायुके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । वैक्रियिक छह, मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्व कोटिवर्ष प्रमाण है । तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है । चार जाति, आतप और स्थावर आदि चारके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल ओघके समान है । औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और वज्रर्षभनाराच संहननके जघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल ओघके समान है । आहारकद्विकके जघन्य स्थितिबन्धका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंमें अपनी सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्धका अन्तर काल कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्री अशोक कुमार जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org